हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—१८

कोयला



लेखक
फूलदेव सहाय वर्मा

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण
१९५८

मूल्य
आठ रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात् यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विशेष उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। हमें संविधान में निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राजकार्यों में व्यवहृत करना है, वरन् उसे उच्चतम शिक्षा के माध्यम के लिए भी परिपुष्ट बनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी में वाङ्मय के सभी अवयवों पर प्रामाणिक ग्रन्थ हों और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इसी भावना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दी समिति के तत्त्वावधान में हिन्दी वाङ्मय के सभी अंगों पर ३०० ग्रन्थों के प्रणयन एवं प्रकाशन के लिए पंच-वर्षीय योजना परिचालित की है। यह प्रसन्नता का विषय है कि देश के बहुश्रुत विद्वानों का सहयोग इस सत्प्रयास में समिति को प्राप्त हुआ है जिसके परिणाम-स्वरूप थोड़े समय में ही विभिन्न विषयों पर सत्रह ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। देश की हिन्दीभाषी जनता एवं पत्र-पत्रिकाओं से हमें इस दिशा में पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है जिससे हमें अपने इस उपक्रम की सफलता पर विश्वास होने लगा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला का १८वाँ पुष्प है। इसमें कोयले के खनन तथा व्यवसाय आदि से सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगी सामग्री दी गयी है। आज के औद्योगिक युग में कोयले का महत्त्व बहुत बढ़ गया है और भारत के उद्योगधन्धों में भी इसे काफी ऊँचा स्थान प्राप्त है। ऐसी स्थिति में हिन्दी में इस विषय की किसी अच्छी पुस्तक का न होना बड़ा खटकता था। इसीसे हिन्दी समिति ने सुविज्ञ लेखक से लिखाकर इसे प्रकाशित करने का निश्चय किया। उन्होंने अंग्रेज़ी की अनेक पुस्तकों का अध्ययन कर तथा कितनी ही सरकारी रिपोर्टों आदि से आँकड़े एवं अन्य ज्ञातव्य बातें इकट्ठी कर बड़े परिश्रम से इसकी रचना की है। आशा है, हिन्दी के पाठकों को विषय की सम्यग् जानकारी प्राप्त करने में इससे अच्छी सहायता मिलेगी।

भगवतीशरण सिंह

सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

आधुनिक सभ्यता के विकास में कोयले का बहुत बड़ा हाथ है। आज यदि कोयला न होता तो रेलगाड़ियाँ न चलतीं, समुद्री जहाज न चलते, वाणिज्य-व्यापार इतनी उन्नति न करता, पुतलीघर और चटकलें न चलतीं, अधिकांश कल-कारखाने न होते और न उद्योग-धन्धे ही इतने पनपते। कोयले के कारण ही आज प्लास्टिकों, अनेक बहुमूल्य औषधियों, प्रायः समस्त कृत्रिम रंगों, अनेक प्रबल विस्फोटकों, अनेक सुगन्धित द्रव्यों और कई उपयोगी धातुओं एवं धातु-मिश्रणों का निर्माण सम्भव हो सका है।

भारत के उद्योग-धन्धों में कोयले के उद्योग का स्थान ऊँचा है। पर्याप्त पूँजी और पर्याप्त व्यक्ति इस उद्योग-धन्धे में लगे हुए हैं और अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना में कोयले का उत्पादन बढ़ाने की चेष्टाएँ होनेवाली हैं। १९५५ ई० में भारत में ३८० लाख टन कोयले का उत्पादन हुआ था। अगले पाँच वर्षों में उत्पादन ६०० लाख टन तक बढ़ाने की योजना बनी है। इसमें से कुछ उत्पादन की वृद्धि तो सरकारी खानों में होगी और शेष गैर-सरकारी खानों में। गैर-सरकारी खानों के लिए १०० लाख टन वृद्धि की योजना बनी है। इनमें ५७ लाख टन वृद्धि रानीगंज के, ३२·५ लाख टन झरिया के, ५·५ लाख टन करनपुरा के, ५ लाख टन मध्य भारत के कोयला-क्षेत्रों में होगी। कोक बननेवाले कोयले के निकास में भी २५ लाख टन की वृद्धि होगी। इसके लिए नयी खानें खोदने और कोयले के नये स्तर खोलने का सुझाव है।

निम्न कोटि के कोयले भी भारत में बहुत पाये गये हैं। उनके उपयोग उतने व्यापक नहीं हैं। उनको अधिक उपयोग में लाने का प्रयत्न भी हो रहा है। ऐसे कोयले के उपयोग की एक रीति निम्न ताप पर कार्बनीकरण है। निम्न ताप पर कार्बनीकरण के संयन्त्र अभी भारत में बैठाये नहीं गये हैं। अगले पाँच वर्षों में ऐसे संयन्त्र बैठाने का प्रयत्न होनेवाला है। ऐसा संयन्त्र पहले-पहल हैदराबाद में बैठाया जा रहा है। इस संयन्त्र में प्रति दिन ८० टन कोयले से अर्ध-कोक बनेगा। इससे दो लाभ होंगे।

एक लाभ तो यह होगा कि निकृष्ट कोटि के कोयले का उपयोग हो जायगा। दूसरे इससे ऐसा कोक प्राप्त होगा जिसका उपयोग जलावन के लिए सुविधा से हो सकेगा। इस सम्बन्ध में जो योजनाएँ बनी हैं उनसे कम से कम २० लाख टन अर्ध-कोक प्राप्त होगा।

अनुमान लगाया गया है कि भारत में जलावन के लिए ८ करोड़ टन गोबर या अन्य खेती के सामान प्रति वर्ष उपयोग में आते हैं। यह ४ करोड़ टन कोयले के बराबर है। ३५,०००,००० टन लकड़ी जलावन में प्रति वर्ष प्रयुक्त होती है। यह १९,०००,००० टन कोयले के बराबर है। भारत में निकृष्ट कोटि के कोयले की मात्रा ८ अरब टन कूती गयी है। चेष्टा यह होनेवाली है कि जलावन के लिए गोबर न प्रयुक्त हो। गोबर केवल खाद बनाने के लिए सुरक्षित रखा जाय।

भारत सरकार ने जो योजना बनायी है उसमें २,०००,००० टन अर्ध-कोक के प्रति वर्ष उत्पादन का प्रयत्न होनेवाला है। धीरे-धीरे इस मात्रा को बढ़ाकर अग्रिम १० से १५ वर्षों में २०,०००,००० टन करने का विचार है।

यदि ऐसा हो जाय तो जलावन की ६० प्रतिशत पूर्ति कोयले से, ३० प्रतिशत लकड़ी और गोबर से और शेष १० प्रतिशत पूर्ति तेल और बिजली से हो जायगी। निम्नताप कार्बनीकरण के लिए जिस कोयले का उपयोग होगा वह कोयला मद्रास के कोयला-क्षेत्रों का, उत्तर प्रदेश के तराई-क्षेत्रों का और कलिम्पौंग तथा दारजिलिंग के पहाड़ी क्षेत्रों का होगा।

एक दूसरी रीति से भी निकृष्ट कोटि के कोयले के उपयोग का प्रयत्न आज ब्रिटेन में हो रहा है। इस सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान वहाँ हुए हैं और अब भी हो रहे हैं। वहाँ भी उत्तम कोटि के कोयले का खर्च बहुत अधिक हो रहा है जिससे ऊँची कोटि के कोयले के जल्दी ही समाप्त हो जाने का भय है। इससे ऐसे कोयले का उपयोग कम करने और निकृष्ट कोटि के कोयले का उपयोग बढ़ाने के सम्बन्ध में अनुसन्धान हुए हैं। उनका परिणाम बहुत सन्तोषप्रद हुआ है।

एक सफल प्रयोग में एक पात्र में निकृष्ट किस्म के कोयले की धूल रखते हैं। उस पर किसी निष्क्रिय गैस को अथवा अति तप्त भाप को प्रवाहित करते हैं। कोयले की धूल का वाष्पशील अंश शीघ्र निकलकर कोयले को ऐसा बना देता है कि वह एक पात्र से दूसरे पात्र में सरलता से स्थानान्तरित किया जा सके। किसी बाँधनेवाले पदार्थ—बंधक—से बाँधकर इष्टका बनाते हैं। अब तो ऐसी विधि निकल आयी है जिससे बिना किसी बंधक के इष्टका बन सकती है। पर यह विधि अभी सबको मालूम नहीं है।

इससे निकृष्ट कोटि के कोयले का उपयोग बढ़ ही नहीं जायगा वरन् इससे ईंधन भी बहुत सस्ता प्राप्त होगा। एक ऐसा संयन्त्र बैठाया जा रहा है जिसमें प्रति घंटा २० से ४० टन कोयले का उपयोग इष्टका बनाने में हो सके।

१,००० टन कोयले से ६६० टन इष्टका, १००० गैलन हलका तेल, ४००० गैलन डीजेल तेल और १५००० गैलन पिच क्रियोसोट प्राप्त हुए हैं। यहाँ गैसें भी पर्याप्त मात्रा में बनती हैं जिनका उपयोग गरम करने में हो सकता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है और आगे जो कुछ कहा जायगा उससे स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र के हित की दृष्टि से कोयला बड़ा उपयोगी पदार्थ है। सौभाग्य से भारत में पर्याप्त कोयला मिला है और कोयले की खानों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है। कोयला वस्तुतः राष्ट्र की बहुत बड़ी निधि है। इस निधि का संरक्षण होना आवश्यक है। कोयले का संरक्षण तब तक नहीं हो सकता जब तक कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण न हो। जब तक कोयले की खानें उन लोगों के हाथ में रहेंगी जिनका उद्देश्य केवल धन कमाना है, तब तक कोयले का संरक्षण सम्भव नहीं है। राष्ट्रीयकरण से ही कोयले का संरक्षण हो सकता है। यह सम्भव है कि राष्ट्रीयकरण से कुछ लोग बेकार हो जायँ। उनके लिए दूसरा व्यवसाय खोजना पड़ेगा। पर राष्ट्रहित की दृष्टि से कोयले का संरक्षण और राष्ट्रीयकरण बड़ा आवश्यक है।

इस्पात, खान और ईंधन के मंत्री ने दिसम्बर १९५७ में लोकसभा में एक प्रश्न के उत्तर में सूचना दी है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १२० लाख टन कोयले के उत्पादन में वृद्धि करने की जो योजना बनी है, उसमें २३·७ लाख टन कोयला उन खानों से निकाला जायगा जिनकी मालिक भारत-सरकार है। ११·५ लाख टन कोयला सिगरेनी खानों से निकाला जायगा जिनकी मालिक आन्ध्र प्रदेश की सरकार है और शेष कोयला निम्नलिखित नयी खानों से निकाला जायगा——

१. कोरबा	२६·०	लाख टन
२. कठारा	१०·०	,,
३. करनपुरा		
(क) गिडी क्षेत्र	१५·०	,,
(ख) बछरा सौंडा	६·०	,,
४. कोरीया	१०·०	,,
५. बिसरामपुर	१०·०	,,

इस योजना की पूर्ति के लिए जो कुछ अब तक किया गया या किया जा रहा है वह निम्नलिखित है——

१. छेदाई—कठारा, कोरबा का पूर्वीय भाग, गिडी और सौंडा (करनपुरा) क्षेत्रों की छेदाई और पूर्वेक्षण (prospecting) प्रायः पूरा हो चुका है। बिसरामपुर, कोरिया और कोरबा के पश्चिमी भाग की छेदाई और पूर्वेक्षण हो रहा है।

२. संयन्त्र और मशीन—प्रायः डेढ़ करोड़ रुपये के संयन्त्र और मशीनें आ गयी हैं। पाँच करोड़ रुपये की मशीनों और यन्त्रों का आर्डर दे दिया गया है।

३. कोयला-क्षेत्रों को सरकार के अधीन करने का जो कानून मई १९५७ में पारित हुआ था वह कानून जून १९५७ से लागू हो गया है। इस कानून के अनुसार जिन खानों से कोयला निकालने का काम नहीं हो रहा है, उन खानों को भारत-सरकार अपने अधिकार में लेकर उनसे कोयला निकाल सकती है।

इस कानून की दफा ७ के अनुसार कठारा क्षेत्र की कुछ खानों को नोटिस दे दी गयी है और अन्य खानों को नोटिस देने पर विचार हो रहा है।

कोरवा क्षेत्र में एक अग्रिम छेदाई शुरू हो गयी है। इसके कार्य में पर्याप्त प्रगति हुई है। ऐसी आशा की जाती है कि मार्च सन् १९५८ तक खानों से कोयला निकालने का काम शुरू हो जायगा।

खानों में काम करने के लिए निम्न कोटि के टैक्नीशियनों के प्रशिक्षण का काम चार खानों के चार केन्द्रों में शुरू हो गया है और प्रशिक्षण चल रहा है। खानों से निकले कोयले को बाहर भेजने के लिए नयी रेल लाइनें बनाने की योजना प्रायः बन गयी है और प्रारम्भिक कार्य शुरू हो गया है। कोयले को धोकर सफाई करने का संयन्त्र बन रहा है। यह संयन्त्र बोकारो में कार्गली खान में बैठाया जायगा जहाँ इन सब खानों से निकले कोयले की सफाई होगी। आशा है कि शीघ्र ही यह संयन्त्र काम करने लगेगा।

राष्ट्रीयकरण से ही कोयले का नष्ट होना बच सकता है, यह हम ऊपर कह चुके हैं। कच्चे कोयले का उपयोग भी बन्द होना चाहिए। कच्चे कोयले के उपयोग से कोयले की अनेक बहुमूल्य चीजें नष्ट हो जाती हैं। कोयले के भभके में कार्बनीकरण से ये बहुमूल्य चीजें प्राप्त की जा सकती हैं। अतः कच्चे कोयले के स्थान में कोक और अर्ध-कोक का उपयोग होना चाहिए। जिन कामों में आज कच्चे कोयले का उपयोग होता है उनमें कोक और अर्ध-कोक का उपयोग सरलता से हो सकता है। कुछ कामों के लिए आज कोयले के स्थान में बिजली का उपयोग हो रहा है। कुछ रेलगाड़ियाँ भी अब बिजली से ही चलेंगी। इससे कोयले की बहुत कुछ बचत हो जायगी जो राष्ट्रहित की दृष्टि से अत्यावश्यक है।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में कोयले पर अनेक छोटे-मोटे लेख समय-समय पर प्रका-

शित हुए और होते हैं। पर कोयले पर हिन्दी में कोई ग्रन्थ देखने को हमें नहीं मिला है। ऐसा कोई ग्रन्थ हिन्दी में नहीं है जिससे कोयले के सम्बन्ध की आवश्यक बातें मालूम हों। इस कमी की पूर्ति के लिए ही यह पुस्तक लिखी गयी है।

इस पुस्तक के लिखने में लेखक का प्रायः दो बरस का समय लगा है। पुस्तक लिखने की तैयारी में प्रायः इतना ही और समय लगा है, यद्यपि कोयले से लेखक का सम्बन्ध बहुत पुराना, छात्रावस्था से ही है। पुस्तक में आवश्यक बातों का संग्रह कर उसे उपयोगी और शिक्षाप्रद बनाने में लेखक ने भरपूर प्रयत्न किया है। पुस्तक कैसी हुई है और कहाँ तक इसके लिखने में लेखक को सफलता मिली है, यह तो पाठक और कोयले के विशेषज्ञ ही बता सकते हैं।

लेखक को पूरा विश्वास है कि इस पुस्तक से कोयले के सम्बन्ध की बहुत सी बातों की जानकारी हो जायगी और जो लोग कोयले के खनन और व्यवसाय से सम्बन्ध रखते हैं उनके लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। रसायनज्ञों के लिए भी कोयले के विश्लेषण के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचना इस पुस्तक में दी हुई है।

इसके लिखने में अंग्रेजी की अनेक पुस्तकों से सहायता ली गयी है। भारत के भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी की पंचवर्षीय रिपोर्ट से अनेक आँकड़े, जिनका समावेशन इस पुस्तक में हुआ है, लिये गये हैं। भारतीय कोयले के इतिहास के सम्बन्ध में वाट के कामर्शल प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया से और कोयले के क्षेत्रों के सम्बन्ध में मिनरल वेल्थ ऑफ इण्डिया से सहायता ली गयी है। इन सबों का लेखक आभारी है।

भारतीय लकड़ी और भारतीय लकड़ी के कोयले के सम्बन्ध में बहुत जानकारी देहरादून के फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तिकाओं से प्राप्त हुई है। पुस्तिकाओं के प्राप्त करने में इंस्टिट्यूट के डाइरेक्टर महोदय से सहायता मिली है। लेखक की प्रार्थना पर उन्होंने पुस्तिकाएँ प्रदान करने की कृपा की। अनेक पेड़ों के भारतीय नाम भी उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुए हैं। अतः उनके प्रति भी लेखक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है।

शक्ति निवास,
बोरिंग रोड, पटना—१

फूलदेव सहाय वर्मा

विषय-सूची

कोयला

पहला अध्याय

कोयला और कोयले की उपयोगिता

कोयला और कोयल दोनों संस्कृत के 'कोकिल' शब्द से निकले हैं। कोकिल का एक अर्थ होता है 'अंगारा'। अंगारा का अर्थ है 'दहकता हुआ कोयला'। हिन्दी शब्द सागर में कोयले का अर्थ इस प्रकार दिया है—

१. वह जला हुआ अंश वा पदार्थ जो जली हुई लकड़ी के अंगारों को बुझाने से बच रहता है।

२. एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो कोयले के रूप का होता और जलाने के काम में आता है।

कोयला इतना सामान्य शब्द है कि छोटे-बड़े, पढ़े-अनपढ़े, सब इस शब्द से परिचित हैं। कोयले के लिए डा० रघुबीर ने 'अंगार' शब्द का प्रयोग किया है। साधारणतया दहकते कोयले के लिए 'अंगार' शब्द का प्रयोग होता है। वैज्ञानिकों ने कोयले की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। कोयले की एक अधिक समुचित परिभाषा इस प्रकार की है—

"कोयला पौधों का एक सघन स्तरित पुंज है जिसके अपक्षय (डिके) का समय-समय पर प्रग्रहण (ऐरेस्ट) हुआ है और जिसके भौतिक और रासायनिक गुणों में भौमिकीय क्रियाओं के कारण परिवर्तन हुए हैं। पौधों के पेचीले रासायनिक परिवर्तनों के पश्चात्, जिनमें जल, कार्बन-डाइआक्साइड और मिथेन निकलते हैं, कोयला बनता है। भौतिक परिवर्तनों में रंग के परिवर्तन, कठोरता में वृद्धि, सघनता और भंगुरता में परिवर्तन प्रमुख हैं जिनसे कोयला खनिज-सा देख पड़ता है और इस कारण चट्टानों में इसकी गिनती होती है।"

कोयले को मोटे तौर से वैज्ञानिकों ने तीन वर्गों में विभक्त किया है। जो कोयला लकड़ी अथवा अन्य उद्भिद एवं कार्बनिक पदार्थों के जलाने से प्राप्त होता है उसे लकड़ी का कोयला या काष्ठ या काठ का कोयला कहते हैं। कोई-कोई इसे काष्ठांगार (चारकोल) या कार्बनिक काल (कार्बन या चारकोल ब्लैक) भी कहते हैं।

जो कोयला हड्डियों या अन्य जान्तव पदार्थों के जलाने से प्राप्त होता है उसे 'हड्डी का कोयला', अस्थि-कोयला, जान्तव कोयला, अस्थ्यंगार (बोन चारकोल) या अस्थि-काल (बोनब्लैक) कहते हैं।

जो कोयला धरती के अन्दर खानों से निकलता है उसे 'खनिज कोयला', प्रस्तर-कोयला, पत्थर का कोयला अथवा केवल 'कोयला' कहते हैं।

तीनों प्रकार का कोयला--लकड़ी का कोयला, हड्डी का कोयला और पत्थर का कोयला--बड़े महत्त्व का है और अनेक घरेलू कामों, रासायनिक प्रक्रियाओं तथा उद्योगधन्धों में प्रत्येक का प्रयोग होता है।

लकड़ी के कोयले का उपयोग विशेषतः ईंधन के लिए होता है। बहुत प्राचीन काल से घरेलू जलावन के लिए इसका प्रयोग होता आ रहा है। लोहसाई में भी लकड़ी के कोयले का प्रयोग बहुत प्राचीन है। सुनार भी अपने व्यवसाय में इसका प्रयोग करते आ रहे हैं।

लकड़ी के स्थान में कोयले के प्रयोग में निम्नलिखित लाभ हैं--

१. कोयले के जलने में धुआं नहीं होता जबकि लकड़ी के जलने में बहुत धुआँ बनता है।

२. कोयले की आँच लकड़ी की आँच से तेज होती है।

३. कोयले की लौ साफ होती है और उससे कजली नहीं बनती जबकि लकड़ी की लौ उतनी साफ नहीं होती और उससे पर्याप्त कजली बनती है।

४. कोयले में गन्धक बड़ी अल्पमात्रा में रहता है। लकड़ी में अपेक्षया अधिक गन्धक रहता है। गन्धक के कम रहने से ही कोयले का उपयोग धातु निर्माण में, विशेषतः इस्पात के निर्माण में, अच्छा समझा जाता है।

५. कोयला आसानी से सुलग जाता है। एक बार सुलग जाने पर बिना बुझाये नहीं बुझता।

६. कोयले के जलने से राख बहुत अल्प बनती है।

७. कोयले के ले जाने ले आने में सुविधा होती है। यात्रा में सरलता से यह साथ ले जाया जा सकता है।

८. कोयला अधिक सान्द्र जलावन है। अल्प कोयले से अधिक चीज़ गरम की जा सकती है।

ईंधन के सिवाय काष्ठ-कोयले के अन्य अनेक उपयोग हैं। इसकी उपयोगिता दिन-दिन बढ़ रही है। आज कार्बनिक कोयला रबर के सामानों, विशेषतः टायर और टचुबों, जूतों आदि के निर्माण में, पेण्ट और इनेमल, पालिश, ग्रामोफोन और

फोनोग्राफ के रेकार्डों, कार्बन-कागज़, टाइपराइटर के रिबन, चमड़े, जिल्द बांधने की दफ़्ती और पेंसिल (शलाका) के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

कुछ विशेष प्रकार के इस्पात के निर्माण में कार्बन का योग बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अनेक पदार्थों के शोधन में, रंगों के दूर करने और गन्ध के हटाने में सक्रियित कोयले का उपयोग दिन-दिन बढ़ रहा है। एक ऐसा ही कोयला 'नौरिट' के नाम से बिकता है। मदिरा और तेलों के परिष्कार में नौरिट का उपयोग अधिकता से होता है।

बुरी अवांच्छित गैसों के अवशोषण के लिए लकड़ी का कोयला बहुत कारगर सिद्ध हुआ है। अस्पतालों और अन्य ऐसे स्थलों में बाल्टियों या टोकरियों में यह कोयला बुरी गैसों के अवशोषण के लिए स्थान-स्थान पर रखा रहता है। युद्धगैसों और अश्रुगैसों का अवशोषण भी नारियल के छिलके के कोयले से बहुत अधिक होता हुआ पाया गया है। मास्को में नारियल के छिलके का ही कोयला इस्तेमाल होता है। ऐसा कोयला छिलके को एक विशिष्ट ताप पर एक विशिष्ट परिस्थिति में जलाकर तैयार किया जाता है।

लकड़ी का कोयला बारूद का एक आवश्यक अंग है। बारूद में ऐसा कोयला १३·६ से २२·३ प्रतिशत तक रहता है।

कोयला ऊष्मा का अचालक होता है। अतः रिफ्रिजेरेटर या प्रशीतक में दो तलों के बीच के स्थान में लकड़ी का कोयला भरा जाता है। विद्युत् यंत्रों के ब्रश भी ऐसे कोयले के ही बनते हैं।

लकड़ी के कोयले के कार्बन से कार्बन डाइ सल्फाइड और कार्बन टेट्राक्लोराइड नामक विलायक और सोडियम सायनाइड और पोटैसियम सायनाइड नामक बड़े उपयोगी रासायनिक द्रव्य बनते हैं। ये सायनाइड प्रयोगशालाओं में प्रतिकारक के रूप में और बिजली द्वारा मुलम्मा करने में प्रयुक्त होते हैं।

काले वर्णक के लिए कोयला उत्तम होता है। यह वर्णक वायु और प्रकाश से प्रभावित नहीं होता। इस कारण इसका रंग स्थायी होता है।

कोयला छापे की स्याही (मुद्रण स्याही) का एक प्रमुख अंग है। इसके लिए पहले कजली प्रयुक्त होती थी पर अब प्राकृतिक गैस से बना कोयला सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। छापे की स्याही की उत्कृष्टता कजली की उत्कृष्टता पर, विशेषतः उसकी सूक्ष्मता पर, निर्भर करती है।

हड्डी के कोयले का सबसे अधिक उपयोग रंगों और गन्धों के दूर करने में होता

है। एक समय ईख के रसों या सीरे की सफाई कर बिलकुल सफेद चीनी की प्राप्ति के लिए केवल जान्तव कोयला काम में लाया जाता था। भारत से बाहर के देशों में आज भी चीनी की सफाई इसी से होती है पर भारत में चीनी की सफाई के लिए हड्डी का कोयला नहीं प्रयुक्त होता। इसके स्थान में अन्य पदार्थ प्रयुक्त होते हैं। अन्य कई कार्बनिक पदार्थों की सफाई भी हड्डी के कोयले से होती है।

काले वर्णक के लिए हड्डी का कोयला अब भी इस्तेमाल होता है। व्यापार के अनेक काले वर्णक इससे बनते हैं। खाद के लिए भी चूर्ण के रूप में यह कोयला प्रयोग में आता है। इस कोयले में कैलसियम फास्फेट पर्याप्त मात्रा में रहता है। फास्फरस के कारण ही खाद में इसका महत्त्व है।

खनिज कोयले का सबसे अधिक उपयोग ईंधन में होता है। बायलर में इसे जलाकर भाप बनाते हैं। घरेलू जलावन में कोयले अथवा इसके परिष्कृत रूप 'कोमल कोक' का उपयोग बहुत अधिकता से होता है और इसके उपयोग का क्षेत्र दिन-दिन बढ़ रहा है। 'कठोर कोक' का उपयोग धातु-निर्माण में होता है। कोयले के चूर्ण का उपयोग बिजली उत्पन्न करने में होता है। ऐसे चूर्ण से ही आज ईंटें पकायी जाती हैं। रेलगाड़ियों और जहाजों के इंजन में यही कोयला जलता है। बोकारो (हज़ारीबाग जिले में) के थर्मल पावर स्टेशन में पचास-पचास किलोवाट की मशीनें लगी हैं जिनमें निकृष्ट कोटि के कोयले के चूर्ण से बिजली उत्पन्न होती है।

कोयले से आज पेट्रोलियम बनता है। ऐसे पेट्रोलियम से पेट्रोल ईथरा, पेट्रोल, डीजेल तेल, किरासन, स्नेहक तेल और मोम प्राप्त हो सकते हैं।

कोयले के भंजक आसवन से अनेक बड़े उपयोगी पदार्थ, कोक, अलकतरा, अमोनिया और जलनेवाली कोल-गैस प्राप्त होती है। कोक धातु-निर्माण और घरेलू जलावन में प्रयुक्त होता है। कोक के सहयोग से हाइड्रोजन प्राप्त होता है जिससे अमोनिया बनकर रासायनिक खाद अमोनियम सल्फेट बनता है। सिन्दरी कारखाने में इसी रीति से अमोनियम सल्फेट नामक उर्वरक बनता है। कोक से ग्रेफाइट भी बनता है। जलनेवाली गैस से ऊष्मा और प्रकाश उत्पन्न किया जाता है। एक समय बड़े-बड़े नगर इसी गैस से प्रकाशित होते थे यद्यपि आज ऐसी गैस द्वारा प्रकाश का स्थान बिजली-प्रकाश ले रहा है। घरेलू जलावन के लिए भी कोयला गैस का उपयोग होता है। गैस के चूल्हे से आज भोजन तैयार होता है।

कोयले के भंजक आसवन का अलकतरा एक आवश्यक अंग है। अलकतरा बड़ा उपयोगी पदार्थ सिद्ध हुआ है। इससे अनेक बहुमूल्य पदार्थ पृथक् किये गये हैं। ऐसे पदार्थों में बेंज़ीना टोल्वीन, ज़ाइलीन, नैफ्थलीन, अंथ्रेसीन, फीनोल, क्रियोसोल

एनिलीन, पिरिडीन आदि हैं। इन पदार्थों से फिर हजारों अन्य पदार्थ बनाये गये हैं। इन पदार्थों में अनेक औषधियाँ, कई विस्फोटक, सैकड़ों कृत्रिम रंग, अनेक सुगन्धित द्रव्य और कई कृमिनाशक और जीवाणुनाशक पदार्थ हैं। नील सा सस्ता रंग, ऐस्पिरिन-सी औषध, सैकेरिन-सी मीठी वस्तु, मंजीठ-सा सुन्दर रंग, सब इन्हीं पदार्थों से बनते हैं।

दूसरा अध्याय

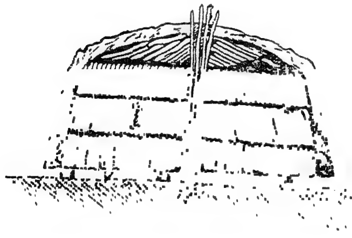
लकड़ी का कोयला

ऐतिहासिक विवेचन

लकड़ी के कोयले का ज्ञान बहुत प्राचीन है। कब से इसका ज्ञान हुआ, ठीक-ठीक पता नहीं लगता। यह निश्चित है कि प्रागैतिहासिक काल से मनुष्यों को इसकी जानकारी रही है। प्रत्येक देश के प्राचीन ग्रन्थों में लकड़ी के कोयले का उल्लेख मिलता है।

कोयले के बनाने का ज्ञान भी प्राचीन है। कोयले के आसवन से प्राप्त पदार्थों का ज्ञान भी आधुनिक नहीं है। कोयले के निर्माण से प्राप्त अलकतरे और काष्ठासुत अम्ल (pyroligneous acid) का वर्णन कुछ प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। मिस्र देश में शव के सुरक्षित रखने में अलकतरे और काष्ठासुत अम्ल का उपयोग होता था।

ढेर में लकड़ी को जलाकर कोयला बनाने की रीति बहुत दिनों से प्रचलित रही है। कोयला बनाने की सबसे प्राचीन रीति यही है। आज भी कुछ देशों में इस रीति का उपयोग होता है। धातुओं के आविष्कार के बाद तो कोयला तैयार करने का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया क्योंकि धातु के निर्माण में कोयले का उपयोग होता है। पहले-पहल खुली वायु में ढेर में लकड़ी जलायी जाती थी। पीछे अधिक दक्ष रीति, गड्ढे में जलाने की रीति, निकली। उस समय लकड़ी जलाने का उद्देश्य केवल कोयला प्राप्त करना था। अतः इस प्रकार कोयला बनाने की कला में लोगों ने पर्याप्त प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। ढेर में लकड़ी कैसे जलायी जाती है, उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है। पीछे ढेर के नीचे गड्ढा बनाकर अलकतरा भी प्राप्त किया जाने लगा था।



चित्र १—लकड़ी जलाकर कोयला बनाने की प्राचीन रीति

लकड़ी जलाकर कोयला बनाने का उल्लेख १८ वीं सदी के अनेक ग्रन्थों और लेखों में मिलता है। इन सबों का संग्रह बर्ग (Berg) के ग्रन्थ में मिलता है। बर्ग १८२८ से १८६० ई० तक जीवित थे। इसी बीच इन्होंने पुस्तक लिखी थी। बर्ग ने अलकतरे और काष्ठासुत अम्ल का भी वर्णन किया है।



चित्र २—गड्ढे में लकड़ी जलाकर कोयला बनाना और अलकतरे का संग्रह

जब शंकुल (कोनिफेरस) काष्ठ का आसवन शुरू हुआ तब कोयले के सिवाय अकलतरे और तारपीन भी प्राप्त होने लगे। अब केवल तारपीन के तेल के लिए भी लकड़ी का आसवन होता है। अलकतरे का उपयोग बहुत पुराना है। आसवन से प्राप्त अधिक वाष्पशील, संघनीय और असंघनीय गैसों का उपयोग अपेक्षया आधुनिक है। उस समय इन उत्पादों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। उस समय उनके वस्तुतः कोई उपयोग नहीं थे।

१९ वीं सदी में इन उत्पादों के उपयोग पहले-पहल शुरू हुए। धातु-निर्माण के लिए कोयले की मांग इतनी अधिक थी और उनका मूल्य इतना अधिक था कि उस समय लकड़ी के आसवन के उपजातों की उपयोगिता की ओर विशेष ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पर जैसे-जैसे रसायन के अध्ययन का विकास होने लगा, वैसे-वैसे उपजातों का अनुसन्धान अधिकाधिक होने लगा और लोगों को यह जानने की उत्सुकता बढ़ने लगी कि आखिर कोयले के निर्माण के इन उपजातों में क्या चीजें हैं।

ग्लौबर (Glauber) ने पहले-पहल (१६५८ ई० में) बताया कि काष्ठासुत अम्ल में वही अम्ल रहता है जो सिरके में रहता है। फोरक्रायी और वेंक्वेलिन (Fourcry and Vanquelin) ने १८०० में बताया कि काष्ठासुत अम्ल में वही अम्ल रहता है जो चीनी और गोंद के आसवन से प्राप्त होता है। इस अम्ल को उस समय पाइरोम्युसिक अम्ल (pyromucic acid) कहते थे। यह एक भिन्न प्रकार का अम्ल समझा जाता था। १६६१ ई० में बायल ने लकड़ी के आसवन से प्राप्त वाष्पशील उत्पादों में सुरा सदृश एक द्रव का उल्लेख किया है। १८१२ ई० में टेलर (Taylor) ने देखा कि यह सुरा सदृश द्रव सामान्य अलकोहल-सा कोई पदार्थ

है। १८१९ ई० में कोलिन ने इसे ऐसिटोन बताया। डोबेराइनर (Doebereiner) ने इसे सामान्य अलकोहल बताया और राइचेन बाक् (Reichenbach) का मत था कि यह ऐसिटोन और सामान्य अल्कोहल का मिश्रण है। डूमा और पेलिगो (Dumas and Peligot) ने १८३५ ई० में काष्ठ-स्पिरिट से एक अलकोहल पृथक् किया और उसका नाम मेथिल अलकोहल दिया।

राइचेनबाक् ने लकड़ी से प्राप्त अलकतरे का संघटन मालूम किया और फिलिप-लेबोन (Philip Lebon) तथा पेटेनकोफर (Pettenkofer) ने काष्ठ से प्राप्त गैसों का संघटन निकालकर इन उत्पादों का महत्त्व बढ़ाया।

लकड़ी से प्राप्त गैसों—काष्ठ-गैसों—का उपयोग प्रकाश उत्पन्न करने में हो सकता है। इसके पता लगाने का श्रेय इंगलैंड के रसायनज्ञों को है। पर उन्हें व्यवहार में लाने का श्रेय फ्रांसीसियों को है। पर जब काष्ठ-गैसों के उपयोग का पता लगा तब तक कोयला-गैस का आविष्कार हो चुका था और उसका उपयोग अधिक सुविधा-जनक सिद्ध हुआ था। कोयला-गैस के समक्ष काष्ठ-गैस टिक नहीं सकी, क्योंकि काष्ठ-गैस का प्रदीपक गुण कोयला-गैस से न्यून था।

१८०० ई० तक लकड़ी का आसवन केवल कोयले की प्राप्ति के लिए होता था। यह कोयला उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता था। उस समय तक आसवन से प्राप्त अन्य उपजातों का कोई महत्त्व नहीं था। अब उपजातों के उपयोग की चेष्टाएँ होने लगीं।

काष्ठासुत अम्ल में किसने पहले-पहल शुद्ध ऐसिटिक अम्ल प्राप्त किया, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। लोविट्स (Lowitz), जसमेयर (Jasmeyer), स्टौल्ट्ज़ (Stoltze), अथवा मेथोराट (Methorat) इन चारों ने इस दिशा में कार्य किया पर इनमें किसको इसका श्रेय दिया जाय, यह स्पष्ट नहीं है।

कार्बनिक रसायन के अध्ययन से पता लगा कि धातुओं के निर्माण में, विशेषतः लोहे के निर्माण में, वात-भट्ठी में लकड़ी के कोयले का उपयोग श्रेष्ठतर है। लकड़ी का कोयला ही बारूद बनाने में लगता है। अनेक कृत्रिम पदार्थों के निर्माण में जैसे दवाइयों, रंगों, सेल्युलायड, धूमरहित बारूदों, छींट की छपाई, कपड़े की रंगाई आदि में ऐसिटिक अम्ल इस्तेमाल होता है। शुद्ध ऐसिटिक अम्ल की प्राप्ति काष्ठासुत अम्ल से हो सकती है। पर काष्ठ-स्पिरिट का कोई उपयोग अब तक पाया नहीं गया था।

यह सुझाव रखा गया कि सामान्य अलकोहल के स्थान में इसका उपयोग हो पर काष्ठ-स्पिरिट के अशुद्ध होने के कारण ऐसा न हो सका। पर देखा गया कि सुरा

को अपेय बनाने में मेथिल अलकोहल का जो काष्ठ-स्पिरिट में रहता है, उपयोग हो सकता है। इस काम के लिए अनेक देशों में काष्ठ-स्पिरिट का उपयोग होने लगा।

इसी समय १८५० से १८६० के बीच कृत्रिम रंगों के निर्माण का आविष्कार हुआ। मौवे (Mauve) और फुशिन (Fuchsine) नाम के कृत्रिम रंग पहले-पहल इसी समय बने। इन रंगों से लोग सन्तुष्ट नहीं थे। इन रंगों से अधिक सुन्दर रंगों की मांग हुई। देखा गया कि इन रंगों को काष्ठ-स्पिरिट में घुलाकर आक्सीकरण से रंग बहुत सुन्दर हो जाता है।

अब काष्ठ-स्पिरिट की मांग बहुत बढ़ गयी। उसका मूल्य भी बढ़ गया। कुछ देशों में केवल काष्ठ-स्पिरिट की प्राप्ति के लिए ही काष्ठ का आसवन शुरू हुआ। ऐसे काष्ठ-स्पिरिट में केवल मेथिल अलकोहल ही नहीं था वरन् कुछ ऐसिटोन और कुछ अलकतरे के तेल भी रहते थे।

पीछे अन्य रंग भी बने जो देखने में अधिक सुन्दर थे पर जिनमें काष्ठ-स्पिरिट का उपयोग नहीं होता था। इससे कुछ समय के बाद काष्ठ-स्पिरिट की मांग और महत्त्व फिर कम हो गया और दाम बहुत गिर गया।

१८६४ ई० के लगभग एक दूसरे रंग, 'आयोडीन ग्रीन' (Iodine green) का आविष्कार हुआ। इसके तैयार करने में काष्ठ-स्पिरिट का उपयोग होता है। अब काष्ठ-स्पिरिट की मांग फिर बढ़ गयी और दाम चढ़ गया। पर यह नया रंग बहुत दिनों तक चला नहीं क्योंकि यह रंग देखने में यद्यपि अधिक सुन्दर था पर पक्का नहीं था। इसके स्थान में अन्य रंग 'मेथिल ग्रीन' (methyl green) और 'मेथिल वायोलेट' (methyl violet) बने जिनके निर्माण में काष्ठ-स्पिरिट का उपयोग होता था। आज तक ये रंग काष्ठ-स्पिरिट के योग से बनते आ रहे हैं।

१८८८ ई० में जर्मनी में एक कानून बना कि सुरा के अपेय बनाने में केवल मेथिल अलकोहल अथवा मेथिल अलकोहल और पिरिडीन का मिश्रण इस्तेमाल होना चाहिये। इससे काष्ठ-स्पिरिट की मांग बहुत बढ़ गयी और आज तक इस काम के लिए काष्ठ-स्पिरिट का उपयोग अनेक देशों में होता आ रहा है।

मेथिल अलकोहल की मांग और बढ़ गयी जब मेथिल अलकोहल से फार्मेलीन के तैयार करने की विधि निकली। फार्मेलीन आज प्रचुरता से औषधियों, कृमिनाशकों, जीवाणुओं और प्लास्टिकों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। फार्मेलीन के योग से आज अनेक अच्छे किस्म के प्लास्टिक बनते हैं।

काष्ठासुत अम्ल में मेथिल अलकोहल के साथ-साथ ऐसिटोन भी रहता है। ऐसिटोन का उपयोग पहले बहुत सीमित था। पर जब देखा गया कि सेल्युलायड उद्योग और

धूमरहित बारूद के निर्माण में इसका उपयोग आवश्यक है, तब इसकी मांग बढ़ गयी और दाम बहुत चढ़ गया। आज एक अन्य रीति, कैलसियम ऐसिटेट अथवा किण्वन रीति से भी ऐसिटोन का निर्माण होता है।

इस प्रकार काष्ठासुत अम्ल में विद्यमान ऐसिटिक अम्ल, मेथिल अलकोहल और ऐसिटोन तीनों अवयवों की मांग बढ़ जाने और दाम चढ़ जाने से काष्ठ के आसवन को बड़ा प्रोत्साहन मिला और आसवन के उपजातों की प्राप्ति का विशेष प्रयत्न होने लगा।

पहले लकड़ी का कोयला लकड़ी को गड्ढे में जलाकर बनाया जाता था। यहाँ आसवन के उपजातों का संग्रह सम्भव नहीं था। पीछे वह ढेर में जलाया जाने लगा। इससे वाष्पशील अंश का कुछ भाग इकट्ठा हो सकता था। वाष्पशील अंश के अधिक भाग के प्राप्त करने के लिए लकड़ी को अब भट्ठियों में जलाने की रीति निकली। कुछ भट्ठियाँ ऐसी बनीं जिनमें लकड़ी के जलाने के लिए अलग चूल्हे थे। यहीं लकड़ी को जलाकर उसकी गर्मी से कोयला वाली लकड़ी गरम की जाती थी। इससे ईंधन के दहन-उत्पाद भट्ठी की लकड़ी के संसर्ग में नहीं आते थे।

राइचेनबाक़ पहले व्यक्ति थे जिन्होंने धातु के बने पात्रों में लकड़ी को गरम कर कोयले बनाने की विधि की नींव डाली। यह पहली विधि थी जहाँ वायु के अभाव में लकड़ी को गरम कर कोयला बनाया गया था। दूसरे शब्दों में भभके में कोयला बनाने का यह सबसे पहला अवसर था। पीछे इस विधि का उपयोग, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड, स्वीडन, हंगरी आदि अनेक देशों में होने लगा।

ईंट की बनी भट्ठियों के स्थान में पीछे धातुओं की बनी भट्ठियों, लोहे के बक्सों, ऊर्ध्वाधार बक्सों, क्षैतिज बक्सों, का उपयोग होने लगा। फिर सिलिंडरों का उपयोग शुरू हुआ। भभकों की बनावट में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। भभके की धारिता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। १८५१ ई० में जर्मनी में और १८५३ ई० में रूस में २० घन मीटर के भमके बने। इन्हें हेसेल रिटार्ट (Hessel retort) कहते थे। इससे पहले केस्टनर रिटार्ट (Kestner retort) की धारिता केवल ३ घन मीटर की थी। इंगलैण्ड और औस्ट्रिया में प्रधानतया क्षैतिज भमके काम में लाये जाते थे जो एक मीटर व्यास के और ३ मीटर लम्बाई के होते थे। फ्रांस के भभके ऊर्ध्वाधार होते थे।

१८५० ई० तक काष्ठासुत अम्ल को केवल चूने के धूसर ऐसिटेट में जिसमें लगभग ६७ प्रतिशत कैलसियम ऐसिटेट रहता था, परिणत करते थे। उस समय काष्ठ-स्पिरिट को नहीं निकालते थे। कुछ काष्ठासुत अम्ल का आसवन कर सीस के आक्साइड से उदासीन बनाकर लेड ऐसिटेट बनाते थे। उसके बाद २० वर्षों तक, १८५० से १८७०

तक, आसवन से काष्ठासुत अम्ल से अपरिष्कृत ऐसिटिक अम्ल को अलकतरे, कैलसियम ऐसिटेट-द्राव और जलीय काष्ठ-स्पिरिट से एक ही प्रक्रम में अलग-अलग करते थे।

यहाँ चूने से अम्ल के निराकरण के पूर्व अलकतरे को अलग कर लेते थे। इससे जो ऐसिटेट प्राप्त होता था, उसे चूने के धूसर (grey) 'ऐसिटेट' कहते थे। इसमें कैलसियम ऐसिटेट की मात्रा ८०-८३ प्रतिशत रहती थी। जब काष्ठ-स्पिरिट की मांग बढ़ गयी तब काष्ठ-स्पिरिट की प्राप्ति के लिए 'स्तम्भ भभके' (Column still) का आविष्कार हुआ। इस भभके के उपयोग से जहाँ पहले केवल ५ से १० प्रतिशत विलयन ही प्राप्त होता था वहाँ केवल एक या दो क्रमों से पर्याप्त शुद्ध मेथिल अलकोहल प्राप्त होने लगा।

१८७० से १९०० के बीच काष्ठ-स्पिरिट के आसवन में विशेषतया अमेरिका और हंगरी में विशेष उन्नति हुई। इस समय जर्मनी में रंगों के निर्माण में काष्ठ-स्पिरिट की मांग बढ़ गयी। अब काष्ठासुत अम्ल की प्राप्ति के लिए सस्ती लकड़ी की खोज होने लगी क्योंकि सामान्य लकड़ी इसके लिए बड़ी महंगी पड़ती थी। लकड़ी के कारखानों में कुछ लकड़ी निकम्मी बच जाती है। काट-छाँट कर उपयोगी लकड़ी निकाल लेने पर कुछ निरर्थक अंश बच जाता है। ऐसे अंश में लकड़ी का बुरादा भी है। इन उच्छिष्ट अंशों के उपयोग की चेष्टाएँ होने लगीं। पर इनमें पूरी सफलता नहीं मिली। आज भी लकड़ी का आसवन उन्हीं देशों में होता है जहाँ लकड़ी सस्ती मिलती है अथवा धातुओं के निर्माण में कोयले की मांग रहती है।

हंगरी में क्षैतिज भभके १ मीटर व्यास के और ३ मीटर लम्बे होते हैं। भट्ठियाँ ५० घन मीटर धारिता की ऊर्ध्वाकार तापन नल वाली होती हैं। अमेरिका में इससे बहुत बड़ी-बड़ी भट्ठियाँ ४०० घनमीटर धारिता की, जिनके क्षैतिज भभके २५ से ३० घनमीटर की धारिता के होते हैं, प्रयुक्त होती हैं। लकड़ियाँ रेलों द्वारा डब्बों में लायी जा कर भट्ठियों में डाली जाती हैं। काष्ठासुत अम्ल के अवयवों के पृथक्करण में भी इधर पर्याप्त सुधार हुआ है।

बड़े-बड़े भभकों में बड़ी मात्रा में लकड़ी के कोयलाकरण से प्रारम्भिक खर्च कम पड़ता है, ईधन कम लगता है, मजदूरी कम लगती है। आज वाष्पशील अंशों के संघनन और कोयले के शीतीकरण में पर्याप्त सुधार हुए हैं। इससे कम खर्च में अधिक कोयला प्राप्त हो सकता है। बड़े-बड़े भभकों, भट्ठियों और ऊष्मा की उपयोगिता के कारण कोयले का मूल्य बहुत कुछ कम हो गया है। आसवन से जो असंघनीय गैसें बाहर निकलती हैं, उनसे लकड़ी को पहले सुखा लिया जाता है, भभके की

प्ररचना (डिज़ाइन) में भी पर्याप्त सुधार हुए हैं। आज इसमें गैस-उत्पादक (gas producer) नामक उपकरण का उपयोग होता है। इससे सस्ती लकड़ी गैसीय ईंधन में परिणत हो जाती है। इस गैसीय ईंधन से भी ऐसिटिक अम्ल और काष्ठस्पिरिट प्राप्त किये जा सकते हैं।

असंघनीय गैसें केवल ऊष्मा उत्पन्न करने में ही प्रयुक्त नहीं हो सकतीं वरन् शक्ति-उत्पादन के लिए भी उनका उपयोग हो सकता है। इसके लिए आज अनेक गैस-इंजन बने हैं। असंघनीय गैसों से अलकतरे के पृथक्करण के भी अनेक प्रयत्न हुए हैं। इसके फलस्वरूप 'अलकतरा पृथक्कारक' (tar separator) का उपयोग हुआ है। ये अलकतरा पृथक्कारक भभके और संघनकों के बीच जोड़ दिये जाते हैं। इससे अलकतरा अधिक पूर्णता से पृथक् हो जाता है। काष्ठासुत अम्ल को इससे दो बार आसवन की आवश्यकता नहीं रह जाती।

बड़े-बड़े पात्रों में लकड़ी को गरम कर कोयला बन जाने पर यांत्रिक साधनों से कोयले को शीघ्रता से निकाल लेते हैं। लकड़ी को गरम करने के लिए उत्पादक-गैस का उपयोग करते हैं। उत्पादक गैस से भी ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-स्पिरिट निकाल लेते हैं। लकड़ी को भभके में डालने के पूर्व गरम कर लेते हैं। काष्ठ के इस पूर्व-तापन में कोई खर्च नहीं पड़ता। भट्ठी की उच्छिष्ट गैसों से यह तापन हो जाता है। असंघनीय गैसों को भी दहन के पूर्व गरम कर लेते हैं। इसमें भी कुछ खर्च नहीं पड़ता। इन गैसों को शक्ति-उत्पादन के लिए उपयोग में ला सकते हैं। आजकल अलकतरे का पृथक्करण पूर्णतया हो जाता है। काष्ठासुत अम्ल में कोई अलकतरा नहीं रहता। काष्ठासुत अम्ल को सीधे चूने के संसर्ग में लाकर धूसर ऐसिटेट बना लेते हैं। आजकल काष्ठ-स्पिरिट का अविराम संशोधन होता है जिससे एक क्रम में ही शुद्ध मेथिल अलकोहल प्राप्त हो जाता है। ऐसिटेट-द्राव का सुखाना अविराम यांत्रिक साधनों से होता है।

तीसरा अध्याय

लकड़ी

लकड़ी को काष्ठ या काठ भी कहते हैं। लकड़ी पेड़ों और क्षुपों से प्राप्त होती है। लकड़ी में पेड़ों के धड़, शाखाएँ और जड़ें आती हैं। साधारणतया आसवन के लिए जो लकड़ी प्रयुक्त होती है उसे 'ईंधन काष्ठ' कहते हैं। पेड़ों के कटने पर इमारती लकड़ी और कागज़ बनाने के पल्प की लकड़ी के निकाल लेने पर जो अवशिष्ट अंश बच जाता है उसी को 'ईंधन काष्ठ' कहते हैं। और सस्ता होने के कारण आसवन के लिए इसी का उपयोग होता है। लकड़ी के कारखानों में लकड़ी के जो विभिन्न अंश, उच्छिष्ट अंश अथवा क्षेप्य, बच जाते हैं उन्हीं का उपयोग कोयला बनाने में होता है। कोयला बनाने के लिए लकड़ी का बुरादा, काष्ठ-धूलि, ठीक नहीं है पर जलावन के रूप में इसका उपयोग हो सकता है। कुछ फलों की गुठलियाँ भी, जिनमें सेल्यूलोस और लिगनिन रहते हैं, कोयला बनाने के काम में आ सकती हैं। ऐसे पदार्थों में ताल और नारियल के कर्पर (shell), कौफी के छिलके, जैतून और आम की गुठलियाँ हैं।

काष्ठ साधारणतया दो प्रकार के होते हैं, कोमल और कठोर। यह गुण कोशीय तन्तुओं की बनावट, विशिष्ट भार और यांत्रिक उपचार पर निर्भर करता है। इनसे काष्ठ के प्रतिरोध (रेजिस्टैन्स) और सामर्थ्य (स्ट्रैंग्थ) में अन्तर आ जाता है। काष्ठ फिर चौड़े पत्ते वाले पेड़ों के अथवा सूई से पतले पत्ते वाले पेड़ों के होते हैं। पहले वर्ग के काष्ठों को अशंकुल काष्ठ कहते हैं और दूसरे वर्ग के काष्ठों को शंकुल काष्ठ। इन काष्ठों के तन्तु विभिन्न प्रकार के होते हैं।

अति कठोर काष्ठ इन पेड़ों के होते हैं—नागफनी (hawthorn), बबूल, जामुन।

कठोर काष्ठ महुआ, नीम, सागवान, सीसम और बादाम पेड़ों के हैं।

साधारण कठोर काष्ठ कटहल, अखरोट, देवदार, चीड़, भारतीय ओक (बाज), पल्म (आलूचा), एल्म के हैं।

कोमल काष्ठ—आम, पीपल, स्प्रूस (कचाल), सिल्वर फर, भारतीय एल्डर (शारोल), बर्च (भोजपत्र), हार्स चेस्टनट (पगार) और ऐश के होते हैं।

अति कोमल काष्ठ—निम्बू, फालसा और भारतीय विलो (willow) बेंत के होते हैं।

चौड़े पत्ते वाले काष्ठों से ऐसिटिक अम्ल और मेथिल अलकोहल की मात्रा अधिक प्राप्त होती है और पतले पत्ते वाले काष्ठों से अलकतरा अधिक प्राप्त होता है। दोनों प्रकार के काष्ठों से कोयले की मात्रा एक-सी प्राप्त होती है।

कोयला बनाने के लिए सब काष्ठ एक से हैं। ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-स्पिरिट के लिए अशंकुल काष्ठ अच्छे होते हैं। अलकतरे और तारपीन के लिए शंकुल काष्ठ अच्छे होते हैं। ऐसिटिक अम्ल की मात्रा सेल्यूलोस पर और मेथिल अलकोहल की मात्रा लिगनिन पर निर्भर करती है। सेल्यूलोस से मेथिल अलकोहल नहीं बनता और लिगनिन से बड़ी अल्प मात्रा में ऐसिटिक अम्ल बनता है।

काष्ठ की बनावट

काष्ठ में बीच का भाग मज्जा (pith) होता है। यह पुराने कोशीय तन्तुओं का बना होता है। इससे समय पाकर यह सिकुड़ता है। सिकुड़ने के कारण कुछ पुराने पेड़ खोखले हो जाते हैं। मज्जा को घेरे हुए काष्ठ का प्रधान पिंड होता है जो कई स्तरों का बना होता है। पिंड के बाद बढ़ने वाली तन्तु एधा (cambium) होती है। एधा के बाद बाह्यस्तर अधोवाही (bast) होती है। एधा ही प्रतिवर्ष काष्ठ को मोटा करता है। यह एधा जलवाही कोशा (tracheids), काष्ठ-पात्रों, काष्ठ-जीवितक (parenchyma) और मज्जक किरणों (medullary rays) से बनी होती है। एधा से नये काष्ठ का निर्माण नियमित रूप से नहीं होता। कभी निर्माण कम होता और कभी अधिक, काष्ठ के अनुप्रस्थ (transverse) काट (section) पर वार्षिक वलय बनने से सामयिक वृद्धि का पता लगता है। यह वलय ऋतु के परि-वर्तन के कारण बनता है। इस वलय की चौड़ाई पेड़ों की उम्र और मिट्टी की प्रकृति आदि पर निर्भर करती है।

यदि काष्ठ का वार्षिक वलय मोटा हो तो ऐसे काष्ठों को हम स्थूल-कणि (coarse-grained) काष्ठ कहते हैं। इसके विपरीत यदि वार्षिक वलय पतला है तो ऐसे काष्ठ को सूक्ष्म-कणि (fine grained) काष्ठ कहते हैं। स्थूल-कणि काष्ठ कम मज़बूत होता है। काष्ठ के पुराने और नये स्तरों में भी अन्तर होता है। पुराना काष्ठ, हृत् काष्ठ (हार्ट वुड) अधिक कठोर और अधिक मन्द रंग का होता है। रसकाष्ठ (sap wood) कोमल और अधिक स्पष्ट रंग का होता है। रसकाष्ठ में जीवित कोशाएँ होती हैं। ये रस के परिवहन और संग्रह में सहायक होती हैं।

वल्क का अनुप्रस्थ प्रभाग वल्क के स्तर से घिरा रहता है। वल्क काष्ठ को सुरक्षित रखता है। उसका बाह्यवल्क (periderm) धड़ को घेरे रहकर उसकी मोटाई को बढ़ाता है।

बाह्यवल्क और एधा के बीच तन्तुओं का एक स्तर होता है जिसे अधोवाही (bast) कहते हैं। यह लम्बे लचीले कोशों की बनी होती है। इसके अनेक उपयोग हैं। बाह्यवल्क, त्वक्षा और वर्धी तन्तु त्वक्षैधा (pillogen) से बना होता है। त्वक्षैधा की क्रिया से बने त्वक्षा के बनने से बाह्यतन्तुओं को जल का मिलना बन्द हो जाता है जिससे वह सूख जाते और बहुधा ऊबड़-खाबड़ पिंड बनकर छाल बन जाते हैं। बाह्य छाल का रूप बहुत कुछ त्वक्षा बनने पर निर्भर करता है। यदि त्वक्षा का बनना दुर्बल है तो बाह्य छिलका चिकना होता है, जैसे बीच (beech), हौर्न-बीम (horn beam), और रजतफर* (सिलवरफर) में होता है। यदि त्वक्षा का बनना प्रबल है तो छाल मोटी बनती है जैसे भारतीय ओक (cork oak) में होता है।

काष्ठ का रसायन

काष्ठ में प्रधानतया सेल्यूलोस होता है। सेल्यूलोस में कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन होते हैं। कार्बन प्रायः ४४ प्रतिशत रहता है। काष्ठ में लिगनिन भी होता है। लिगनिन में कार्बन की मात्रा कुछ अधिक रहती है। लिगनिन के पूरे संघटन का ज्ञान हमें नहीं है। सम्भवतः यह अनेक यौगिकों के मिश्रण से बना है। लिगनिन में कई मिथौक्सी समूह रहते हैं। सेल्यूलोस और लिगनिन के अतिरिक्त काष्ठ में कुछ अन्य पदार्थ भी जैसे जल, स्टार्च, डेक्स, ट्रिन, चीनी, अल्युमिनायड पदार्थ, टैनिक अम्ल रंगवाले पदार्थ, रेज़िन, वाष्पशील तेल, खनिज पदार्थ आदि रहते हैं। इन विभिन्न पदार्थों की मात्रा विभिन्न काष्ठों में विभिन्न रहती है पर सब काष्ठों में सेल्यूलोस और लिगनिन के रहने के कारण विभिन्न काष्ठों के संघटन में उतनी विभिन्नता नहीं पायी जाती। काष्ठ का औसत संघटन निम्नलिखित अंकों से सूचित होता है।

* इसके लिए हिमालयी सिलवर फर, परतल, टौंस, बदार आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है।

काष्ठ की किस्म	कार्बन प्रतिशत	हाइड्रोजन प्रतिशत	आक्सीजन और नाइट्रोजन प्रतिशत	राख प्रतिशत	जल प्रतिशत
वायु सूखा और राख के साथ काष्ठ	४०	४·८	३४·४	०·८	२०
जल और राख मुक्त काष्ठ	५०	६·०	४४·०	—	—
जलमुक्त पर राख के साथ काष्ठ	५०	६·०	४३·०	१·०	—

राख में नाइट्रोजन की मात्रा ०·५ प्रतिशत से कदाचित् ही अधिक रहती है। इसी नाइट्रोजन के कारण आसवन पर आसुत में अमोनिया और अमोनिया के अन्य क्षार रहते हैं।

काष्ठ की राख महत्त्व की है। यह राख कोयले में भी आ जाती है। यदि कोयले का प्रयोग धातु-निर्माण में करना है तो राख की मात्रा का विचार रखना आवश्यक होता है। वल्क में राख की मात्रा विशेष रूप से ऊँची होती है। साधारणतया एक प्रतिशत से अधिक रहती है। इससे कोयला बनाने के पहले काष्ठ की छाल को निकाल डालना अच्छा होता है। इससे कोयलाकरण में सुविधा भी होती है और कोयला भी उत्कृष्ट कोटि का बनता है। भिन्न-भिन्न काष्ठों में राख की मात्रा विभिन्न रहती है। देहरादून के फौरेस्ट रिसर्च इंस्टिटयूट में भारतीय वृक्षों की राख पर विशेष अनुसंधान हुआ है।

काष्ठ का ईंधन-मान

काष्ठ के कार्बन और हाइड्रोजन के जलने से ऊष्मा उत्पन्न होती है। कार्बन के दहन की ऊष्मा प्रति किलोग्राम ८०८० किलो-कलरी और हाइड्रोजन की प्रति किलोग्राम ३४२०० किलो-कलरी है। वायु-शुष्क काष्ठ के एक किलोग्राम में रहते हैं—

कार्बन	०·४००	किलो-ग्राम
हाइड्रोजन	०·०४८	,,
आक्सीजन	०·३४२	,,
राख	०·०१०	,,
जल	०·२००	,,

काष्ठ का दहन-मान निकालने में उपस्थित आक्सिजन के समतुल्य हाइड्रोजन की मात्रा निकाल डालना आवश्यक होता है।

०.३४२ किलो-ग्राम आक्सिजन बराबर है $\frac{२ \times .३४२}{१६} = ०.०४२$ किलोग्राम हाइड्रोजन के

अतः प्राप्य हाइड्रोजन की मात्रा ०.०४८ − ०.०४२ = ०.००६

अतः कार्बन के दहन की ऊष्मा ०.४० × ८०८० = ३२३२.० किलोकलरी

हाइड्रोजन के दहन की ऊष्मा ०.००६ × ३४,२०० = २०५.२ किलोकलरी

कुल ३४३७.२ „

दहन में जल बनने की मात्रा (०.०४२ + ०.००६) × ९

= ०.४३२ किलोग्राम

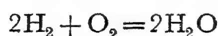
काष्ठ में उपस्थित जल की मात्रा = ०.२०० „

कुल ०.६३२ „

०.६३२ किलो-ग्राम जल के वाष्पीभूत करने में ६३०×०.६३२=३९८ किलो-कलरी ऊष्मा की आवश्यकता होती है। यह ऊष्मा दहन की ऊष्मा से आती है। अतः दहन की ऊष्मा ३४३७.२−३९८.१=३०३९.१ किलोकलरी हुई। पर यह ऊष्मा सबकी सब प्राप्य नहीं है। कुछ ऊष्मा, भट्ठी की ईंट द्वारा विकिरण से, कुछ ऊष्मा उष्ण राख में और कुछ चिमनी से निकली वाहिनी गैसों (blue gases) में नष्ट हो जाती है। वाहिनी-गैस कितनी बनी और वाहिनी गैस का ताप क्या रहता है, यह वायु की स्थिति और चिमनी की ऊँचाई पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में चिमनी की वहति और ईंधनदाता (stoker) द्वारा आग जलाने पर गैस का ताप निर्भर करता है।

एक किलो-ग्राम काष्ठ के जलाने के लिए कितनी वायु चाहिये, उसकी गणना इस प्रकार की जा सकती है—





०.४ किलोग्राम कार्बन के जलाने के लिए $\frac{३२ \times ०.४}{१२} = १.०६६$ किलोग्राम आक्सिजन लगता है।

०.००६ किलोग्राम हाइड्रोजन जलाने के लिए $\frac{१६\times०.००६}{२}$=०.०४८ किलोग्राम हाइड्रोजन लगता है।

कुल=१.११४ किलोग्राम

१.११४ किलोग्राम आक्सिजन के लिए $\frac{१००\times१.११४}{२३}$=४.८४३ किलोग्राम वायु चाहिये जिसमें आक्सिजन १.११४ किलोग्राम और नाइट्रोजन ३.७२९ किलोग्राम रहते हैं।

एक किलोग्राम लकड़ी के जलाने के लिए सिद्धान्ततः ४.८४३ किलोग्राम वायु लगती है पर वास्तव में यह मात्रा कम है। ठोस ईंधन के दहन में इसकी दुगुनी मात्रा आवश्यक होती है। अतः १ किलोग्राम लकड़ी के जलाने में ९.६८६ किलोग्राम वायु चाहिये।

ऐसे दहन से निम्नलिखित मात्रा में दहन उत्पाद बनते हैं—

जलवाष्प	०.६३२	किलोग्राम
कार्बन डाइआक्साइड	१.४६६	,,
आक्सिजन (वायु के आधिक्य से)	१.११४	,,
नाइट्रोजन	७.४५८	,,

इनमें ऊष्मा की हानि की गणना निम्नलिखित समीकरण से की जाती है—

ह=भ×विशिष्ट ऊष्मा× ($त_२$—$त_१$)

जहाँ 'ह' ऊष्मा की हानि

'भ' ईंधन की प्रति किलोग्राम गैस का भार

'$त_२$' वाहिनी गैस का ताप

'$त_१$' प्रदाय (supply) गैस का ताप

यदि लकड़ी और वायु का प्रारम्भिक ताप १५° से० हो और भट्ठी से निकलने पर दहन उत्पादों का ताप ३४०° से० हो तो

जल (H_2O), ०.६३२×(३४०—१५)×०.४८१=९८.७९ किलोकलरी

कार्बन डाइ आक्साइड (CO_2) १.४६६×(३४०—१५)×०.२१७=१०३.३८ ,,

आक्सिजन (O_2) १.११४×(३४०—१५)×०.२१८=७८.९२ ,,

नाइट्रोजन (N_2) ७.४५८×(३४०—१५)×०.२४४=५९१.४१ ,,

८७२.५० ,,

लगभग ८७३ किलोकलरी

यदि एक किलोग्राम लकड़ी के जलाने में जिसका संघटन ऊपर दिया हुआ है सैद्धान्तिक मात्रा से दुगनी मात्रा वायु की लगती है और यदि भट्ठी की गैसों का ताप प्रविष्ट (inlet) वायु के ताप से ३२५° से० ऊँचा है तो लकड़ी से

३०३९—८७३=२१६६ किलोकलरी से अधिक ऊष्मा नहीं प्राप्त होगी। विकिरण-हानि को छोड़ कर अथवा २००० किलोकलरी विकिरण-हानि के निकाल लेने पर यदि देय-जल (feed water) का ताप १००° से० हो तो $\frac{२०००}{५३६}$=३.७३ किलोग्राम भाप बनेगी।

यह अंक वही है जो व्यवहार में पाया जाता है।

काष्ठ के जल

हरे पेड़ के काटने पर उसमें जल की मात्रा ४० से ५० प्रतिशत रहती है। स्थान, मौसिम, जाति और उम्र के कारण जल की मात्रा में कमी-बेशी होती है। वसन्त और गरमी में जाड़े की अपेक्षा जल की मात्रा अधिक रहती है। वसन्त में ही अधिकांश पेड़ों से गोंद और रेज़िन निकलते हैं। इस कारण कोयला बनाने के लिए जाड़े में पेड़ का काटना अच्छा होता है।

उपजाऊ भूमि और उपयुक्त जल-वायु में पेड़ों की वृद्धि प्रचुरता से होती है। ऐसे पेड़ों की लकड़ी में वार्षिक वलय बड़े-बड़े और काष्ठ-पात्र चौड़े होते हैं। ऐसी लकड़ी कोयले बनने में अधिक सिकुड़ती है और उससे कम मात्रा में हलके कोयले बनते हैं। भारी और सघन काठ से श्रेष्ठतर कोयला बनता है।

नये काष्ठ में रस अधिक रहता है। ऐसा काठ कोयला बनाने के लिए उतना अच्छा नहीं होता। पर बहुत पुराने पेड़ों से भी अच्छे कोयले नहीं बनते। ऐसे पेड़ों के आयाम-तन्तु (longitudinal tissues) फटे होते हैं। इससे उनका कोयला परिवहन अथवा संग्रह में चूर-चूर होकर कुछ नष्ट हो जाता है। धड़, जड़ और शाखों में जल की मात्रा विभिन्न रहती है। हृत काष्ठ और रस-काष्ठ में भी जल की मात्रा एक नहीं रहती।

ताज़े कटे विभिन्न पेड़ों में जल की मात्रा इस प्रकार रहती है—

पहले स्तम्भ में साल भर की औसत मात्रा और दूसरे स्तम्भ में लघुत्तम और महत्तम मात्रा दी हुई है। शुबलर और हार्जिग के अनुसार जल की मात्रा स्तम्भ तीन में दी हुई है—

पेड़	१	२	३
चीर (Pine)	६१	१५—६४	३९.७
कचाल (Spruce)	५६	११—५७	
निम्बू (Lime)	५२	३६—५७	४७.१
काला वहान (Black poplar)	५२	४३—६१	५१.८
लार्च (Larch)	५०	१७—६०	४८.६
शारोल (Alders)	५०	३३—५८	४१.७
बखोर (Horse chestnut)	४८	३७—५२	३८.२
भोजपत्र (Birch)	४७	२४—५३	३०.८
सेव (Apple)	४३	३४—५२	
सैलो (Sallow)	४२	३०—३९	२६.०
बीच (Beech)	३९	२०—४३	३९.७
अस्पेन (Aspen)	——	——	४३.७
मैपल (Maple)	३९	२७—४९	२७.०
हौर्न बीम (Horn beam)	३७	२२—४१	१८.६
बाज (Bak)	३५	२२—३९	३४.७
आलूचा (Plum)	३४	१९—३९	
ब्रैन (Elm)	३४	२४—४४	४४.५
रोबिनिया (Robinia)	२९	१२—३८	
सुम (Ash)	२७	१४—३४	२८.७
रजतफर (Silver fir)	—	—	३७.१
रक्त टौस (Red fir)	—	—	४५.२
इटेलियन पौपलर (Italian poplor)	—	—	४८.२
बेत (Willow)	—	—	५०.६

पेड़ काटने पर उसमें जल की मात्रा में कैसे परिवर्तन होता है उसका ज्ञान शांवेन्डियेर (Shevandier) के आंकड़ों से होता है।

काठ की किस्म	काटने के महीने के बाद			
	६	१२	१८	२४
धड़ लकड़ी				
" बीच (Beech) की	२३.२४	१९.३४	१७.४०	१७.७४
" बाज (Bak) की	२९.६३	२३.७५	२०.७४	१९.१६
" भोजपत्र (Birch) की	२३.२३	१८.१०	१५.९८	१७.१७
" टौस (Silver fir) की	२८.५६	१६.६५	१४.७८	१७.२२

काठ की क़िस्म	काटने के महीने के बाद			
	६	१२	१८	२४
धड़ लकड़ी				
" कचाल (Spruce) की	२९.३१	२८.५४	१५.८१	१७.७६
" हौर्नबीम (Horn beam) की	२४.०८	२०.१८	१८.७७	१७.९४
मोटी शाखा की लकड़ी बीच की	३३.४८	२४.००	१९.८०	२०.३२
" बाज की	३१.२०	२६.९०	२४.५५	२१.०९
" भोजपत्र की	३७.३४	२८.९९	२४.१२	२१.७८
" टौस की	२८.२९	१७.४१	१५.०९	१८.६६
" कचाल की	३५.३०	१७.५९	१५.७२	१७.३९
" हौर्नबीम की	३१.३८	२५.८९	२२.३३	१९.३०
पतली शाखा की लकड़ी				
" बीच की	३०.४४	२३.४६	१८.६०	१९.९५
" वाज की	३२.७१	२६.७४	२३.३५	२०.२८
" भोजपत्र की	३९.७२	२९.०१	२२.७३	१९.५२
" टौस की	३३.७८	१६.८७	१५.२१	१८.०९
" कचाल की	४१.४९	१८.६७	१५.६३	१७.४२
" हौर्नवीम की	२७.१९	२३.०८	२०.६०	१८.५९

ऊपर के अंकों से पता लगता है कि काष्ठ में जल की मात्रा निश्चित नहीं है पर कुछ महीनों में, साधारणतया १२ महीनों में, जल की मात्रा लगभग २० प्रतिशत पहुँच जाती है।

लकड़ी में १०-२० प्रतिशत से कम जल के रहने से कोयला अच्छा नहीं बनता। जाड़े के दिनों में पेड़ के काटने से लकड़ी जल्दी सूख जाती है क्योंकि इस समय पेड़ों में जल की मात्रा अल्पतम रहती है, अतः जाड़े में पेड़ों का काटना अच्छा होता है। जाड़े में पेड़ों में लवण और कार्बनिक पदार्थ भी कम रहते हैं। ये पदार्थ आर्द्रताग्राही होते हैं। अतः इनकी मात्रा कम होने से लकड़ी जल्दी सूख जाती है। अच्छे कोयले के लिए लकड़ी में २० प्रतिशत जल रहना चाहिए।

पेड़ किस्म		जनवरी के अन्त में जल की प्रतिशतता	अप्रैल के प्रारम्भ में जल की प्रतिशतता
सुम	(Ash)	२८.८	३८.६
मैपल	(Maple)	३३.६	४०.३
पंगार	(Horse chestnut)	४०.२	४७.१
टौस	(Silver fir)	५२.७	६१.०

काठ में जल की मात्रा कम करने के दो उपाय हैं। एक उपाय काठ को वायु में सुखाना और दूसरा उपाय ऊष्मा द्वारा कृत्रिम रीति से सुखाना। साधारणतया पेड़ों को काटकर वायु में ही सुखाते हैं। कृत्रिम रीति से सुखाने में खर्च पड़ता है क्योंकि इसके लिए विशेष साधनों, ईंधन और शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। पेड़ों को काटकर वायु में खुला रखने से १२ से १८ महीने में काम के लिए वे पर्याप्त सूख जाते हैं।

लकड़ी का विशिष्ट भार

लकड़ी पानी से भारी होती है। अतः लकड़ी को पानी में डूब जाना चाहिए पर साधारणतया लकड़ी पानी पर तैरती है। इसका कारण है कि लकड़ी के तन्तुओं में वायु भरी रहती है। लकड़ी के विशिष्ट भार का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है। अधिक महत्त्व की बात लकड़ी का भार है।

कितनी लकड़ी कितना स्थान छेंकती है, यह अधिक महत्त्व का है। जर्मनी, स्वीडन, आस्ट्रिया आदि देशों में इसे रौम-मीटर (Raum-meter) कहते हैं और फ्रांस में स्टेयर (Stere)। यह लकड़ी का वह पिंड है जो एक घनमीटर स्थान को घेरता है। रूस में घन 'साशेन' (Sashen) इकाई चलती है। यह ९.७१ घनमीटर के बराबर है। इंगलैण्ड और अमेरिका में 'कौर्ड' (Cord) का प्रयोग होता है। इंगलैण्ड के कौर्ड में १४ फुट लंबा, ३ फुट चौड़ा और ३ फुट ऊँचा काठ रहता है जो ३.५६८ घनमीटर के बराबर है। अमेरिकी कौर्ड में ८ फुट लंबा, ४ फुट चौड़ा और ४ फुट ऊँचा काठ रहता है जो ३.६२४ घनमीटर के बराबर है।

ऐसे ढेर के काठ का भार काठ के सजाकर रखने, काठ के गुण, काठ की जाति और काठ के आयाम (Dimension) पर निर्भर करता है। काठ के भार से वास्तव में कुछ पता नहीं लगता जब तक काठ के जल की मात्रा का हमें ज्ञान न हो क्योंकि केवल भार के जानने से कोयले और आसवन उत्पादों की उपलब्धि का कुछ पता नहीं लगता।

वायु-शुष्क लकड़ी का भार भी स्थायी नहीं होता। यह विभिन्न लकड़ियों में विभिन्न और एक ही जाति की लकड़ियों में भी विभिन्न होता है। लकड़ी के सूखने की अवस्था, आकार, लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई, स्थान, मौसिम, जलवायु, सिकुड़न, पेड़ों के विभिन्न अंगों आदि पर निर्भर करता है। आसवन के भिन्न उत्पादों की प्राप्ति, लकड़ी के सूखने की अवस्था, सेल्यूलोस और लिगनिन आदि पर निर्भर करती है।

कोयला बनाने के लिए कोमल काठ अच्छा नहीं होता। सामान्य लकड़ी सर्वोत्कृष्ट होती है पर यह महंगी पड़ती है। लकड़ी के कारखानों में काम की इमारती

लकड़ी निकाल लेने पर जो अवशेष अंश बच जाता है वह सस्ता पड़ता है और कोयला बनाने में उसका उपयोग हो सकता है। ऐसी कुछ लकड़ी तो कारखाने में जलावन के लिए ही खर्च हो जाती है पर जो शेष बच जाती है उसका उपयोग हो सकता है। सारी लकड़ी का प्रायः १० प्रतिशत भाग इस प्रकार बच जाता है। ऐसी लकड़ी में प्रायः आधा तो पटरे और कड़ी के रूप में रहता है और आधा बुरादे के रूप में। इन्हें कोयला बनाने में इस्तेमाल कर सकते हैं। बुरादे से कम और निकृष्ट कोटि का कोयला बनता है। ऐसा कोयला चूरा होता है। इसकी मांग नहीं है। पर यदि इस कोयले को इष्टका में परिणत कर दें तो उसकी मांग हो सकती है और तब उसका उपयोग हो सकता है। क्षेप्य काष्ठ (scrap wood) से सस्ता और उपयोगी कोयला प्राप्त हो सकता है। क्षेप्य काष्ठ में वल्क की मात्रा अधिक रहती है।

कुछ पेड़ों से टैनिन प्राप्त होते हैं। टैनिन निकाल लेने पर अवशिष्ट अंश से कोयला बना सकते हैं। कुछ फलों के छिलके, कर्पर और गुठलियाँ भी कोयला बनाने में इस्तेमाल हो सकती हैं। आम और जामुन की गुठलियों से कोयला बनाने का प्रयत्न होना चाहिये। ईख से चीनी निकाल लेने पर जो सीठी बच जाती है उससे कोयला तैयार हुआ है। यह कोयला पर्याप्त सक्रिय पाया गया है। इसकी इष्टका बनाकर उसे जलावन के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। चीनी के तथा अन्य कार्बनिक यौगिकों के परिवार में इस कोयले का उपयोग हो सकता है। नारियल के कर्पर से भी कोयला बना है। विषाक्त गैसों के अधिशोषण के लिए यह कोयला अधिक क्रियाशील पाया गया है। मास्क में इसका उपयोग होता है।

चौथा अध्याय

कोयलावाली लकड़ी

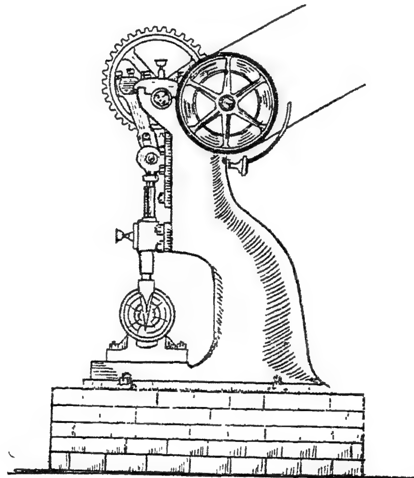
कोयला बनाने का कारखाना वहाँ ही खोलना चाहिये जहाँ लकड़ी सुगमता से, नियमित रूप से और कम से कम कीमत में प्राप्त हो सके। कारखाने के समीप ही कोयले की खपत भी हो तो और अच्छा है। लकड़ी जंगलों से प्राप्त होती है। जंगलों में ही लकड़ी की प्रचुरता रहती है। लकड़ी के लिए पेड़ों को काटना पड़ता है। काटने के अनेक तरीके हैं। कहीं टांगे से, कहीं आरी से और कहीं टांगे और आरी दोनों से ही पेड़ काटे जाते हैं। पेड़ों के धड़ बिजली से गरम किये तारों से भी काटे जाते हैं। बिजली से चलने वाली छेद करने की मशीनों से छेदकर भी पेड़ गिराये जा सकते हैं। पेड़ों को फिर काट-छांट कर काष्ठ इकट्ठा किया जाता, सुखाया जाता और तब विभिन्न साधनों से जंगलों से कारखानों में लाया जाता है।

लकड़ी के कुन्दे कितने बड़े रहने चाहिये, यह भट्ठे अथवा भभके के विस्तार पर निर्भर करता है। कुछ भभकों में अनेक दिनों तक गरम करना पड़ता है और कुछ भभकों में थोड़े दिनों तक ही। जिन भभकों में अनेक दिनों में कोयला तैयार होता है उनमें ४०० मि० मी० व्यास तक की लकड़ी इस्तेमाल हो सकती है। यदि लकड़ी के कुन्दों के व्यास ३०० मि० मी० से बड़े हों तो उन्हें एक बार और चीरकर तब इस्तेमाल करना चाहिये। इससे अधिक व्यास की लकड़ी को दो या तीन या अधिक बार चीरने की आवश्यकता पड़ सकती है। यदि कोयले का निर्माण क्षैतिज भभके में होता है जिनकी धारिता २५ घनमीटर है और यदि लकड़ी का व्यास १५०-२०० मि० मी० है तो ऐसी लकड़ी के कोयला बनने में २० घंटे लगते हैं जबकि ऐसे ही भभके में ३०० मि० मी० व्यास की लकड़ी में ३६ घंटे लगते हैं।

चीरे हुए कुन्दों का व्यास १७५ मि० मी० से अधिक रहना ठीक नहीं है। ऐसी लकड़ी से केवल कोयला ही ठीक-ठीक नहीं बनता वरन् ऐसी लकड़ी के सुखाने में समय अधिक लगता है और कोयला ऐसा बनता है जो अधिक नहीं टूटता। लकड़ी के मोटे होने से सुखाने में समय अधिक लगता है पर ऐसा कोयला परिवहन में अधिक टूटता नहीं है।

यदि भभका ऊर्ध्वाधार और धारिता ४ से ५ घनमीटर या क्षैतिज भभका हो और धारिता १.५ घनमीटर की है तो लकड़ी का व्यास और छोटा ५० से १५० मि० मी० रह सकता है। जंगलों से बड़े-बड़े कुन्दों को लेकर कारखाने में आवश्यकतानुसार काटना अधिक सुविधाजनक होता है। काटने में खर्च होता है पर अन्त में यही सस्ता पड़ता है। यदि पेड़ों का काटना कारखाने-द्वारा ही होता है तो लकड़ी को ठीक-ठीक विस्तार का काटना ही अच्छा होता है।

कारखाने में लकड़ी के आने पर दो काम करना पड़ता है। पहले तो लकड़ी को कांट-छांट और छील कर छोटा और चिकना बनाना पड़ता है ताकि भभके में वह ठीक-ठीक अट सके और सजायी जा सके। दूसरे लकड़ी को उचित ढंग से सुखाना पड़ता है। इसके लिए पहले छाल को पूर्णतया अथवा अंशतः निकाल देते हैं। ऐसी छाल और छीलन को ईंधन के काम में ला सकते हैं। फिर उचित लम्बाई और मोटाई में काटते या चीरते हैं। यह काटना या चीरना मशीन से होता है। मशीन में इस्पात के स्फान (wedge) लगे रहते हैं। ऐसी मशीन में लोहे के दो स्तम्भ होते हैं। इन स्तम्भों के बीच में एक धूरा (axle) रहता है। धूरे में एक कूर्पर (crane) या उत्केन्द्र (eccentric) लगा रहता है। guide ledges नेतृ-शलाका के सहारे कूर्पर इस्पात के एक स्फान को ऊपर नीचे उठाता है। इसके आघात का नियंत्रण हो सकता है। लकड़ी के कुन्दे को उचित ऊंचाई के दो नेतृ-पट्टों पर इस प्रकार रखते हैं कि स्फान गिरकर कुन्दे को तन्तुओं की दिशा में काट डालता है। दस घंटे प्रतिदिन काम करके एक आदमी ०.५ मीटर लम्बाई की ६०-७० घनमीटर लकड़ी काट सकता है। यह तभी सम्भव है जब लकड़ी को मशीन के निकट ले आने और कट जाने पर हटा लेने के लिए दूसरा आदमी मौजूद हो।



चित्र ३—लकड़ी के काटने और चीरने की मशीन

कुछ कारखानों में, विशेषतः फ्रांस में, लकड़ी को ठीक-ठीक काटकर इस्तेमाल

करते हैं। कुछ कारखानों में, विशेषतः अमेरिका में, भभके को ऐसा बनाते हैं कि उसमें सब प्रकार की लकड़ी इस्तेमाल हो सके। इसके लिए भट्ठे और भभके दोनों बड़े-बड़े होते हैं। यदि लकड़ी जड़ की है तो ऐसी लकड़ी जल्दी फटती नहीं। उसके लिए विशेष उपचार की आवश्यकता पड़ती है। यदि कोयला बनने के पात्र बड़े-बड़े हैं तो फिर लकड़ी को काट कर बहुत छोटे-छोटे करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। छोटे-छोटे पात्रों के लिए ही लकड़ी को छोटा-छोटा करना आवश्यक होता है। इस कारण छोटे-छोटे पात्रों के कारखाने में लकड़ी तैयार करने में खर्च अधिक पड़ता है। बड़े-बड़े पात्रवाले कारखाने ही अन्त में सस्ते पड़ते हैं। अतः आजकल ऐसे ही कारखाने अच्छे समझे जाते हैं जिनके कोयला बनाने के पात्र बहुत बड़े-बड़े हों।

लकड़ी सुखाना

कोयला बनाने के पहले लकड़ी को सुखा लेना आवश्यक होता है। तुरन्त कटे पेड़ में जल की मात्रा ४० से ५० प्रतिशत रहती है। जल की मात्रा का कोयला बनाने में पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। जल की वाष्पायन ऊष्मा बड़ी ऊँची होती है। कार्बनीकरण के पहले जल निकल ही जाता है। काष्ठासुत अम्ल में जल की मात्रा लकड़ी के जल की मात्रा पर निर्भर करती है। काष्ठासुत अम्ल से कैलसियम ऐसिटेट बनाने में जल को उबाल कर निकाल देना पड़ता है। अतः काष्ठ में अधिक जल के कारण ईंधन की खपत और खर्च बहुत बढ़ जाता है।

२० प्रतिशत की अपेक्षा यदि जल की मात्रा ४० प्रतिशत हो तो लगभग १९ प्रतिशत अधिक ईंधन लगेगा। अधिक जल के कारण कोयले का उत्पादन भी अपेक्षया कम होता है। इससे उत्पादन-मूल्य ५० प्रतिशत तक बढ़ सकता है। अधिक जल से कैलसियम ऐसिटेट की प्राप्ति भी कम होती है। लकड़ी बिलकुल सूखी भी नहीं रहनी चाहिये। बिलकुल सूखी लकड़ी कोयलाकरण के लिए उपयुक्त नहीं है। बिलकुल सूखी लकड़ी से विच्छेदन धीरे-धीरे न होकर इतनी तीव्रता से हो सकता है कि विस्फोट हो जाय। ऐसी लकड़ी के लिए संघनित्रों की संख्या अधिक रहनी चाहिए नहीं तो एक-ब-एक गैसें इतनी बन सकती हैं कि विस्फोट से खतरा और हानि हो सकती है। कभी-कभी उचित जल के रहने पर भी विस्फोट की सम्भावना रहती है। इस कारण कोयलाकरण के लिए वैसी ही लकड़ी अच्छी समझी जाती है जिसमें जल की मात्रा १५ से २० प्रतिशत रहे। ऐसी लकड़ी 'वायु शुष्क' लकड़ी कही जाती है।

कुछ देशों की जलवायु ऐसी होती है कि वायु में सूखी लकड़ी में २० प्रतिशत

ही जल रहता है। लकड़ी की यह 'सामान्य जल मात्रा' है। लकड़ी को प्राकृतिक रीति से अथवा कृत्रिम रीति से सुखा सकते हैं।

प्राकृतिक रीति

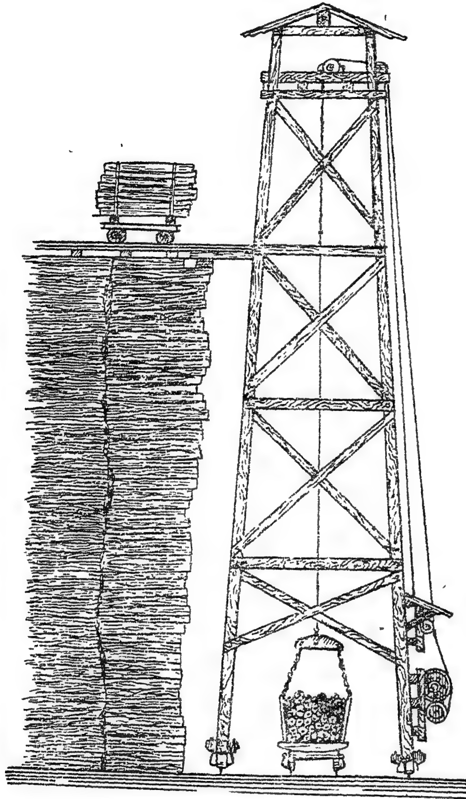
प्राकृतिक रीति से लकड़ी धीरे-धीरे सूखती है। इसके लिए लकड़ी को काटकर टाल में कम से कम एक वर्ष रखना पड़ता है। कृत्रिम रीति से लकड़ी शीघ्र ही सुखायी जा सकती है। सुखाने की कौन रीति अच्छी है इस पर एक मत नहीं है। कुछ लोग प्राकृतिक रीति और कुछ लोग कृत्रिम रीति का अनुमोदन करते हैं।

पेड़ों को काट कर खुले स्थान में अथवा कारखाने में टाल में रखना पड़ता है। नीचे कुछ लकड़ी बिछा दी जाती है। उसी पर लकड़ी का ढेर करते हैं ताकि धरती का जल लकड़ी में प्रविष्ट न हो सके। टाल ऐसी बनाते हैं कि लकड़ी में वायु का प्रवेश स्वच्छन्दता से हो सके। टालें कई प्रकार से बनती हैं। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न किस्म की, भिन्न-भिन्न ऊँचाई, भिन्न-भिन्न चौड़ाई और लम्बाई की टालें बनती हैं। ऐसी टालों के बनाने में खर्च पड़ता है। टाल वस्तुतः ऐसी होनी चाहिये कि वह कम खर्च में बन सके। टाल बनाने का काम आज यंत्रों से होता है। लकड़ियाँ यंत्रों से हटायी जाती और एक के बाद दूसरो सजाकर रखी जाती हैं। इसके लिए वाहक पट्टक (conveyer belt), शिरोपरक संदाम मार्ग (overhead cableways) और उत्थापक (elevator) का प्रयोग होता है। क्षैतिक दिशा में चक्री (Car) पर लकड़ी का परिवहन होता है। छोटे-छोटे कारखानों में हाथों से चक्री चलायी जाती है। उससे कुछ बड़े कारखानों में घोड़ों से चक्री खिचवायी जाती है। उससे भी बड़े कारखानों में बिजली अथवा भाप इंजन से चक्री चलायी जाती है। टालें (Stacks) हाथों से ही बनायी जाती हैं।

टाल के बनाने में अचल उत्थापक (Stationary elevator) अथवा चल उद्वाहक (Travelling hoists) का उपयोग होता है।

अचल उत्थापक उस दशा में अधिक उपयुक्त होते हैं जब किसी एक स्थल पर लकड़ी को उठाना पड़ता है। उत्थापक में उद्वाही बाजू (lifting arms) लगे रहते हैं जिन पर लकड़ी के कुन्दे हाथों से रख दिये जाते हैं। ज्यों ही उद्वाही बाजू ऊपर पहुँचते हैं वहाँ हाथों से कुन्दे हटा लिये जाते हैं। इस प्रकार उत्थापक सतत कार्य करता रहता है। इसी से बड़े-बड़े भट्टों में कोयलाकरण के लिए लकड़ियाँ डाली जाती हैं। चल उद्वाहक अचल उत्थापक से अच्छे होते हैं। ऐसे एक चल उद्वाहक का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

उद्वाहक के फ्रेम में चक्र लगा रहता है। यह चक्र रेल मार्ग पर चलकर टाल के सन्निकट आ जाता है। फ्रेम के पार्श्व में एक घिरनी (Winch) लगी रहती है जो हाथ से अथवा बिजली की मोटर से चलती है। घिरनी एक संदाम (cabel) को लपेटती है। यह संदाम मशीन के शिखर की घर्घरी (pulley) पर रखा रहता है और लकड़ी के बोझ को आवश्यक ऊँचाई पर उठाता है। यह बोझ एक चक्री (Car) पर आकर गिरता है जहाँ से बोझ उचित स्थान पर भेज दिया जाता है। इसकी सहायता से बड़ी-बड़ी और अच्छी टालें बनायी जा सकती हैं।



चित्र ४—चल उद्वाहक

ऐसी टाल की लकड़ी के सुखाने में एक से दो वर्ष लगते हैं। समय का लगना लकड़ी की जाति, मोटाई, कटाई, छाल के साथ है अथवा बिना छाल का है, स्थान के ताप, हवा बहने की दिशा, मौसम आदि पर निर्भर करता है। इसमें कितना खर्च पड़ता है, इसकी गणना निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है—

१. जिस स्थान पर लकड़ी की टाल लगी है उसका किराया कितना देना पड़ता है।

२. जितनी लकड़ी रखी गयी है उसके रखने में कितना खर्च पड़ा है और उसका व्याज कितना होता है।

३. टाल के बनाने और तोड़ने में कितना खर्च पड़ा है।

४. मशीन का कार्य-व्यय (Working cost) और मूल्यह्रास (Depreciation) कितना होता है।

कृत्रिम रीति

तुरन्त कटी लकड़ी में ४० प्रतिशत के लगभग जल रहता है। ऐसी १३३ किलोग्राम लकड़ी से २० प्रतिशत जल वाली १०० किलोग्राम लकड़ी प्राप्त होती है। अतः लकड़ी के ३३ किलोग्राम जल को भाप बनाकर निकाल देना है।

एक घनमीटर (४०० किलोग्राम) वायुशुष्क लकड़ी की प्राप्ति के लिए ५३२ किलोग्राम गीली लकड़ी को सुखाना पड़ेगा। इस लकड़ी से १३२ किलोग्राम जल को निकालना है। यह जल भट्ठी की उष्ण गैसों अथवा उष्ण वायु से निकाला जा सकता है।

भभके से निकली उष्ण गैसों को चिमनी में जाने से पहले लकड़ी के सुखाने में इस्तेमाल करने की कोशिश हुई है। इसी गैस को एक पंखे के द्वारा खींच कर कक्षों में ले जाते हैं जहाँ लकड़ियाँ रखी रहती हैं। यहाँ लकड़ी में आग लगने का भय रहता है। उष्ण गैसों का ताप ३००° से० रहता है। इसमें पर्याप्त आक्सिजन भी रहता है। लकड़ी के संसर्ग से आग लग सकती है। पतली-पतली लकड़ियाँ शीघ्र सूखकर जल सकती हैं जब तक मोटी-मोटी लकड़ियाँ जिनमें ४० प्रतिशत जल है अभी सूखी भी नहीं हैं। इस कारण भट्ठी की उष्ण गैसों को परोक्ष रीति से सुखाने में प्रयोग करने का सुझाव और चेष्टाएँ हुई हैं। इससे आग लगने का भय बहुत कुछ कम हो जाता है पर सम्भावना अब भी बनी रहती है। यहाँ चिमनी की वहति (draught) अवश्य ही कम हो जाती है और वहति को कायम रखने के लिए पंखे की आवश्यकता पड़ती है। इससे खर्च बढ़ जाता है।

लकड़ी का सुखाना ऐसे ताप पर होना चाहिये कि आग लगने का बिलकुल भय न रहे। इसके लिए ताप १५०° से० से ऊपर नहीं रहना चाहिये। पर १५०° से० पर सुखाने में समय अधिक लगता है और लकड़ी को ऊपर नीचे उलट फेर करने की आवश्यकता पड़ती है जिससे खर्च बढ़ जाता है। ऊँचे ताप पर लकड़ी के सुखाने से लकड़ी फट सकती है। ऐसी लकड़ी का कोयला सघन नहीं होता। इस कारण लकड़ी को १००° से० के ऊपर सुखाना अच्छा नहीं है। १००° से० की उष्ण वायु से ही लकड़ी को सुखाना अच्छा होता है।

लकड़ी के सुखाने में कितना खर्च पड़ेगा, उसकी गणना इस प्रकार की जा सकती है:—

उष्मा आवश्यक है

१. ताप को १००° से० ऊँचा उठाने में

२. लकड़ी के जल को उस ताप तक गरम करने में

३. जिस पात्र में लकड़ी रखी जाती है उस पात्र के ताप को १००° से० तक उठाने में

४. उद्वाष्पन द्वारा लकड़ी के जल के निकालने में

५. शुष्ककरण कक्ष से जो उष्ण गैसें निकलती है उसमें ऊष्मा की हानि की पूर्ति में

६. पंखे के चलाने के लिए शक्ति की प्राप्ति में

७. शुष्ककरण पात्र की दीवारों से विकिरण द्वारा ऊष्मा की हानि की पूर्ति में

एक घन मीटर गीली लकड़ी का भार जिसमें ४० प्रतिशत जल है, ५३२ किलोग्राम होता है। इसमें २१२ किलोग्राम जल और ३२० किलोग्राम जल रहित लकड़ी है (जल रहित लकड़ी की विशिष्ट ऊष्मा ०.६ है)। २१२ किलोग्राम जल में केवल १३२ किलोग्राम जल को उद्वाष्पन द्वारा निकालना है, ताकि लकड़ी में २० प्रतिशत जल बना रहे।

गणना से पता लगता है कि ऊपर की विभिन्न मदों में ऊष्मा की निम्नलिखित मात्रा लगती है—

१. ताप के ऊँचा उठाने में	३५,९४०	किलोकलरी
२. १३२ किलोग्राम जल के उद्वाष्पन में	६९,९६०	,,
३. निलकती वायु के साथ ऊष्मा की हानि	६१,५६०	,,
४. पंखे के चलाने में शक्ति उत्पन्न करने में	४६,१३०	,,
५. शुष्ककरण पात्र की ईंट दीवारों से हानि	१८,०००	,,
कुल	२३१,५९०	,,

इतनी ऊष्मा के उत्पन्न करने में ४४ किलोग्राम कोयले की आवश्यकता पड़ेगी यदि कोयले की केवल ७५ प्रतिशत तापन-शक्ति का उपयोग होता है।

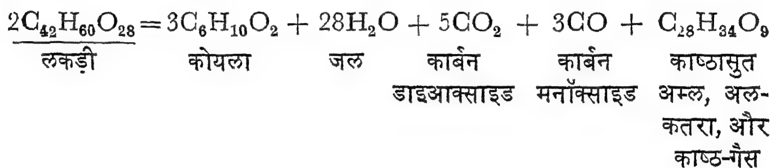
एक टन कोयले का मूल्य यदि १० रु० हो तो एक घनमीटर लकड़ी सुखाने में केवल ईंधन में $\frac{४४ \times १०}{१०००} = ०.४४$ रुपया अथवा ७ आना के लगभग खर्च पड़ेगा। इस खर्च में सुखाने के पात्रों पर खर्च का उल्लेख नहीं है। वायु में सुखाने से जितना खर्च पड़ता है कम से कम उसका दुगुना खर्च कृत्रिम रीति से सुखाने में अवश्य पड़ता है। कृत्रिम शुष्ककरण का खर्च कम किया जा सकता है यदि वाष्पित्र और भट्ठी से निकली गैसों की ऊष्मा का उपयोग किया जा सके। पर ऐसा करना सरल नहीं है। कृत्रिम शुष्ककरण में लाभ यह है कि शुष्ककरण ३ दिनों में हो जाता है जबकि प्राकृतिक शुष्ककरण में कम से कम एक वर्ष का समय लगता है।

कृत्रिम शुष्ककरण में सफलता नहीं मिली है। अनेक कारखानों ने कृत्रिम शुष्ककरण को अपनाया पर पीछे छोड़ दिया। कृत्रिम शुष्ककरण हो अथवा न हो कोयलाकरण के पूर्व लकड़ी को गरम कर लेना सरल है। ऐसा करने से लाभ होता है। भट्ठियों की उष्ण गैसों द्वारा यह सरलता से सम्पादित हो सकता है। लकड़ी के इस प्रकार गरम कर लेने से कार्बनीकरण में या कोयलाकरण में ईंधन की २० प्रतिशत बचत हो जाती है। इस प्रकार के लकड़ी के गरम करने के उपकरणों का अनेक लोगों ने पेटेंट लिया है।

पाँचवाँ अध्याय

काष्ठ का भंजक आसवन

लकड़ी को जब वायु-शून्य पात्र में गरम करते हैं तब इसे काष्ठ का भंजक आसवन कहते हैं। भंजक आसवन में काष्ठ में परिवर्तन होता है। काष्ठ में प्रधानतया सेल्यूलोस, लिगनिन और जल रहते हैं। इसके गरम करने से पहले पानी निकल जाता है। जैसे-जैसे ताप बढ़ता है लकड़ी का रंग बदलता है। लकड़ी पहले भूरे रंग की हो जाती है। साथ ही आसुत में ऐसिटिक अम्ल पाया जाता है। रंग के बदलने और ऐसिटिक अम्ल के बनने से मालूम होता है कि लकड़ी का विच्छेदन या विघटन शुरू हो गया है। विच्छेदन से लकड़ी के कार्बन से कार्बन के यौगिक बनते हैं। ये यौगिक परस्पर मिलकर अधिक पेचीले पदार्थ बनते हैं। इस विच्छेदन के फलस्वरूप कुछ ठोस, कुछ द्रव और कुछ गैसीय उत्पाद बनते हैं। ४००° से० पर जो परिवर्तन होता है उसका निरूपण निम्नलिखित समीकरण द्वारा कुछ सीमा तक होता है—



$$\underline{2C_{42}H_{60}O_{28}} = 3C_6H_{10}O_2 + 28H_2O + 5CO_2 + 3CO + C_{28}H_{34}O_9$$

लकड़ी	कोयला	जल	कार्बन डाइआक्साइड	कार्बन मनॉक्साइड	काष्ठासुत अम्ल, अलकतरा, और काष्ठ-गैस

लकड़ी के सेल्यूलोस से मेथिल अलकोहल नहीं बनता। सेल्यूलोस से ऐसिटिक अम्ल बनता है। लिगनिन से मेथिल अलकोहल और ऐसिटिक अम्ल दोनों बनते हैं। ऐसिटिक अम्ल और मेथिल अलकोहल क्रमशः सेल्यूलोस और लिगनिन की मात्रा पर निर्भर करते हैं।

एडवर्ड जुओन (Edward Juon) ने काष्ठ पर ऊष्मा की क्रिया का इस प्रकार वर्णन किया है—

लकड़ी के गरम करने से २८०° से० ताप तक जल-वाष्प के साथ-साथ कुछ गैसें निकलती हैं जिनमें प्रधानतया कार्बन के आक्साइड रहते हैं। २८०° से० के ऊपर गैसों की प्रकृति में सहसा परिवर्तन होता है। आक्सिजन यौगिकों के स्थान में अब

हाइड्रो-कार्बन और हाइड्रोजन निकलते हैं। गैसों का निकलना अब तीव्र होता है। आसुत में ऐसिटिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है। यह परिवर्तन छोटे भट्ठों में १ से २ घंटे में और बड़े भट्ठे में ४ से ६ घंटे तक होता रहता है। उसके बाद फिर प्रक्रिया धीमी हो जाती है। २८०° से० के ऊपर जलीय आसुत की मात्रा कम हो जाती, गैस सूखी निलकती और अलकतरे की मात्रा अधिक और अलकतरा अधिक श्यान भी होता है।

२८०° से० तक ही काष्ठ को गरम करने की जरूरत पड़ती है। उसके बाद प्रतिक्रिया की ऊष्मा बननी शुरू हो जाती है। ताप क्रमशः स्वतः बढ़ता जाता है। यह ताप ५००° से० तक पहुंच जाता है। यदि ताप को और ऊंचा उठाकर विच्छेदन को पूरा करना है तो बाहर से गरमी पहुंचाने की आवश्यकता पड़ती है। ऊंचे ताप से गैस की प्रकृति में अब परिवर्तन होता है। हाइड्रोजन की मात्रा अव बढ़ती और हाइड्रोकार्बन की मात्रा कम होती है।

यदि लकड़ी को भट्ठी या भभके में गरम करके कोयला बनाना है तो सारा प्रक्रम ३८०-४००° से० तक ही समाप्त हो जाता है। यहां हाइड्रोजन बनने वाला ताप नहीं पहुंचता। यदि काष्ठ को ३८०-४००° से० तक गरम कर छोड़ दें, अधिक ऊष्मा अब न प्रदान करें और पात्र को बिलकुल बन्द कर दें ताकि कोई चीज़ अन्दर न प्रविष्ट हो सके और न अन्दर से कोई चीज़ बाहर निकल सके तो उससे हाइड्रोकार्बन बनते हैं। हाइड्रोजन और आक्सिजन के गैसीय यौगिक धीरे-धीरे लुप्त होते जाते हैं। जैसे-जैसे कोयला ठंढा होता है, अन्दर का दबाव बढ़ता और कोयले की घिरी हुई गैसों में हाइड्रोकार्बन की मात्रा ८०-९० प्रतिशत तक हो जाती है।

फिर दबाव धीरे-धीरे कम होता है। हाइड्रोकार्बन कोयले में अधिशोषित हो जाता और कोयले में कार्बन की मात्रा ५ से ६ प्रतिशत बढ़ जाती है। जुओन ने सिद्ध किया है कि ३८०° से० तक गरम करके पात्र को बिलकुल बन्द कर देने से कोयले में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।

इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे स्पष्ट रूप से पता लगता है कि ताप के नियंत्रण से कोयले की मात्रा बहुत कुछ बढ़ा दी जा सकती है। भट्ठी के ऊंचे ताप और द्रुत कोयलाकरण से कोयले ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-स्पिरिट की मात्रा कम होती और गैसों की मात्रा अधिक रहती है और इसके विपरीत निम्नतर ताप और मन्द कोयलाकरण से गैसों की मात्रा कम और कोयले, ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-नैफ्था की मात्रा अधिक रहती है। यदि कोयलाकरण का लक्ष्य ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-नैफ्था प्राप्त करना हो तो कोयलाकरण धीरे-धीरे निम्न ताप पर करना

चाहिये। साधारणतया काष्ठ का कोयलाकरण ४००° से० के ऊपर नहीं करना चाहिये।

काष्ठ के कोयलाकरण पर ताप के प्रभाव का अध्ययन वायोलेट (Violette) ने विस्तार से किया है। उनके अध्ययन के परिणाम नीचे दिये जाते हैं। वायोलेट के प्रयोग ऐसे थे कि सारा काष्ठ एक साथ गरम हो जाता था। यहां उत्पाद नियमित रूप से बनते थे। बड़े पैमाने पर विशेषकर बड़ी-बड़ी भट्ठियों या भभकों में ऐसा होना व्यवहारतः सम्भव नहीं है। बड़ी-बड़ी भट्ठियों या भभकों में विभिन्न भागों के काष्ठ का ताप कदापि एक-सा नहीं रखा जा सकता।

वायोलेट के प्रयोग का परिणाम। विभिन्न तापों का काष्ठ पर प्रभाव।

क्रमांक	१५०° से० पर सुखाने पर भार में कमी प्रतिशत	गरम करने का ताप (०° से०)	१०० भाग जल युक्त काष्ठ-भार में वाष्पशील अंश का भार	१०० भाग जल युक्त काष्ठ-भार में कोयले का भार	कोयले की जाति
१	१५.००	१६०	२.००	९८	
२	१७.१७	१७०	५.४५	९४.५५	
३	१४.०४	१८०	११.४१	८८.५९	
४	१४.३६	१९०	१८.०१	८१.९९	
५	१७.२८	२००	२२.९०	७७.१०	
६	१५.४०	२१०	२६.८६	७३.१४	मृत काष्ठ (क्रमांक २–१०)
७	१५.८०	२२०	३२.५०	६७.५०	
८	१२.७३	२३०	४४.६३	५५.३७	
९	१५.५८	२४०	४९.२१	५०.७९	
१०	१३.१६	२५०	५१.३३	४९.५७	
११	१४.७६	२६०	५८.७७	४०.२३	
१२	१२.९१	२७०	६२.८६	३७.१४	
१३	१४.९४	२८०	६३.८४	३६.१६	
१४	१४.४३	२९०	६५.९१	३४.०९	
१५	१३.६९	३००	६६.३९	३३.६१	
१६	१२.५४	३१०	६७.१३	३२.८७	लाल कोयला (क्रमांक १३–१८)
१७	१२.५२	३२०	६७.७७	३२.२३	
१८	१४.४८	३३०	६८.२३	३१.७७	
१९	१४.३८	३४०	६८.४७	३१.५३	काला कोयला

क्रमांक	१५०° से० पर सुखाने पर भार में कमी प्रतिशत	गरम करने का ताप (०° से०)	१०० भाग जल युक्त काष्ठ-भार में वाष्पशील अंश का भार	१०० भाग जल युक्त काष्ठ-भार में कोयले का भार	कोयले की जाति
२०	१६.३७	३५०	७०.३४	२९.६६	काला कोयला
२१	१२.९८	४३२	८१.१३	१८.८७	
२२	१३.९०	१०२३	८१.२५	१८.७५	
२३	१३.९०	११००	८१.६०	१८.४०	
२४	१३.८४	१२५०	८२.०६	१७.९४	
२५	१४.६०	१३००	८२.५४	१७.४६	
२६	१४.६०	१५००	८२.६०	१७.३१	
२७	१४.६०	प्लैटिन के गलनांक	८५.००	१५.००	

विभिन्न ताप पर बने कोयले का संघटन भी वायोलेट ने निकाला है।

क्रमांक	काष्ठ के गरम करने का ताप (°से०)	आसवन पात्र में मृत काष्ठ, लाल कोयले और काले कोयले के १०० भाग में			
		कार्बन भाग	हाइड्रोजन भाग	आक्सिजन नाइट्रोजन भाग	राख भाग
१	१५०	४७.५१०५	६.१२००	४६.२९००	०.०८००
२	१६०	४७.६०५५	६.०६४५	४६.२७११	०.०८५०
३	१७०	४७.७७५०	६.१९५०	४५.९५३५	०.०९८०
४	१८०	४८.९३६०	५.८४००	४५.१२३०	०.११७०
५	१९०	५०.६१४५	५.११५०	४४.०६२५	०.२२१५
६	२००	५१.८१७०	३.९९४५	४३.९७६०	०.२२६५
७	२१०	५३.३७३५	४.९०३०	४१.५३८०	०.२०००
८	२२०	५४.५७००	४.१५०५	४१.३९३६	०.२१७०
९	२३०	५७.१४६५	५.५०८०	३७.०४७०	०.३१४५
१०	२४०	६१.३०७०	५.५०७०	३२.७०५५	०.५१५०
११	२५०	६५.५८७५	३.८१००	२८.९६७०	०.६३२०
१२	२६०	६७.८९०५	५.०३८०	२६.४९३५	०.५५९५
१३	२७०	७०.४५३५	४.६४१५	२४.१९२०	०.८५५५
१४	२८०	७२.४९४०	४.७०५०	२२.०९७५	०.५६८०
१५	२९०	७२.४९४०	४.९८१०	२१.९२९०	०.६१००
१६	३००	७३.२३६०	४.२५४०	२१.९६२०	०.५६९०
१७	३१०	७३.६३३०	३.८२९५	२१.८१२५	०.७४४०

क्रमांक	काष्ठ के गरम करने का ताप (°से०)	आसवन पात्र में मृत काष्ठ, लाल कोयले और काले कोयले के १०० भाग में			
		कार्बन भाग	हाइड्रोजन भाग	आक्सिजन नाइट्रोजन भाग	राख भाग
१८	३२०	७३.५७३५	४.८३०५	२१.०८६०	०.५१८५
१९	३३०	७३.५५१५	४.६२६०	२१.३३३०	०.४७६५
२०	३४०	७५.२०२०	४.४०६५	१९.९६२०	०.४७७५
२१	३५०	७६.६४४०	४.१३६०	१८.४४१५	०.६१३०
२२	—	८१.६४३५	१.९६१०	१५.२४५५	१.१६२५
२३	४३२	८१.९७४५	२.२९७५	१४.१४८५	१.५९७५
२४	१०२०	८३.२९२५	१.७०२०	१३.७९३५	१.२२४५
२५	१११०	८८.१३८५	१.४१५०	९.२५९५	१.१९९०
२६	१३५०	९०.८११०	१.५८३५	६.४८९५	१.१५१५
२७	१५००	९४.५६६०	०.७३९५	३.८४०६	०.६६४०
२८	१५०० से ऊपर	९६.५१७०	०.६२१५	०.९३६०	१.९४५५

काष्ठ के आसवन में साधारणतया चार अवस्थाएं होती हैं। पहली अवस्था प्रायः १७०° से० ताप तक की है। इस ताप तक केवल काष्ठ सूखता है। अन्य परिवर्तन गैसों का निकलना आदि इस ताप तक कदाचित् ही होता है।

दूसरी अवस्था २७०–२८०° से० ताप तक की है। इस अवस्था में प्रधानतया कार्बन के ऑक्साइड, मनॉक्साइड और डाइ-आक्साइड निकलते हैं। कुछ ऐसिटिक अम्ल और बड़ी अल्पमात्रा में अलकतरा और काष्ठ-स्पिरिट भी बनते हैं।

तीसरी अवस्था वह है जब प्रक्रिया (operation) से ऊष्मा निकल कर ताप को बढ़ा कर ३८०°-४००° से० तक कर देती है। यह आतम कार्बनीकरण की अवस्था कही जाती है। इस अवस्था में बड़ी मात्रा में हाइड्रोकार्बन, ऐसिटिक अम्ल, काष्ठ-स्पिरिट और अलकतरा निकलते हैं। यहां कोयले का सान्द्रण भी होता है। इस समय पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। तीव्रता को कम करने की भी कभी-कभी आवश्यकता पड़ती है। यदि ऐसा न किया जाय तो विस्फोट की सम्भावना हो सकती है।

चौथी अवस्था कोयले के ठंढा करने की है। यदि हाइड्रोकार्बन के वातावरण में ठंढा किया जाय तो कोयले में हाइड्रोकार्बन का अधि-शोषण होकर कोयला सघन और अधिक पेचीला बन जाता है।

पहली दो अवस्थाओं में बाहर से ऊष्मा देकर लकड़ी गरम की जाती है, तीसरी

अवस्था में बाहर से ऊष्मा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी अवस्था में अधिकांश असंघनीय और दाह्य गैसें बनती हैं। इसी अवस्था में काष्ठ का वास्तविक कोयलाकरण तीव्रता से होता है। इस कारण संघनित्रों की संख्या पर्याप्त रहनी चाहिये। इसके बाद फिर आसवन में मन्दता आ जाती है।

भंजक आसवन के उत्पाद

वायु शुष्क काष्ठ में कार्बन ४० प्रतिशत, हाइड्रोजन ४.८ प्रतिशत, आक्सिजन ३४.४ प्रतिशत, जल २० प्रतिशत और राख ०.८ प्रतिशत के लगभग रहती है। ऐसे काष्ठ के आसवन से जो उत्पाद प्राप्त होते हैं उनकी मात्रा में विभिन्नता पायी जाती है। उत्पाद की विभिन्नता काष्ठ की जाति, काष्ठ में जल की मात्रा, काष्ठ में सेल्यूलोस और लिगनिन के अनुपात, कार्बनीकरण के ताप, भट्ठी या भभके की बनावट, कोयला झोंकने वाले व्यक्ति पर निर्भर करती है। अतः यह कहना सम्भव नहीं है कि किस काष्ठ से कितना कोयला बनेगा।

सबसे पहले कोयला बनाने का पात्र लोहे का एक बन्द सिलिण्डर होता था। वह भट्ठे में रखा जाता था। सिलिण्डर के चारों ओर भट्ठे की तप्त गैसें बहती थीं। सिलिण्डर के निकास मार्ग से एक संघनित्र जुड़ा हुआ रहता था। कठोर काष्ठ के चीरे हुए कुन्दे (billets) से सिलिण्डर भर दिया जाता था। यदि सिलिण्डर पहले से गरम हो, तो आसवन तुरन्त शुरू हो जाता है। संघनित्र में आसुत आसवन होकर बनता और वह बाहर निकलता है और उसके साथ-साथ अल्प मात्रा में असंघनीय गैसें भी निकलती हैं। पहले गैसों में अधिकांश वायु रहती है जो काष्ठ और भभके से निकलती है। प्रारम्भ से ही अल्प मात्रा में ऐसिटिक अम्ल निकलता है। अलकतरा प्रारम्भ में नहीं बनता। जैसे-जैसे समय बढ़ता जाता है, असंघनीय गैसों, ऐसिटिक अम्ल और अलकतरे की मात्रा बढ़ती जाती है। पहले कार्बन मनॉक्साइड और कार्बन डाइ-आक्साइड निकलते हैं, पीछे उनके स्थान को हाइड्रोकार्बन और हाइड्रोजन ले लेते हैं। १० से १२ घण्टों में आसुत का निकलना बन्द हो जाता है। गैसों का निकलना भी अब बहुत कम हो जाता है। भभके की ग्रीवा अब ठंढी हो जाती है। इससे पता लगता है कि आसवन की क्रिया का अन्त हो गया है।

अब आंच को हटाकर भभके का द्वार खोल देते हैं। इससे कोयला जल उठता है। भभके से कोयले को समीप के लोहे के बक्से में शीघ्रता से ढाल देते हैं। बक्स को फिर धीरे-धीरे बन्द कर ठंडा होने को छोड़ देते हैं। भभके में फिर और लकड़ी डाल कर आसवन को फिर चलाते हैं।

काष्ठ के आसवन से निम्नलिखित उत्पाद प्राप्त होते हैं—

१. काष्ठ-गैस

२. काष्ठासुत अम्ल

३. काष्ठ-अलकतरा। यह काष्ठासुत अम्ल में भी कुछ घुला हुआ और कुछ लटका हुआ रहता है

४. काष्ठ-कोयला

संकुल काष्ठ से इन उत्पादों के अतिरिक्त कुछ तारपीन भी प्राप्त होता है। किस काष्ठ से कितने विभिन्न उत्पाद प्राप्त होते हैं उनका अनुमान निम्नलिखित आँकड़ों से लगाया जा सकता है।

काष्ठ जाति	कोयला		चूने का एसिटेट ८०%		अपरिष्कृत काष्ठ-नैफ्था		अलकतरा		तारपीन तेल	
	महत्तम	अल्पतम	महत्तम	अल्पतम	महत्तम	अल्पतम	महत्तम	अल्पतम	महत्तम	अल्पतम
यूरोपीय बीच	३३	२८	१०.५	८	२.५	१.७	६	५	—	—
अमेरिकी मैपल (कुट्टिमदारु)	३५	—	८	—	२	—	७	—	—	—
अमेरिकी चीड़	३३	२८	२.५	२.३	०.४२	०.२८	२०	—	८	—
यूरोपीय रजत-फर—तालिश पत्र	३६	३३	३.६	३.०	०.८	०.६	१२	६	५	०.४
काष्ठ-धूलि (कोमल काष्ठ)	३३	—	३	—	०.६	—	१०	—	—	—
स्पेन की जैतून की गुठली	३५	—	४	—	१.२	—	४	—	—	—

काष्ठ-गैस

काष्ठ-गैस में असंघनीय गैसें रहती हैं। ऐसी गैस का संघटन फिशर (Fisher) ने इस प्रकार दिया है—

कार्बन डाइ-आक्साइड	५९.०	प्रतिशत आयतन में
कार्बन मनॉक्साइड	३३.०	,,
मिथेन	३.५	,,
हाइड्रोजन	३.०	,,
काष्ठासुत अम्ल का वाष्प	१.५	,,
आदि		

बंजु (bak) के २० घंटे के आसवन से प्राप्त काष्ठ-गैस में निम्नलिखित गैसें पायी गयी हैं।

कार्बन डाइ-आक्साइड	३५·५	प्रतिशत आयतन में
आक्सिजन	०·५	,,
कार्बन मनॉक्साइड	४७·५	,,
हाइड्रो-कार्बन और हाइड्रोजन	१६·५	,,

काष्ठ-गैस के साथ-साथ कुछ संघनीय वाष्प भी निकल जाते हैं। इसे रोक रखने के लिए संघनित्र अधिक दक्ष रहना चाहिये और काष्ठ-गैस की मात्रा भी कम रखनी चाहिये। आसवन के ताप के नीचा रखने और वायु-प्रवेश के कम रखने से गैस की मात्रा कम की जा सकती है।

काष्ठ-गैस का कलरी-मान

फिशर ने कोयला-गैस का जो संघटन दिया है उसकी एक घनमीटर गैस के १५° ताप और एक वायु मण्डल के दबाव पर कलरी-मान १३१२·८ किलो-कलरी है। एक घनमीटर गैस का भार १·५३० किलोग्राम और गैस का विशिष्ट भार १·२४४ होता है। वाहिनी (flue) गैस में काष्ठ-गैस का प्रायः २१ प्रतिशत कलरी-मान नष्ट हो जाता है। अतः एक घनमीटर गैस से केवल ९३५ किलो-कलरी ही प्राप्त होती है। १०० किलो-ग्राम काष्ठ से २० से २५ किलोग्राम गैस प्राप्त होती है जो १५ घनमीटर के समतुल्य है। अतः १५ घनमीटर गैस का कलरी-मान १४·०२५ किलो-कलरी होता है। एक किलोग्राम पत्थर के अच्छे कोयले से ५००० किलो-कलरी प्राप्त होती है। अतः १०० किलो-ग्राम से प्राप्त काष्ठ-गैस का ईंधनमान $\frac{१४·०२५}{५०००}$=२·८ किलोग्राम पत्थर के कोयले के बराबर है। यदि दहन के पूर्व काष्ठ-गैस को गरम कर लें तो ऐसी गैस का कलरी-मान बहुत कुछ बढ़ाया जा सकता है। उस दशा में १०० किलो-ग्राम काष्ठ से प्राप्त काष्ठ-गैस कलरी-मान ३·८ किलो-ग्राम पत्थर के कोयले से कुछ अधिक होता है।

काष्ठ-गैस ईंधन के लिए अच्छी होती है। यह इंजन में जलायी जा सकती है। पर इंजन में जलाने के लिए इससे अम्ल वाष्पों को पूर्णतया निकाल डालना आवश्यक है। पानी से गैस को धोकर अम्ल-वाष्पों को निकाल डालते हैं। फिर गैस को सुखा लेते हैं। १०० किलो-ग्राम काष्ठ से इतनी काष्ठ-गैस बनती है जो कोयले के लगभग ३ किलो-ग्राम के बराबर होती है। इस गैस से प्रति घण्टा ४·७६ अश्व बल प्राप्त

हो सकता है जो कोयले के लगभग १० किलो-ग्राम के बराबर होता है। इस प्रकार १०० किलोग्राम काष्ठ से लगभग ७ किलो ग्राम कोयले की बचत हो सकती है।

काष्ठासुत अम्ल

काष्ठ के भंजक आसवन में एक भूरा द्रव प्राप्त होता है। इसकी गंध विशिष्ट होती है। इसमें कुछ अलकतरा मिला रहता है। अलकतरा भारी होने के कारण बहुत कुछ नीचे बैठ जाता है। शंकुल वृक्षों अथवा कुछ अन्य वृक्षों से भी जो अलकतरा प्राप्त होता है वह काष्ठासुत अम्ल से हलका होता है क्योंकि इसमें कुछ हलके तेल रहते हैं।

काष्ठासुत अम्ल में ८० से ९० प्रतिशत पानी रहता है। पानी की मात्रा काष्ठ की प्रकृति पर निर्भर करती है। शेष २० से १० प्रतिशत भाग में अनेक कार्बनिक यौगिक रहते हैं। इनमें निम्नलिखित यौगिकों की पहचान निश्चित रूप से हुई है—

फार्मिक अम्ल	फरफ्यूरल
ऐसिटिक अम्ल	मेथिल फरफ्यूरल
प्रोपियोनिक अम्ल	ऐसिटोन
ब्युटिरिक अम्ल	मेथिल-एथिल कीटोन
वालेरिक अम्ल	एथिल-प्रोपिल कीटोन
कैप्रोयिक अम्ल	डाइमेथिल ऐसिटल
क्रोटोनिक अम्ल	मेथिलल
अंजेलिक अम्ल	वलेरो-लैक्टोन
पाइरोम्युसिक अम्ल	मेथिल ऐसिटेट
मेथिल अल्कोहल	पाइरो कैटिचोल
ऐलिल अल्कोहल	अमोनिया
ऐसिटल्डीहाइड	मेथिलएमाइन

काष्ठ के अलकतरे में निम्नलिखित पदार्थ पाये गये हैं :—

बेंज़ीन	रीटीन
ज़ाइलीन	क्राइसीन
क्यूमीन	टरपीन (शंकुल वृक्षों से)
साइमीन	क्रिओसोट

इनके अतिरिक्त कुछ और कार्बनिक पदार्थ भी बहुत ही अल्प मात्रा में पाये गये हैं। जिन यौगिकों के नीचे लकीरें दी हुई हैं वे ही यौगिक व्यवसाय की दृष्टि से महत्त्व के हैं। काष्ठासुत अम्ल से ही मेथिल अल्कोहल, ऐसिटिक अम्ल, ऐसिटोन और क्रिओ-सोट प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न अवयवों की आपेक्षिक मात्रा बहुत कुछ काष्ठ की जाति, काष्ठ की जल-मात्रा, आसवन के ताप और आसवन की गति पर निर्भर करती है। १०० किलो-ग्राम काष्ठासुत अम्ल से विभिन्न अवयव इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

	वायुशुष्क वंजुकाष्ठ से प्राप्त काष्ठासुत अम्ल में	वायुशुष्क शंकुल काष्ठ से प्राप्त काष्ठासुत अम्ल में
जल	८१ किलोग्राम	९१ किलोग्राम
काष्ठ-नैफ्था	३ ,,	१·५ ,,
ऐसिटिक अम्ल और उसी श्रेणी के अन्य अम्ल	७·९ ,,	३·५ ,,
अमोनिया और अमोनी-क्षार	लेश	लेश
घुला हुआ अलकतरा	७ ,, के लगभग	४ ,, के लगभग

पानी की मात्रा बहुत अधिक रहने के कारण काष्ठासुत अम्ल को दूर भेजना सम्भव नहीं है। स्वयं काष्ठासुत अम्ल का कोई उपयोग नहीं है। इसमें ऐसिटिक अम्ल, ऐसिटोन और काष्ठ-नैफ्था काम की चीजें हैं। इनसे ही शुद्ध ऐसिटिक अम्ल, एसिटोन और मेथिल अल्कोहल प्राप्त होते हैं। इन अवयवों के पृथक्करण में प्रभाजक आसवन का सहारा लेना पड़ता है। ऐसिटिक अम्ल (क्वथनांक ११८° से० और जल क्वथनांक १००° से०) के क्वथनांक सन्निकट होने के कारण आसवन से उनका पृथक्करण सरल नहीं है। साधारणतया ऐसिटिक अम्ल को कैलसियम ऐसिटेट और फिर सोडियम ऐसिटेट में परिणत कर पृथक् करते हैं। काष्ठासुत अम्ल में अलकतरे के रहने से अवयवों का पृथक्करण बहुत कुछ पेचीला हो जाता है।

काष्ठ-अलकतरा

अधिकांश काष्ठों से प्राप्त अलकतरा काष्ठासुत अम्ल से भारी होता है और नीचे बैठ जाता है। कोमल काष्ठों से प्राप्त अलकतरा हलका होता है। ऐसे अलकतरे में हलके तेल घुले रहते हैं। जो अलकतरा नीचे बैठ जाता है उसे संनिविष्ठ (settled) अलकतरा कहते हैं। जो अलकतरा काष्ठासुत अम्ल के आसवन से प्राप्त होता है उसे अवशिष्ट अलकतरा कहते हैं।

कठोर काष्ठ से प्राप्त अलकतरा भूरा से लेकर पूरा काले रंग का होता है। मृदु काष्ठ का अलकतरा सुनहरा पीले रंग का होता है। काला अलकतरा सस्ता होता है, सुनहरे रंग का महंगा होता है। जहाजों, बिजली के तारों, रस्सों आदि के लेपने में अलकतरा प्रयुक्त होता है। कठोर काष्ठ का अलकतरा चिकना होता है और कोमल काष्ठ का अलकतरा चिपचिपा होता है।

कठोर काष्ठ के अलकतरे में एसिटिक अम्ल, मेथिल अल्कोहल, मेथिल-ऐसिटेट और ऐसिटोन रहते हैं। अलकतरे में कुछ गुरु या भारी तेल भी रहता है। इसका प्रमुख अवयव क्रिओसोट और अन्य फीनोल हैं। इनके अतिरिक्त अलकतरे में कुछ मोम, हाइड्रो-कार्बन और पिच रहते हैं। कठोर काष्ठ से प्राप्त संनिविष्ट अलकतरे का संघटन इस प्रकार का है—

अलकतरा का विशिष्ट भार १५° से० पर	१·०८	प्रतिशत
ऐसिटिक अम्ल	२·००	,,
काष्ठ-नफ्था	०·७०	,,
जल	१७·७०	,,
हलका तेल (वि० भा० ०·९७)	४·९५	,,
गुरु तेल (वि० भा० १·०४३)	१०·०५	,,
पिच	६२·००	,,
गैस	२·३५	,,

इनमें ऐसिटिक अम्ल, काष्ठ-नफ्था और पिच ही काम के हैं। पिच ईंधन के लिए इस्तेमाल होता है। गुरु तेल के क्रियोसोट का उपयोग कृमिनाशक के रूप में काष्ठ के संरक्षण और औषधियों में होता है।

घुला हुआ या अवशिष्ट अलकतरा—

देखने में यह संनिविष्ट अलकतरा-सा ही होता है पर संघटन में बिलकुल भिन्न होता है। सम्भवतः काष्ठासुत अम्ल में एल्डीहाइड और फीनोल के कारण पुरुभाजन और संघनन क्रियाओं से यह बनता है। इस अलकतरे में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

	प्रतिशत	प्रतिशत
ऐसिटिक अम्ल	८·१६	८·२५
जल	३१·८४	३१·७५
भंगुर कठोर पिच	६०·००	६०·००

इसमें हलके और गुरु तेल नहीं होते। इससे ऐसिटिक अम्ल का पृथक्करण हो

सकता है पर साधारणतया ऐसा नहीं किया जाता, संनिविष्ट अलकतरे के साथ ही यह मिला दिया जाता है।

कोमल काष्ठ-अलकतरा

कोमल काष्ठ से जो अलकतरा प्राप्त होता है उसमें सेल्यूलोस और लिगनिन के आसवन-उत्पादों के अतिरिक्त तारपीन और रेज़िन के आसवन से प्राप्त उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। इसमें तारपीन और रोज़िन के तेल रहते हैं। यह पेस्ट के निर्माण में प्रयुक्त होता है। इसका विशिष्ट भार काष्ठासुत अम्ल के विशिष्ट भार से कम होता है।

काष्ठ-कोयला

अनेक स्थानों में केवल कोयले की प्राप्ति के लिए ही लकड़ी जलायी जाती है। वहां वायुशून्य पात्र में लकड़ी को तपाकर कोयला बनाते हैं। वहां उपजातों के संग्रह का प्रयत्न नहीं होता। कुछ स्थानों में उपजातों के संग्रह की भी चेष्टाएं होती हैं।

कोयले का उपयोग प्रधानतया ईंधन के रूप में होता है। घरेलू चूल्हों में, पाव-रोटी के चूल्हों में, लोहे के निर्माण की भट्ठियों में, कपड़े पर लोहा करने के पात्रों के गरम करने में, लोहारों की लोहसाइयों में, सोनारों और ठठेरों की दूकानों में लकड़ी का कोयला लगता है। चाँदी, तांबे और जस्ते के गलाने में लकड़ी का कोयला इस्तेमाल होता है। अन्य कई उद्योगों में भी यह कोयला लगता है। धूमहीन अथवा ज्वाला हीन आग के लिए यह कोयला उत्तम है। बारूद में यह कोयला लगता है। कांच के निर्माण में कोयला लगता है। पदार्थों से रंगों और अपद्रव्यों के निकालने में यह काम आता है। इसकी इष्टका भी बनती है जो जलावन में इस्तेमाल हो सकती है।

काष्ठ की बनावट और रूप बहुत कुछ कोयले में रह जाता है। उसके छिलक, वार्षिक वलय और तन्तुमय बनावट भी बहुत कुछ कोयले में रह जाती है।

काष्ठ-कोयले के गुण

कोयले का रंग काला होता है। यह कुछ चमकता है। इसमें कुछ नीली आभा स्पष्ट देख पड़ती है। कठोर तल पर मारने से धातु-सा शब्द होता है। इसमें कोई गंध अथवा स्वाद नहीं होता। अच्छा कोयला आग लगाने से जल्द जल उठता है। इसके जलाने में धुआं या ज्वाला नहीं होती। कोयला सच्छिद्र होता है। इसकी सच्छिद्रता काष्ठ की प्रकृति पर निर्भर करती है। कुछ कोयले सघन होते हैं और कुछ आसानी से चूर्ण होने वाले। सघन और संकरे वार्षिक वलय से सघन कोयले बनते और सच्छिद्र

काष्ठ से चूर-चूर होने वाले कोयले बनते हैं। कोयले में न्यूनाधिक दरारें भी रहती हैं। जड़ के कोयले में छेद और दरारें न्यूनतम रहती हैं।

कोयला साधारणतया पानी पर तैरता है। पर वास्तव में यह पानी से भारी होता है। छेदों में गैसों और वाष्पों के अधिशोषित होने से यह हलका हो जाता है। कोयलाकरण के बाद कोयले को वायु में ठंढा कर सकते हैं अथवा वायु-शून्य पात्रों में ठंढा कर सकते हैं। कोयले के ठंढा करने से कोयले का भार बढ़ जाता है। भार का बढ़ना कोयले की प्रकृति पर निर्भर करता है। कुछ समय के बाद भार की वृद्धि रुक जाती है। साधारणतया ऐसा तीन सप्ताह के बाद होता है। इतने समय में साम्य स्थापित हो जाता है। साधारणतया यह वृद्धि ८ प्रतिशत के लगभग होती है। इसके आधे की वृद्धि तो केवल तीन दिनों में ही हो जाती है। कोयले के रखने पर उसका ३ से ६ प्रतिशत अंश 'चूरे' में चला जा कर नष्ट हो जाता है।

उत्कृष्ट कोटि के कोयले के लिए कोयलाकरण ३७०° से० पर होना चाहिये। इससे कम ताप पर का बना कोयला कुछ लाल रंग का होता है। इसे ब्रैण्ड्स "brands" कहते हैं। कभी-कभी काष्ठ में जल की कमी से भी उत्कृष्ट कोटि के कोयले का रंग लाल होता है।

काष्ठ से कोयला प्राप्त करने की मात्रा बहुत कुछ आसवन की गति पर निर्भर करती है। गति के ऊंची होने से कोयले की मात्रा कम प्राप्त होती है। धीरे-धीरे कोयला बनाने से उत्कृष्ट कोटि का कोयला बनता है। कोयला कहां ठंढा होता है इस पर भी कोयले की मात्रा निर्भर करती है। बन्द भभके में ठंढा करने से हाइड्रोकार्बन के अधिशोषण से कोयले की मात्रा अधिक प्राप्त होती है।

कोयले की माप या तो भार से होती है अथवा आयतन से। साधारणतया कोयला तौल कर बेचा जाता है। इससे भार में कोयले की मात्रा का उल्लेख सुविधाजनक होता है पर अनेक देशों में कोयले की बिक्री आयतन से भी होती है। भिन्न-भिन्न किस्म के काष्ठों से और काष्ठों के विभिन्न अंशों से कोयले की मात्रा आयतन में ४६ से ७८ प्रतिशत प्राप्त होती है। एक घन मीटर कोयले का भार १०६ से १९० किलोग्राम होता है।

उद्योग-धन्धों के लिए कोयले के चुनाव में निम्नलिखित गुणों पर विचार करना पड़ता है—

१. संपीडन सामर्थ्य। यह कोयले के विशिष्ट भार पर निर्भर करता है।

२. जलाने में सरलता।

३. कलरी-मान। यह कार्बन की मात्रा पर निर्भर करता है।

४. बिना ज्वाला, धुआं और चिनगारी उत्पन्न किये जलने में सहूलियत।

कोयले में कार्बन तीन रूपों में रहता है—

१. ठोस कार्बन

२. वाष्पशील कार्बन, और

३. अधिशोषित हाइड्रोकार्बन का कार्बन।

वाष्पशील कार्बन रहित कोयले का निर्माण सम्भव नहीं है। वाष्पशील कार्बन की मात्रा कम की जा सकती है, पर पूर्णतया दूर नहीं की जा सकती। ठोस कार्बन भी तात्त्विक कार्बन के रूप में नहीं रहता। यह भी हाइड्रोकार्बन के रूप में ही रहता है।

छठाँ अध्याय

कोयला बनाने के उपकरण

लकड़ी के कोयला बनाने में पहली आवश्यकता पात्रों की है जिनमें लकड़ी गरम की जाती है। यह पात्र ईंटों का बना भ्राष्ट्र अथवा इस्पात के बने बड़े-बड़े भभके अथवा ईंटों और इस्पात के बने भ्राष्ट्र हो सकते हैं।

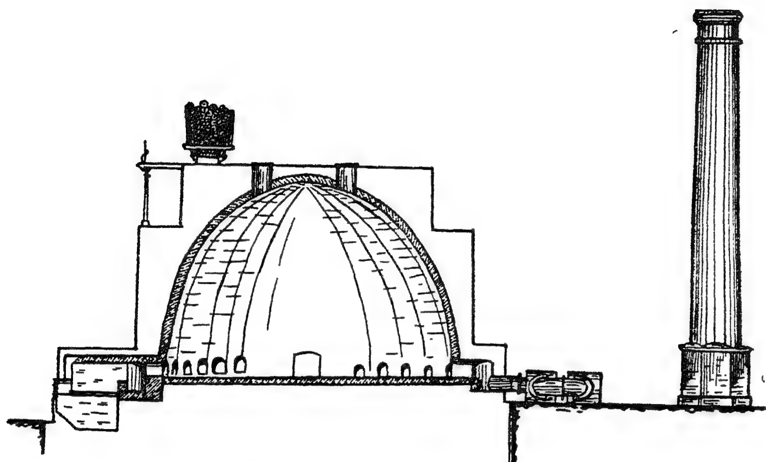
केवल ईंटों के बने भ्राष्ट्र में दोष यह है कि ऐसा भ्राष्ट्र फट सकता है और उसमें दरारें पड़ सकती हैं। यदि कार्बनीकरण का उद्देश्य केवल कोयला बनाना है तो भ्राष्ट्रों के फटने और दरारों के पड़ने से विशेष हानि नहीं पर यदि उसका उद्देश्य वाष्पशील अंश का संग्रह भी है तो दरारों से वाष्पशील अंश बहुत कुछ निकलकर नष्ट हो सकता है। ईंटों के भ्राष्ट्र सस्ते पड़ते हैं। पर ऐसे भ्राष्ट्रों से लकड़ी के गरम करने में दीवारों के द्वारा ऊष्मा नहीं पहुंचायी जा सकती। दरारों से वाष्पशील अंशों के निकल जाने से रोकने या कम करने के लिए चूषण का प्रबन्ध किया जा सकता है पर इस दशा में दरारों से वायु भी प्रविष्ट कर सकती है। इन दोषों के कारण ईंटों के बने भ्राष्ट्रों का उपयोग अच्छा नहीं समझा जाता पर सस्ते होने के कारण अब भी उनका उपयोग होता है।

एक ईंट के बने भट्ठे का चित्र आगे दिया हुआ है। स्वार्टज भट्ठा भी इसी प्रकार का है।

आज इस्पात के बने पात्र ही कोयला बनाने में प्रयुक्त होते हैं। ये पात्र अच्छे समझे जाते हैं यदि इनकी पट्टी अच्छे किस्म के इस्पात की बनी हो। ऐसे पात्र में लकड़ी का गरम होना भी एक सा होता है। साधारणतया ऐसे पात्रों का ताप ४००° से० रहना चाहिये। इस्पात के पात्र यदि ठीक तरह से बने हों तो वे टिकाऊ भी होते हैं।

ऐसे पात्रों की धारिता साधारणतया १·५ से ४०० घन मीटर तक की होती है। पहले-पहल अधिक धारिता के पात्र प्रयुक्त होते थे पर पीछे देखा गया कि ऐसे पात्र उतने सुविधाजनक नहीं हैं। इस कारण आज कम धारिता के पात्र ही प्रयुक्त होते हैं। यदि पात्र एक नियत सीमा से अधिक व्यास के हों तो ऊष्मा के संचारण (transmission) में अधिक समय लगता है और कार्बनीकरण का समय बढ़ जाता है।

साधारणतया पात्रों के पेंदे में उष्ण गैसें प्रविष्ट कर ऊपर उठती हैं और ऊपर से फिर नीचे आकर पेंदे से ही निकास मार्ग द्वारा बाहर निकलती हैं। इस प्रबन्ध से उष्ण गैसों का बहुत अधिक अंश गरम करने के काम में आ जाता है। ऐसे प्रबन्ध में बड़ी-बड़ी धारिता के पात्र भी प्रयुक्त हो सकते हैं। ऐसे पात्र क्षैतिज हो सकते हैं अथवा ऊर्ध्वाधार।

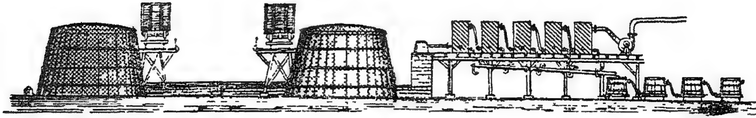


चित्र ५—ईंटों का बना अण्डाकार अमेरिकी भट्ठा

यह अमेरिकी भट्ठा है। ईंटों का ही बना होता है जो आधे अण्डे के आकार का होता है। भट्ठे की लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी होती है। पेंदे में आग सुलगाने का चूल्हा होता है। शिखर से दहन की गैसें निकलकर संघनित्र में जाती हैं। भट्ठे से बाहर निकलते ही अलकतरा संघनित कर बहा लिया जाता है। असंघनीय गैसें चिमनी से निकलकर जलाने के काम में आती हैं। चिमनी में जो खिंचाव होता है उसी से भट्ठे में वायु का प्रवेश होता है।

इस्पात के क्षैतिज भभके सब से छोटे १ मीटर व्यास और ३ मीटर लम्बाई के होते हैं। ऐसे भभके में १.५ घन मीटर लकड़ी अंटती है। इस प्रकार के अधिक धारिता के भभके भी हो सकते हैं। मेयर-भभके क्षैतिज होते हैं। मेयर-भभके में जलाने के लिए लकड़ी को चक्री में भरते हैं। प्रत्येक चक्री में प्रायः ७·५ घन मीटर लकड़ी रखी जा सकती है। ऐसी चार चक्रियां भभके में अंटती हैं। भभके की धारिता

२५ से ५० घन मीटर की होती है। संदाम (केबिल) के द्वारा रेलमार्ग से चक्रियां भभके में प्रविष्ट करती हैं। चक्रियों को भभके में रखकर दरवाजे को बन्द कर देते हैं। तब भभके को गरम करते हैं। अन्य भभके से निकली असंधनीय गैसों को जला



चित्र ६--मेयर का क्षैतिज भभकेवाला भट्ठा

कर भभके को गरम करते हैं। यह आवश्यक है कि भभका एक सा गरम हो। कोयला बन जाने पर चक्री को भभके से निकाल कर ठंढा कर कोयले को निकाल लेते हैं।

आसवन में कितना समय लगता है यह काठ में जल की मात्रा, गरम करने की भट्ठी की प्रकृति और भट्ठी जलाने की रीति पर निर्भर करता है। सामान्यतः इसमें बीस दिन का समय लगता है। ३०० घन फुट लकड़ी का कोयला एक बार में बनता है।

भभके ऊर्ध्वाधार भी हो सकते हैं। स्वीडन का 'कार्बो-चूल्हा' (carbo-oven) ऐसा ही ऊर्ध्वाधार भभका है, जिसका वर्णन आगे दिया गया है। ऐसे भभके में ४०० घन मीटर से अधिक लकड़ी अंट सकती है। पात्र साधारणतया इन दोनों धारिता के बीच के होते हैं।

फ्रांस किस्म के ऊर्ध्वाधार भभके ५ घन मीटर धारिता के और क्षैतिज भभके २५ से ५० घन मीटर धारिता के होते हैं।

(क)	१·५	घन-मीटर	धारिता के छोटे-छोटे क्षैतिज भभके में	कोयला निकालने में	१२-१६	घंटे लगते हैं
(ख)	४	,,	ऊर्ध्वाधार भभके में	,,	१२-१६	,,
(ग)	३०	,,	क्षैतिज भभके में	,,	२०	,,
(घ)	३००	,,	ऊर्ध्वाधार भभके में	,,	३८०	,,
(च)	३००	,,	अमेरिकी भट्ठे में	,,	४५०	,,

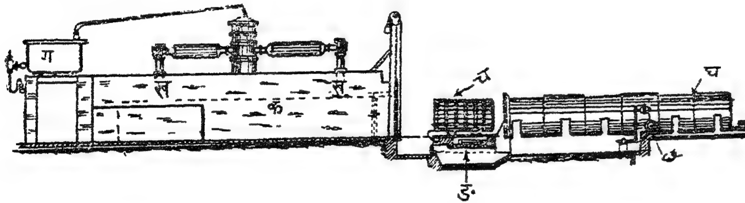
इस प्रकार प्रतिदिन—२४ घंटे में

(क)	में	२.५७	घनमीटर	
(ख)	में	६.८५	,,	लकड़ी का कोयला बनता है।
(ग)	में	३६	,,	
(घ)	में	१९	,,	
(च)	में	१६	,,	

छोटे-छोटे भभकों में हाथों से लकड़ी डाली जाती है। बड़े-बड़े भभकों में यंत्रों से, पहियेवाली चक्री से, लकड़ी डाली और यंत्रों से ही निकाल कर लोहे के बन्द बक्सों में कोयला ठंढा किया जाता है। यदि भभके में ही कोयला ठंढा किया जाय तो उत्तम कोटि का सघन कोयला प्राप्त होता है। चक्री (car) में ही कोयला बनाना अच्छा समझा जाता है।

कार्बनीकरण के पात्रों को कैसे गरम किया जाय, यह प्रश्न महत्त्व का है। गरम करने के दो क्रम हैं। पहले क्रम में लकड़ी प्रायः २८०° से० तक और दूसरे क्रम में प्रायः ४००° से० तक गरम की जाती है। २८०° से० के बाद बाहर से ऊष्मा प्रदान करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्म-कार्बनीकरण से ही ऊष्मा उत्पन्न होकर ताप को बढ़ाती है। ऊष्मा प्रदान करने की तीन रीतियाँ बरती जाती हैं—

(१) कोयलाकरण उपकरण में वायु प्रविष्ट करायी जाती है ताकि आग लगा देने पर लकड़ी का कुछ अंश जलकर ऊष्मा प्रदान करे।



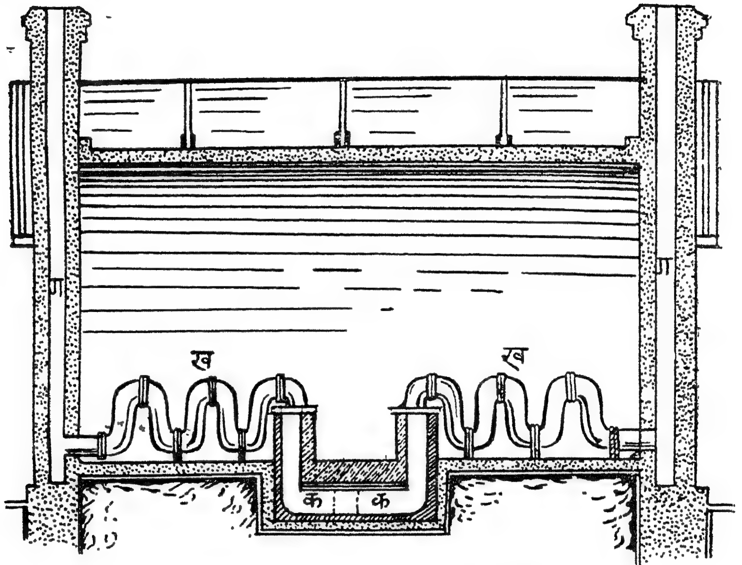
चित्र ७—एक दूसरे प्रकार का क्षैतिज भभकेवाला भट्ठा

[यह एक दूसरे किस्म का क्षैतिज भभका है। कक्ष 'क' में लकड़ी रखी जाती है। 'ख' मार्ग से दहन उत्पाद बाहर निकलते हैं और अलकतरा संघनित हो 'ग' में इकट्ठा होता है और समय-समय पर निकाल लिया जाता है। 'च' एक चक्री है जिसके द्वारा लकड़ी भट्ठे में 'ङ' रेलमार्ग से लायी जाती है।]

(२) कोयलाकरण उपकरण के बाहर भ्राष्ट्र में उष्ण गैसें बनाकर उपकरण में लायी जाती हैं। ऐसी गैसों में आक्सिजन कम रहता है। उष्ण गैसें लकड़ी के संसर्ग में आकर उसे गरम करती हैं।

(३) भ्राष्ट्र की तप्त गैसें धात्विक तल के संसर्ग में आकर तल को गरम करती और उससे लकड़ी गरम होती है।

तप्त गैसें कुछ तो कार्बनीकरण की असंघनीय गैसों के जलाने से प्राप्त होती हैं और शेष सूखी लकड़ी अथवा कोयले के जलाने से प्राप्त होती हैं। यदि सूखी लकड़ी का उपयोग हो तो जितनी लकड़ी का कोयला बनता है उसकी १६ प्रतिशत लकड़ी इसमें खर्च होती है। भट्ठे में वायु के प्रवेश से ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-नैफ्था की प्राय: ५० प्रतिशत मात्रा तक हानि हो सकती है।



चित्र ८—स्वीडीश कार्बो-नल चूल्हा

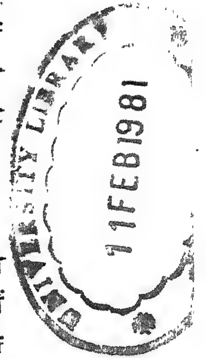
[यह चूल्हा भी ईंटों का बना होता है। कक्ष में नल रहता है। इसी नल में लकड़ी गरम की जाती है। नल क्षैतिज और ढालवे लोहे का बना होता है। नल पेंचों से कसे रहते हैं। नल के छोर नति (bend) से जुटे रहते हैं। चित्र में 'क', 'क' चूल्हा है, 'ख', 'ख' निकास-नलियाँ हैं, 'ग', 'ग', मार्गों से गैसें निकलती हैं। ऐसा चूल्हा स्वीडन और फिनलैण्ड में प्रयुक्त होता है। पेंदे से गैसें प्रविष्ट कर कक्ष को गरम करती हैं। वाहिनी से दहन के उत्पाद बाहर निकलते हैं।]

अमेरिकी भट्ठे अच्छे समझे जाते हैं। ये मधुकोष से होते हैं। इनमें ३०० से

४०० घन मीटर लकड़ी अंटती ह। एसे ७० से ८० भट्ठे एक संघनित्र से जोड़े जा सकते हैं। रेचक पम्पों (Exhaustors) द्वारा गैसें संघनित्र में खींची जाती हैं।

बाहर से उष्ण गैसों के प्रदान के लिए एक या एक से अधिक भ्राष्ट्र बने होते हैं। इनमें लकड़ी, लकड़ी के बुरादे, लिगनाइट, अलकतरा आदि सुविधानुसार जल सकते हैं। किसी धातु के तलों द्वारा परोक्ष रीति से भ्राष्ट्र गैसों के द्वारा गरम करना अच्छा होता है। भ्राष्ट्र गैसें किसी ठोस, द्रव अथवा गैसीय ईंधन के जलाने से प्राप्त होती हैं। ये गैसें धातु-तलों को ऊष्मा प्रदान करती हैं और यह ऊष्मा तब लकड़ी के पास पहुँच कर उसे गरम करती है। भभके को सीधे भी गरम कर सकते हैं।

काष्ठ के बीच में लोहे की नलियाँ रह सकती हैं और इन नलियों के अन्दर से भ्राष्ट्र गैसें पारित होती हैं। यह रीति ईंटों की बनी भट्ठियों के लिए अच्छी समझी जाती है। कार्बो-चूल्हों में दोनों रीतियों का समावेशन है। नलियों के उपयोग से ऊष्मा का वितरण अच्छा होता है। दोष केवल यही है कि नलियों में अनेक सन्धियां रहती हैं जिनके ढीले होने से वायु प्रविष्ट कर आसुत की हानि कर सकती है। ४०० से० तक गरम करने से सन्धियों के ढीले होने की सम्भावना बढ़ जाती है। ऊर्ध्वाधार भभके अधिक सुविधाजनक होते हैं। क्षैतिज भभके के गरम करने में छेदवाली नलियाँ अच्छी होती हैं। तप्त गैसों के ठीक-ठीक वितरण के लिए चिमनी में आवश्यक बहाव होना चाहिये। ऊँचे दबाववाले पंखों के द्वारा बहाव उत्पन्न किया जा सकता है।



आसवन उत्पाद

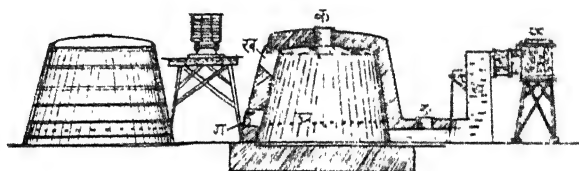
कोयला बनाने में आसवन उत्पाद का संग्रह महत्त्व का है। कुछ कोयलाकरण उपकरण के शिखर पर वाष्पशील अंश के निकलने का मार्ग रहता है। उपकरण में ऊष्मा पेंदे से दी जाती है। वाष्प और गैसें ऊपर उठकर शिखर के निकास-मार्ग से निकल जाती हैं। ऐसी गैसों और वाष्पों का ताप १००° से० के ऊपर ही रहता है। ऐसे ताप पर गैस और वाष्प अलकतरे से संतृप्त रहते हैं। यह अलकतरा वाष्प के रूप में रहता है और संघनित्र में संघनित होता है। विशेष प्रबन्ध से अलकतरा पृथक्कारकों में काष्ठासुत अम्लों के संघनित होने के पूर्व संघनित हो जाता है।

निकास-गैसों का ताप धीरे-धीरे उठता है। काष्ठ-गैसों और काष्ठ-अलकतरा के साथ-साथ काष्ठासुत अम्ल भी निकलता है। लकड़ी का और कोयले का बनना साथ-साथ होता है। उष्ण गैसों के निकलने से ऊष्मा की हानि होती है और ईंधन का खर्च बढ़ता है। अलकतरे के संघनन से नली के जाम हो जाने का भय रहता है।

बड़े-बड़े भभकों से वाष्पशील उत्पादों के निकास के लिए पेंदे में निकास-मार्ग रहता है। कोमल काष्ठों के लिए पेंदे का निकास-मार्ग ही अच्छा होता है। ऐसे काष्ठ से रेज़िन और तारपीन के तेल प्राप्त होते हैं। पेंदे से निकली गैसों और वाष्पों का ताप प्रायः १००° से० रहता है। इससे अलकतरा अधिक संघनित होता है। जब तक लकड़ी में पर्याप्त जल रहता है काष्ठ या रेज़िन का ताप विच्छेदन ताप से ऊँचा नहीं उठता। इससे अधिकांश तेल विच्छेदन-ताप के पहले ही वाष्पीभूत हो जाता है। इससे उत्पाद में तारपीन का तेल अपेक्षया शुद्ध होता है। रोजिन तेल और अलकतरा कम रहता है। पर कुछ समय के बाद स्थिति बदल जाती है। तारपीन का तेल अलग संघनित नहीं होता। काष्ठासुत अम्ल के साथ ही वह संघनित होता है।

सविराम उपकरण

ऐसे उपकरण में अच्छी कोटि के कोयले बनते हैं। वाष्पशील अंशों का संग्रह गौण-महत्त्व का होता है। ठंढे हो जाने पर इनसे कोयला निकाला जाता है। ठंढे होने में पर्याप्त समय लगता है।



चित्र ९—सविराम अमेरिकी भट्ठा

एक ऐसे भट्ठे का चित्र यहां दिया हुआ है। भट्ठा ईंटों का मधुमक्खी के छत्ते के आकार का बना होता है। शिखर से लकड़ी जलायी जाती है। लकड़ी जलाकर पट्ट (क) से मिट्टी का लेप देकर बन्द कर देते हैं। इसके कुछ नीचे के मार्ग (ख) से लकड़ी डाली जाती है। भट्ठे के पेंदे के तल पर एक मार्ग (ग) होता है जिससे कोयला निकाला जाता है। 'ख' और 'ग' लोहे के पट्ट के बने होते हैं। ये पट्ट ईंटों में लोहे के एक चिपटे चक्कर द्वारा मिट्टी से लेप कर बन्द कर दिये जाते हैं। भट्ठे के चारों ओर सुराख (घ) होते हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार ईंटों से बन्द कर सकते हैं अथवा खुला रख सकते हैं। चूल्हे के पेंदे से निकास-मार्ग (च) द्वारा गैसें और वाष्प निकलते हैं। इसमें एक वातयम (Damper) (छ) और पाशी (Trap) लगी रहती है। निकास-मार्ग वाष्पनल 'ज' से जुड़ा रहता है।

ऐसे ही भट्ठे अमेरिका में प्रयुक्त होते ह। इनकी धारिता १८० से ३२५ घन-मीटर होती हैं।

रेल ट्रकों से लकड़ी को लाकर 'ख' मार्ग से भट्ठे में डालते हैं। 'क' मार्ग से लकड़ी को जलाते हैं। जब तक केवल भाप निकलता है 'क' और 'च' को खुला रखते हैं। इस समय लकड़ी सूख जाती है। ज्यों ही 'क' से निकले धुएं में ऐसिटिक अम्ल का निकलना शुरू हो जाता है 'क' और 'च' को बन्द कर देते हैं। वातयम 'छ' को खोल देते और लकड़ी की बनी 'ज' नली से जोड़ देते हैं। 'घ' मार्ग को खुला या बन्द रखकर वायु के प्रवेश पर नियंत्रण रखते हैं। यहाँ कोयले का बनना ऊपर से शुरू होकर नीचे की ओर बढ़ता जाता है। ऐसे दस भट्ठे एक पंक्ति में काम करते हैं। इन दसों भट्ठों के आसवन-उत्पाद एक ही नली में जाते हैं। चार-चार पंक्तियों की चार-चार नलियाँ केन्द्र के एक नल में जाती हैं।

केन्द्र का यह नल फिर छोटे-छोटे नलों में बँटकर संघनित्रों में जाता है। संघनित्र नलाकार (Tubular) संघनित्र होते हैं। इन नलों से वाष्प पारित होता है। नलों में पानी बहता रहता है। ३०० घनमीटर के ४० भट्ठों के लिए संघनित्रों के चार क्रम होते हैं। प्रत्येक क्रम में ७ संघनित्र होते हैं जो श्रेणियों में बंधे होते हैं। प्रत्येक क्रम के अन्तिम छोर पर एक पंखा लगा रहता है जो 'घ' मार्ग द्वारा वायु को खींचकर दहन और कार्बनीकरण के उत्पादों को संघनित्रों के द्वारा बाहर निकालते हैं।

३०० घनमीटर धारिता के भट्ठे के एक आवेश में, लकड़ी डालने, कोयला बनाने, ठंडा करने और कोयले के निकाल लेने में १७ से २० दिन लगते हैं। ऐसे अमेरिकी भट्ठे सबसे सस्ते पड़ते हैं।

ईंटों के भट्ठे

ईंटों के कुछ ऐसे भी भट्ठे होते हैं जिनमें बाहर से लकड़ी जलाकर ऊष्मा को लाकर भट्ठे की लकड़ी को कोयला करते हैं। ऐसी जलानेवाली लकड़ी निकृष्ट कोटि की होती है। ऐसे भट्ठे स्वीडन में बनते हैं। इन्हें स्वार्ट्ज भट्ठा (Schwartg kiln) कहते हैं। इनका उपयोग १८२० ई० से होता आ रहा है। इस भट्ठे के सिद्धान्त पर और भी अनेक भट्ठे बने हैं जिनमें कई सुधार हुए है । ये अर्ध अण्डाकार होते हैं। देखने में वातभट्ठी से लगते हैं।

राइन वाक भट्ठी (Renibach oven) में ईंटों के कक्षों में अनेक कुण्डलियाँ रहती ह। इन्हीं कुण्डलियों से लकड़ी गरम की जाती है। ये कुण्डलियाँ ढालवा लोहे

के नल की होती हैं। नल एक साथ बंधे हुए और ढालवा लोहे की नति (Bends) से जुटे रहते हैं।

इस्पात के बने उपकरण

इस्पात के उपकरण दो प्रकार के होते हैं। एक 'अचल' किस्म का जो एक ही स्थान पर रहता और दूसरा 'चल' किस्म का जो एक स्थान से दूसरे स्थान में हटाया जा सकता है। अचल किस्म के उपकरण के फिर दो अन्तर्विभाग हैं। एक बड़ी धारिता के संयन्त्र जिनके पेंदे में वाष्प का निकास-मार्ग रहता ह और दूसरे छोटी धारिता के संयन्त्र जिनके शिखर पर वाष्प का निकास-मार्ग रहता है। एक ऐसा उपकरण 'स्वीडिश कार्बो-चूल्हा' है जिसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।

चित्र १०—स्वीडीश ऊर्ध्वाधार कार्बो-चूल्हा

इसमें एक बड़ा इस्पात का बना कक्ष 'क' होता है। इसकी धारिता ३०० से ४०० घनमीटर की होती है। इसका पेंदा तश्तरी (शरावक) के आकार का होता है। कक्ष के मध्य में 'ख' निकास-मार्ग से आसवन के उत्पाद निकलते हैं। पेंदे के पार्श्व में 'ग' मार्ग से कोयला निकाला जाता है। सर्पिल वाहिनी 'घ' सिलिंडर के

चारों ओर घूमती और इसका नियंत्रण एक वातयाम के द्वारा होता है। कोयले के निकास-मार्ग की दूसरी ओर चूल्हे की द्वारी 'च' होती है और उसके समीप ही 'छ' चूल्हे की झर्झरी होती है जहाँ लकड़ी जलायी जाती है। चूल्हे से निकलकर गैसें वाहिनी 'घ' में जाकर सिलिंडर को गरम करती हैं। सिलिंडर को घेरती हुई अग्नि-जित ईंटों की दीवारें 'ज' बनी होती हैं। सिलिंडर के एक तिहाई अंश को यह घेरती हैं। सिलिंडर का शेष भाग सामान्य ईंटों की दीवारों 'झ' से घिरा रहता है। भट्ठी के मध्य में एक मोटा ऊर्ध्वाधिर तापन नल 'ट' होता है। यह 'ट' नल मध्य के एक व्यवधान 'ठ' से बँटा रहता है। यह व्यवधान नीचे से बन्द रहता है पर ऊपर में दो नलियाँ लगी रहती हैं, जिनमें एक 'ड' से असंघनीय काष्ठ-गैसें निकलतीं और दूसरे 'ढ' से दहन के लिए आवश्यक वायु प्रविष्ट करती है। असंघनीय गैसों के दहन से अन्दर की नली गरम की जाती है। 'त' मार्ग से लकड़ी डाली जाती है।

ऐसे कार्बो-भट्ठी की कीमत अधिक नहीं होती। स्वीडन में अनेक ऐसी भट्ठियाँ इस्तेमाल होती हैं। इसी सिद्धान्त पर अन्य कई भट्ठियाँ बनी हैं जिनमें ५ से ६ दिनों में एक बार कोयला निकाला जा सकता है।

इसी से मिलती-जुलती एक ड्रोमार्ट (Drommart) भट्ठी है जो फ्रांस में प्रयुक्त होती है। इसमें भी इस्पात के कक्ष होते हैं। इस भट्ठी में ५० घन मीटर लकड़ी एक बार अंट जाती है। यह कक्ष इस्पात के पट्ट का बना होता है। पट्टों को पेंचों से रिपिट * करते हैं ताकि जब चाहें तब अलग कर हटा सकें। भट्ठी विकिरण से गरम होती है।

अविराम उपकरण

ऐसे उपकरण में ज्योंही कोयला बन जाता कोयले को लोहे के पात्रों में निकालकर पात्रों को संमुद्रित कर देते हैं ताकि उसमें वायु का प्रवेश न हो सके। उसे तब ठंढे होने को छोड़ देते हैं। अब उपकरण में ताजी लकड़ी डाल कर फिर गरम करते हैं। ऐसा उपकरण क्षैतिज हो सकता है अथवा ऊर्ध्वाधार।

क्षैतिज उपकरण

इंगलैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस और कुछ सीमा तक अमेरिका में भी जो उपकरण प्रयुक्त होते हैं वे क्षैतिज होते हैं। उनका व्यास एक मीटर का और लम्बाई

*'रिपिट करना' = बिलकुल न हटनेवाला जोड़ लगाना

तीन मीटर की होती है। उनमें १·५ घनमीटर लकड़ी अंटती है। उनमें लकड़ी को फेंक देते हैं। १२ घंटे में कोयला प्राप्त होता है।

चूँकि भभके की धारिता कम होती है इस कारण अनेक भभकों की आवश्यकता पड़ती है। इससे प्रारम्भिक खर्च बढ़ जाता है। अनेक भभकों के गरम करने में ईंधन का खर्च भी बढ़ जाता है। इस कारण अमेरिका में बड़े-बड़े भभके, ५० से ६० घनमीटर, के प्रयुक्त होते हैं। इन भभकों में आज अनेक सुधार हुए हैं जिससे अब वे अधिक टिकाऊ होते हैं। लडकियां एक-सी गरम होती हैं। आजकल चक्री-भभके संयन्त्र (Car-retort plants) अधिक सुविधाजनक सिद्ध हुए हैं। यहां लकड़ी को चक्री में भर देते हैं। एक बार भभके में चार चक्कियां इस्तेमाल होती हैं। तारों से इन चक्कियों को भभके में ले जाकर दरवाजे को बन्द करके भभके को गरम करते ह। भमकों से निकली असंघनीय गैसों को जलाकर भभकों को गरम करते हैं। कितने समय में कोयला बन जायगा, यह काष्ठ में जल की मात्रा, भट्ठे के प्रकार और आग लगाने के ढंग पर निर्भर करता है। भभके से कोयले को निकालने, भभके को फिर लकड़ी से भरने और दरवाजों को बन्द करने में प्रायः ३० मिनट का समय लगता है। इन कामों के लिए चार आदमियों की जरूरत पड़ती है। चार ऐसे भभकों में १०० से १२० घनमीटर लकड़ी २४ घण्टे में कोयला बन जाती है। सारा कार्य चार आदमियों से अढ़ाई घण्टे में हो जाता है। गरम करने और क्रिया के निरीक्षण के लिए केवल एक चौकीदार की जरूरत पड़ती है। मजदूरी का खर्च यहां कम पड़ता है। भभके से निकली वाहिनी-गैस को लकड़ी के पूर्व-तापन के लिए प्रयुक्त करते हैं। एक दो कारखानों में घूर्णक भभके का भी उपयोग हुआ है पर इसमें पूरी सफलता मिलती है यह नहीं कहा जा सकता।

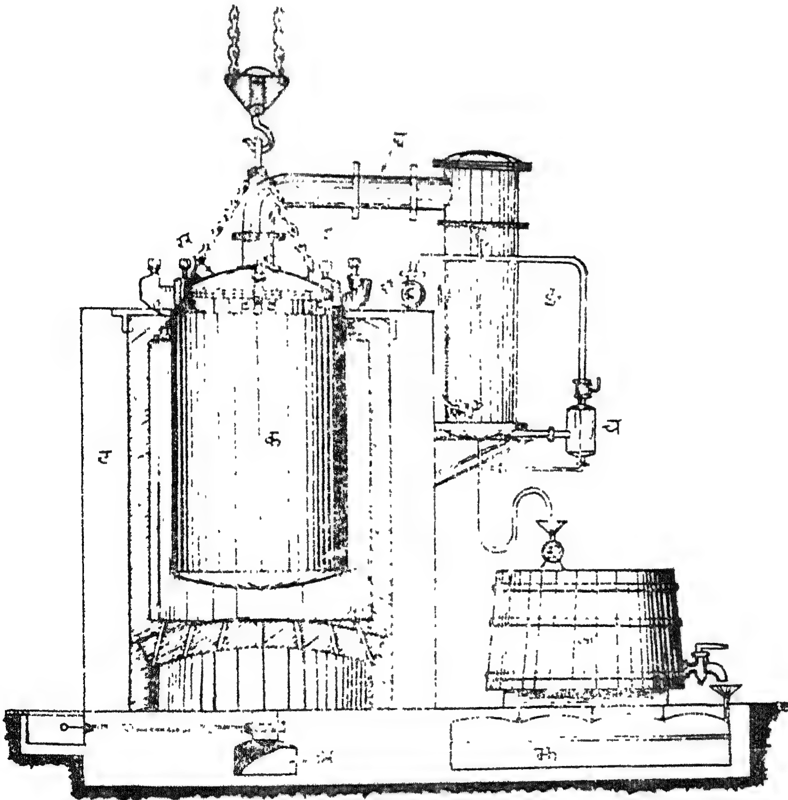
ऊर्ध्वाधार उपकरण

ऊर्ध्वाधार उपकरण दो किस्म के होते हैं। एक अचल और दूसरे चल किस्म के। अचल किस्म के उपकरण हाथों से भरे और निकाले जाते हैं। चल किस्म के उपकरण यंत्रों से भरे और निकाले जाते हैं।

अचल किस्म के ऊर्ध्वाधार भभके सरल होते हैं। ऐसे भमके के शिखर पर ढक्कन से बन्द करने और ढक्कन के हटाने का प्रबन्ध रहता है। कोयले के निकालने का पेंदे में निकास-मार्ग रहता है। भभके का निचला भाग शंक्वाकार होता है अथवा कुहनी सा टेढ़ा होता है। इन्हें 'बीक भभका' (beak retorts) कहते हैं। ये भभके रूस में इस्तेमाल होते हैं। अचल भभके ईंटों में जड़े होते हैं। भभकों में लकड़ियां

डाल दी जाती हैं। पर लकड़ी का गट्ठर बनाकर बांध कर भभके में डालना अच्छा होता है।

चल किस्म के भभके, फ्रांस, बेल्जियम, इटली और कुछ जर्मनी में इस्तेमाल होते हैं। एक ऐसे भभके का चित्र यहां दिया हुआ है। यहाँ 'क' भभका है, 'ख' ढक्कन, 'ग' गैस निकास नली, 'घ' प्रदाननली, 'ङ' संघनक, 'च' गैसपृथक्कारक, 'छ' असंघनीय गैसों का प्रनाड (main), 'ज' काष्ठामृत अम्ल का संग्रह कुराड (vat), 'ट' तारकोल का गड्ढा, 'ठ' सच्छिद्रनाप, 'ड' वाहिनी और 'त' ईंटों के घेरे हैं।



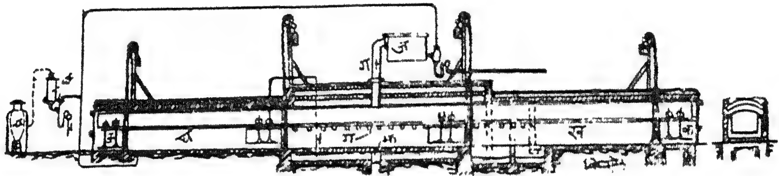
चित्र ११—ऊर्ध्वाधार चल भभकेवाला चूल्हा

भभके को भट्ठी के बाहर लकड़ी से भरते, फिर बन्द करके यंत्रों से भट्ठी में रखते हैं। प्रायः ५ घनमीटर लकड़ी भभके में अँटती है। कोयला बन जाने पर भभके को

उठाकर ठंढे होने को रख देते हैं। ठंढे हो जाने पर, साधारणतया १२–१६ घंटे इसमें लगते हैं, ढक्कन को हटाकर कोयले को निकाल लेते हैं और भभके को फिर लकड़ी से भरकर बक (क्रेन) से भभके को हटाकर भट्ठी में रखते हैं।

ऊर्ध्वाधार भभका सस्ता पड़ता है। पर इसमें कुछ दोष भी हैं। बार-बार हटाने और रखने से सन्धियाँ ढीली पड़ जाती हैं जिससे च्याव (leakage) हो सकता है। ताप के बार-बार परिवर्तन से ईंट की बनावट और भभके में दरारें पड़ जाती हैं। बक से उठाने में कुछ खर्च भी पड़ता है। यदि इसके लिए सस्ता जल-बल प्राप्य नहीं है तो यह खर्च नगण्य नहीं होता। प्रारम्भिक खर्च भी इसमें अधिक पड़ता है।

अविराम गति से कोयला बनाने में ग्रोण्डाल (grondal) का भभका उल्लेखनीय है। इस भभके के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं—



चित्र १२—ग्रोण्डाल भभका

१. ईंटों का बना बाह्य-कक्ष 'क'। यह इतना बड़ा होता है कि ३.५ मीटर लम्बा, १.५ मीटर चौड़ा और २ मीटर ऊँचा चर्क्री उसमें अँट सके।

२. एक दूसरा कक्ष 'ख' जो अंशतः ईंटों का और अंशतः इस्पात का बना होता है। यह ३८ मीटर लंबा, २.६ मीटर ऊँचा और १.९५ मीटर चौड़ा होता है। भट्ठे से तप्त गैसें इसमें पहले इस्पातवाले अंश में और पीछे ईंटवाले अंश में प्रविष्ट करती हैं। ये गैसें लकड़ी के संसर्ग में सीधे आती हैं। इसके बाद कोयला बननेवाला कक्ष 'ग' आता है। यह २६ मीटर लंबा और 'ख' के समान ही चौड़ा और लम्बा होता है। यह इस्पात का बना होता है। भट्ठी की गैसें यहाँ आकर लकड़ी को गरम करती हैं। यह कक्ष संघनित्र 'ज' से नल 'ग' द्वारा जुड़ा रहता है।

फिर कोयला शीतक 'घ' में आता है। यह २० मीटर लंबा और 'ग' की भाँति ही चौड़ा और ऊँचा होता है। शीतक ईंटों से बना होता है। संघनित्र 'ग' से असंघनीय गैसें और 'च' से उत्पादक गैसें इसी कक्ष में आकर तब भट्ठे 'झ' में जलती हैं। ये गैसें तप्त कोयले से ऊष्मा को खींचकर कोयले को ठंढा करती हैं। 'ङ' ईंटों का बना

एक कक्ष है जो शीतक के पार्श्व में स्थित है। 'च' में उत्पादक गैस बनती है। यह लकड़ी के बुरादे से बनायी जाती है। 'ज' संघनित्र में उत्पादक गैस का जल संघनीभूत किया जाता है। कक्ष–'ग' से निकली गैसों के संघनन के लिए 'ज' संघनित्र बने हुए हैं।

लकड़ी को टोकरियों अथवा चक्रियों में भरकर कक्ष 'क' में रेलों से ले जाकर डालते हैं। रखने के बाद कक्ष के दरवाजे को बन्द कर देते और तब 'क' और 'ख' के बीच के दरवाजे को खोल देते हैं। 'क' कक्ष से टोकरियाँ या चक्रियाँ 'ख' में ले जायी जाती हैं। वहां से फिर कक्ष 'ग' में ले जायी जाती हैं। 'ग' से फिर 'घ' में और 'घ' से 'ङ' में और अन्त में 'ङ' से बाहर निकाल ली जाती हैं। ज्यों ही टोकरी दरवाजे पर पहुँचती बिजली की घंटी बजती और दरवाजा खुलने और बन्द होने का संकेत मिल जाता है।

'क' में गीली लकड़ी रखी जाती है। 'ख' में लकड़ी का पूर्व-तापन होता है। वहां से लकड़ी 'ग' कक्ष में जाती है जहां कोयला बनता है। वहां से कोयला शीतक में जाकर ठंढा होता है। शुरू से अन्त तक सब मिलाकर १०० मीटर लंबा होता है। इस संयन्त्र में उष्मा का पूर्णरूप से उपयोग हो जाता है। एक ही संयन्त्र में अनेक कार्यों के होने से संयन्त्र कुछ पेचीला हो जाता है। यदि इनमें एक कार्य में भी कुछ रुकावट हुई तो सारा संयन्त्र निकम्मा हो जाता है और कार्य रुक जाता है। अतः देखने में तो यह विधि सरल और सुविधाजनक प्रतीत होती है पर पेचीला होने के कारण इसका उपयोग कम हुआ है।

लकड़ी के उच्छिष्ट उत्पादों का उपयोग

लकड़ी के कारखाने में इमारती लकड़ी के निकालने पर कुछ लकड़ी, छीलन, खरादन, छोटे-छोटे टुकड़े, बुरादे आदि पर्याप्त मात्रा में बच जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ फलों की गुठलियां और फलों के कूर्पर भी प्राप्त होते हैं जिनका आसवन हो सकता है। इन सबके उपयोग की चेष्टाएं हुई हैं। इनमें बुरादे की मात्रा सबसे अधिक प्राप्त होती है। जलाने के अतिरिक्त इनके अन्य उपयोग नहीं हैं। इनके भंजक आसवन (डिस्ट्रक्टिव डिस्टिलेशन) की चेष्टाएँ हुई हैं।

बुरादे से प्राप्त कोयले का चूर्ण-चूर्ण होने के कारण, उपयोग नहीं है। इसकी इष्टका बन सकती है पर इष्टका पर्याप्त मजबूत नहीं होती। वह भी शीघ्र ही चूर-चूर हो जाती है, तो भी जलावन के लिए उसका उपयोग हो सकता ह। बुरादे से चूने के ऐसिटेट और काष्ठ-नैफ्था अपेक्षया अल्प मात्रा में प्राप्त होती है। कोमल काष्ठ

से चूने के ऐसिटेट और काष्ठ-नैफ्था और भी कम मात्रा में प्राप्त होती है। पर कोमल काष्ठ से तारपीन का तेल प्राप्त होता है जो अधिक कीमती और उपयोगी होता है।

बुरादे के कार्बनीकरण में विशेष कठिनताएं हैं। बुरादा ऊष्मा का अचालक होने के कारण कोयला बनाने के पात्र बड़े-बड़े नही हो सकते। बुरादे से गैसीय उत्पादों का निकलना भी सरलता से नहीं होता। बुरादे से गैसों के निकलने के मार्ग रुद्ध हो जाते हैं। इस कारण बुरादे की इष्टका बनाकर कार्बनीकरण का सुझाव है और इसके प्रयत्न हुए हैं। घूर्णक भट्ठी में भी बुरादे के कार्बनीकरण की चेष्टाएं हुई हैं। घूर्णक (रोटरी) भट्ठी उसी प्रकार की होती है जैसी सीमेन्ट के निर्माण में प्रयुक्त होती है।

इष्टका बनाकर बुरादे के कार्बनीकरण में सफलता नहीं मिली। ऐसी इष्टका टूट जाती है। यद्यपि बुरादे के कार्बनीकरण में सफलता नहीं मिली है पर अन्य कटी-छँटी और खरादन-छीलन आदि का कार्बनीकरण अन्य लकड़ी की भांति ही हो सकता है।

सातवाँ अध्याय

काष्ठ-आसवन के वाष्पशील अंश

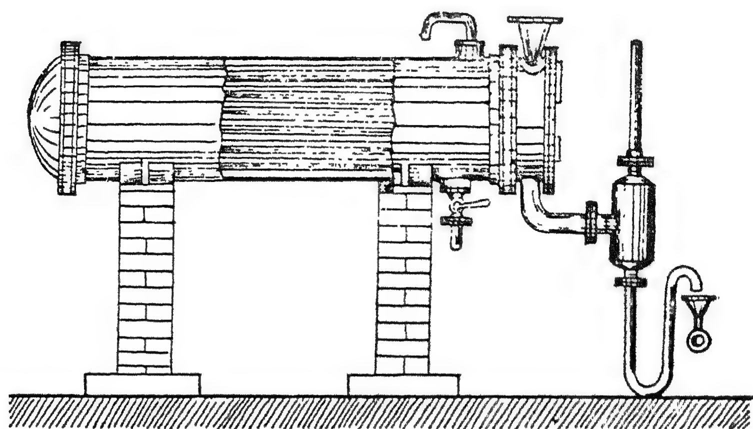
काष्ठ के आसवन से जो वाष्पशील अंश निकलते हैं उसके संघनन का प्रबन्ध रहना चाहिये। यदि संघनन के लिए वायु-संघनित्र का ही उपयोग हो तो काष्ठ के १०० किलोग्राम के प्रति घण्टा कोयला बनाने में वाष्पशील अंश के संघनन के लिए लगभग ३१ वर्ग मीटर शीतल तल की आवश्यकता पड़ेगी। यदि जल-संघनित्र का उपयोग हो तो लगभग २ वर्ग मीटर से ही काम चल जायगा। इस दृष्टि से वायु-संघनित्र निश्चय ही अधिक खर्चीला होता है। साधारणतया इसके लिए जल-संघनित्र का ही उपयोग होता है। ऊपर के संघनित्र के आंकड़े नियमित रूप से होनेवाले आसवन के लिए हैं। पर व्यवहार में ठीक ऐसा नहीं होता। कभी आसवन (डिस्टिलेशन) बड़ी तीव्रता से होता है और कभी धीरे-धीरे।

जिस मार्ग से आसवन की गैसें निकलती हैं, वह लम्बी-लम्बी नलियों से बना होता है। इन नलियों के अलकतरे से बन्द हो जाने की सम्भावना रहती है। अतः नलियों को समय-समय पर साफ करने की आवश्यकता पड़ती है।

संघनित्र नलियां अनेक होती हैं। भिन्न-भिन्न भभकों के लिए भिन्न-भिन्न किस्म की नलियां प्रयुक्त होती हैं। इससे खर्च बढ़ जाता है। पर इससे कुछ सुविधाएँ भी बढ़ जाती हैं। जब संघनित्र नलियों के पेंदे से गैसें निकलती हैं तब ताप कम होने से नलियों में अलकतरा बनने की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसी दशा में अनेक भभकों के साथ एक संघनित्र नली से भी काम चल सकता है। यहां एक नली भभकों के बीच के स्थान में स्थित रहती है।

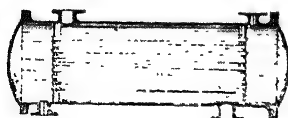
संघनित्र के शीतल-तल साधारणतया तांबे के ही बनते हैं। ऐसे तल पर अलकतरे का आच्छादन होता रहता है। इससे इसे बार-बार साफ करने की जरूरत पड़ती है। शीतल-तल तांबे की नलियां होती हैं। इन नलियों के चारों ओर ठण्ढा पानी बहता रहता है। कभी-कभी नलियों के अन्दर पानी बहाते और बाहर गैसें बहाते हैं।

शीतल-तल की नलियाँ क्षैतिज हो सकती हैं अथवा ऊर्ध्वाधार। ये नलियाँ समानान्तर में रहती हैं। ऊपर और नीचे दोनों छोरों पर ताँबे के कक्ष लगे रहते हैं जिनसे गैसें निकलती अथवा प्रवेश करती हैं। ये नलियाँ पानी की टंकी में डूबी रहती हैं। टंकी लोहे की हो सकती है या फिर काठ की। नलियों की लम्बाई अथवा ऊँचाई ऐसी होती है कि उनकी सफाई सुविधा से हो सके।



चित्र १३—संघनित्र की क्षैतिज नली

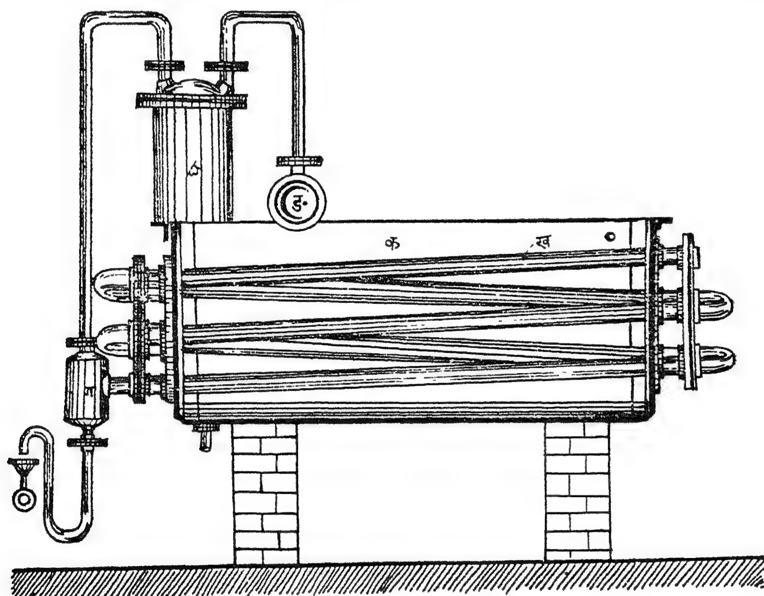
कुंडली (Coil) संघनित्र भी कहीं-कहीं प्रयुक्त होते हैं। ये नलियों और मोड़ों (Bends) से बने होते हैं। मोड़ें टंकियों के बाहर रहती हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें हटाकर नलियों की सफाई की जा सके। चित्र में एक ऐसी ही कुंडली-संघनित्र दिया हुआ है। ऐसे अनेक संघनित्र साथ-साथ प्रयुक्त हो सकते हैं। य सस्ते होते हैं। ये उसी दशा में अच्छे होते हैं जब अलकतरा बनने की सम्भावना कम रहती है। यदि अलकतरे बनने की सम्भावना अधिक हो तो संघनित्र और भभके के बीच ताँबे का एक पात्र रख देते हैं जिसमें अलकतरा इकट्ठा होता है। इससे संघनित्रों में अलकतरा बनने की सम्भावना बहुत कम हो जाता है और संघनित्रों की नलियों की बार बार



चित्र १४—संघनित्र की ऊर्ध्वाधार नली

सफाई करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। काष्ठ-गैसों से काष्ठासुत अम्ल के पृथक् करने की अनेक युक्तियाँ बनी हैं।

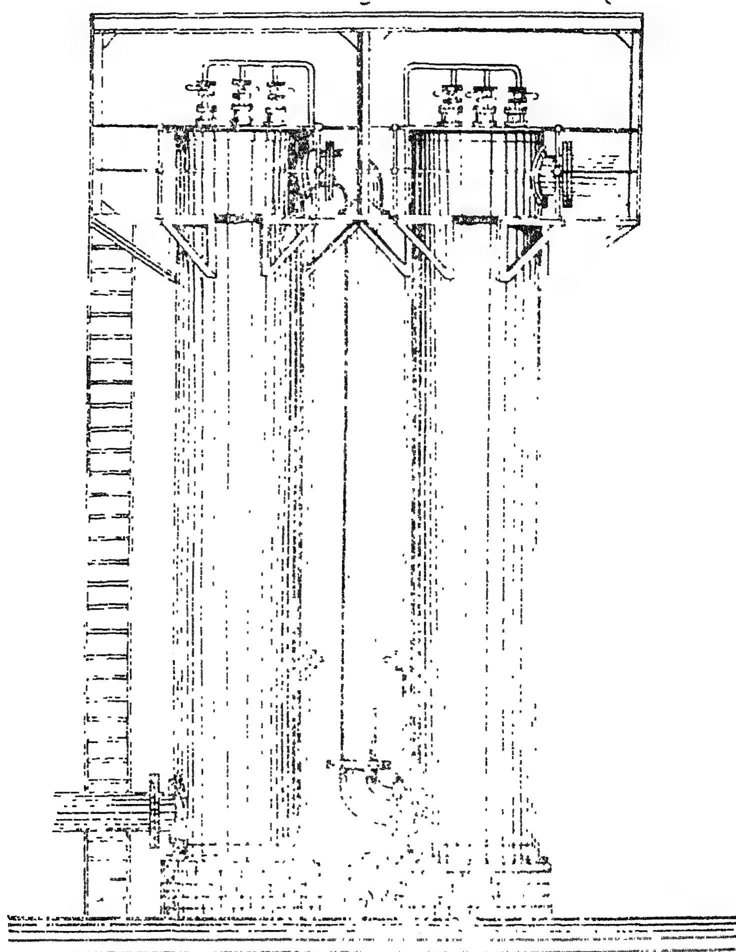
संघनित्र से निकली गैसें ऐसिटिक अम्ल और काष्ठ-नैफ्था के वाष्प से संतृप्त रहती हैं। वाष्पों को निकाल लेना आवश्यक है, नहीं तो वे नष्ट हो जाते हैं। गैसों के पानी से धोने से वाष्प निकल जाता है। जिस उपकरण में गैसें धोयी जाती हैं उन्हें मार्जक (Scrubbers) कहते हैं। मार्जकों का उपयोग पहले-पहल कोयला-गैस के निर्माण में हुआ था। पीछे काष्ठ-गैस के निर्माण में भी होने लगा। कहीं एक मार्जक का और कहीं दो मार्जकों का उपयोग होता है। एक से अधिक होने पर उन्हें श्रेणी में अथवा समानान्तर में रख सकते हैं। मार्जकों में कोक अथवा लकड़ी के छीलन (Shavings) भरे रहते हैं। मार्जकों पर ऊपर से पानी गिरकर चारों तरफ



चित्र १५—कुण्डली संघनित्र

फैलकर नीचे की टंकी में इकट्ठा होता है। पानी एक मार्जक से दूसरे मार्जक में भी जा सकता है। जब पानी संतृप्त हो जाता तब काष्ठासुत अम्ल में मिला दिया जाता है। इसमें पर्याप्त पानी खर्च होता है। जितनी लकड़ी से कोयला बनता है उसका १० से १५ प्रतिशत पानी लगता है। ऐसिटिक अम्ल की प्राप्ति भी बढ़ जाती है।

मार्जकों से गैसें निकलकर जलने के लिए नलियों में जाती हैं। यहाँ मार्जक गैस-टंकी का भी काम करता है। भभकों से गैसों के निकालने के लिए पंखों अथवा धौंकनी



चित्र १६—गैस मार्जक

गैसों से अधिक से अधिक अलकतरा और काष्ठामृत अम्ल निकल सके उसके लिए मार्जकों का व्यवहार होता है।

का उपयोग होता है। इनके उपयोग में सावधानी की आवश्यकता होती है। इसमें खर्च भी पड़ता है।

अलकतरा

लकड़ी के अलकतरे दो किस्म के होते हैं। एक किस्म का अलकतरा काष्ठासुत अम्ल के नीचे बैठ जाता है। दूसरे किस्म का अलकतरा काष्ठासुत अम्ल में घुला रहता है। दोनों किस्मों के अलकतरों के संघटन में विभिन्नता रहती है।

पहले किस्म के अलकतरे का संघटन इस प्रकार रहता है—

	प्रति शत
ऐसिटिक अम्ल	२·००
काष्ठ-स्पिरिट	०·६५
जल	१७·७५
लघुतेल	५·००
गुरुतेल	१०·००
कोमल पिच	६४·६०

दूसरे किस्म के अलकतरे का संघटन इस प्रकार रहता है—

	प्रति शत
ऐसिटिक अम्ल	८
जल	३२
कठोर पिच	६०

कोमल काष्ठ से प्राप्त अलकतरे में रहते हैं—

	प्रति शत
काष्ठासुत अम्ल	१२
तारपीन	३०
कोमल काष्ठ अलकतरा	५८

कठोर-काष्ठ अलकतरा

अलकतरे का आसवन करते हैं। आसवन से हाइड्रोकार्बन, कुछ फीनोल और पिच प्राप्त होते हैं। आसवन के पात्र और संघनित्र ताँबे के होते हैं। १४०–१५०° सें० तक गरम करने से जो भाप निकलती है उसमें जल, काष्ठ-स्पिरिट, ऐसिटिक अम्ल और लघु तेल रहते हैं। लघु तेल की गंध बड़ी अरुचिकर होती है। यह जलाने के काम में आता है। जलकर यह शक्ति उत्पन्न करता है।

यहाँ आसवन के पात्र, भभके, वैसे ही होते हैं जैसे कोयले के अलकतरे के आसवन में प्रयुक्त होते हैं। ऐसिटिक अम्ल के रहने के कारण इस्पात के भभके प्रयुक्त नहीं

हो सकते। भभके के नीचे के अंश इस्पात के और ऊपर के भाग तांबे के होते हैं। ढालवें लोहे के होने के कारण भभके की धारिता अधिक नहीं होती। धारिता साधारणतया ५००० लिटर से अधिक की नहीं होती। भभका बेलनाकार होता है। पेंदा पर्याप्त चौड़ा अवतल (Concave) होता है। बेलनाकार पात्र के पेंदे में पिच के निकास का मार्ग होता है। मार्ग ऐसा होता है कि बिना किसी रुकावट के पिच निकल सके। भभके का ढक्कन तांबे का होता है। ढक्कन में मैनहोल जुड़ा रहता है। ढक्कन में ही थर्मामीटर लगा रहता है। थर्मामीटर का बल्ब अलकतरे के तल के ऊपर रहता है। भभके में सुरक्षा वाल्व (Safety valve) होता है। इस वाल्व से ही उबलने के समय फेन निकलता है। भभके के निचले भाग में नल लगा हुआ रहता है जिससे अलकतरा डाला जाता है।

भभके को पम्प से अलकतरे से भरते हैं। अलकतरे के गड्ढे में भाप-कुंडली लगी रहती है। इससे अलकतरे को भभके में लाने के पूर्व गरम कर लेते हैं। गरम करने से अलकतरे की श्यानता (विस्कासिटी) घट जाती है जिससे वह सरलता से पम्प हो जाता है।

भभके को अलकतरे से भरकर गरम करते हैं। ११०° सें० तक अलकतरे से केवल काष्ठासुत अम्ल का आसवन होता है। फिर २५०–२६०° सें० तक तेलों का आसवन होता है। आसुत को दो प्रभागों में एकत्र करते हैं। पानी से हलके 'लघुतेल' को एक साथ इकट्ठा करते और पानी से भारी 'गुरुतेल' को अलग इकट्ठा करते हैं। २६०° सें० ताप पहुँचते-पहुँचते आसवन को बन्द कर देते हैं। पिच की प्रकृति से पता लगता है कि आसवन को कब बन्द कर देना चाहिये। लघुतेल जलाने के काम में आता है। गुरुतेल से क्रियोसोट प्राप्त होता है। क्रियोसोट औषधियों और लकड़ी के संरक्षण में व्यवहृत होता है।

क्रियोसोट का निर्माण

गुरुतेल को पहले पानी से धोते हैं। इससे ऐसिटिक अम्ल निकल जाता है। धोवन को काष्ठासुत में मिलाकर उससे ऐसिटिक अम्ल निकाल लेते हैं। ऐसे धोये गुरुतेल में प्रायः ५० प्रतिशत तक फीनोल रहता है। गुरुतेल को एक टंकी में पम्प करते हैं। टंकी का ऊपरी अंश बेलनाकार होता है और निचला अंश कोण के आकार का होता है। टंकी को ढक्कन से बन्द कर देते और मथित्र उपकरण से मथते हैं। इससे अमिश्रणीय तरल पायस के रूप में बदल जाता है। इसमें फिर दुर्बल दाहक सोडा विलयन डालकर फीनोल को घुला लेते हैं। हाइड्रोकार्बन फीनोल से अलग होकर दो स्तरों में बँट जाता है और उन्हें अलग-अलग निकाल लेते हैं।

फीनोल के विलयन में भी कुछ हाइड्रोकार्बन आलम्बित रहता है। भाप के प्रवाह से हाइड्रोकार्बन को निकाल लेते हैं।

अब क्षारीय विलयन को तनु सलफ्यूरिक अथवा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा उपचार से अवक्षिप्त कर लेते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड के द्वारा भी फीनोल का अवक्षेपण कर सकते हैं। अम्ल डालने के समय क्षारीय विलयन को बराबर प्रक्षुब्ध करते रहते हैं। जब अवक्षेपण समाप्त हो जाता तब विलयन को निथरने के लिए छोड़ देते हैं। जब अवक्षेप बैठ जाता तब ऊपर के स्वच्छ द्रव को निकाल लेते हैं।

इसी रीति से प्राप्त फीनोल शुद्ध नहीं होता। उसमें अन्य पदार्थ भी मिले रहते हैं। इनमें कुछ अवाष्पशील अंश भी होते हैं। पुनरासवन से अवाष्पशील अंश को निकाल सकते हैं। ऐसे पुनरासुत फीनोल से शुद्ध क्रियोसोट अथवा शुद्ध ग्वैयेकोल प्राप्त करने की विधि कुछ लम्बी होती है।

इसे एक बार फिर दाहक सोडा के विलयन में घुलाकर विलयन में भाप को प्रवाहित करते और फिर उसमें कोई खनिज अम्ल डालकर विलयन को विच्छेदित करते हैं। क्रियोसोट अवक्षिप्त होता है। किसी आक्सीकारक से उपचारित कर एक बार फिर उसका प्रभाजक आसवन करते हैं। आसवन में वैसा ही उपकरण प्रयुक्त होता है जैसा अपरिष्कृत क्रियोसोट के निर्माण में प्रयुक्त होता है। आसवन-पात्र और स्तम्भ ताँबे के होते हैं। संघनित्र पहले ताँबे के होते हैं पर पीछे चाँदी के इस्तेमाल होते हैं।

अलकतरे के आसवन से दो ही उत्पाद प्राप्त होते हैं। एक काष्ठासुत अम्ल जिसमें ऐसिटिक अम्ल की मात्रा अपेक्षया अधिक रहती है और दूसरा अति भंगुर पिच। भाप के द्वारा आसवन से ऐसिटिक अम्ल प्राप्त होता है।

कोमल काष्ठ से जो अलकतरा प्राप्त होता है वह उत्कृष्ट कोटि का होता है। उसमें वे सब ही पदार्थ रहते हैं जो कठोर काठ के अलकतरे में रहते हैं। उनके अतिरिक्त कोमल काठ के अलकतरे में तारपीन के तेल और रोज़िन रहते हैं। काष्ठ के भार का प्रायः २० प्रतिशत तक अलकतरा प्राप्त होता है। तारपीन का तेल वैसे ही प्राप्त होता है जैसे पेड़ों से प्राप्त होता है। ऐसे रोज़िन को 'कोलोफीन' कहते हैं। यह ऐबिएटिक अम्ल का एनहाइड्राइड होता है।

रोज़िन के तपाने से उसका भंजन होकर आसवन होता है। इससे लघुतेल, रोज़िन स्पिरिट, गुरुतेल (रोज़िन तेल) और अवशिष्ट अंश 'रोज़िन कोक' प्राप्त होते हैं।

आठवाँ अध्याय

काष्ठासुत अम्ल

काष्ठ के भंजक आसवन में काष्ठासुत अम्ल बड़े महत्त्व का उत्पाद है। काष्ठासुत अम्ल के संघटन का उल्लेख पहले हो चुका है। व्यापार की दृष्टि से काष्ठासुत अम्ल के ऐसिटिक अम्ल, काष्ठ-स्पिरिट, काष्ठ-नैफ्था, मेथिल अलकोहल और ऐसीटोन महत्त्व के हैं।

ऐसिटिक अम्ल के उपयोग अनेक हैं। छींट की छपाई और सूत की रंगाई में ऐसिटिक अम्ल बहुत दिनों से प्रयुक्त होता आ रहा है। रसायनतः शुद्ध पर बहुत हलका ऐसिटिक अम्ल खाने में सिरके के रूप में इस्तेमाल होता है। अनेक कृत्रिम रंगों, विशेषतः कृत्रिम नील, के निर्माण में ऐसिटिक अम्ल लगता है। ऐसिटिक अम्ल एक अच्छा विलायक भी है। अनेक कार्बनिक पदार्थ इसमें घुल जाते हैं और विलयन के उद्वाष्पन अथवा ठंढे होने से सुन्दर मणिभ उनसे निकल आते हैं। कृत्रिम रेशम या रेयन में ऐसिटिक एन्टीड्राइड प्रयुक्त होता है।

ऐसिटिक अम्ल के अनेक लवण, ऐसिटेट भी बड़े महत्त्व के हैं। सोडियम ऐसिटेट कृत्रिम रीति से ठंढ उत्पन्न करने में प्रयुक्त होता है। लेड ऐसिटेट सफेदा के निर्माण में इस्तेमाल होता है। कुछ ऐसिटेट रंगों के बाँधने में रंगस्थापक (Mordant) के रूप में अच्छी मात्रा में प्रयुक्त होते हैं। छपाई और रंगाई में कुछ ऐसिटेट लगते हैं। ऐसे ऐसिटेट में अलुमिनियम, क्रोमियम, ताँबे और लोहे के ऐसिटेट हैं। वर्डिग्रिस नामक वर्णक ताँबे का क्षारीय ऐसिटेट है। श्वाइनफर्ट ग्रीन नामक वर्णक ताँबे का ऐसिटेट और सोडियम का आर्सिनाइट है।

ऐसिटिक अम्ल रसायनशाला का महत्त्व का प्रतिकर्मक (reactant) है। रासायनिक विश्लेषण में पद-पद पर इसकी आवश्यकता पड़ती है।

एक समय ऐसिटिक अम्ल का उद्गम केवल काष्ठासुत अम्ल ही था। इससे काष्ठासुत अम्ल का महत्त्व बहुत बढ़ा-चढ़ा था पर आज अन्य उद्गमों से भी ऐसिटिक अम्ल प्राप्त होता है।

मेथिल अलकोहल के भी उपयोग अनेक हैं। कई कृत्रिम रंगों के निर्माण में यह

प्रयुक्त होता है। इससे फार्मल्डीहाइड बनता है। फार्मल्डीहाइड एक बहुमूल्य कृमि-नाशक है। औषधियों में भी इसका व्यवहार होता है। इसका विस्तृत उपयोग आजकल प्लास्टिकों के निर्माण में होता है। इसके योग से आज अनेक उपयोगी प्लास्टिक बनते हैं। सुगन्धित द्रव्यों के निर्माण में भी मेथिल अलकोहल लगता है। मद्य-स्पिरिट को अपेय बनाने में मेथिल अल्कोहल इस्तेमाल होता है। इससे मद्य-स्पिरिट की गंध ही बुरी नहीं हो जाती, वरन् वह विषाक्त भी हो जाता है। मेथि-लेटेड स्पिरिट चपड़े, गोंद और रेज़िन को घुलाकर वार्निश बनाने में, स्टोव जलाने में और स्पिरिट लम्प में व्यवहार होता है। आजकल जल-गैस से मेथिल अलकोहल प्राप्त होता है।

ऐसीटोन भी बड़ा उपयोगी पदार्थ है, विलायक के रूप में इसका व्यवहार व्यापक रूप में होता है। इसी के सहयोग से सेल्युलायड बनता है। धूमहीन चूर्ण और कोर्डा-इट नामक विस्फोटकों के निर्माण में ऐसीटोन प्रयुक्त होता है। आयोनोन सदृश सुगन्धित द्रव्य, आयोडोफार्म, ब्रोमोफार्म, क्लोरोफार्म और सल्फोनल सदृश औष-धियों में ऐसिटोन लगता है। अनेक कार्बनिक यौगिकों के निर्माण में भी ऐसिटोन का उपयोग होता है। किण्वन से आज पर्याप्त मात्रा में ऐसिटोन प्राप्त होता है।

काष्ठ-स्पिरिट वस्तुतः अशुद्ध मेथिल अलकोहल है जिसमें कु न कुछ ऐसीटोन मिला हुआ रहता है। भिन्न-भिन्न नमूनों में ऐसीटोन की मात्रा भिन्न-भिन्न रह सकती है। ऐसीटोन के अतिरिक्त इसमें अल्प मात्रा में अन्य अपद्रव्य भी जैसे एलिल अलकोहल, एल्डीहाइट, मेथिल ऐसिटेट, अन्य ऐसिटिक एस्टर, कुछ उच्च कीटोन और एमिन मिले रहते हैं। मेथिल अल्कोहल के स्थान में काष्ठ-स्पिरिट का व्यवहार अनेक कामों के लिए किया जा सकता है। मेथिलित स्पिरिट, रंगों के निर्माण, वार्निश बनाने, अन्य पदार्थों के घुलाने में विलायक के रूप में, इसका व्यवहार व्यापक रूप से इस कारण होता है कि यह सस्ता पड़ता है।

काष्ठ-नैफ्था काष्ठासुत अम्ल का वह भाग है जिसमें मेथिल अल्कोहल और ऐसी-टोन अलग-अलग नहीं किया हुआ है। काष्ठ-नैफ्था में वे सब ही अपद्रव्य रहते हैं जो काष्ठ-स्पिरिट में रहते हैं। काष्ठ-नैफ्था वस्तुतः काष्ठ-स्पिरिट से अधिक अशुद्ध होता और अपद्रव्यों की मात्रा अधिक रहती है, काष्ठ-स्पिरिट से सस्ता होने के कारण अनेक उद्योग-धन्धों में इसका उपयोग होता है।

ऐसिटिक अम्ल

काष्ठासुत अम्ल से ऐसिटिक अम्ल प्राप्त करने की पुरानी रीति यह है—

काष्ठासुत अम्ल का पहले अलकतरा निकाल लेते हैं। इसका निकाल डालना बहुत आवश्यक है, नहीं तो पीछे कठिनाई होती है। तब काष्ठासुत अम्ल को चूने के दूध के अथवा दाहक सोडा के उपचार से उदासीन बना लेते हैं। अब उसका आसवन करते हैं। जो अंश आसुत होकर निकल जाता उसे काष्ठ-नैफ्था कहते हैं। पात्र में जो अंश रह जाता उससे फिर अलकतरा निकल आता है। अलकतरे को छानकर कलछुल से निकाल लेते हैं। लेईसा पदार्थ पात्र में रह जाता है। उसे आग पर अथवा भट्ठे में गरम कर सुखा लेते हैं। इससे कैलसियम ऐसिटेट अथवा सोडियम ऐसिटेट का धूसर-काला अथवा कुछ कपिल वर्ण का उत्पाद प्राप्त होता है। कैलसियम ऐसिटेट की मात्रा ६७ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। इसे 'चूने का धूसर ऐसिटेट' कहते हैं।

काष्ठासुत अम्ल से अलकतरे को पूर्णतया निकाल लेने के लिए उदासीन करने के पूर्व उसका एक बार आसवन कर लेना आवश्यक होता है। ऐसे आसुत काष्ठासुत अम्ल से प्राप्त ऐसिटेट में कैलसियम ऐसिटेट की मात्रा ७५ से ८४ प्रति शत तक रह सकती है। यह ऐसिटेट ऐसिटिक अम्ल के निर्माण के लिए अच्छा होता है। बिना आसवन हुए काष्ठासुत अम्ल से प्राप्त ऐसिटेट अच्छा नहीं होता।

काष्ठासुत अम्ल को तांबे के भमके में ऊँच दबाववाले भाप से गरम करते हैं। प्रायः ७३ प्रतिशत अम्ल आसुत हो निकल जाता है। कोई ७ प्रतिशत के लगभग अलकतरे में मिला हुआ भमके में रह जाता है। आसुत तेल के रूप में दो स्तरों में प्राप्त होता है। दोनों स्तरों को अलग अलग इकट्ठा करते हैं।

आसवन के पूर्व काष्ठासुत अम्ल को चूने के दूध से उपचारित कर अल्प क्षारीय बना लेते हैं। यदि क्षारीय न बनाया जाय तो उसमें मुक्त ऐसिटिक अम्ल और मेथिल ऐसिटेट रह सकते हैं। एक विधि में काष्ठासुत अम्ल को काठ के बन्द पीपों में रखते है। पीपों में प्रक्षुब्ध करने का प्रबन्ध रहता है। पीपों में ही चूने का दूध डालकर उदासीन करते हैं। चूने पर अपद्रव्यों की क्रिया से अवक्षेप प्राप्त होता है। अवक्षेप को बैठ जाने देते अथवा फिल्टर प्रेस से छान लेते हैं। ऐसिटिक अम्ल कैलसियम ऐसिटेट में परिणत हो जाता है। इससे जो मैल प्राप्त होता है उसे धो लेते हैं। छानने में कभी-कभी बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता है। विलयन में लगभग १० प्रति शत कैलसियम ऐसिटेट रहता है। आसवन द्वारा नैफ्था को निकाल लेते हैं। आसुत में ४० से ९५ प्रति शत काष्ठ-स्पिरिट रहता है।

एक दूसरी विधि में काष्ठासुत अम्ल का आसवन कर आसुत को सीधे चूने के दूध में ले जाते हैं। आसवन के तीन पात्र होते हैं। पात्रों के साथ संघनित्र जुटा रहता

हैं। पहला पात्र ताँबे का होता है। उसमें ताँबे की ही भाप-कुंडली लगी रहती है। काष्ठासुत अम्ल को पीपे से ले जाकर इसी पात्र में रखते हैं। भाप-कुंडली से काष्ठासुत अम्ल को गरम कर क्वथनांक तक पहुँचा देते हैं। अन्य दो पात्र लोहे के होते हैं। इन्हीं पात्रों में २० प्रतिशत चूने का दूध रखा जाता है। दूध से पात्र का एक तिहाई अंश भरा रहता है।

पहले पात्र से एक सछिद्र निकास नली दूसरे पात्र के पेंदे में जाती है। ऐसी ही एक दूसरी नली दूसरे पात्र से तीसरे पात्र में जाती है। यह तीसरा पात्र अधिक ऊँचाई पर रखा रहता है। तीसरा पात्र निकासनली द्वारा संघनित्र से जुटा रहता है। प्रत्येक पात्र में सुरक्षा वाल्व (Safety valve) लगा रहता है। शून्य होने से ताँबे के पात्र को चिपकने से रोकने अथवा एक पात्र के द्रव को दूसरे पात्र में खींचे जाने से रोकने के लिए सुरक्षा वाल्व आवश्यक होता है।

पहले पात्र से वाष्प निकलता है। इस वाष्प में जल, ऐसिटिक अम्ल आदि अम्ल और काष्ठ-नैफ्था के सब अवयव रहते हैं। यह वाष्प दूसरे पात्र के चूने के दूध में जाकर संघनित होता है। उससे पात्र का ताप धीरे-धीरे उठकर क्वथनांक तक पहुँच जाता है।

दूसरे पात्र से जो वाष्प निकलता है उसमें प्रधानतया जल और काष्ठ-नैफ्था रहते हैं। अल्प मात्रा में ऐसिटिक अम्ल भी रहता है। तीसरे पात्र से जो वाष्प निकलता है उसमें केवल जल और काष्ठ-नैफ्था रहते हैं। यह वाष्प संघनित्र में संघनित होता है। इसके संघनन से जलीय नैफ्था प्राप्त होता है जिसमें नैफ्था की मात्रा ३० से ४० प्रति शत रहती है। पात्रों के चूने के दूध को समय-समय पर परीक्षण से देखते हैं कि उसमें चूना रह गया है अथवा उसका पूर्णतया निराकरण हो गया है।

प्रथम आसुत में नैफ्था की मात्रा ३० से ४० प्रति शत रहती है। धीरे-धीरे मात्रा कम होती जाती है और कुछ समय में नैफ्था की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि नैफ्था का उसमें पहचानना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में भाप को किसी नर-नाली (Manhole) से निकाल लेते हैं अथवा किसी नल द्वारा ले जाकर उसकी ऊष्मा को गरम करने के काम में लाते हैं।

चूने में वाष्प के ले जाने से वाष्प के ऐसिटिक और अन्य अम्ल चूने के साथ मिलकर कैलसियम लवण बनते हैं। वहाँ मेथिल ऐसिटेट का जलांशन भी होता है जिससे मेथिल अलकोहल और कैलसियम ऐसिटेट बनते हैं। यहां और भी गौण क्रियाएँ होती हैं। चूने के एल्डीहाइड की प्रतिक्रिया से रेज़िन-से उत्पाद बनते हैं। इनमें कुछ तो अवक्षिप्त हो जाते और कुछ घुले हुए रहकर अलकतरा बनते हैं।

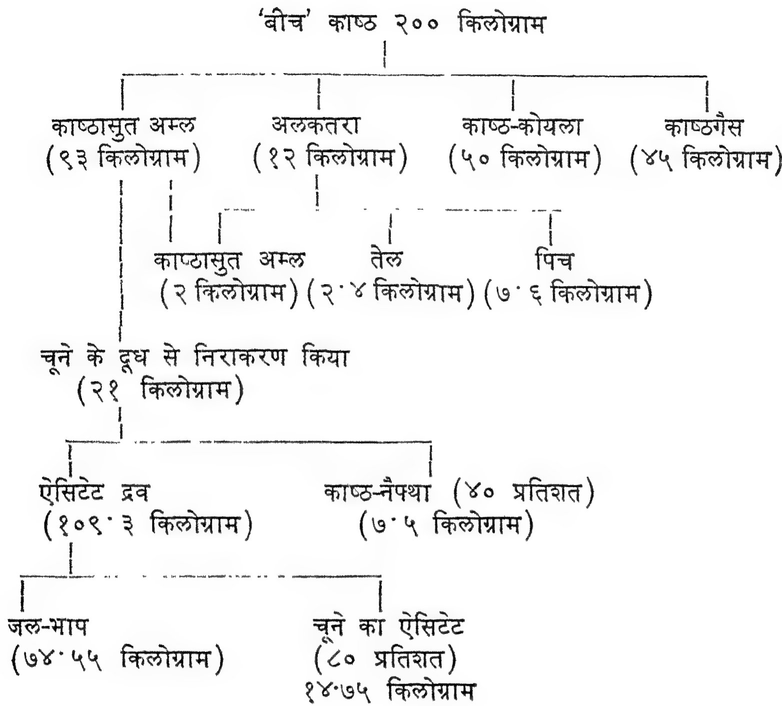
आसवन तब तक जारी रखते हैं जब तक भाप निकलती रहती है। जब भाप का निकलना बन्द हो जाता है तब आसवन को बन्द कर देते हैं। पात्र में जो अंश बच जाता है उसमें अलकतरे के साथ मिला हुआ ऐसिटिक अम्ल भी रहता है। इस विधि में प्रायः १० प्रतिशत नैफ्था प्राप्त होता है। चूने में २०–२५ प्रतिशत कैलसियम ऐसिटेट रहता है।

मेयर (Meyer) ने एक दूसरी विधि का उपयोग किया है। यहाँ काष्ठों से कोयला बनाने के समय ही गैसों का जो मिश्रण प्राप्त होता है उसमे ही अलकतरे को संघनित कर द्रव रूप में निकाल लेते हैं। गैसों के संघनन के पूर्व ही अलकतरा निकल जाता है।

काष्ठ के भंजक आसवन से जो गैस-मिश्रण आसवन-पात्र से निकलता है उसका ताप २५०–३५०° से० रहता है। ऐसे गैस-मिश्रण में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं:

	भार में प्रतिशत
जल-भाप, क्वथनांक १००° से०	५२·०
ऐसिटिक अम्ल वाष्प, क्वथनांक ११८° से०	६·७
काष्ठ-नैफ्था वाष्प, क्वथनांक ६०° से०	२·०
अलकतरा वाष्प	६·७
गैस	३२·६

भभके से निकलने के समय जल वाष्प, ऐसिटिक अम्ल वाष्प, काष्ठ-नैफ्था वाष्प और संघनीय गैसें अतितप्त अवस्था में रहने के कारण द्रवीभूत होने के पूर्व उनकी ऊष्मा का कुछ अंश निकाला जा सकता है पर अलकतरे से ऐसा नहीं किया जा सकता। ताप के कुछ गिर जाने से १००° से० तक कुछ वाष्प और गैसें तो संघनित नहीं होती अथवा बहुत अल्प संघनित होती हैं पर अलकतरे का अधिक अंश संघनित हो पृथक् हो जाता है। पहले पात्र में जो संघनन होता है उसमें प्रधानतया अलकतरा रहता है। अन्तिम पात्र में केवल काष्ठासुत अम्ल संघनित होता है। इसमें अलकतरे की मात्रा बड़ी अल्प रहती है। संघनन के लिए अनेक पात्रों के रहने से विभिन्न उत्पाद विभिन्न पात्रों में संघनित होते हैं। संघनन-पात्र यदि उचित विस्तार का रहे तब भिन्न-भिन्न उत्पादों को भिन्न-भिन्न पात्रों में सफलता से इकट्ठा किया जा सकता है। वायु-शुष्क "बीच" काष्ठ से जो उत्पाद प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार के होते हैं—



सोडियम ऐसिटेट

काष्ठासुत अम्ल के दाहक सोडा से उदासीन बनाकर आसवन से काष्ठ-नैफ्था को निकाल लेते हैं। तब सोडियम ऐसिटेट के विलयन को टंकी में रखकर कुछ समय के लिए छोड़ देते हैं। फिर उसका उद्वाष्पन करते हैं। उद्वाष्पन में साधारणतया उच्छिष्ट भाप अथवा तप्त भ्राष्ट्र-गैसों का ही उपयोग करते हैं। जब विलयन पर्याप्त गाढ़ा हो जाता है तब कड़ाह में गरम कर सुखा लेते हैं। सूखे पिंड को बराबर प्रक्षुब्ध करते हुए ऐसा गरम करते हैं कि उसका सारा जल निकल जाय और वह अजल हो जाय। ऐसे अजल लवण का द्रवणांक प्रायः ३२०° से० होता है। आवश्यकता से अधिक गरम नहीं करते क्योंकि इस ताप के प्रायः कुछ ही ऊपर ताप पर सोडियम ऐसिटेट विच्छेदित होकर ऐसिटोन और सोडियम कार्बोनेट बनता है।

सोडियम ऐसिटेट के पिघलाने से अधिक शुद्ध ऐसिटेट प्राप्त होता है, क्योंकि इस ताप पर सोडियम प्रोपियोनेट और ब्युटिरेट विच्छेदित हो वाष्पशील कीटोन

और सोडियम कार्बोनेट बनते हैं। कुछ अन्य अपद्रव्य भी उस ताप पर वाष्प बनकर निकल जाते हैं। अलकतरा झुलसकर जल में अविलेय उत्पाद बनता है।

जब सोडियम ऐसिटेट पूर्णतया पिघल जाय और झाग का बनना बन्द हो जाय तब द्रव को कड़ाह से निकाल कर ठंढा होने देते हैं। फिर उसे उबलते पानी में घुला कर और यदि आवश्यक हो तो छानकर गाढ़ा विलयन तैयार कर मणिभ बनने के लिए ठंढा होने देते हैं। यदि सोडियम ऐसिटेट के बड़े-बड़े मणिभ प्राप्त करना चाहें तो विलयन को कभी-कभी प्रक्षुब्ध करते हैं। यदि छोटे-छोटे मणिभ प्राप्त करना चाहें तो यांत्रिक विलोडक से बराबर हिलाते रहते हैं। जब मणिभ बनना समाप्त हो जाय तब केन्द्रापसारण से मातृद्रव (मदर लिकर) को निकाल लेते हैं।

यदि मणिभीकरण सावधानी से किया जाय तो वर्णरहित मणिभ प्राप्त होते हैं। यदि मणिभ वर्णरहित न हो तो एक बार फिर उसे पानी में घुलाकर जान्तव कोयले पर विलयन को छानकर तब मणिभ प्राप्त करते हैं।

कैलसियम ऐसिटेट से भी सोडियम ऐसिटेट प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए कैलसियम ऐसिटेट को सोडियम कार्बोनेट के विलयन से काष्ठनाद (vat) में साधित करना पड़ता है। अवक्षिप्त कैलसियम कार्बोनेट को फिल्टर प्रेस में छानकर निकाल लेते और सोडियम ऐसिटेट के विलयन से पूर्व की भांति मणिभ प्राप्त करते हैं।

काष्ठासुत अम्ल के ऐसिटिक अम्ल को 'लौहद्रव' (Iron liquor) में भी प्राप्त कर सकते हैं। नैफ्था निकाल लेने पर जो काष्ठासुत बच जाता है उसे लोहे के रेतन या खरादन पर प्रवाहित करते हैं तो इससे हाइड्रोजन निकलता है। जब हाइड्रोजन का निकलना बन्द हो जाय तब विलयन को गाढ़ा करते हैं। इससे 'लौहद्रव' प्राप्त होता है जो सीधे रंग-स्थापक के लिए इस्तेमाल हो सकता है। ऐसे लौहद्रव में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

	प्रतिशत
संयुक्त ऐसिटिक अम्ल	१०·९३
मुक्त ऐसिटिक अम्ल	०·०३
फेरस आक्साइड	६·३९
फेरिक आक्साइड	०·१६
आलम्बित पदार्थ	०·०१

यह द्रव रंग-स्थापन के लिए अच्छा समझा जाता है।

चूने के भूरे ऐसिटेट से ऐसिटिक अम्ल

चूने के भूरे ऐसिटेट में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं—

कैलसियम ऐसिटेट (कुछ कैलसियम प्रोपियेनेट और व्युटिरेट आदि के साथ)	८२ प्रति शत
जल	१० ,,
कार्बनिक पदार्थ आदि	८ ,,

दो रीतियों से कैलसियम ऐसिटेट का विच्छेदन हो सकता है। एक हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा और दूसरा सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा।

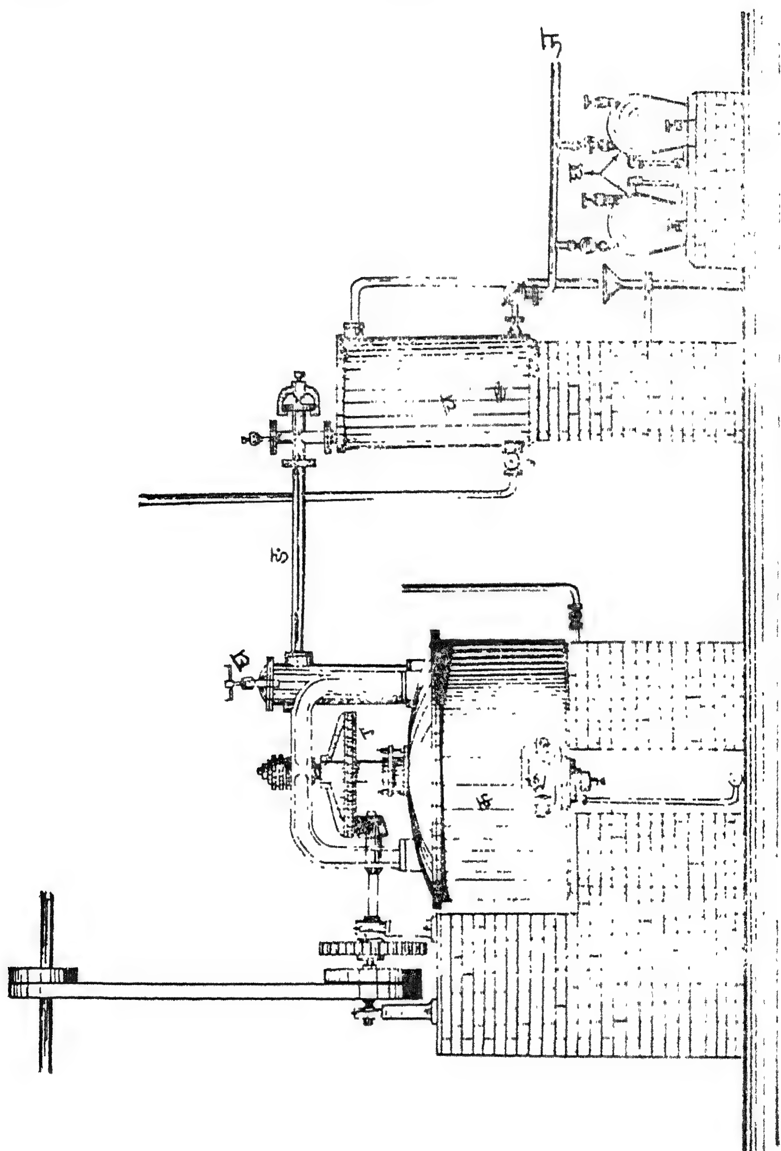
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल महंगा पड़ता ह। इससे तैयार ऐसिटिक अम्ल तनु होता है। इस कारण इस विधि का प्रयोग आजकल साधारणतया नहीं होता। एक समय सन् १८७० ई० तक यह विधि ही अम्ल की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होती थी।

आज केवल सलफ्यूरिक अम्ल रीति का ही प्रयोग होता है। यद्यपि इस रीति से प्राप्त अम्ल सान्द्र अवश्य होता है पर इसमें अशुद्धियां अधिक रहती हैं। यहाँ प्रतिक्रिया ऊष्मा-क्षेपक होती है। यहां कुछ पिष्टी पिंड बनता है। कैलसियम ऐसिटेट पर सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल की प्रतिक्रिया से कैलसियम सल्फेट बनता है और ऐसिटिक अम्ल मुक्त होता है। कैलसियम ऐसिटेट और सलफ्यूरिक अम्ल को बराबर प्रक्षुब्ध करते रहने की आवश्यकता पड़ती है, नहीं तो दोनों के परस्पर न मिलने के कारण प्रतिक्रिया ठीक से न होकर पर्याप्त ऐसिटिक अम्ल नहीं बनता। आसवन से ऐसिटिक अम्ल को पृथक् करते हैं। ढालवे लोहे के पात्र में यह क्रिया सम्पादित होती है। ढक्कन भी ढालवे लोहे का होता है, ढक्कन में ऐसिटेट और अम्ल के डालने के मार्ग रहते हैं। विलोडक, निकासनली और संघनित्र भी जुड़े रहते हैं। संघनित्र में ताँबे अथवा मिट्टी के संग्राही लगे रहते हैं। ऐसे एक उपकरण का चित्र पृ० ७६ पर दिया हुआ है।

चूने के ऐसिटेट (१०० किलोग्राम) को सलफ्यूरिक अम्ल (६० किलोग्राम; ६६° बौमे) से उपचारित करते हैं। उपचार में इसे १२ घण्टे का समय लगता है। अपरिष्कृत ऐसिटिक अम्ल का लगभग ७४-७५ किलोग्राम प्राप्त होता है। इसमें ७५ से ८० प्रतिशत अम्ल रहता है। अल्प मात्रा में सल्फर डायक्साइड और लेश सलफ्यूरिक अम्ल रहते हैं। यदि संघनित्र ताँबे धातु का प्रयुक्त हुआ है तो लेश ताँबा भी रहना है।

अम्ल कुछ रंगीन होता है। पुनरासवन और मिट्टी या पत्थर के संघनित्र और संग्राही से वर्णरहित तथा अधिक शुद्ध प्राप्त हो सकता है।

ऐसिटिक अम्ल प्राप्ति की आधुनिक रीति विलायकों के द्वारा प्राप्त करना है। अनेक रीतियाँ निकली हैं जिनमें सुइडा रीति, औथमर रीति और बुस्टर रीति उल्लेखनीय हैं।

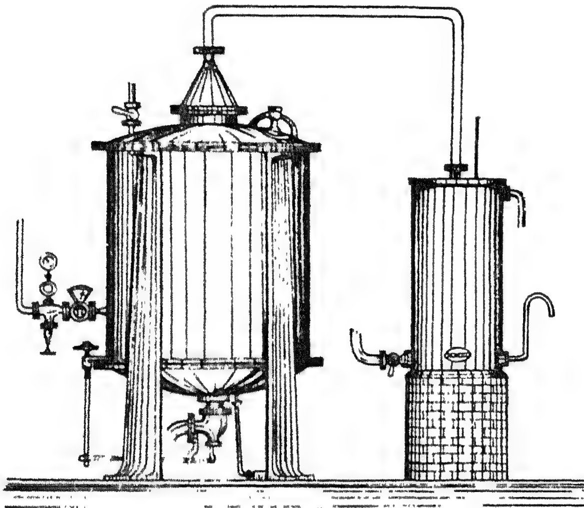


चित्र १७—कैलसियम ऐसिटेट से ऐसिटिक अम्ल

'क' पात्र में कैलसियम ऐसिटेट रखा जाता है। 'ख' मार्ग से अवशिष्ट अंश निकाल लिया जाता है। 'ग' से पदार्थों का मथन होता है। 'घ' एक पाशी है जिससे धूलकण रोक रखे जाते हैं। 'ङ' निकास नल है जिससे ऐसिटिक अम्ल का वाष्प निकलकर 'च' संघनित्र में संघनित होकर 'छ' संग्राहक-पात्रों में इकट्ठा होता है। 'ज' वह नली है जिससे वायु-पम्प

सुइडारीति—सुइडा रीति में उच्च क्वथनांक वाला काष्ठ-तैल विलायक के रूप में प्रयुक्त होता है। यह विलायक बार-बार इस्तेमाल हो सकता है। अतः यह रीति सस्ती पड़ती है। काष्ठासुत अम्ल का ऐसिटिक अम्ल-वाष्प मार्जक स्तम्भ के पेंदे से प्रविष्ट करता और ऊपर से विलायक-तेल गिरकर अम्ल के वाष्प को घुलाकर कुछ पानी के साथ पेंदे में इकट्ठा होता है और वहाँ से निकाल लिया जाता है। मेथिल अल्कोहल, ऐसिटोन, एल्डीहाइड और जल के वाष्प ऊपर से निकल कर संघनित्र में जाकर सघनित होते हैं।

ऐसिटिक अम्लवाले काष्ठ-तेल को फिर बिजलीयन* मीनार में ले जाते हैं। यहां ऐसिटिक अम्ल और जल काष्ठ-तैल से अलग हो जाता है। इसे फिर संशोधन स्तम्भ में ले जाते हैं जहां कुछ सीमा तक जल और ऐसिटिक अम्ल अलग-अलग हो जाते हैं। इससे ९२ प्रतिशत अम्ल प्राप्त हो सकता है।



चित्र १८—व्यापार के ऐसिटिक अम्ल से शुद्ध ऐसिटिक अम्ल

यह आसवन से होता है। आसवन के लिए जैसा आसवन-पात्र और संघनित्र उपयुक्त होता है उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है। इससे हिम्य-ऐसिटिक अम्ल (९६ से १०० प्रतिशत शुद्धता का) प्राप्त हो सकता है।

*निर्जल कारक Dehydrating

इस रीति में मार्जक स्तम्भ, विजलीयन स्तम्भ और संशोधन स्तम्भ की आवश्यकता पड़ती है। आसवन बन्द भाप-कुंडली से होता है। पात्र और कुंडली ताँबे के होते हैं।

औथर रीति—इस रीति में एथिलीन क्लोराइड अथवा ब्युटिल अल्कोहल विलायक के रूप में प्रयुक्त होता है। यह स्थिर क्वथनांक मिश्रण बनता है और आसुत होकर संघनित होने पर विभिन्न स्तरों में बँट जाता है। विभिन्न स्तरों को अलग-अलग कर आसवन से शुद्ध ऐसिटिक अम्ल प्राप्त होता है।

ब्रुस्टर रीति—इस रीति में आइसोप्रोपिल ईथर विलायक के रूप में प्रयुक्त होता है। ऐसिटिक अम्ल इसमें घुल जाता है। पर जल नहीं घुलता। यहाँ विलायक नीचे से प्रविष्ट करता और काष्ठासुत अम्ल ऊपर से गिरता है। ऐसिटिक अम्ल को लेकर ईथर निकलकर संघनित्र में संघनित होता है। थोड़ा ईथर स्तम्भ के पेंदे के जल में भी घुला रहता है। आसवन से इस ईथर की पुनःप्राप्ति हो जाती है। आसवन से ऐसिटिक अम्ल निकाल लिया जाता है। हलके ऐसिटिक अम्ल के लिए यह रीति अधिक प्रयुक्त होती है।

मेथिल अलकोहल—एक समय काष्ठासुत अम्ल से ही मेथिल अलकोहल की प्राप्ति होती थी। आज अन्य विधियों से भी मेथिल अलकोहल प्राप्त होता है। पर तो भी पर्याप्त मात्रा में काष्ठासुत अम्ल से मेथिल अलकोहल प्राप्त होता है।

काष्ठासुत अम्ल को चूने के साथ निराकरण कर आसवन से आसुत में मेथिल अलकोहल प्राप्त होता है। यहाँ संशोधन-स्तम्भ उत्कृष्ट कोटि का होना चाहिये। ऐसे स्तम्भ से ८२ प्रतिशत तक मेथिल अलकोहल प्राप्त होता है। शेष १८ प्रतिशत में जल, ऐसिटोन, मेथिल-एथिल कीटोन, क्रियोसोट और ग्वैयेकोल एलिल अल्कोहल आदि रहते हैं। पुनरासवन से ९२ से ९५ प्रतिशत तक मेथिल अल्कोहल प्राप्त हो सकता है। ऐसा मेथिल अलकोहल नाइट्रो-सेल्यूलोस के लिए अच्छा विलायक होता है।

ऐसिटोन—काष्ठासुत अम्ल से शुद्ध ऐसिटोन नहीं प्राप्त किया जाता। शुद्ध ऐसिटोन के लिए कैलसियम ऐसिटेट का उपयोग होता है। कैलसियम ऐसिटेट गरम करने से ऐसिटोन और कैलसियम कार्बोनेट बनते हैं।



$$(CH_3\ COO)_2\ Ca = CH_3\ CO\ CH_3 + Ca\ CO_3$$

कैलसियम ऐसिटेट ऐसिटोन

नवाँ अध्याय

भारतीय काठ-कोयला और पोटाश लवण*

देहरादून की वन्य शोधशाला (फौरेस्ट रिसर्च इंस्टिटयूट) में भारत के काठ के कोयले पर अनेक वर्षों से अनुसन्धान होते आ रहे हैं। इस सम्बन्ध में अनेक पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। गत विश्वयुद्ध में जब पेट्रोल की कमी हो गयी तब प्रयत्न होने लगा कि ट्रकों और बसों के लिए पेट्रोल के स्थान में लकड़ी के कोयले का उपयोग हो। उस समय ब्रिटिश भारत में (१९४४ ई० में) लगभग ३७,००० ट्रकें और बसें चलती थीं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में ट्रकों और बसों की संख्या इस प्रकार थी—ये आंकड़े १९३९-४० के हैं।

बंबई	७,२९२
पंजाब	६,२९५
मद्रास	५,५२४
बंगाल	४,७८२
संयुक्त प्रान्त	३,८०४
मध्य प्रान्त और बरार	१,९१८
आसाम	१,७८७
बिहार	१,४३३
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	१,३७२
सिन्ध	९१७
दिल्ली	५८७
बलूचिस्तान	४६२
उड़ीसा	३५६
अजमेर मेरवाड़ा	१४०
कुर्ग	१२४
	३६,५९३

*यह प्रकरण देहरादून फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टिटयूट की पुस्तिकाओं के आधार पर लिखा गया है।

यदि इनमें केवल आधी बसें ही काष्ठ कोयला-गैस से चलने लगें और ये ट्रकें और बसें मास में केवल २५ दिन और औसत केवल ६० मील ही प्रतिदिन चलें, तो इन्हें चलाने के लिए प्रति मास लगभग ४ लाख मन कोयला लगेगा। ऐसी ट्रकों और बसों में प्रति वाहन प्रति मील १·२ पाउण्ड के लगभग कोयला खर्च होगा। इसके अतिरिक्त कुछ कोयला, चूरे और छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में नष्ट भी होगा। यदि नष्ट कोयले की मात्रा १५ से २० प्रतिशत हो तो इन वाहनों में प्रति मास लगभग ५ लाख मन कोयला खर्च होगा। सन् १९४४ में इन वाहनों में १३,५०० ऐसे थे जिनमें पेट्रोल के स्थान में कोयला जलता था।

इन वाहनों के अतिरिक्त इंजनों में भी डीज़ेल तेल खर्च होता है। ये इंजन अनेक कामों में विशेषतः आटा पीसने में प्रयुक्त होते हैं। भारत में ऐसे इंजन कितने हैं, इसका ठीक-ठीक पता हमें नहीं है। पर यह पता लगा था कि केवल उत्तर प्रदेश में उस समय ५,००० इंजन काम करते थे। ऐसे इंजनों का अश्वबल औसत १३ था। यदि ये इंजन भी कोयले का उपयोग करने लगें तो इनमें भी प्रति मास लगभग ४ लाख मन कोयला खर्च होगा। ये आंकड़े केवल उत्तर प्रदेश के हैं। सारे भारत के लिए कोयले की खपत कई गुना बढ़ जायगी।

इस काम के लिए जो कोयला आवश्यक है, ऐसे कोयले का विशिष्ट गुण निम्नलिखित प्रकार का रहना चाहिये। ऐसे गुणों के कोयले से ही उत्पादक गैस का इंजन अच्छे प्रकार से चल सकता है।

(क) कोयले में बिना जले काठ का कोई अंश नहीं रहना चाहिये। ऐसे पूर्णरूप से जले कोयले का रंग बिलकुल काला होता है। उसमें कपिल रंग का कोई अंश या दाग नहीं रहता।

(ख) कोयला दृढ़ रहना चाहिये। छूने से दृढ़ मालूम हो और टूटे नहीं। यदि टूटे भी तो चूर-चूर न हो जाय वरन् स्वच्छ भंग के साथ टूटे।

(ग) कोयले में लकड़ी की रचना (Texture) ज्यों की त्यों रहनी चाहिये।

(घ) कोयले में किसी अपद्रव्य, लकड़ी, छाल, पत्थर, मिट्टी राख के टुकड़ों, को न रहना चाहिये। यदि उसमें पत्थर-मिट्टी रहे तो प्रझाम (Clinker) बनने की सम्भावना हो सकती है।

(च) जलाने पर कोयले की ज्वाला कुछ नीली, धूम और गंधरहित रहनी चाहिये। चिनगारी नहीं निकलनी चाहिये।

(छ) कोयला उचित विस्तार का, १$\frac{१}{२}$" से $\frac{५}{२}$" का, रहना चाहिये। छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के टुकड़े अच्छे नहीं होते।

(ज) कोयले में जल की मात्रा ६ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिये। साधारणतया कोयले में ५ से १० प्रतिशत पानी रहता है। बरसात में पानी की मात्रा बढ़ जाती है और जाड़े में कम हो जाती है। यदि जल की मात्रा ६ प्रतिशत से अधिक हो तो कोयले को लोहे की चादर पर रखकर आग से सुखा लेना चाहिये। यदि ऐसे कोयले को तत्काल प्रयुक्त करना न हो तो उसे ऐसे पात्र में रखना चाहिये जिसे बन्द रख सकें ताकि जल उसमें अवशोषित न हो सके।

(झ) कोयले में राख की मात्रा कम रहनी चाहिये। किस कोयले में राख कितनी रहती है इसके आंकड़े आगे दिये हुए हैं।

(ट) उत्कृष्ट कोटि के काठ से कोयला बना होना चाहिये। जिस काठ में कीड़े या कवक (फंगस, कुकुरमुत्ता) लगकर काठ को खा लिये हों ऐसे काठ से अच्छा कोयला नहीं प्राप्त होता।

(ठ) कठोर काठ का कोयला बना होना चाहिये। कोमल काठ के कोयले भी उपयुक्त हो सकते हैं पर ऐसे कोयले छूने से अथवा वाहनों की खड़खड़ाहट से जल्द चूर-चूर हो जाते हैं। चूरे से गैस का मार्ग अवरुद्ध होकर कठिनता उत्पन्न हो सकती है, कोमल कोयले जल्दी जल भी जाते हैं, इससे उन्हें बार-बार (अधोवाप) (hopper) में डालने की आवश्यकता पड़ती है।

जिन काठों से कठोर कोयला प्राप्त हो सकता है वे हैं बबूल, खैर, सफेद किकर, हल्द (केलिकदम), बेल, सफेद सिरीस, बकली, धाऊ, नीम, करौंधा, चिल्ल, बेहरा, गरारी, शीशम, जामुन, गूलर, अंजन, कांजु, रोहिनी, आम, अवार, चील, चेंकुर, तरचरबी, कोसुम, साल, इमली, अर्जुन, बहेरा, असना, गुटेल, बेर, कटबेर।

काठों से कोयला कैसे बनता है, इसका वर्णन विस्तार से अन्यत्र हुआ है। भारत में कोयला गड्ढे में अथवा लोहे की भट्ठियों में बनाया जाता है। कोयले के संग्रह का विशेष प्रबन्ध आवयश्क है। कोयले के रखने के लिए बड़े-बड़े गोदामों की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि कोयला जल को सोखता है, अतः गोदाम ऐसा होना चाहिये जिसमें सील (सीड़) न उत्पन्न हो। वायु के प्रवेश का पूरा प्रबन्ध रहना चाहिये ताकि स्वतः दहन से आग लगने की सम्भावना कम रहे।

काठों में राख

देहरादून वन्य शोधशाला में काठों में राख की मात्रा का निर्धारण हुआ है। इस विषय पर दो पुस्तिकाएँ नं० २८ और नं० ९५ प्रकाशित हुई हैं। लकड़ी की राख कोयले में रह जाती है। राख का महत्त्व दो कारणों से है। राख के कारण

लकड़ी का ईंधन-मान कम हो जाता है। जितनी ही अधिक काठ में राख रहेगी उतना ही ईंधन-मान कम हो जायगा। कोयले में राख के अधिक होने से उत्पादक-गैस इंजन में बाधा पहुँच सकती है। इंजन की क्षमता कम हो जाती है। शीतक, छनने और इंजन में राख पहुँचकर इंजन के कार्य में शिथिलता ला सकती है। कोयले में राख की मात्रा लकड़ी में राख की मात्रा के अनुपात में ही रहती है। इस कारण कोयले में राख की मात्रा के ज्ञान के लिए लकड़ियों में राख की मात्रा का निर्धारण विस्तार से हुआ है। लकड़ी में राख की मात्रा की प्रतिशतता को २·७७ से गुणा करने से उस लकड़ी के कोयले में राख की प्रतिशतता का ज्ञान हो सकता है। यदि १०० ग्राम लकड़ी में राख की मात्रा ५ ग्राम हो तो उस लकड़ी के १०० ग्राम कोयले में राख की मात्रा ५ × २·७७ = १३·८५ ग्राम होगी।

वृक्षों के भिन्न-भिन्न भागों की लकड़ी में राख की मात्रा विभिन्न रहती है। साधारणतया शाखा-लकड़ियों और पतली शाखाओं से ही कोयला बनाया जाता है। ऐसी लकड़ियों की राखों में बहुत अन्तर नहीं देखा गया है। राख की मात्रा जो यहाँ दी जा रही है वह ऐसी शाखा-लकड़ियों की ही है पर कुछ हृत्काष्ठ और रसकाष्ठ लकड़ियों की राखों की मात्रा भी यहाँ दी जा रही है। साधारणतया हृत्काष्ठ में राख की मात्रा कुछ अधिक रहती है। छाल (वल्क) में राख की मात्रा सबसे अधिक रहती है।

काठ में राख की मात्रा का निर्धारण ऐसे काठ में हुआ है जिसकी छाल निकाल दी गयी है। लकड़ी से छाल निकाल लेने पर काठ से रेती से बुरादा निकाला जाता है। ऐसे बुरादे में लोहे के कुछ कण रेती से आ जाते हैं। इन कणों को चुम्बक से निकाल लेते हैं। इस प्रकार साफ किये बुरादे के १० ग्राम को लेकर १०५° से० पर ६ घंटा सुखाते हैं। इससे भार में जो ह्रास होता है उससे जल की मात्रा मालूम होती है। अब सूखे बुरादे को भूषा में रखकर जलाते और शुष्ककारक में रखकर ठंढा कर बार-बार तौलते हैं। जब भार स्थायी हो जाता है तब तौलना बन्द कर देते हैं। बुरादे के पूर्णतया जलाने में २ से ३ घंटा समय लगता है, किसी लकड़ी में कम और किसी में ज्यादा।

राख में जल में विलेय और अविलेय दोनों प्रकार के पदार्थ रहते हैं। विलेय अंशों में प्रधानतया पोटाश लवण रहते हैं। इन राखों से पोटाश लवण प्राप्त करने के दृष्टिकोण से इन पर अनुसन्धान हुए हैं। संसार में पोटाश लवणों की मात्रा सीमित है। कुछ विशिष्ट स्थानों में ही पोटाश-लवण पाये गये हैं। अतः राखों से पोटाश-लवण प्राप्त करने की चेष्टाएँ नयी नहीं हैं। कुछ राखें ऐसी हैं जिनसे पोटाश-

लवण प्राप्त किया जा सकता है। भारत में पोटाश-लवणों का एक स्रोत मिट्टी से शोरा निकालना है। भारत के अनेक भागों में मिट्टी में शोरा बनता है। ऐसी मिट्टी को इकट्ठा कर एक विशिष्ट जाति, नोनिया जाति, के व्यक्ति, उससे शोरा निकालते हैं। पोटाश-लवण औषधियों में ही नहीं प्रयुक्त होते वरन् वे बड़े महत्त्व की खाद भी हैं और कुछ पौधों के लिए बड़े आवश्यक समझे जाते हैं।

सारणी १

सम्पूर्ण पौधे की राख

क्रमसंख्या	नाम	राख %	K_2O पौधे की %	K_2O राख की %	विलेय अंश %	अविलेय अंश %	जल %	विलेय लवण K_2CO_3	KCl	K_2SO_4
१.	गुंजा (रत्ती), एक लता	५.०६	०.६३	१२.४४	१९.४८	७७.२७	३.२४	१२.५३	१.४९	१.४९
२.	अपंग (चिरचिता, अलिशा) एक घास	८.३६	२.३२	२७.७४	४१.६३	४५.९२	१२.१०	३५.८६	२.७८	२.९९
३.	बसक (अड़ूस) एक पौधा	१२.३४	१.४०	११.२९	१७.९९	८०.०४	२.०३	८.७१	४.०२	५.२६
४.	गन्धेला, एक खर	९.७२	१.६४	१८.०४	२८.३८	७०.०५	१.४८	१६.००	५.२९	७.०९
५.	कांटचोलाई, एक खर	१२.६७	२.२०	१७.४८	२७.५३	६५.०१	६.८१	१७.४८	१.९३	८.१४
			३.०६	२४.१९	३०.९५	५६.०२	६.३१	२१.८३	२.५३	४.२८
६.	नागदौना (सुरबन्द) एक क्षुप	५.६६	०.९३	१६.४०	२५.९२	६५.८८	३.२९	१५.२९	३.१०	७.५३
७.	कोरंटा (पिलवांस) एक झाड़ी	८.२२	१.२०	१४.६८	२२.२२	७४.६७	३.२४	१३.४९	२.२०	२.५३
८.	पीत पापड़ा	१३.०७	२.१८	१६.६८	२५.७५	६७.३४	६.८१	१६.८७	४.६६	४.२२
९.	बिचबुती	—	—	—	१८.९३	७९.६४	१.५४	१०.६५	३.८४	४.४४
१०.	वननिम्ब्रू	१०.१२	१.२६	१२.५१	१९.५२	७७.९४	२.०४	११.८९	३.४३	४.२०
११.	वननिम्ब्रु (किरमिर) स्थायी झाड़ी	१०.१२	१.२६	१२.५१	१९.५२	७७.९४	२.०४	११.८९	३.४३	४.२०
१२.	नील	४.४०	०.२७	६.२०	९.५४	८५.७५	४.४४	७.२८	०.१८	२.०८
१३.	लण्टाना	१०.२९	१.५३	१४.६१	२१.७७	७६.२१	२.०९	१८.९२	२.४३	०.४२
१४.	कनेर	३.६०	०.३१	८.६६	१३.७८	८४.०५	१.८२	६.२२	३.५९	३.९७
१५.	खरेंटी	६.२०	०.४८	७.७३	११.९५	८४.९५	३.२७	८.५३	०.९९	२.४३

सारणी २

पात की राख

१.	केला	१.१९	०.२३	११.०८	१७.४३	७८.९२	३.१८	१२.४३	०.३६	४.६४
२.	सिंदुरी	४.६८	०.२९	६.२५	१०.३६	८४.५२	५.८६	४.३६	०.५१	५.४९
३.	चल्टा (Dillenia)	११.३६	०.२०	१.७६	३.१६	९५.८०	१.२१	०.२९	०.१४	२.७३

सारणी ३

डाल-पात की राख

१.	गेंठी	२४.९६	०.९९	३.९७	६.६४	९२.०४	१.१५	१.०३	०.४४	५.१७
२.	आक (मदार)	१२.७२	२.६४	२०.७५	३२.७९	६२.०८	४.७९	१७.७८	५.५९	९.४२
३.	भांग	१२.०३	१.१२	९.२८	१४.०१	८४.१०	१.१९	११.५२	१.१९	१.३६
४.	कसुन्डा	३.९०	०.६५	१६.६५	१२.९४	६६.३९	६.८२	१८.०९	१.९६	५.८९
५.	चकवर	६.००	१.०७	१७.८२	२६.५५	६८.६९	४.७८	१८.०१	२.०९	६.४५
६.	बथुआ	१२.५०	३.१९	२५.३५	३९.२७	५४.५०	६.६१	२८.८७	३.३५	७.०५
७.	भंट	९.७४	०.९८	१०.०९	१६.७३	८२.८०	१.६३	७.३०	०.५१	८.९२
८.	बिन्टा	९.१६	१.४१	१५.५३	२३.५५	७१.९८	४.१२	१९.७४	०.५९	३.२२
९.	दुधी	—	—	—	१६.८५	८१.५१	२.४६	८.४५	६.४१	१.९९
१०.	सनाठा	८.४२	०.६४	७.५७	१२.२७	८३.६५	३.९४	६.११	१.०४	५.१२
११.	नीलकंठी	८.००	१.२०	१५.०४	२२.६०	६७.३०	९.५७	१९.४४	१.३४	१.८२
१२.	थोर (सिहुना)	७.४०	०.४७	६.४१	११.१६	८८.००	१.१९	१.७४	१.४९	७.९३
१३.	कठनीम (गन्धेला)	११.४६	०.८१	७.१४	१०.९४	८८.१२	१.१६	८.७६	०.११	२.०७
१४.	दुधिबेल (दुधी)	५.८०	०.७७	१३.२८	२०.७०	७५.१०	४.३१	११.९८	४.२८	४.४७

क्रमसंख्या	नाम	राख %	K_2O पौधे की %	K_2O राख की %	विलेय अंश %	अविलेय अंश %	जल %	विलेय लवण K_2CO_3	Kcl	K_2SO_4
१५.	निरगुन्डा	७.७५	१.३४	१७.२८	२६.०७	६५.०६	८.७३	२२.६०	०.५२	२.४२
१६.	बांस	१९.६८	०.८८	६.७६	६.९७	९०.५०	४.४६	१.२१	१.२४	२.१६
१७.	सिरुघास	२०.४८	०.७८	३.७४	६.१३	९०.१७	२.५२	०.९२	२.७९	३.१३
१८.	खसखस	७.८७	०.९३	११.७९	१९.४४	७३.८६	५.८२	५.३१	८.२९	७.६३

सारणी ४

लकड़ी कोयले की राख

क्रम संख्या	नाम	वानस्पतिक नाम और जाति	राख %	K_2O % पौधे की	K_2O % राख की	विलेय लवण	K_2CO_3 पोटैसियम कार्बोनेट	Kcl पोटैसियम क्लोराइड	K_2SO_4 पोटैसियम सलफेट	अविलेय अंश	जल %
१.	बबूल	Acacia arabica (Lam.) wild.	०.९१	०.०७	७.९५	१२.४०	८.३३	१.०८	३.०५	८६.१२	१.०५
२.	खैर (खदिर)	Acacia catechu (Linn.) wild.	१.२८	०.०७	५.२१	८.१३	५.४९	०.६१	२.०८	९०.३६	१.४५
३.	फुलाई	Acacia modesta wall	१.३२	०.१७	१५.०१	२३.१३	१७.८२	०.८९	४.४२	७४.६७	२.१५

४.	केलिकदम (अशोक ?)	Adinacordifolia(Roxb) Benth. and Hookf.	०.९०	०.१०	११.४०	१७.२७	१४.६८	०.२९	२.३०	८०.५४	१.५०
५.	बेल	Aegle marmelos (Linn) Carr.	१.८२	०.१९	१०.५७	१६.०९	१३.१९	०.४७	२.४३	८२.७७	१.५७
६.	बाकली	Auogeissus tatifolia wall.	२.५३	०.१८	७.१७	१०.७७	९.०१	०.४३	१.३३	८८.०१	०.९९
७.	पलास	Butea monosperma (Lam.) Kuntze.	२.६३	०.४३	१६.७५	२५.२३	२०.७५	०.६३	३.८५	७५.९८	०.०२
८.	आबनूस	Diospyros embryopteris Peis.	१.७६	०.३३	१९.०७	२८.३१	२४.२१	१.१९	१.१३	७१.२१	२.०९
९.	केंदू (तेंदु)	Diospyros melanoxylon Roxb.	१.८५	०.३३	१७.८२	२६.५३	२४.२१	१.१९	१.१३	७१.२१	२.०९
१०.	गूलर (उम्बर)	Ficus glomerata Roxb.	४.१४	०.३६	८.१३	१२.३४	१०.१३	०.६९	१.५२	८८.१६	०.०१
११.	चिलबिल	Holoftelia integrifolia plauch.	२.८४	०.२२	७.८१	१२.५६	६.६४	१.२८	४.६४	८६.६६	०.६१
१२.	पूला	Kydia calycina Roxb.	१.६७	०.४१	२४.५७	३६.५७	३३.२५	१.९६	१.३३	५९.८१	३.५६
१३.	सिंदूरी	Mallotus Philippinesis (Lam.) Muell. Arg	२.४३	०.१४	५.७६	८.८४	६.८३	०.४१	१.६०	९०.९१	०.८१
१४.	आम	Mangifera Indica (Linn)	२.३९	०.४४	१८.३७	२७.७९	२३.१७	१.३४	३.२८	६९.१२	२.३२
१५.	कंडी	Prosopis Spicigera Linn.	२.२७	०.४४	१९.३९	३१.००	१८.६३	२.२३	१०.१४	६५.९२	२.५१

क्रम संख्या	नाम	बानिस्पतिक नाम और जाति	राख %	K_2O% पौधेपर	K_2O% राखपर	विलेय लवण	K_2CO_3 पौटैसियम कार्बोनेट	Kcl पौटैसियम क्लोराइड	K_2SO_4 पोटैसियम सल्फेट	अविलेय अंश	जल
१६.	मोरस बलूत	Quercus Flori bunda Wall. (Quercus dilatata Lndl)	१.१६	०.१५	१२.९६	१९.६०	१६.४८	०.७४	२.३८	७४.१३	५.५०
१७.	साल	Shorea Robusta Gaertnf.	०.४१	०.०३	६.३५	१०.४६	७.६१	०.२१	२.४८	८६.१०	२.७६
१८.	वहेरा	Terminalia Bellirica (Gaertn.)	१.२१	०.०५	४.८४	७.३२	६.०४	०.५१	०.३७	९४.६२	०.००
१९.	लारेल	Terminalia Tomentosa	२.३४	०.३३	१४.१०	२१.३८	१६.८०	२.३५	२.२३	७५.९०	२.६७
२०.	कठबेर	Zizyphus Xylopyris	१.९८	०.२१	९.०५	१५.०६	११.६०	२.१२	१.३४	८२.८१	१.४६
२१.	अमलतास	Bassia fistula Linn.	१.६०	०.१३	८.२९	१२.४१	१०.३८	०.१८	१.५३	८५.००	३.१२
२२.	कुरची	Holarrhena anti dysenterica wall.	४.६०	०.५२	११.३७	१३.५०	१०.८२	४.२०	२.४८	८०.७४	१.७९

राख में पोटाश

पेड़-पौधों की वृद्धि में पोटैसियम लवणों का बहुत बड़ा हाथ है। पहले-पहल खाद के रूप में पोटाश लवणों का उपयोग प्रायः सन् १८६० ई० में शुरू हुआ। सन् १८६१ ई० से ही जर्मनी से पोटाश लवणों का निर्यात शुरू हुआ। ये पोटाश लवण पौधों में रहते हैं। जब तक पौधे जीवित रहते पोटाश लवण पौधों से निकलते नहीं। पौधों के मर जाने पर ही घुलकर पोटाश लवण शीघ्रता से निकल जाते हैं। बड़ी अल्पमात्रा में पोटाश लवण मिट्टी में रहते हैं। मिट्टी की उर्वरता के लिए मिट्टी में पोटाश लवण का रहना आवश्यक है। उर्वरता के लिए मिट्टी में ०.०१ प्रतिशत पोटाश लवण रहना चाहिये। साधारणतया ०.०१५ प्रतिशत पोटाश लवण मिट्टी में रहते हैं। पर बार-बार पौधों के उगाने से पोटाश लवणों की मात्रा कम हो जाती है। इस कारण उर्वरता कायम रखने के लिए पोटाश लवणों को खाद के रूप में मिट्टी में देने की जरूरत पड़ती है। प्रति एकड़ प्रायः १.२५ पाउण्ड पोटाश खाद देने से काम चल सकता है। आधुनिक अन्वेषणों से पता लगता है कि पोटैसियम का एक समस्थानिक (Isotope) अल्प रेडियम धर्मी होता है जिससे बीटा-किरणें निकलती हैं। इस रेडियम धर्मिकता के कारण ही खाद में पोटाश लवणों का उपयोग है।

पोटाश लवणों से पौधों के काष्ठ-अंश और फलों के छाल का विकास होता है। नाइट्रोजन के अत्यधिक प्रभाव को यह रोकता है। प्रकाश-संश्लेषण और स्टार्च के संक्रमण (Transfer) के लिए यह आवश्यक है। इससे तेल, प्रोटीन और अलब्युमिनायड के संश्लेषण में सहायता मिलती है। इससे क्लोरोफिल का विकास होता है और तने (Stem) का कड़ापन बढ़ता है। पोटाश लवण अधिकांश डंठल (Stalk) में ही रहता है।

रोगों के आक्रमण रोकने में पोटाश लवणों से सहायता मिलती है। इससे परिपक्वता (Maturation) रुकती और वृद्धि-काल की वृद्धि होती है। पाला और सूखा दोनों दशाओं में पोटाश लवणों से हानि कम होती है। कुछ पौधों, जैसे कपास और धान, के लिए पोटाश लवण अच्छे खाद समझे जाते हैं। पोटाश लवणों से अनाज के दाने और फल उत्कृष्ट कोटि के बनते हैं। शकरकन्द, चुकन्दर, ककड़ी, टोमाटर, सेब, आड़ू (Peaches), अंगूर आदि फलों के रंग और स्वाद उत्तम होते हैं।

पोटाश लवण औषधियों में भी प्रयुक्त होते हैं। पोटाश आयोडाइड मूत्रल (Diuretic) होता है। पोटाश ब्रोमाइड, शमकारक (Sedative), स्वापक

(Hypnotics) और पीड़ानाशक (Pain killer) होता है। पोटाश बाइ-कार्बोनेट और पोटाश साइट्रेट भी औषधियों में प्रयुक्त होते हैं।

पोटाश नाइट्रेट बारूद का एक आवश्यक अंग है। पर्याप्त मात्रा में आज बारूद के बनाने में शोरा खर्च होता है। आतशबाजी में भी पोटाश लवण प्रयुक्त होते हैं।

संसार में पोटाश की उपलब्धि सीमित है। चट्टानों में पोटैसियम सिलिकेट रहता है। ग्रेनाइट नामक चट्टान में १.७ से ३.१ प्रतिशत पोटाश रहता है। अबरख में पोटाश रहता है। चट्टानों के बिखरन (weathering) से चट्टानों से मिट्टी में पोटाश आता है। चट्टानों के सिलिकेट धीरे-धीरे मिट्टी और पोटाश कार्बोनेट में परिणत होते रहते हैं। मिट्टी से जड़ों के द्वारा पोटाश पौधों में आता है। पौधों के जलाने पर यह राख में रह जाता है। अम्लवेत और रेवतचीनी में अम्लीय पोटाश औक्ज़लेट, अंगूर में अम्लीय पोटाश टार्ट्रेट और राख में पोटाश कार्बोनेट, पोटाश क्लोराइड और पोटाश सल्फेट के रूप में पोटाश रहता है। रूस, कनाडा, ट्रैन्सिल्वेनिया आदि देशों में राख से पोटाश लवण प्राप्त होता है। जन्तुओं के रक्त में भी बड़ी अल्प मात्रा में, ०.०२२ प्रतिशत, पोटाश रहता है। जन्तुओं के दूध में भी प्रायः इसी मात्रा में पाया जाता है। भेड़ों के पसीने में पर्याप्त पोटाश रहता है। भेड़ों के ऊन में प्रायः ५ प्रतिशत तक पोटैसियम कार्बोनेट पाया जाता है। ऊन के धोने से एक समय पोटैसियम लवण प्राप्त होते थे।

समुद्र-जल में पोटाश रहता है। वहां से वह समुद्री पौधों में आता है। ऐसे पौधों की राख से पोटाश लवण तैयार किया जा सकता है। छोआ में भी पोटाश रहता है। सीठा (बागास) की राख में पोटाश लवण पर्याप्त मात्रा में रहता है और उससे तैयार किया जा सकता है।

कुछ पोटाश लवण खानों से निकलते हैं। ऐसी खानें बड़ी सीमित हैं। सैक्सनी के स्टास्फर्ट में और अलसाक के मलहाउस में (Malhouse) पोटैसियम लवणों के निक्षेप पाये गये हैं और वे निकाले जाते हैं। अल्प मात्रा में कारडोना, स्पेन, ईस्टर्न गैलिशिया, कैलिफोर्निया, पैलेस्टाइन के 'डेड सी' और यूराल के 'एल्टन' झील में पोटाश लवण पाया जाता है। स्टास्फर्ट में जो खनिज पाया जाता है उसका नाम कार्नेलाइट है। उसमें १४ प्रतिशत शुद्ध पोटैसियम रहता है। अलसाक और गैलिशियो में जो खनिज पाया जाता है उसका नाम 'सिल्वाइन' है। पोटाश लवण का एक दूसरा खनिज 'कैनाइट' (Kainite) है। भारत के कुछ स्थलों पर एक भुरभुरी मिट्टी 'नोनी मिट्टी' जाड़े के दिनों में जमी हुई पायी जाती है। इस नोनी मिट्टी से नोनीया गांव-गांव शोरा तैयार करते हैं। यह कच्चा शोरा है। इसकी सफाई

से कलमी शोरा प्राप्त होता है। फिर कारखाने में कलमी शोरे की सफाई होकर शुद्ध शोरा प्राप्त होता है जिससे बारूद तैयार किया जा सकता है।

शोरे से नाइट्रिक अम्ल भी तैयार होता है। नाइट्रिक अम्ल के साथ-साथ पोटैसियम सल्फेट बनता है। पोटैसियम सल्फेट से फिटकरी बनती है। पानी की सफाई में फिटकरी का उपयोग विस्तृत रूप से होता है। पोटाश लवणों का उपयोग फोटोग्राफी में भी होता है।

राख से पोटाश

ऊपर कहा गया है कि कुछ देशों में राख से पोटाश प्राप्त किया जाता है। भारत में भी राख से पोटाश प्राप्त करने के उद्देश्य से देहरादून के फारेस्ट रिसर्च इंस्टीटयूट में अनुसन्धान हुए हैं। इस सम्बन्ध में विचारणीय बातें निम्नलिखित हैं—

(१) राख में पोटाश की मात्रा कितनी है?

(२) पेड़-पौधों और कोयले में राख की मात्रा कितनी है?

(३) राख के संग्रह में कितना खर्च पड़ता है?

(४) क्या बड़े पैमाने पर राख प्राप्त हो सकती है?

(५) पेड़-पौधे के कौन अंग राख के लिए इस्तेमाल हो सकते हैं?

कुछ पेड़-पौधे ऐसे हैं जिनमें राख की मात्रा कम रहती है। कुछ ऐसे हैं जिनमें राख की मात्रा अधिक रहती है। कुछ राख में पोटाश की मात्रा कम रहती है और कुछ में अधिक। अतः पेड़-पौधों में राख की मात्रा के आधार पर ही पोटाश की मात्रा निर्धारित की जा सकती है। पोटाश लवण के उत्पादन का मूल्य राख के संग्रह के खर्च और पेड़ या राख के परिवहन के मूल्य पर निर्भर करता है। जिस काठ से अधिक पोटाश प्राप्त हो सकता है उसकी सुलभ प्राप्ति भी एक महत्त्व का विषय है। कुछ दशा में उन पौधों को जलाने में जो घास-पात के रूप में उपजते हैं कोई हानि नहीं होती पर कुछ उपयोगी पौधों को पूर्ण रूप से जला देना वांछनीय नहीं होता। ऐसे पौधे की शाखाएँ और पत्ते ही जलाने के लिए प्राप्त हो सकते हैं। जो बड़े-बड़े पेड़ होते हैं उन की लकड़ियां अधिक मूल्यवान् और उपयोगी होती हैं। ऐसे पेड़ों की शाखाएँ और पत्ते ही जलाने के लिए प्राप्त हो सकते हैं।

जिन पौधों के समस्त अंग राख के लिए प्राप्त हो सकते हैं उनकी सूची सारणी एक में दी हुई है। ऐसे पौधों में अड़ूस, नागदौन, गन्धेला, लण्टाना, बननिम्बु सरलता से बहुत बिखरे हुए पाये जाते हैं। इनकी राख में पोटाश की मात्रा पर्याप्त रहती है। इनसे पोटाश-लवण प्राप्त किया जा सकता है।

अपंग, कंटाचोलाई, कोरन्टा, पितपापड़ा भी सामान्य घास हैं। इनकी राख में भी पोटाश की मात्रा पर्याप्त रहती है पर इनका संग्रह कुछ कठिन मालूम होता है।

शाख और पत्ते की राख

मदार, चकवर, बथुआ, विंटा, निरगुन्डा, नीलकंठी की राख में पोटाश की मात्रा अच्छी रहती है। उनसे पोटाश लवण निकाला जा सकता है। भांग, भन्ट, दूधी और दूधी बेला की राख में यद्यपि पोटाश की मात्रा अधिक नहीं रहती पर राख की मात्रा अधिक होने के कारण उनसे पोटाश-लवण निकाला जा सकता है।

पत्ते की राख

पत्ते की राखों में सिन्दुरी और केले में यद्यपि राख की मात्रा कम है पर राख में पोटाश की मात्रा पर्याप्त रहने के कारण उनसे पोटाश निकाला जा सकता है।

अम्लतास और कुरची की राख में भी पर्याप्त पोटाश-लवण रहता है और उससे पोटाश-लवण प्राप्त किया जा सकता है।

राख से पोटाश-लवण प्राप्त करने का कार्य ऐसा होना चाहिये कि कम से कम खर्च में वह किया जा सके। इस प्रकार्य के तीन क्रम हैं।

पहले क्रम में पेड़-पौधों को जलाकर राख बनायी जाती है।

दूसरे क्रम में राख को जल के उपचार से विलेय लवणों को पृथक् किया जाता है। इस प्रकार को विक्षालन कहते हैं।

तीसरे क्रम में लवणों का मणिभीकरण होता है।

राख बनाने के लिए पेड़-पौधों, शाखों और पत्तों को पहले वायु में सुखा लेते हैं। सूख जाने पर उन्हें जलाकर राख प्राप्त की जाती है। गड्ढों अथवा अंगेठी में भी काठ और कोयले को जलाकर राख प्राप्त की जा सकती है। अनेक कारखानों में जहाँ लकड़ी इस्तेमाल होती है बड़ी मात्रा में राख प्राप्त होती है। ईंट के भट्ठों, चूने के भट्ठों, लोहे के कारखानों और चाय-बागों में राख बनती और सरलता से प्राप्त हो सकती है। इन्हें पोटाश-लवण की प्राप्ति में प्रयुक्त कर सकते हैं।

विक्षालन प्रक्रम काठ के बड़े-बड़े टबों में, अथवा धरती में गड़े विशेष कड़ाहों में सम्पादित किया जाता है। इन पात्रों में राख को रखकर उस पर पानी डाला जाता है। पानी की मात्रा राख में पोटाश-लवण की मात्रा पर निर्भर करती है। राख को समय-समय पर प्रक्षुब्ध करते रहते हैं ताकि समस्त विलेय अंश पानी में घुलकर निकल आवे। अविलेय अंश को फिर स्थिर होने के लिए कुछ समय के लिए छोड़ देते हैं। जब अविलेय अंश नीचे बैठ जाता है तब ऊपर के स्वच्छ विलयन को निकाल लेते हैं।

अविलेय अंश को दो बार और ताजा पानी से धोकर विलेय अंश को निकाल लेते हैं। यदि पानी की मात्रा आवश्यकता से अधिक नहीं प्रयुक्त हुई है तो विलयन का घनत्व १८–२०° बौमे रहता है। यदि यह घनत्व प्राप्त हो तो उस विलयन को ताजी राख के धोने के लिए एक बार फिर इस्तेमाल करते हैं।

विदेशों में जो रीति प्रयुक्त होती है वह इससे कुछ भिन्न है। वहां राख पर पानी छिड़क कर भिगाते हैं। जब राख एक सा भींग जाती है तब उसे पीपे में रखते हैं। पीपे में पेंदा नहीं होता। पेंदा पुयाल से ढंका होता है। पीपे की भींगी राख में अब पानी (उष्ण जल हो तो अच्छा होता है) डालते हैं। जैसे जैसे पानी पीपे में नीचे गिरता है पोटैसियम के विलेय लवणों को घुला कर लेता जाता है। यह विलयन पेंदे में इकट्ठा होता है।

प्रस्तुत लेखक के विचार में राख से पोटैसियम लवणों को निकालने के लिए वही रीति अच्छी है जिस रीति से नोनीया नोनी मिट्टी से शोरा निकालते हैं। इसके लिए नोनीया मिट्टी की एक टंकी धरती तल के ऊपर बनाते हैं। यह टंकी प्रायः डेढ़ से दो फुट गहरी होती है। इसकी गच ऐसी नत होती है कि विलयन चूकर एक स्थान पर एक नाँद में इकट्ठा होता है। इस टंकी को पहले पुयाल से और पीछे सूखे पत्ते से भरकर उस पर नोनी मिट्टी की तह प्रायः ४, ५ इंच की बैठा देते हैं। मिट्टी की तह को ऐसे दबा देते हैं कि उसमें पानी धीरे-धीरे प्रवेश करे। मिट्टी के दबाने में अनुभव की आवश्यकता होती है। मिट्टी ऐसी कड़ी दबी न हो कि पानी उसमें प्रवेश ही न करे और न वह इतनी कम दबी हो कि पानी शीघ्र ही निकल जाय। अब मिट्टी की तह को पानी से भर देते हैं। पानी धीरे-धीरे मिट्टी में प्रवेश कर शोरे और नमक को घुलाकर पेंदे में जाकर नत गच के कारण बहकर एक किनारे नाँद में इकट्ठा होता है। मेरे विचार में इसी रीति से राख से पोटैसियम लवणों के निकालने में खर्च कम पड़ेगा और समय की बचत होगी।

अब विलयन को जिसका घनत्व १८–२०° बौमे रहता है सीमेंट के कड़ाहों में धूप में सूखने के लिए छोड़ देते हैं। लोहे के कड़ाहों में भी आँच से विलयन को गाढ़ा कर सकते हैं पर इसमें खर्च पड़ता है। ईंधन भी खर्च होता है और लोहे का कड़ाह भी सीमेंट कड़ाह से महंगा पड़ता है। सीमेंट के कड़ाहों में एक असुविधा यह है कि उद्वा-ष्पन में समय अधिक लगता है। यदि राख से पोटैसियम लवण निकालने का काम वैसे ही हो जैसे नोनिया गाँवों में नोनी मिट्टी से शोरा निकालते हैं तो उत्पादन-मूल्य बहुत कुछ कम हो सकता है।

लकड़ी या पत्ते के जलाने में जो गरमी उत्पन्न होती है यदि उसे विलयन के गाढ़ा

करने में इस्तेमाल करें तो उत्पादन-मूल्य और भी कम किया जा सकता है। यदि राख को उष्ण जल से विक्षालित करें तो लवण का निष्कासन अधिक उत्तम और अधिक शीघ्रता से होगा।

राख से विलेय लवणों के निकाल लेने पर जो अविलेय अंश बच जाता है उसमें भी कुछ पोटाश, फास्फेट आदि रहते हैं। इसे खाद के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं।

इस प्रकार से प्राप्त पोटाश-लवण अशुद्ध होता है। इसे किसी केन्द्रीय कारखाने में ले जाकर आधुनिक साधनों के उपयोग से शुद्ध लवण प्राप्त कर सकते हैं जिसका उपयोग औषधियों और फोटोग्राफी में हो सके।

दसवाँ अध्याय

हड्डी का कोयला

हड्डियाँ दो प्रकार की होती हैं, कोमल और कठोर। मछली, तिमि (ह्वेल) और अन्य समुद्री प्राणियों की हड्डियाँ कोमल होती हैं। अन्य प्राणियों की हड्डियाँ कठोर होती हैं। कठोर हड्डियों के साथ कुछ कोमल हड्डियाँ भी होती हैं। वस्तुतः ये कोमल हड्डियाँ वास्तविक हड्डियाँ नहीं हैं। इन्हें कास्थि या कार्टिलेज कहते हैं।

कोयला बनाने के लिए कठोर हड्डियाँ ही उपयुक्त होती हैं। बहुत दिनों से वायु में रखी अथवा धरती में गड़ी हड्डियाँ कोयले के लिए ठीक नहीं हैं। इनसे अच्छा कोयला नहीं बनता। बहुत दिनों तक वायु में रखने अथवा मिट्टी में गड़ी हड्डियों का अंशतः विच्छेदन हो जाता है। इस कारण इनसे बने कोयले में कार्बन की मात्रा कम रहती है। कम उम्र के पशुओं में कास्थि की मात्रा अधिक रहती है और खनिज-लवणों की कम। अधिक उम्र के पशुओं में वसा अधिक रहती है।

अस्थि का विश्लेषण

	कच्चा हड्डी का चूर्ण	भाप उपचारित हड्डी का चूर्ण
जल	९.१०	६.३०
कार्बनिक पदार्थ (नाइट्रोजन के साथ)	३५.९६ (४.२७)	१२.९० (१.३८)
फास्फरिक अम्ल (कैलसियम फास्फेट के साथ)	२२.०० (४८.०४)	३२.१० (७०.०१)
चूना	२९.२०	४१.०३
मैगनीशिया, अल्कली आदि	२.७४	६.५८
अविलेय सिलिका पदार्थ	१.००	०.१५

कास्थि में प्रधानतया कार्बन, आक्सिजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन रहते हैं। अल्प मात्रा में गन्धक रहता है। इनकी मात्रा निम्नलिखित रहती है।

	प्रतिशत
कार्बन	५०
आक्सिजन	२५
नाइट्रोजन	१७.५
हाइड्रोजन	७.०
गन्धक	०.२
	९९.७

इतिहास

लोविज़ (Lowitz) ने सन् १७९२ में पहले-पहल देखा कि उद्भिद् कोयले में रंग और गंध दूर करने की क्षमता विद्यमान है। इसके बाद तुरन्त ही गिलोन (Guillon) ने यह सुझाव रखा कि चीनी के विलयन के रंग के दूर करने में लकड़ी का कोयला प्रयुक्त होना चाहिए। सन् १७९३ ई० में केहल्स (Kehls) ने बताया कि जान्तव कोयले में भी रंग दूर करने का गुण है। सन् १८११ में फिगायर (figueer) ने बताया कि उद्भिद् कोयले से जान्तव कोयले में रंग दूर करने की क्षमता अधिक होती है। सन् १८२२ में पता लगा कि रंग दूर करने का गुण कोयले की भौतिक संरचना, सरन्ध्रता और विभाजन की सूक्ष्मता पर निर्भर करता है। सन् १८५७ में स्टेनहौस (Stenhaus) ने बताया कि जान्तव कोयले में खनिज लवणों के अधिक रहने से कार्बन का संपुजन (Agglomeration) नहीं होता इससे रंग दूर करने की क्षमता उसमें बढ़ जाती है। यह देखा गया कि जो कोयला बहुत ऊँचे ताप तक गरम करने से न्यूनाधिक मात्रा में ग्रेफाइट में परिणत हो जाता है, उसमें रंग दूर करने की क्षमता अपेक्षया कम होती है।

चीनी की सफाई में जान्तव कोयले का उपयोग पहले-पहल सन् १८१२ ई० में डेरोस्ने (Derosne) द्वारा शुरू हुआ। उस समय यह कोयला चूर्ण के रूप में प्राप्त होता था। अस्थि-चूर्ण के साथ चासनी को उबालते थे। फिर कपड़े की थैली में छानकर चूर्ण को फेंक देते थे। यह अस्थि-चूर्ण उस समय अम्ल से धोयी अस्थि अथवा रक्त अथवा अंशतः जले जान्तव पदार्थों से प्राप्त होता था। ऐसे चूर्ण में दुर्गंध रहती थी जिससे इसका उपयोग लोग पसन्द नहीं करते थे।

सन् १८२८ ई० में डुमों (Dumont) ने सुझाव रखा कि जान्तव कोयला दानेदार रूप में प्राप्त हो सकता है और चूर्ण के स्थान में दानेदार कोयले का व्यवहार हो सकता है। उसी समय डुमों और शाट्टेन (Schatten) ने यह भी सुझाव दिया कि दानेदार अस्थि-कोयले का पुनर्जीवितकरण करके उसका फिर उपयोग किया जा सकता है।

लगभग १८५५ ई० में नियमित रूप से अस्थि-कोयले का उपयोग उद्योग-धन्धों में होने लगा। अब अनेक प्रकार से अस्थि-कोयला बनने लगा। अस्थि-कोयले को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और पानी से धोकर व्यवहार में लाने लगे। ऐसा कोयला बहुत सरन्ध्र और मन्द चमक का होता था। उदासीन अथवा अम्लीय विलयन में यह अच्छा विरंजक होता था। ऐसे कोयले को जल के क्वथनांक के ऊपर गरम करने से उसकी सरन्ध्रता और रंग दूर करने की क्षमता बहुत कुछ नष्ट हो जाती थी।

अस्थि-कोयला का निर्माण

हड्डियाँ जब कारखाने में आती हैं तब उन्हें क्रम से अलगाते हैं। कठोर हड्डियों को एक तरफ और कोमल हड्डियों को दूसरी तरफ रखते हैं। अब उन्हें दलते हैं। दलने के बाद मशीन से काटते हैं। इससे हड्डियाँ कटकर छोटी-छोटी कुछ इंचों की लम्बाई की हो जाती हैं।

हड्डी के इन टुकड़ों को उबालकर अथवा किसी विलायक द्वारा निष्कर्ष निकालकर तेल और चर्बी से मुक्त कर लेते हैं। भाप के साथ-साथ विलायकों को प्रयुक्त करते हैं। नैफथा और पैट्रोलियम बेंजाइन उपयुक्त विलायक हैं। गुरुत्व द्वारा विलायक को पृथक् कर लेते हैं। क्योंकि यह पानी से हलका होता है। विलायक और जल को उबालकर निकाल लेने पर शुद्ध तेल और चर्बी प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया से कास्थि (कार्टिलेज) में कोई विकार नहीं आता। वह ज्यों का त्यों रह जाता है।

अब हड्डी को भभके में रखते हैं। भभका क्षैतिज अथवा ऊर्ध्वाधार हो सकता है। भभके वैसे ही होते हैं जैसे लकड़ी के कोयले बनाने में प्रयुक्त होते हैं। भभके की संख्या पाँच से सात रहती है। ऊर्ध्वाधार भभके में २॥ हंडरवेट और क्षैतिज भभके में ५ हंडरवेट हड्डियाँ रखी जाती हैं। हड्डियों को रखकर भभके को सावधानी से बन्द कर देते हैं, ताकि उसमें वायु प्रवेश न कर सके।

भभकों को अब धीरे-धीरे गरम करते हैं। उसका ताप बढ़ाकर रक्तोष्ण पर ले जाते हैं। इसी ताप पर हड्डी का भंजक आसवन होता है। ऊर्ध्वाधार भभके में ६ से ८ घंटा और क्षैतिज भभके में ८ से १० घंटा समय लगता है।

भभके से गैसें निकलकर आम्भस प्रनाड (Hydraulic mains) में जाती हैं और वहाँ से संघनित्र में। वहाँ से फिर मार्जकों (Scrubbers) में जिसमें कोक भरा रहता है। यहां ही अस्थि-तेल का पृथक्करण होता है। यहां से फिर गैसें अमोनिया मार्जकों में जाती हैं। ये गैसें फिर शोधित होकर ऊष्मा और प्रकाश के लिए प्रयुक्त होती हैं। गैसों का शोधन वैसे ही होता है जैसे पत्थर के कोयले से बनी गैसों का शोधन होता है जिनका विस्तृत वर्णन आगे होगा।

हड्डी से ६० प्रतिशत अस्थि-कोयला, २० प्रतिशत गैस, ६ प्रतिशत अलकतरा, ३ से ५ प्रतिशत अस्थि-तेल और प्राय: ८ प्रतिशत अमोनिया (अमोनियम सल्फेट के रूप में) प्राप्त होता है। अस्थि-कोयले में २० से २५ प्रतिशत धूल रहती है। ऐसा ताजा अस्थि-कोयला प्रति टन ४८ से ५४ घन फुट स्थान घेरता है।

भंजक आसवन से हड्डी के खनिज लवणों में कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होता अथवा बहुत अल्प होता है। कार्बनिक अवयवों में पर्याप्त परिवर्तन और सुधार होते हैं। हड्डी का कार्बन अंशत: कैलसियम फास्फेट के साथ घनिष्ठ आयोजित (Associated) हो जाता है। कार्बन का कुछ अंश हाइड्रो कार्बनों में परिणत हो गैसों में निकल जाता है। कुछ कार्बन आक्सिजन के साथ संयुक्त होने से कार्बन के आक्साइड बनते हैं। कुछ कार्बन नाइट्रोजन के साथ संयुक्त हो सायनामाइड बनता है अथवा एमिनो या नाइट्रोजन यौगिकों में परिणत हो जाता है।

हड्डी का अधिकांश नाइट्रोजन अस्थि-तेल और तारकोल में रहता है। कुछ अमोनिया बनकर और कुछ सायनामाइड रूप में निकल जाता है। कुछ नाइट्रोजन अस्थि-कोयले में ही रह जाता है।

अस्थि-काल का औसत संघटन इस प्रकार होता है—

	प्रतिशत
कैलसियम फास्फेट	७०—७५
कार्बन	९—११
जल	८
सिलिका	०·५
कैलसियम सल्फेट	०·२५
लोहे के आक्साइड	०·१५
कैलसियम सल्फाइड	०·१ से कम

इसका रंग हलका काले रंग का होता है। इसकी राख सफेद या मलाई के रंग की होती है। इसकी भौतिक बनावट दृढ़ और सरन्ध्रता ऊंची डिगरी की होती है।

इसके पीटने से धातु सी ध्वनि निकलती है। इसकी धूल को पेंट या खाद के लिए प्रयुक्त करते हैं।

कोयले की प्रकृति बहुत कुछ अस्थि की प्रकृति पर निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न देशों के अस्थि-काल (बोन-ब्लैक) में थोड़ा अन्तर अवश्य होता है जैसा विश्लेषण के निम्नलिखित आंकड़ों से प्राप्त होता है।

	इंगलैण्ड का अस्थि-काल प्रतिशत	अमेरिका का अस्थि-काल प्रतिशत	आस्ट्रिया का अस्थि-काल प्रतिशत
कार्बन	१०·७६	९·२८	९·३०
कैलसियम फास्फेट	७३·५०	७५·१०	७५·००
रेत आदि	०·२९	०·३०	०·४२
कैलसियम कार्बोनेट	८·६९	७·४०	६·२३
कैलसियम सल्फेट	०·०५	०·१०	०·०८
कैलसियम सल्फाइड	०·०३	—	० ०१
कैलसियम आक्साइड	—	०·९१	—
मैगनीसियम फास्फेट	६·०८	—	—
फेरिक आक्साइड	०·१६	०·३४	०·२३
क्षारीय लवण	०·४४	—	—

बहुत दिनों तक इस्तेमाल करने के बाद उसका संघटन कुछ बदल जाता है। ऐसे एक प्रारूपिक (Typical) नमूने का विश्लेषण यह है—

	प्रतिशत
कार्बन	११·५०
रेत आदि	०·७५
कैलसियम फास्फेट	८२·००
कैलसियम कार्बोनेट	२·७०
कैलसियम सल्फेट	०·६५
कैलसियम सल्फाइड	०·११
फेरिक आक्साइड	०·४७

अस्थि-काल की क्रिया

हड्डी का कोयला रंग कैसे दूर करता है इस पर भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न मत प्रगट किये गये हैं। सन् १८६५ ई० में वैलेस (Wallace) ने यह सुझाव रखा

था कि इस कोयले में कार्बन और नाइट्रोजन का एक यौगिक रहता है जो वस्तुतः रंग को दूर करता है। पैटर्सन (Patterson) ने ऐसे कोयले से नाइट्रोजन वाले एक पदार्थ का पृथक्करण भी किया जो रंग दूर करने में अधिक सक्रिय पाया गया था। होर्टन (Horton) का मत है कि रंग दूर करने की क्षमता सक्रिय कार्बन के कारण होती है। नाइट्रोजन के पदार्थों से पुनरुत्तापन पर कार्बन के सक्रिय बनाने में सहायता मिलती है। इसकी पुष्टि अन्य लोगों ने भी की है। पर यह मत आज मान्य नहीं है।

एक दूसरा सिद्धान्त यह है कि कार्बन की सूक्ष्म केशाओं में रंग के श्लेष्मीय अणु उलझ कर निकल जाते हैं। यहाँ रंग का निकलना केवल यांत्रिक होता है। यदि ऐसी बात हो तो कम कार्बनवाला अस्थि-काल भी सामान्यतः सक्रिय होना चाहिए। पर देखा जाता है कि कम कार्बनवाले अस्थि-काल में रंग दूर करने की क्षमता बड़ी अल्प होती है। अ-श्लेपामीय कारामेल का रंग भी अस्थि-काल से निकल जाता है। पर कारामेल का रंग अल्यूमिनियम हाइड्राक्साइड से नहीं निकलता। कुछ पदार्थों का रंग अस्थि-काल से निकल जाता है और कुछ का नहीं निकलता। इसकी व्याख्या इस सिद्धान्त से नहीं की जा सकती। अतः यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं है।

एक तीसरा सुझाव यह है कि अस्थि-काल के रन्ध्रों में कार्बन डाइ-आक्साइड और आक्सिजन संघनित रहते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड चूने के साथ मिलकर अविलेय कैलसियम कार्बोनेट का अवक्षेप देकर चूने को निकाल देता और आक्सिजन रंग के साथ मिलकर रंग को विरंजित कर देता है। कार्बन डाइ-आक्साइड कोयले पर कैसे संघनित है इसकी कोई व्याख्या नहीं दी गयी है। अस्थि-काल से आक्सिजन को पूर्णतया दूर करना सम्भव नहीं है। बड़े अल्प दबाव और निम्न ताप पर भी आक्सिजन का निकलना पूर्ण रूप से नहीं होता। कुछ लोगों का सुझाव है कि कोयले में सक्रिय आक्सिजन का कारण हाइड्रोजन पेराक्साइड की उपस्थिति है, पर हाइड्रोजन पेरा-क्साइड स्वयं अस्थि-काल से विच्छेदित हो जाता है। संघनित गैस का सिद्धान्त भी आज मान्य नहीं है।

ऐसा मालूम होता है कि अस्थि-काल द्वारा रंग दूर करने में रासायनिक प्रतिक्रियाओं का हाथ अवश्य है, पर वह गौण है। प्रमुख हाथ भौतिक गुणों का है जो तल पर और तल के अवशोषण गुणों पर निर्भर करता है।

रंग दूर करने के लिए अस्थि-काल का विस्तार ऐसा होना चाहिए कि अस्थि की कोशीय संरचना सुरक्षित रहे। इसके लिए इसका विस्तार १६ से २० अक्षि का होना चाहिए। यदि विस्तार इससे छोटा है तो उससे छानने की क्रिया बड़ी मन्द हो जाती है। अस्थि-काल की दक्षता उसके दाने के विस्तार, छानने के ताप और विलयन के

सान्द्रण की डिगरी पर निर्भर करती है। अस्थि-काल न बहुत मोटा होना चाहिए और न बहुत महीन।

यदि अस्थि-काल को सूक्ष्मदर्शी से देखा जाय तो उसमें अनेक कोटर देख पड़ेंगे जो बहुत छोटे-छोटे नलियों अथवा नालियों (Channels) से जुटे रहते हैं। ये सब कैलसियम फास्फेट और कैलसियम कार्बोनेट के बने होते हैं। ये सब बहुत सूक्ष्म-दशा में विभाजित कार्बन के निक्षेप (Deposit) से आच्छादित होते हैं। अस्थि-काल का तल बहुत विस्तृत होता है।

अस्थि-काल में विभिन्न वस्तुओं के अवशोषण की क्षमता वरणात्मक (Selective) होती है। इसका आशय यह है कि एक अस्थि-काल एक रंग के अवशोषण से जब पूरा संतृप्त हो जाता तब उस रंग को वह और अवशोषित नहीं करता पर दूसरे रंग अथवा लवण को वह अब भी अवशोषित कर सकता है।

अस्थि-काल की परिशोधन क्षमता उसके सक्रियित कार्बन पर निर्भर करती है। यदि अस्थि-काल को वायु में जला दिया जाय तो उसका सारा कार्बन जलकर केवल कैलसियम फास्फेट रह जाता है। इस फास्फेट में रंग दूर करने की क्षमता नहीं होती अथवा बड़ी अल्प रहती है, यद्यपि घुले लवणों को यह सरलता से निकाल सकता है। यदि फास्फेट को अम्ल द्वारा घुलाकर निकाल डालें तो अवशिष्ट कार्बन में रंग दूर करने की क्षमता विद्यमान रहती है यद्यपि इसकी मात्रा अपेक्षया कम रहती है, क्योंकि कार्बन अब अधिक तल पर फैला हुआ नहीं रहता।

साधारणतया अस्थि-काल में कार्बन की मात्रा १० प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए। कुछ लोगों का विचार है कि १० प्रतिशत से अधिक रहने से अवशोषण क्षमता कम हो जाती है, पर यह धारणा ठीक नहीं है। अवशोषण क्षमता कार्बन की मात्रा पर नहीं बल्कि सक्रियित कार्बन की मात्रा, तल की परिस्थिति, फास्फेट के ढांचे पर कार्बन कणों के वितरण पर निर्भर करती है।

अस्थि-काल पर जो कार्बन रहता है उसके साथ कुछ हाइड्रोजन और नाइट्रोजन भी मिले रहते हैं। उच्च ताप पर गरम करने से ये विघटित होकर निकलते नहीं हैं। अस्थि-काल के कार्बन का सम्भवतः १/१० अंश कार्बन और नाइट्रोजन के यौगिक के रूप में रहता है। बार-बार के उपयोग और पुनर्जीवन से इस यौगिक की मात्रा कम होकर दो प्रतिशत या इससे कम हो सकती है। यह नाइट्रोजन अवश्य ही कास्थि से आता है। कास्थि में १७ से १८ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। किस रूप में नाइट्रोजन रहता है, इसका निश्चित ज्ञान हमें नहीं है। कुछ लोगों का मत है कि नाइट्रोजन 'सायनाइड' के रूप में रहता है। नये अस्थि-काल में अमोनिया और अमोनिया के

लवण, विशेषतः अमोनियम कार्बोनेट अवश्य रहते हैं। अस्थि-काल से अमोनिया को निकाल डालना आवश्यक होता है। पूर्ण प्रक्षालन और ऊँच दबाव के वाष्प से यह निकाला जा सकता है। अस्थि-काल के रन्ध्रों से अधिकांश गैसें निकल जाती हैं और उनका स्थान पानी ले लेता है। ऐसा करने से छानने में सहायता मिलती है।

अस्थि-काल के उपयोग

अस्थि-काल के दाने ऐसे होने चाहिए कि वे सरन्ध्र हों और जलने से सिकुड़ें नहीं; हाथ से छूने से टूटें नहीं और अम्लों से आक्रान्त न हों। उनमें लवणों के अवशोषण की क्षमता भी पर्याप्त रहनी चाहिए। सारे पुंज में सक्रियकृत कार्बन एक सा बिखरा हुआ रहना चाहिए।

चीनी के परिष्कार में (१) नये अस्थि-काल प्रयुक्त होते हैं। ऐसे अस्थि-काल जो पहले कभी प्रयुक्त न हुए हों और हड्डी से बनकर सीधे आये हों। जो नया अस्थि-काल धो और जलाकर प्रयुक्त होने के लिए रखा हुआ है उसे (२) संचित अस्थि-काल (Stock char) कहते हैं। जो अस्थि-काल धोकर पुनर्जीवितकरण के लिए रखा हुआ है उसे (३) आर्द्र अस्थि-काल कहते हैं। जो अस्थि-काल जला और सुखाकर रखा हुआ है उसे (४) शुष्क अस्थि-काल कहते हैं। जिस अस्थि-काल का इतना उपयोग हुआ है कि उसका पुनर्जीवितकरण सम्भव नहीं है उसे (५) 'बीता या क्षयित अस्थि-काल' (Spent char) कहते हैं। क्षयित अस्थि-काल चीनी के परिशोधन में फिर प्रयुक्त नहीं होता। पर खाद के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

नये अस्थि-काल के पूर्ण दहन पर खड़िया-सी सफेद राख प्राप्त होती है। क्षयित अस्थि-काल के पूर्ण दहन पर काँच सदृश और आरक्त वर्ण की राख प्राप्त होती है।

चीनी के परिष्कार में बड़े-बड़े ऊर्ध्वाधार बेलनों में अस्थि-काल रखे जाते हैं। ये बेलन ढालवां लोहे के या इस्पात पट्ट के बने होते हैं। उनकी ऊँचाई २० से २२ फुट की और व्यास ६ से १४ फुट का होता है। यदि व्यास बड़ा है तो ऊँचाई कम होती है। बेलन के आयाम (Dimension) में न्यूनाधिकता भी हो सकती है। यह बहुत कुछ छानने की गति, परिष्करणी के विस्तार, शर्करा विलयन की प्रकृति, अस्थि-काल की प्रकृति आदि पर निर्भर करता है।

छनने के शीर्ष और पेंदे दोनों शंक्वाकार होते हैं। छनने में छेदवाले पट्ट पर अस्थि-काल रखा होता है। पट्ट पर पहले मोटा कम्बल और पीछे महीन बुना हुआ कम्बल रखा होता है। अस्थि-काल की धूलों को रोक रखने के लिए रुई के वस्त्र रखे

होते हैं। छनने का शीर्ष बन्द कर देते हैं। छनने के पेंदे में कई नर-छेद होते हैं जिनसे अस्थि-काल निकाला जाता है।

ऊपर से अस्थि-काल द्वारा रस गिर कर नीचे निकास-मार्ग से निकलता ह। यह निकास-मार्ग छनने की २/३ इंच की ऊँचाई पर रहता है।

अस्थि-काल हाथों अथवा यंत्रों से छनने में रखा जाता है। यह एक-सा समतल रखा जाना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाय तो रस चारों तरफ न फैलकर नालियां बनाकर एक तरफ से जल्दी ही निकल जाता और तब परिष्कार और छनना ठीक तरह से नहीं होता।

जब कोयला ठीक तरह से रख दिया जाता है तब ऊपर से, पार्श्व से चीनी का रस या चाशनी गिरायी जाती है। चाशनी नीचे आती हुई पेंदे में पहुँच जाती है। वहाँ से फिर ऊपर उठकर छनने की वायु को निकालती है। जब चाशनी निकास-मार्ग तक पहुँच जाती तब निकास-मार्ग को बन्द कर देती है। इससे चाशनी ऊपर उठकर शिखर पर पहुँच जाती है। जब सारा पात्र चाशनी से भर जाता है तब छनने को ऊपर से बन्द कर देते हैं। अब छनने में दबाव डालते हैं और दबाव को धीरे-धीरे बढ़ाते जाते हैं।

छनने में अस्थि-काल का ताप १३०° फ० से ऊपर नहीं रहना चाहिए। ताप का ज्ञान अस्थि-काल में रखे थर्मामीटर से लगाते हैं। किसी दशा में भी ताप १७०° फ० से ऊपर नहीं जाना चाहिए। १६०—१७०° फ० के बीच रहने से भी विशेष हानि नहीं। किस चाल से द्रव को छनने में डालना चाहिए यह द्रव और अस्थि-काल की प्रकृति पर निर्भर करता है। उत्कृष्ट कोटि के द्रव और बहुत सक्रिय अस्थि-काल में १००० गैलन प्रति घंटा द्रव डाला जा सकता है। निकृष्ट कोटि होने पर प्रति घंटा ६०० से ७०० गैलन पर्याप्त है। छनने से जो चाशनी पहले निकलती है वह शत प्रतिशत शुद्ध हो सकती है। पीछे की चाशनी में अपद्रव्य रहते हैं और अपद्रव्य की क्रमशः वृद्धि होती जाती है। अन्त में चाशनी ऐसी भी निकल सकती है जिसमें अशुद्धियों के निकलने के स्थान में अशुद्धियाँ बढ़ सकती हैं।

कितनी शर्करा पर कितना अस्थि-काल लगता है यह कच्ची चीनी की शुद्धता, अस्थि-काल की क्षमता और छानने की गति पर निर्भर करता है। सामान्य औसत मात्रा प्रति पाउण्ड कच्ची चीनी पर एक पाउण्ड अस्थि-काल है। कभी-कभी अधिक-से-अधिक १½ पाउण्ड और कम-से-कम ३/४ पाउण्ड तक लग सकता है। कुछ चीनी में ऐसे रंग होते हैं कि उन्हें दूर करने में अधिक अस्थि-काल की आवश्यकता पड़ती है। चाशनी के पूर्णतया साफ हो जाने पर ही उससे घन-शर्करा प्राप्त हो सकती है।

अस्थि-काल की कम मात्रा के उपयोग से दानेदार चीनी प्राप्त होती है। ३० से ४० प्रतिशत अस्थि-काल से ८० से ९० प्रतिशत तक रंग और २५ से ३५ प्रतिशत तक खनिज लवण निकल जाते हैं।

जब अस्थि-काल की क्रिया समाप्त हो जाती है तब ऊपर से पानी गिरा कर अस्थि-काल से चिपके रस को निकाल लेते हैं। पहले शुद्ध रस निकलता है, पीछे रस का घनत्व क्रमशः कम होता जाता है। जब रस का घनत्व १५° से २०° बौमे पहुंच जाता है तब उसे रस में मिलाते नहीं हैं। इसे 'मीठे जल' के नाम से अलग रखकर गाढ़ा कर उसकी चीनी निकाल लेते हैं। इस पर भी अस्थि-काल में कुछ चीनी रह ही जाती है। कितना ही क्यों न धोया जाये, सारी चीनी उससे नहीं निकलती। अस्थि-काल से रंग दूर होने के साथ-साथ खनिज लवण भी निकलते हैं। उद्भिद् कोयले 'नौरिट' से यह अधिक दक्ष होता है।

निष्क्रिय हो जाने पर अस्थि-काल का पुनर्जीवितकरण हो सकता है। पुनर्जीवितकरण से कोयले का घनत्व बढ़ता है। जहाँ अस्थि-काल का एक टन ५४ घनफुट का स्थान छेंकता था, वहाँ अब वह २८ घनफुट का ही स्थान घेरता है। पुनर्जीवितकरण से अस्थि-काल की सक्रियता बहुत कुछ लौट आती है।

अस्थि-काल रोगों के जीव-विषों (Toxins) को भी दूर करते हुए पाया गया है। इससे डिफ्थेरिया, टिटेनस (धनुष्टंकार) और अतिसार के जीव-विष पूर्ण से निकल जाते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

अस्थि-काल का पुनर्जीवितकरण

पहले-पहल अस्थि-काल चूर्ण के रूप में प्रयुक्त होता था। ऐसे चूर्ण को एक बार इस्तेमाल कर फेंक देते थे। पीछे अस्थि-काल दानेदार रूप में बनने और प्रयुक्त होने लगा। ऐसे अस्थि-काल को पुनर्जीवित कर बार-बार इस्तेमाल कर सकते थे। २०० बार तक पुनर्जीवित कर ऐसा अस्थि-काल प्रयुक्त हो सकता है। इसका आशय यह है कि अस्थि-काल का एक नमूना प्रायः दो वर्षों तक काम दे सकता है। इसके बाद पुनर्जीवितकरण से रंग और लवण के निकालने की क्षमता नहीं लौटती और तब यह फेंक दिया जाता है। ऐसा फेंका हुआ अस्थि-काल पेण्ट-वर्णक और खाद के लिए इस्तेमाल हो सकता है। फास्फेट और पोटैसियम के कारण खाद में इसका महत्त्व है। अनेक नामों से यह वर्णक के लिए प्रयुक्त होता है। अस्थि-काल का पुनर्जीवितकरण एक महत्त्व का कार्य है और हर कारखाने में जहाँ अस्थि-काल का उपयोग होता है उसके पुनर्जीवितकरण का प्रबन्ध रहता है।

अस्थि-काल के पुनर्जीवितकरण की अनेक रीतियाँ हैं। ये अस्थि-काल की प्रकृति पर बहुत कुछ निर्भर करती हैं।

यदि अस्थि-काल केवल ईख के रसों के रंग और कुछ लवणों के दूर करने में प्रयुक्त हुआ है तो उसे भली-भाँति धो, पूर्ण रूप से सुखा कर और तब भट्ठे में जलाकर पुनर्जीवित कर सकते हैं। ऐसे भट्ठे में दो तीन नल होते हैं जिनके द्वारा अस्थि-काल पारित होता है। ये नल १० से १४ फुट लम्बे और प्रायः १२ इंच व्यास के अण्डाकार होते हैं।

भट्ठे के ताप का नियंत्रण बहुत आवश्यक है। ताप के नीचा होने से अपद्रव्य पूर्ण रूप से झुलसते नहीं हैं। ताप के ऊँचा होने से अस्थि-काल का कुछ कार्बन जल जाता है। भट्ठे का उपयुक्त ताप मन्द रक्तोष्ण ताप, प्रायः ८००° फ० होना चाहिये।

भट्ठे में जलने के बाद अस्थि-काल को वायु के शून्य में ठंढा करते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ दानेदार कोयला धूल में परिणत हो जाता है। कोयले को फिर चालकर धूल निकाल लेते हैं।

यदि ईख के रस में चूने की मात्रा अधिक है तो केवल भट्ठे में जलाने से अस्थि-काल का पुनर्जीवितकरण नहीं होता। इसके अम्ल द्वारा उपचार की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अस्थि-काल को पहले बड़े हलके हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से उपचारित करते हैं। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में सल्फ्यूरिक अम्ल, सल्फेट और आर्सेनिक नहीं रहना चाहिए। अम्ल के उपचार से चूना, अम्लिक कार्बोनेट, अम्लिक सल्फेट और हाइड्राक्साइड निकल जाते हैं। इस उपचार से अम्ल के बड़े हलके होने से अस्थि-काल के ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं होता। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से जो कैलसियम क्लोराइड बनता है वह धोने से निकल जाता है। अस्थि-काल को भली-भाँति धो लेना चाहिए।

अब अस्थि-काल को वायु में रख देते हैं। वायु के सूक्ष्माणुओं द्वारा किण्वन शुरू होता है। किण्वन से अस्थि-काल के अवशोपित कार्बनिक पदार्थ विच्छेदित होते हैं। इससे पहले अल्कोहल बनता, पीछे ऐसिटिक, ब्यूटिरिक आदि अम्ल बनते हैं। कुछ दिनों के बाद पूयित (Putrescent) जल के निकाल लेने से किण्वन का (फर्मेण्टेशन) अन्त हो जाता है और तब अस्थि-काल (बोन-ब्लैक) को पूर्ण रूप से धो डालते हैं।

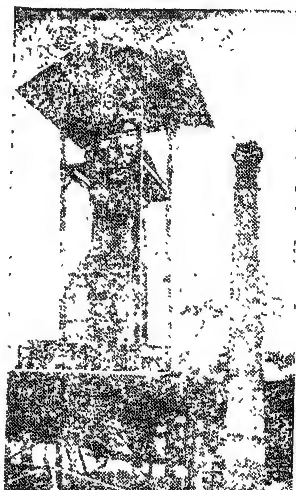
किण्वन से बड़ी अरुचिकर सड़ी गंध निकलती है। अनेक कारखाने वाले इस कारण किण्वन पसन्द नहीं करते। किण्वन के स्थान में दाहक सोडा से अस्थि-काल को उबालना पसन्द करते हैं। इससे कैलसियम सल्फेट सोडियम सल्फेट और कैलसियम हाइड्रेट में बदल जाता है। अनेक कार्बनिक पदार्थ घुल कर निकल भी जाते हैं।

यदि किण्वन हुआ है तो दाहक क्षार या सोडा ऐश से उबालकर कैलसियम सल्फेट को निकाल डालते हैं। अविलेय कैलसियम सल्फेट इससे विलेय सोडियम सल्फेट में परिणत हो धोने से निकल जाता है। यदि सोडा ऐश का व्यवहार हुआ है तो उससे बने कैलसियम कार्बोनेट को बहुत हलके हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उपचार से निकाल लेते हैं। क्षारीय विलयन से बचे हुए कार्बनिक अपद्रव्यों के निकालने में भी मदद मिलती है। कार्बनिक अपद्रव्यों का निकल जाना अच्छा है, नहीं तो उनके रहने से कार्बन की मात्रा बढ़ सकती है जो ठीक नहीं है। कार्बनिक पदार्थ की अधिक मात्रा से भट्ठे में वायु भी अधिक लगती है, नहीं तो कम ही वायु से काम चल जाता है।

अब अस्थि-काल को पूर्णतया सुखाकर भट्ठे में जलाते हैं। यदि पूर्णतया सुखा न लिया जाय तो कार्बन द्वारा कैलसियम सल्फेट का कैलसियम सल्फाइड में अवकरण का भय रहता है। ऐसा होने से हाइड्रोजन सल्फाइड बन सकता है जो पात्रों की धातुओं को आक्रान्त कर सकता है। सल्फाइड से चीनी में रंग भी आ सकता है।

पुनर्जीवितकरण की एक दूसरी रीति में अस्थि-काल के सूख जाने पर उसमें १ से ३ प्रतिशत और कभी-कभी विशिष्ट दशाओं में ६ से ८ प्रतिशत तक चूना डाल कर भट्ठे में निस्तप्त (Calcine) करते हैं। इससे राख, लोहे और चूने के लवणों के निकल जाने और उसके धोने में केवल २/३ अंश पानी लगने का दावा किया जाता है।

अस्थि-काल के पुनर्जीवितकरण के अनेक भट्ठे बने हैं। एक ऐसे भट्ठे का चित्र यहाँ दिया हुआ है। वही भट्ठा अच्छा समझा जाता है जिसमें ताप-नियंत्रण का ठीक-ठीक प्रबन्ध हो, जिसमें कार्बनिक पदार्थों के आंशिक आक्सीकरण की विशेष युक्ति हो, जिसमें निम्न ताप पर नियमित वायु प्रविष्ट करायी जा सके। ऐसा होने से ही अस्थि का कार्बन जलता नहीं और कोयले की रन्ध्रता बनी रहती है।



चित्र १९—हड्डी–कोयला का पुनर्जीवितकरण संयन्त्र

पुनर्जीवितकरण के भट्ठे बड़े-बड़े होते हैं। यंत्रों से अस्थि-काल डालने का प्रबन्ध रहता है। सुखाने, जलाने और ठंढा करने का भी यंत्रों से ही प्रबन्ध रहता है। उसके भभके ऊर्ध्वाधार अथवा ऊर्ध्वाधार-नत नल होते हैं। इनके व्यास बड़े-बड़े और दीवारें अपेक्षया भारी होती हैं। नलों के गरम करने से नल का अस्थि-काल गरम होता है। भट्ठे की गैसों अथवा दहन के उत्पादों से नल गरम होते हैं। इस प्रकार परोक्ष रीति से ही अस्थि-काल गरम किया जाता है। भट्ठे में दहन की गैसों के निकलने के निकास-मार्ग होते हैं। जलावन के रखने का स्थान रहता है।

बारहवाँ अध्याय

दहन

दहन से शक्ति प्राप्त होती है। दहन से ईंधन की ऊर्जा ऊष्मा में परिवर्तित हो पदार्थों को गरम करती है। शक्ति उत्पन्न करने में प्रधानतया कार्बन और हाइड्रोजन का दहन होता है। कुछ अन्य तत्त्वों के भी दहन हो सकते हैं और उससे शक्ति प्राप्त हो सकती है पर इन तत्त्वों से प्राप्त शक्ति अपेक्षया बड़ी अल्प होती है। ईंधन की ऊर्जा अधिक से अधिक मात्रा में शक्ति उत्पन्न कर सके, इसके लिए बड़ा आवश्यक है कि ऊर्जा से शक्ति उत्पन्न करने के साधन उत्कृष्ट कोटि के हों।

प्रज्वलनांक

प्रत्येक ईंधन का एक विशिष्ट ताप होता है। जिस ताप पर ईंधन आग पकड़ता और स्वतः जलता रहता है, जिस ताप पर ईंधन का आग पकड़ना और स्वतः जलते रहना होता है, उस ताप को 'प्रज्वलनांक' कहते हैं। प्रज्वलनांक विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है। ईंधन की प्रकृति तथा अन्य कई कारकों (Factors) पर यह निर्भर करता है। यदि किसी कारण से जलने से उत्पन्न ऊष्मा शीघ्र ही वहाँ से हटा ली जाय तो प्रज्वलनांक बदल जाता है, साधारणतया ऊँचा हो जाता है।

गैस-ईंधनों में गैस और वायु के अनुपात, दहन-कक्ष के आकार और विस्तार, दहन मिश्रण के दबाव और उत्प्रेरकों का प्रज्वलनांक पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कुछ दशाओं में प्रज्वलनांक नीचे उतर आता और कुछ दशाओं में ऊपर उठ जाता है। दबाव की वृद्धि और उत्प्रेरकों की उपस्थिति से प्रज्वलनांक नीचे उतर आता है। द्रव और ठोस ईंधनों के कणों की सूक्ष्मता से भी प्रज्वलनांक प्रभावित होता है।

कुछ गैसीय ईंधनों के प्रज्वलनांक यहाँ दिये जा रहे हैं। प्रज्वलनांक निकालने के लिए गैस-ईंधन और वायु या आक्सिजन को अलग-अलग गरम कर एक साथ मिलाकर फिर धीरे-धीरे गरम कर प्रज्वलनांक निकालते हैं। गैसों का ठीक-ठीक मिश्रित करना कुछ कठिन होता है। इस कारण विभिन्न नमूनों के प्रज्वलनांक में कुछ अन्तर अवश्य रहता है।

सरल गैसें			प्रज्वलनांक ०° से०	ज्वलनशीलता की सीमा वायु में गैस की प्रतिशतता	
नाम	संकेत	अणुभार		निचली सीमा	ऊपरी सीमा
हाइड्रोजन	H	२	५८०–५९०	४·१	७४
कार्बनमनॉक्साइड	CO	२८	६४४–६५८	१२·५	७४
मिथेन	CH_4	१६	६४९–७५०	५·३	१४
ईथेन	C_2H_6	२८	५२०–६३०	३·२	१२·५
एथिलीन	C_2H_4	२८	५३८–५४९	३·३	३४
बेंजीन	C_6H_6	७८	७४०	१·४	८

गैस-ईंधन और वायु-मिश्रण के संघटन के परे जब प्रज्वलन नहीं होता तब ऐसे मिश्रण के संघटन को 'ज्वलनशीलता की सीमा' कहते हैं। प्रत्येक दाह्य गैस के लिए एक ऊपरी सीमा होती है जिस सीमा तक गैस का दहन हो सकता है। दाह्य गैसों का यह महत्तम अनुपात होता है। निचली सीमा दाह्य गैस का न्यूनतम अनुपात है। इन दोनों के बीच के परास (Range) को 'विस्फोटक परास' कहते हैं। ज्वलनशीलता की सीमा भी ताप और दबाव से प्रभावित होती है। कुछ गैसों की ज्वलनशीलता यहाँ दी जा रही है।

गैस मिश्रण	संघटन, आयतन प्रतिशत							तापन-मान बि. टि. यू. प्रतिघनफुट	विस्फोटक सीमा वायु में गैस की प्रतिशतता	
	H_2	CO	CH_4	O_2	N_2	CO_2	C_2H_6		निर्धारित	गणित
प्राकृत गैस	—	—	७९·०	—	०·०	—	३.०	१०३४	४·८–१४·०	४·९–१४·०
कोक-भट्ठी गैस	५४·४	६·३	३१·५	०·४	१·६	१·९	—	६३१	५·०–२८·४	४·५–२८·१
कार्बुरित नीली गैस	४७·०	१०·५	२५·८	०·३	५·२	४·६	—	५०९	६·४–३७·७	६·०–३६·६
नीली गैस	४९·०	३९·२	९·६	०·३	३·०	६·२	—	३१०	६·९–६९·५	६·१–६५·४
उत्पादक गैस	१२·४	२७·३	०·७	०·०	५३·४	६·२	—	१३६	२०·७–७३·७	१९·०–७०·५
वात-भट्ठी गैस	४·३	२४·५	०·२	—	५५·१	१५·९	—	—	३६·०–७२·०	३६·०–७१·५

ज्वाला

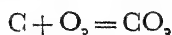
जब कोई ठोस अथवा द्रव ईंधन जलता है तब उसका कुछ अंश ऊष्मा से विच्छेदित हो गैस बनता है। यह गैस वायु के साथ मिलकर आक्सीकृत होता है। आक्सीकरण में ऊष्मा और प्रकाश का उत्सर्जन (emission) होता है। गैसीय पदार्थों की प्रकाश के साथ इस उत्सर्जन प्रतिक्रिया को 'ज्वाला' कहते हैं। जब ज्वाला हलकी नीली होती है तब प्रकाश का उत्सर्जन कम होता है। ऐसी ज्वाला को 'दीप्तिहीन' ज्वाला कहते हैं। अनेक ज्वालाओं में हाइड्रोजन कार्बन के विच्छेदन से कार्बन के बड़े महीन कण बनते हैं। ज्वाला के ताप पर ये कार्बन कण ताप्तदीप्त (incandescent) हो जाते हैं। तब ज्वाला पीली अथवा सफेद हो जाती है। ऐसी ज्वाला को 'दीप्त ज्वाला' कहते हैं।

रासायनिक प्रतिक्रिया

ईंधन का जलना रासायनिक प्रतिक्रिया है। यहाँ ईंधन के कार्बन और हाइड्रोजन की वायु के आक्सिजन के साथ प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अतः ईंधन के जलने में रासायनिक नियमों का पालन होता है। रासायनिक प्रतिक्रियाओं के दो आधारभूत नियम हैं। एक संहति (mass) के संरक्षण का नियम और दूसरा ऊर्जा के संरक्षण का नियम। रासायनिक प्रतिक्रियाओं में न संहति का और न ऊर्जा का ही नाश अथवा सर्जन होता है।

जब कोई पदार्थ जलता है तब जलने वाले पदार्थों के भार जलने से बने उत्पादों के भार के समतुल्य होते हैं। दोनों के भारों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसी प्रकार प्रतिकारी पदार्थों की ऊर्जा और उत्पादों की ऊर्जा एक रहती है। यह सम्भव है कि ऊर्जा का रूप और भिन्न-भिन्न पदार्थों में उसका वितरण विभिन्न हो पर उन सबों का योग एक ही रहता है।

जब एक तत्त्व दूसरे तत्त्व के साथ मिलकर कोई यौगिक बनता है तब उनका अनुपात अणुभार के सरल अनुपात में ही होता है। ऐसे प्रतिकारी पदार्थों और उत्पादों को हम रासायनिक समीकरण द्वारा सुविधा से प्रगट कर सकते हैं। जब कार्बन आक्सिजन के साथ मिलकर कार्बन-डाइ-आक्साइड बनता है तब इस प्रतिक्रिया को समीकरण द्वारा इस प्रकार प्रगट करते हैं—



$$C + O_2 = CO_2$$

यह समीकरण अनेक बातों का द्योतक है।

१—कार्बन और आक्सिजन की प्रतिक्रिया से कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है।

२—कार्बन का एक परमाणु आक्सिजन के दो परमाणु अथवा एक अणु से मिलकर कार्बन-डाइ-आक्साइड का एक अणु बनता है जिसमें कार्बन के एक परमाणु और आक्सिजन के दो परमाणु विद्यमान हैं।

३—कार्बन का १२ ग्राम आक्सिजन के ३२ ग्राम से संयुक्त हो कार्बन-डाइ-आक्साइड का ४४ ग्राम बनता है (कार्बन का परमाणु भार १२ और आक्सिजन का १६ है)।

रासायनिक गणनाओं में अणु के स्थान में आज भार-अणु (moles) का व्यवहार हो रहा है। किसी पदार्थ का भार-अणु वह मात्रा है जिसको यदि पाउण्ड, ग्राम अथवा अन्य किसी सुविधाजनक इकाई में प्रगट करें तो संख्या में वह उसका अणु-भार होता है। वैज्ञानिक ग्रन्थों में ग्राम का ही व्यवहार होता है। इंजीनियरिंग पुस्तकों में भार की इकाई पाउण्ड प्रयुक्त होती है। ऊपर के समीकरण को अब इस प्रकार भी प्रगट कर सकते हैं—

कार्बन का एक पाउण्ड भार-अणु आक्सिजन के एक पाउण्ड भार-अणु से मिलने पर कार्बन-डाइ-आक्साइड का एक पाउण्ड भार-अणु बनता है।

दहन में जो समीकरण प्रयुक्त होते हैं वे इस प्रकार के हैं—



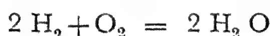
$$C + O_2 = CO_2$$



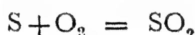
$$2\,C + O_2 = 2\,CO$$



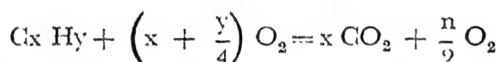
$$2\,CO + O_2 = 2\,CO_2$$



$$2\,H_2 + O_2 = 2\,H_2O$$



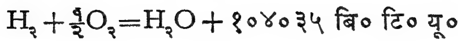
$$S + O_2 = SO_2$$



$$Cx\,Hy + \left(x + \frac{y}{4}\right) O_2 = x\,CO_2 + \frac{n}{2} O_2$$

रासायनिक प्रतिक्रियाओं में प्रतिकारी पदार्थों में परिवर्तन के साथ-साथ ऊर्जा में भी कुछ वितरण होता है। समस्त ऊर्जा तो वही रहती है पर विभिन्न उत्पादों में ऊर्जा का वितरण विभिन्न होता है। रासायनिक प्रतिक्रियाओं में ऊष्मा के रूप में ऊर्जा देखी जाती है।

जब कोई यौगिक बनता है तब उसके बनने में ऊष्मा का परिवर्तन देखा जाता है। कुछ यौगिकों के बनने में ऊष्मा का निष्कासन होता है और कुछ में ऊष्मा का अवशोषण। जब दो पाउण्ड हाइड्रोजन १६ पाउण्ड आक्सिजन के साथ मिलकर १८ पाउण्ड जल बनता है तब इस प्रतिक्रिया में १०४०३५ बि० टि० यू० ऊष्मा का निष्कासन होता है। इस प्रतिक्रिया को इस प्रकार प्रगट करते हैं—



$H_2 + \frac{1}{2}O_2 = H_2O +$ १०४०३५ बि० टि० यू०

जब जल को बिजली द्वारा हाइड्रोजन और आक्सिजन में विच्छेदित करते हैं तब विच्छेदन में इतनी ही ऊष्मा देनी पड़ती है। यह ऊष्मा यहाँ विद्युत से प्राप्त होती है।

अतः जल के निर्माण की ऊष्मा १०४०३५ बि० टि० यू० हुई—

ईंधन के दहन से ऊष्मा प्राप्त होती है। प्रधानतया ऊष्मा के लिए ही ईंधन का उपयोग होता है। ईंधन के तत्त्वों के आक्सीकरण से यह ऊष्मा प्राप्त होती है। विशिष्ट परिस्थितियों में दहन से जो ऊष्मा प्राप्त होती है उसे ईंधन का 'तापन-मान' कहते हैं। ऊष्मा की गणना के लिए इंजीनियरिंग पुस्तकों में ब्रिटिश थर्मल यूनिट या इकाई या बि० टि० यू० का उपयोग होता है। एक पाउण्ड जल के ताप को एक डिगरी ६०°–६१° फ०, बढ़ाने में जितनी ऊष्मा लगती है वही बि० टि० यू० है। कुछ ग्रन्थों में कलरी का उपयोग होता है। कलरी ऊष्मा की वह मात्रा है जो एक ग्राम जल के ताप को एक डिगरी, १५°–१६° से०, बढ़ाने के लिए आवश्यक होती है। कलरी छोटी होती है। इस कारण बड़ी कलरी का उपयोग होता है। बड़ी कलरी एक किलोग्राम जल के ताप को एक डिगरी बढ़ाने में खर्च होती है। १००० छोटी कलरी की एक बड़ी कलरी होती है।

तापन-मान के निर्धारण के लिए ईंधन को बड़ी सावधानी से जलाकर उससे जो ऊष्मा निकलती है उसे प्रामाणिक दशा में सावधानी से नापते हैं। ऊष्मा को जल में अवशोषित कर उससे जल के ताप में जो वृद्धि होती है उसे नापते हैं। जिस उपकरण में ऊष्मा का निर्धारण करते हैं उसे कलरीमापी (Calorimeter) कहते हैं। एक विशिष्ट प्रकार के कलरीमापी को 'बम कलरी मापी' कहते हैं। इसे आक्सिजन बम कलरीमापी भी कहते हैं क्योंकि इसमें ईंधन को जलाने के लिए वायु के स्थान में आक्सिजन का उपयोग करते हैं। बम कलरीमापी का चित्र विश्लेषण प्रकरण में दिया हुआ है।

उपयोग करने के पूर्व कलरीमापी को प्रामाणिक कर लेते हैं। इसके लिए किसी ऐसे पदार्थ को पहले जलाकर परीक्षण करते हैं जिसका ऊष्मा-मान ज्ञात है। इसके लिए साधारणतया बेंज़ोइक अम्ल अथवा नैफ्थलीन का उपयोग करते हैं।

कुछ ईंधनों के तापन-मान इस प्रकार हैं—

ईंधन	विशिष्ट भार १५·५° से०	भार प्रतिगैलन	बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड समस्त	बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड वास्तविक	बि० टि० यू० प्रति गैलन समस्त
पेट्रोल	०.७५७	६·३०	२१,०००	१९५०६	१३२३८४
किरासन	०·८१७	६·८०	२०,०००	१८५४५	१३६०४०
गैस तेल	०·८५८	७·३६	१९६११	—	१४०१११
ईंधन तेल	०·९०१	७·५१	१९,१८२	१८००२	१४४०३१
भंजित तेल	१·०१४	८·४५	१८,०७७	१७२१२	१५२७१४
बेंजीन	०·८८	७·३३	१८०५०	—	१३२१००
कोक-तारकोल	१·२०	१·०	१६,२००	—	१६२०००

ठोस ईंधन

नाम	नमी	राख	सूखी ईंधन के एक पाउण्ड का ऊष्मामान बि०टि०यू०	१ पाउण्ड सूखे ईंधन के जलाने के लिए गैस की मात्रा		१ पाउण्ड सूखे ईंधन के पूर्ण दहन में गैस का निर्माण		१ पाउण्ड सूखे ईंधन में जल की मात्रा. पाउण्ड में
				घनफुट	पाउण्ड	घनफुट	पाउण्ड	
चीड़ की लकड़ी	—	०·३७	९१५३	७९·६	६·०८	९१·२	७·०८	०·५६
जीर्णक वायु सूखा	६·३४	७·९३	९२९०	—	—	—	—	—
विटुमिनी कोयला	१·४४	६·१८	१४४५०	१३९·०	१०·६	१४५·७	११·५३	०·४७
अंथ्रेसाइट	२·२६	१२·६९	१२९३३	१२७·५	९·५७	१३०·४	१०·६३	०·२३
कोक	०·२	९·५२	१२५००	१३७·८	१०·५	१३७·९	११·८	०·०२
लकड़ी कोयला	१२·०	३·०	१२८५०	१३१·२	१०·०२	१३२·५	१०·८७	०·१२

डूलांग ने एक सूत्र दिया है जिसकी सहायता से ईंधन के अल्प विश्लेषणों से प्राप्त अंकों से ऊष्मा-मान की गणना की जा सकती है। वह सूत्र यह है—

प्रति पाउण्ड बि० टि० यू० = १४५·४ क + ६२०·३ (ह — अ/८) + ४५·५ ग

जहाँ क, ह, अ, ग क्रमशः कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन और गन्धक की प्रतिशतता है।

गैसीय ईंधन का ऊष्मा-मान गैस कलरी में निकाला जाता है। गैस के निश्चित आयतन को वायु में जलाते हैं। जलाने के समय कलरीमापी में जल की स्थायी धारा को बहाते हैं। गैस के दहन के समय पानी का ताप और संगृहीत जल की मात्रा को नापकर उससे ऊष्मा-मान की गणना करते हैं। दोनों ही दशाओं में दहन को पूर्णरूप से सम्पन्न करते हैं। यदि दहन पूर्णरूप से न हो तो प्राप्त अंक यथार्थ नहीं होता। गैस-ईंधन का ऊष्मा-मान संघटन और उपस्थित यौगिकों की दहन-ऊष्मा से निकाल सकते हैं। निम्नलिखित सारणी में अनेक शुद्ध गैसों की दहन-ऊष्मा के मान दिये हुए हैं। वाणिज्य गैसों के ऊष्मा-मान ऊपर दिये हुए हैं।

पदार्थ	सूत्र	दहन-ऊष्मा			
		बि. टि. यू. प्रति घनफुट		बि. टि. यू. प्रति पाउण्ड	
		समस्त (गणित)	वास्तविक	समस्त (गणित)	वास्तविक
कार्बन	C	—	—	१४०९३	१४०९३
हाइड्रोजन	H	३२५·०	२७५·०	६११००	५१६२३
कार्बन मनॉक्साइड	CO	३२१·८	३२१·८	४३४७	४३४७
मिथेन	CH_4	१०१३	९१३	२३८७९	२१५२०
ईथेन	C_2H_6	१७९२	१६४१	२२३२०	२०४३२
प्रोपेन	C_3H_8	२५९०	२३८५	२१६६१	१९९४४
न-ब्युटेन	C_4H_{10}	३३७०	३११३	२१३०८	१९६८०
आइसो-ब्युटेन	,,	३३६३	३१०५	२१२५७	१९६२९
न-पेण्टेन	C_5H_{12}	४०१६	३७०९	२१०९१	१९५१७
आइसो-पेण्टेन	C_5H_{12}	४००८	३७१६	२१०५२	१९४७८
नियो-पेण्टेन	C_5H_{12}	३९९३	३६९३	२०९७०	१९३९६
न-हेक्सेन	C_6H_{14}	४७६२	४४१२	२०९४०	१९४०३

पदार्थ	सूत्र	दहन-ऊष्मा			
		बि. टि. यू. घनफुट		बि. टि. यू. प्रति पाउण्ड	
एथिलीन	C_2H_4	१६१३·८	१५१३·२	२१६४४	२०२९५
प्रोपिलीन	C_3H_6	२३३६	२१८६	२१०४१	१९६९१
न-ब्युटिलीन	C_4H_8	३०८४	२८८५	२०८४०	१९४९६
बेंजीन	C_6H_6	३७५१	३६०१	१८२१०	१७४८०
टोल्विन	C_7H_8	४४८४	४२८४	१८४४०	१७६२०
जाइलिन	C_8H_{10}	५२३०	४९८०	१८६५०	१७७६०
एसिटिलीन	C_2H_2	१४९९	१४४८	२१५००	२०७७६
नैंपथलीन	$C_{10}H_8$	५८५४	५६५४	१७२९८	१६७०८
मेथिल अल्कोहल	C_2H_4O	८६७·९	७६८·०	१०२५९	९०७८
एथिल अल्कोहल	C_2H_6O	१६००·३	१४५०·५	१३१६१	११९२९
अमोनिया	NH_3	४४२·१	३६५·१	९६६८	८००१
गन्धक	S	—	—	३९८३	३९८३

दहन की ऊष्मा का निर्धारण किसी निश्चित ताप पर होना चाहिए, नहीं तो उनकी तुलना ठीक नहीं होती क्योंकि ताप के परिवर्तन से दहन-ऊष्मा की मात्रा में परिवर्तन होता है। इसके लिए एक विशिष्ट ताप १५·५° से० अथवा ६०° फ० निश्चित किया गया है। इसी ताप पर सब ईंधनों की दहन-ऊष्मा निकाली जाती है।

ऊपर जो तापन-मान दिये हुए हैं उनके दो मान हैं, एक समस्त और दूसरा वास्तविक। हाइड्रोजन का समस्त तापन-मान वह ऊष्मा है जो उस समय निकलती है जब दहन के उत्पाद का ताप १५·५° से० तक ठंढा किया जाता है। दहन से बनी जल-भाप उस ताप पर संघनित हो द्रवरूप ले लेती है। दहन का वास्तविक तापन-मान ऊष्मा की वह मात्रा है जो निकलती है जब हाइड्रोजन जल कर भाप बनता और वह भाप १५·५° से० पर संघनित नहीं होता वरन् भाप के रूप में ही रहता है। वास्तविक मान समस्त मान से सदा ही कम होता है।

प्राप्य ऊष्मा

दहन से जो ऊष्मा उत्पन्न होती है वह सारी की सारी ऊष्मा प्राप्य नहीं है। कुछ ऊष्मा नष्ट हो जाती है अर्थात वह ऊष्मा गरम करने में काम नहीं आती।

किसी ईंधन की समस्त ऊष्मा ईंधन की ऊष्मा, वायु की ऊष्मा और दहन की ऊष्मा है। इस ऊष्मा का कुछ अंश राख में रह जाता, कुछ अंश दहन-उत्पाद में निकल जाता और कुछ अंश बिना जले ईंधन में ही रह जाता है। समस्त ऊष्मा इस प्रकार से नष्ट हो गये अंशों के निकाल लेने पर जो ऊष्मा बच जाती है वही ईंधन की प्राप्य ऊष्मा है। प्राप्य ऊष्मा का मान प्राप्त करने के लिए हमें पदार्थों की विशिष्ट ऊष्मा का ज्ञान आवश्यक होता है।

विशिष्ट ऊष्मा

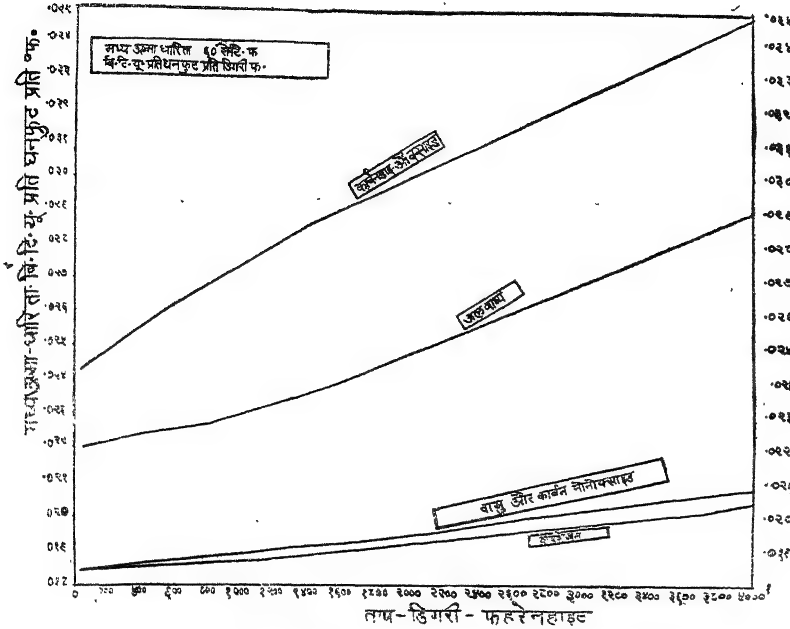
किसी पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा की वह मात्रा है जो उस पदार्थ के इकाई भार के ताप को एक डिगरी बढ़ाने में खर्च होती है। ऐसी ऊष्मा की तुलना जल की ऊष्मा से की जाती है। एक ग्राम जल के ताप को सेन्टीग्रेड अनुमाप में १५ से १६ डिगरी करने में जितनी ऊष्मा खर्च होती है वह एक मान ली गयी है। इसी प्रकार एक पाउण्ड जल के ताप को फाहरेन हाइट अनुमाप पर ६० से ६१ डिगरी ताप के बढ़ाने में जितनी ऊष्मा खर्च होती है उसे बि० टि० यू० इकाई कहते हैं। पाउण्ड और फाहरेन हाइट माप की डिगरी के बि० टि० यू०, और ग्राम और सेन्टीग्रेड डिगरी की कलरी की मान-संख्याएँ एक ही होती हैं, क्योंकि वस्तुतः यह संख्या अनुपात की है।

विशिष्ट ऊष्मा को स्थायी दबाव अथवा स्थायी आयतन की दशा में नापते हैं। पहला मान दूसरे से कुछ बड़ा होता है। साधारणतया स्थायी दबाव पर प्राप्त विशिष्ट ऊष्मा का मान ही दहन गणनाओं में प्रयुक्त होता है। आक्सिजन बम कलरीमापी में स्थायी आयतन की विशिष्ट ऊष्मा निकालते हैं। यदि विशिष्ट ऊष्मा को अणुभार से गुणा करें तो पदार्थों की अणुविशिष्ट ऊष्मा प्राप्त होती है। जल की अणुविशिष्ट ऊष्मा $१ \times १८ = १८$ होती है।

किसी दिये हुए ताप पर जब विशिष्ट ऊष्मा निकालते हैं तब वह पदार्थ की यथार्थ विशिष्ट ऊष्मा होती है। यह विशिष्ट ऊष्मा स्थायी नहीं होती। ताप से यह प्रभावित होती है। गणनाओं में मध्यमान विशिष्ट ऊष्मा का उपयोग उचित है। यह पदार्थ की एक इकाई की मात्रा के ताप को तापपसार के ऊपर उठाने में जो अंक प्राप्त होता है उसे ताप के अन्तर से भाग देने से प्राप्त होता है। ताप के परिवर्तन में गैसों की विशिष्ट ऊष्मा में द्रव और ठोसों की अपेक्षा अधिक अन्तर पड़ता है। इसके वक्र क्रमशः ऊपर उठते जाते हैं जैसे भाप और कार्बन-डाइ-आक्साइड के वक्रों से स्पष्ट हो जाता है।

विशिष्ट ऊष्मा में ताप के परिवर्तन से परिवर्तन होता है। इस कारण यथार्थ विशिष्ट ऊष्मा के स्थान में मध्यमान विशिष्ट ऊष्मा का उपयोग अच्छा है। यदि

मध्यमान विशिष्ट ऊष्मा प्राप्य न हो तो कोई दूसरा चारा नहीं है। विशिष्ट ऊष्मा का ही उपयोग तब कर सकते हैं। यह मान भौतिक ग्रन्थों अथवा भौतिक स्थिरांक



चित्र २०—ताप और बि॰ टि॰ यू॰ का पारस्परिक सम्बन्ध

ग्रन्थों में मिलता है। यदि ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध न हो तो कौप (Kopp) के नियम से तत्त्वों के परमाणुओं की ऊष्मा-धारिता को जोड़कर अणुविशिष्ट ऊष्मा प्राप्त हो सकती है। तत्त्वों की अणुविशिष्ट ऊष्मा, कार्बन की १·८, हाइड्रोजन की २·३, आक्सिजन की ४·०, गन्धक की ५·४, सिलिका की ३·८ और अन्य सब तत्त्वों की ६·२ है। केवल बोरोन, फ्लोरीन और फ़ास्फ़रस अपवाद हैं।

कला के परिवर्तन में ऊष्मा का खर्च

जब कोई पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदलता है जैसे ठोस का द्रव में, द्रव का वाष्प में, वाष्प का द्रव में और द्रव का ठोस में तो ऐसे परिवर्तन को 'कला का परिवर्तन' कहते हैं। बिना ताप के बदले भी कला का परिवर्तन हो सकता है जैसे १००° से॰ के जल का १००° से॰ के भाप में बदलना और १००° से॰ के भाप का १००° से॰ के जल में बदलना।

कला के परिवर्तन में ऊष्मा का परिवर्तन होता है। कहीं तो ऊष्मा बाहर निकलती और कहीं ऊष्मा अन्दर अवशोषित हो जाती है। १००° से० ताप और वायुमण्डल के दबाव पर एक पाउण्ड जल को एक पाउण्ड भाप में बदलने पर ८७०·४ बि०टि०यू० का अवशोषण होता है। जब यही भाप जल में बदलता तब इतनी ही ऊष्मा बाहर निकलती है। इस ऊष्मा को 'वाष्पन की ऊष्मा' अथवा वाष्पन-ऊष्मा अथवा वाष्पन की गुप्त ऊष्मा भी कहते हैं। विभिन्न पदार्थों की वाष्पन-ऊष्मा विभिन्न होती है। द्रव-ईंधनों की भी 'वाष्पन-ऊष्मा' होती है। द्रव-ईंधनों की वाष्पन-ऊष्मा जल की वाष्पन-ऊष्मा से कम होती है। ऊष्मा की गणनाओं में वाष्पन-ऊष्मा का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

द्रवों की वाष्पन-ऊष्मा की भाँति ही ठोसों की गलन-ऊष्मा होती है। ठोसों के एक इकाई भार के गलन में जो ऊष्मा निकलती है उसे उसकी 'गलन-ऊष्मा' अथवा 'गलन की गुप्त ऊष्मा' कहते हैं। वायुमण्डल के दबाव और ०° से० पर जब बर्फ़ गल कर पानी बनता है तब प्रति पाउण्ड ८८ बि०टि० यू. ऊष्मा निकलती है। अन्य भौतिक परिवर्तनों में भी ऊष्मा का क्षेपण अथवा अवशोषण होता है। जब कपूर ठोस दशा से वाष्पीय रूप में परिणत होता, गन्धक एक रूप से दूसरे अपररूप में बदलता अथवा एक मणिभ दूसरे मणिभ में परिवर्तित होता है तब भी ऊष्मा का परिवर्तन होता है। किसी पदार्थ की समस्त ऊष्मा उसकी संवेद्य ऊष्मा और गुप्त ऊष्मा का योग होती है।

अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं में ऊष्मा का परिवर्तन होता है। कुछ में ऊष्मा का क्षेपण होता है और कुछ में ऊष्मा का अवशोषण। जिन प्रतिक्रियाओं में ऊष्मा का क्षेपण होता है उन्हें 'ऊष्मा-क्षेपक' और जिनमें ऊष्मा का अवशोषण होता है उन्हें 'ऊष्मा-शोषक' कहते हैं। अधिकांश प्रतिक्रियाएँ ऊष्मा-क्षेपक होती हैं पर ऊष्मा-शोषक प्रतिक्रियाएँ भी अनेक हैं।

ऊष्मीय दक्षता

समस्त ऊष्मा-आदा का जितना अंश उपयोगी कामों में खर्च होता है उसके और समस्त ऊष्मा की आदा के अनुपात को 'ऊष्मीय दक्षता' कहते हैं। ऊष्मीय दक्षता के १०० से गुणा करने पर ऊष्मीय दक्षता की प्रतिशतता प्राप्त होती है।

ज्वाला का ताप

ज्वाला के वास्तविक ताप का ज्ञान प्राप्त करना बड़ा कठिन है पर ज्वाला के सैद्धान्तिक ताप का ज्ञान सरलता से हो जाता है। यही ताप गणनाओं में प्रयुक्त होता है। सैद्धान्तिक ताप में यह कल्पना कर ली जाती है कि दहन पूर्णतया हुआ है और ऊष्मा

की कोई हानि नहीं हुई है। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। कुछ न कुछ ऊष्मा की हानि अवश्य होती है। ज्वाला का वास्तविक ताप सैद्धान्तिक ताप से कुछ कम सदा ही रहता है। पर अंतर अधिक नहीं रहता। अतः ईंधनों की तुलना करने में सैद्धान्तिक ताप का उपयोग हो सकता है। किसी ईंधन की ज्वाला का सैद्धान्तिक

$$\text{ताप} = \frac{\text{वायु और ईंधन की संवेद्य ऊष्मा} + \text{दहन-ऊष्मा}}{\text{दहन-उत्पाद की समस्त मात्रा} \times \text{मध्यमान विशिष्ट ऊष्मा}}$$

१६५०° से० के आस-पास भाप और कार्बन-डाइ-आक्साइड का विघटन शीघ्रता से बढ़ जाता है जिसके कारण ताप गिर जाता है। दहन के उत्पाद के विघटन का इस ताप-प्रसार पर ध्यान रखना बड़ा आवश्यक है। गणनाओं में इसका संशोधन कर लेना आवश्यक होता है।

यदि दहन पूर्ण हो और वायु की सैद्धान्तिक मात्रा ही लगे तो उच्छिष्ट गैसों में केवल जल, कार्बन-डाइ-आक्साइड और नाइट्रोजन रहना चाहिये पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। ईंधन और वायु का पूर्ण संस्पर्श कभी नहीं होता। इस कारण दहन अधूरा रह जाता है। उच्छिष्ट गैसों में बिना जली कुछ गैसें, हाइड्रोजन, कार्बन मनाक्साइड आदि कुछ द्रव और ठोस बिना जले पदार्थ धुएँ के रूप में और कुछ आक्सिजन भी रह जाते हैं।

पूर्ण दहन के लिए वायु का आधिक्य रहना चाहिए। इससे चय (stack) गैसों में ऊष्मा की हानि बढ़ जाती है। दहन में कितनी वायु खर्च होती है यह भट्ठी की प्ररचना (design), ईंधन की प्रकृति और दहन के उपस्कर (equipment) पर निर्भर करता है। किसी भट्ठी के लिए वायु की अनुकूलतम मात्रा वह मात्रा है जिसमें बिना जले ईंधन और चय गैसों के रूप में ऊष्मा की हानि न्यूनतम होती है।

दहन की प्रतिक्रियाएँ

दहन में अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। ईंधन केवल आक्सिजन के साथ मिलकर दहन-उत्पाद ही नहीं बनता, वरन् दहन के अनेक उत्पाद भी आक्सिजन के साथ मिलकर फिर जलते हैं। यहाँ कुछ प्रतिक्रियाएँ ऊष्मा-क्षेपक होती हैं और कुछ ऊष्मा-शोषक। दहन की प्रमुख प्रतिक्रियाएँ निम्नलिखित हैं :—

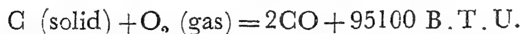
कार्बन (ठोस)+आक्सिजन (गैस)=कार्बन डाइ-आक्साइड (गैस)+१६९२९० बि. टि. यू.

$C \text{ (solid)} + O \text{ (gas)} = CO_2 \text{ (gas)} + 169290 \text{ B.T.U.}$

कार्बन (ठोस)+कार्बन डाइ-आक्साइड (गैस)=कार्बन मनाक्साइड – ७४२०० बि. टि. यू.


C (solid) + CO_2 (gas) = 2CO (gas) − 74200 B.T.U.

कार्बन (ठोस)+आक्सिजन (गैस)=कार्बन मनाक्साइड+९५१०० बि० टि० यू०


C (solid) + O_2 (gas) = 2CO + 95100 B.T.U.

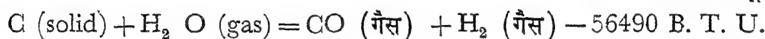
कार्बन मनाक्साइड (गैस)+आक्सिजन (गैस)=कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2) + २४३४९० बि. टि. यू.


2CO + O_2 (gas) = $2CO_2$ + 2431490 B.T.U.

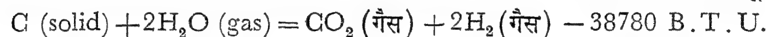
हाइड्रोजन (गैस)+आक्सिजन (गैस)=$2H_2$ O (भाप)+२०८०७० बि. टि. यू.


$2H_2$ (gas) + O_2 (gas) = $2H_2O$ (steam) + 208070 B. T. U.

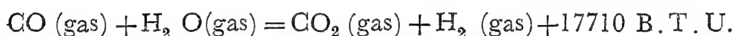
कार्बन (ठोस)+जल (भाप)=कार्बन मनाक्साइड (गैस)+हाइड्रोजन (गैस) − ५६४९० बि. टि. यू.


C (solid) + H_2 O (gas) = CO (गैस) + H_2 (गैस) − 56490 B. T. U.

कार्बन (ठोस)+जल (भाप)=कार्बन डाइ-आक्साइड (गैस)+हाइड्रोजन (गैस) − ३८७८० बि. टि. यू.


C (solid) + $2H_2O$ (gas) = CO_2 (गैस) + $2H_2$ (गैस) − 38780 B.T.U.

कार्बन मनाक्साइड (गैस)+जल (भाप)=कार्बन डाइ-आक्साइड (गैस)+हाइड्रोजन (गैस)+१७७१० बि. टि. यू.


CO (gas) + H_2 O(gas) = CO_2 (gas) + H_2 (gas) + 17710 B.T.U.

ऊपर के समीकरणों में धन चिन्ह से ऊष्मा का क्षेपण और ऋण चिन्ह से ऊष्मा का अवशोषण प्रगट होता है । ऊष्मा की मात्राएँ पूर्ण दहन पर की मात्राएं हैं जो वास्तव में नहीं होतीं। यह समझा जाता है कि दहन के उत्पाद एक ही ताप २५° से० और स्थिर दबाव पर दहन-क्षेत्र से बाहर निकलते हैं। पर साधारणतया ऐसा नहीं होता। ऊपर जो अंक दिये हुए हैं वे आदर्श दशा में उत्पन्न ऊष्मा की मात्राओं के अंक हैं। वास्तविक अंक नहीं हैं। उपर्युक्त प्रतिक्रियाएँ पूर्ण रूप से सम्पादित नहीं होतीं। अनेक कारकों का दहन पर प्रभाव पड़ता है। इनमें निम्नलिखित कारक महत्त्व के हैं—

साम्यावस्था—दहन की सब प्रतिक्रियाएँ उत्क्रमणीय होती हैं। एक दशा में ये प्रतिक्रियाएँ बायें से दायें चलती हैं और दूसरी दशा में दायें से बायें चल सकती हैं। प्रतिक्रियाओं का उत्क्रमण कभी-कभी ताप की वृद्धि और कभी-कभी उत्पादों और प्रतिकारी पदार्थों के संकेन्द्रण की विभिन्नता से होता है। किसी प्रतिक्रिया का सम्पादन होना बहुत कुछ प्रतिकारी पदार्थों के ताप पर निर्भर करता है।

विशिष्ट प्रतिक्रिया दर—गैसों की प्रतिक्रियाएँ साधारणतया मन्द होती हैं। कुछ प्रतिक्रियाएँ अधिक शीघ्रता से सम्पादित होती हैं और कुछ मन्दता से। जब कार्बन जलकर कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है तब ये प्रतिक्रियाएँ अत्यन्त द्रुतगति से ८००° से० के ऊपर सम्पादित होती हैं। कार्बन और कार्बन डाइ-आक्साइड के बीच प्रतिक्रिया इस ताप पर अपेक्षया मन्द होती है। ६००° से० के नीचे ताप पर यह शीघ्रता से सम्पादित होती है। ये दोनों प्रतिक्रियाएँ ठोस कार्बन और गैसों के बीच होती हैं। इस कारण कार्बन के तल का बड़ा प्रभाव पड़ता है। अन्य परिस्थितियाँ एक होते हुए प्रतिक्रिया तल के अनुपात में होती है। सब गैसों की प्रतिक्रियाएँ एक दर से नहीं होतीं। सब प्रकार के कोयले भी एक से नहीं जलते। कम सघन कोयले अधिक सघन कोयले से अधिक शीघ्रता से जलते हैं। लकड़ी का कोयला सब से कम सघन होता है। इस कारण कोक और अंथ्रेसाइट की अपेक्षा काठ-कोयला अधिक सरलता से जलता है।

ताप—ताप की वृद्धि से दहन की दर साधारणतया बढ़ जाती है। सामान्य ताप पर प्रत्येक १०° से० की वृद्धि से दहन दुगुना हो जाता है। पर ऊंचे ताप पर दहन की दर इतनी अधिक नहीं बढ़ती। १०००° से० पर दर के दुगुना होने के लिए १००° से० की वृद्धि होनी चाहिये। ताप की वृद्धि से दहन के उत्पाद का संघटन बहुत कुछ बदल जाता है और तब साम्यावस्था में भी परिवर्तन होता है।

उत्प्रेरक—उत्प्रेरकों के संस्पर्श से प्रतिक्रियाओं का बेग बढ़ जाता है। उत्प्रेरकों के तल का प्रतिक्रिया पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। तप्त कार्बन की उपस्थिति से भाप पर कार्बन डाइ-आक्साइड की प्रतिक्रिया का वेग बहुत बढ़ जाता है। यहाँ तप्त कार्बन उत्प्रेरक का काम करता है।

भट्ठी की अवस्था—दहन पर भट्टी का बहुत प्रभाव पड़ता है। इस कारण भट्ठी के निर्माण में सावधानी और अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। भट्ठी का एक आवश्यक अंग चूल्हा है जहाँ झर्झरी पर कोयला जलता है। झर्झरी के नीचे से वायु प्रविष्ट करती है। वायु कोयले को जलाती है। उच्च ताप से कोयले का वाष्पशील अंश वायु के साथ मिलकर जलता है। झर्झरी के ठीक ऊपर का ताप न्यूनतम होता है। उससे ऊपर ताप शीघ्रता से बढ़ता हुआ शिखर से कुछ इंचों के नीचे महत्तम होता और तब शिखर का ताप कुछ कम हो जाता है। कोयले के प्रज्वलनांक के ऊपर, ६०० से ८००° से०, का ताप रहता है। झर्झरी पर राख रहने और ठंढी वायु के प्रवेश के कारण झर्झरी के छड़ों की रक्षा होती है। झर्झरी पर दहन नहीं होता। झर्झरी के कुछ ऊपर दहन होता है। दहन का प्राथमिक उत्पाद कार्बन डाइ-आक्साइड है।

फिर धीरे-धीरे कार्बन मनॉक्साइड बनता है। कुछ समय के बाद गैसों के बीच साम्य स्थापित हो जाता है। यह साम्य चूल्हे के चौड़े नितल (bed) पर होता है जहाँ उत्पाद गैसों को कार्बन के संस्पर्श में पर्याप्त समय तक रहने का अवसर मिलता है। चूल्हे के संकरे नितल पर साम्य नहीं स्थापित होता। दहन भी पूर्णरूप से संकरे नितल पर नहीं होता। चूल्हे का नितल कम से कम ३ से ६ इंच गहरा होना चाहिए ताकि दहन ठीक-ठीक हो सके। यदि चूल्हे में जलना ठीक-ठीक हो तो दहन-गैसों में आक्सि-जन की मात्रा बड़ी अल्प रहती है पर कार्बन मनॉक्साइड अवश्य रहता है। दाह्य गैसों के चूल्हे से बिना जले निकल जाने से ऊष्मा की हानि होती है। इस कारण ईंधन के ऊपर आक्सिजन अधिक मात्रा में रहना चाहिए ताकि समस्त दाह्य गैसें पूरा जल कर ही निकलें। भाप के विच्छेदन से ऊंचे ताप पर हाइड्रोजन भी बनता है। ईंधन तल पर जो वायु दी जाती है उसे 'प्राथमिक वायु' कहते हैं। दहन के आरम्भ करने के लिए प्राथमिक वायु बहुत आवश्यक है। दहन को पूर्ण करने के लिए ईंधन के तल के ऊपर जो वायु दी जाती है उसे 'गौण वायु' कहते हैं।

ईंधन के दहन-ताप पर पहुँचने के पहले प्रायः सारा वाष्पशील द्रव वाष्प बन जाता है। वाष्पशील पदार्थों का कुछ भंजन भी होता है। पेट्रोल ऐसे अधिक वाष्पशील द्रवों को प्रज्वलन के पूर्व वायु से मिलाना अच्छा होता है। दूसरे द्रव स्वयं बड़े सूक्ष्म कणों में कणीकृत हो जाते हैं। वाष्पीभवन, भंजन और दहन प्रायः साथ ही साथ होते हैं। वायु के साथ मिश्रित हो जाने से दहन शीघ्रता से होता है। द्रव ईंधनों में दहन का नियंत्रण बड़ा आवश्यक होता है।

गैस-ईंधनों में वायु और गैस को मिला कर बर्नर में जलाते हैं। दहन यहाँ शीघ्रता से होता है पर पूर्ण दहन के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

तेरहवाँ अध्याय

ईंधन और दहन

कोयले का ईंधन से बड़ा घना सम्बन्ध है क्योंकि कोयले का सबसे अधिक उपयोग ईंधन के लिए ही होता है। ईंधन का दहन से बड़ा घना सम्बन्ध है क्योंकि ईंधन वायु में जलकर ही काम में आता है। अतः प्रारम्भ में ही ईंधन और दहन का कुछ ज्ञान बड़ा आवश्यक है।

ईंधन वह पदार्थ है जिसके आक्सीकरण से ऊष्मा या प्रकाश उत्पन्न होता है जिनका उपयोग हम घरेलू काम-काजों अथवा उद्योग-धन्धों में कर सकते हैं। जब ईंधन ऊष्मा और साधारणतया प्रकाश के उद्विकास के साथ-साथ आक्सीकृत होता है तब इसे हम 'दहन' कहते हैं। दहन साधारणतया ऊँचे ताप पर वायु की उपस्थिति में होता है।

उपलब्ध ईंधनों को हम साधारणतया दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। जो ईंधन प्रकृति में पाये जाते हैं उन्हें हम 'प्राकृतिक ईंधन' या 'प्रारम्भिक ईंधन' कहते हैं। इन्हें हम उसी रूप में व्यवहृत करते हैं जिस रूप में ये पाये जाते हैं। कुछ ईंधन ऐसे हैं जिन्हें हम तैयार करते हैं। इन्हें हम 'निर्मित ईंधन' या 'कृत्रिम ईंधन' कहते हैं।

प्राकृतिक ईंधनों में लकड़ी, विभिन्न प्रकार के कोयले, जीर्णक, लिगनाइट, विटु-मेन, अंथ्रेसाइट, खनिज तेल या पेट्रोलियम और पेट्रोलियम कूपों से निकली गैस है जिसे हम 'प्राकृतिक गैस' कहते हैं। ऐसे ईंधनों में लकड़ी का कोयला, कोयला-कोक, पेट्रोलियम-कोक, इष्टका, श्लेषमीय ईंधन, संश्लिष्ट पेट्रोलियम, पेट्रोल, किरासन, अल्कोहल, मृतशिलिका, कोयला-गैस, कोक-गैस, उत्पादक गैस, जल गैस, कारबुरित जल गैस, वात-भ्राष्ट्र गैस, एसिटिलीन गैस इत्यादि हैं।

भौतिक दशा के विचार से ईंधन गैसीय, द्रव और ठोस हो सकते हैं। जो वस्तुएँ ईंधन के रूप में व्यवहृत होती हैं वे इस प्रकार की हैं—

ठोस-ईंधन

प्राकृतिक	**निर्मित या कृत्रिम**
काठ	लकड़ी का कोयला

जीर्णक (Peat)	इष्टका कोयले का कोक
लिगनाइट कोयला	पेट्रोलियम का कोक
बिटुमिनी कोयला	श्लेषमीय ईंधन
अंथ्रेसाइट किस्म का कोयला	

द्रव ईंधन

प्राकृतिक	निर्मित
पेट्रोलियम	पेट्रोलियम प्रभाग और अवशेष
	अलकतरा और अलकतरे के प्रभाग
	अल्कोहल (मेथिल और एथिल)
	मृत-शिलिका और मृत-शिलिका प्रभाग

गैसीय ईंधन

प्राकृतिक	निर्मित
प्राकृतिक गैस	कोयला गैस
तरलीभूत पेट्रोलियम गैस	कोक गैस अथवा
	कोक-भट्ठी गैस
	उत्पादक गैस
	जल-गैस
	कारब्युरित जल-गैस
	वात-भ्राष्ट्र गैस
	एसिटिलीन गैस

इन ईंधनों से संसार में ९० प्रतिशत ऊर्जा प्राप्त होती है। शेष १० प्रतिशत ऊर्जा जल-शक्ति से प्राप्त होती है। जल-शक्ति अवश्य ही सस्ती होती है पर हर स्थान में यह सुलभ नहीं है। अतः इसके उद्गम सीमित हैं। अनेक उन्नत देशों में जहाँ जल शक्ति सरलता से प्राप्त हो सकती है उनके उपयोग का प्रयत्न हो रहा है। इस बात में अमेरिका बहुत बढ़ा हुआ है।

भारत में भी जल-शक्ति के उपयोग का प्रयत्न हो रहा है। पहले मैसूर और बम्बई में ही जल-शक्ति प्राप्य थी। अब बिहार की दामोदर घाटी योजना, उड़ीसा की हीराकुंड योजना, पंजाब की भखरा योजना, बंगाल-बिहार की मयूराक्षी योजना,

उत्तर प्रदेश की चुर्कस्थान योजना में जल-शक्ति की प्राप्ति का प्रयत्न हो रहा है और तब हमें पर्याप्त सस्ती ऊर्जा प्राप्त होने लगेगी। इससे कृषि की सिंचाई के साथ-साथ उद्योग-धन्धों के विकास में बड़ी सहायता मिलेगी। अनेक कुटीर उद्योगों का संचालन इससे हो सकेगा। किसान खेतों के कामों से फुर्सत मिलने पर कुटीर उद्योगों की सहायता से कुछ धन उपार्जन कर सकेंगे। इससे उनकी आर्थिक दशा में बहुत कुछ सुधार होने की सम्भावना है।

कुछ उद्योग-धन्धों में ऐसी वस्तुएँ बनती हैं जो आक्सीकरण से ऊष्मा उत्पन्न कर सकती हैं। इस ऊष्मा का उपयोग हो सकता है और तब ऐसी बनी वस्तुओं को "द्वितीयक ईंधन" कह सकते हैं। उदाहरण स्वरूप इस्पात के निर्माण में लोहे में कार्बन, सिलिकन और मैंगनीज़, अपद्रव्यों के रूप में रहते हैं। बेसेमर भट्ठी में ये अपद्रव्य जलकर ऊष्मा उत्पन्न कर इस्पात बनने में सहायक होते हैं। इसी प्रकार गन्धक के आक्सीकरण में जब सल्फर डाइ-आक्साइड बनता है तब ऊष्मा उत्पन्न होती है। यह ऊष्मा भाप बनाने में इस्तेमाल हो सकती है। इसी प्रकार ताम्र माक्षिक के प्रदावण (smelting) से पर्याप्त ऊष्मा उत्पन्न होती है जिसका उपयोग कहीं-कहीं हुआ है और हो सकता है।

गैसीय ईंधन

गैसीय ईंधन का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इसके उपयोग के निम्नलिखित लाभ हैं—

१. गैसीय ईंधन का प्रबन्ध करना सरल होता है। नलों के द्वारा इसे सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज सकते हैं।

२. गैसीय ईंधन में राख नहीं होती। अन्य बाह्य पदार्थ भी इसमें नहीं होते।

३. गैसों के दहन का नियंत्रण जल्दी हो जाता है। इन्हें एक-सा जलाकर ताप को स्थायी रख सकना सरल होता है। ऊष्मा को जहाँ चाहे वहाँ सरलता से इस्तेमाल कर सकते हैं। भट्ठे की दक्षता गैसों के जलाने से ऊँची होती है।

४. भट्ठे का वातावरण ऐसा रख सकते हैं कि आवश्यकतानुसार उसे आक्सीकरण अथवा अवकरण रख सकें।

५. गैसों के जलाने का ताप ऊँचा नहीं होता। साधारणतया ये ४६० से ७५०° से० के बीच जलते हैं।

६. गैसों को पुनर्जनित्र में पहले से गरम कर सकते हैं। इससे दहन का ताप ऊँचा होता है। अधिक गरमी नष्ट नहीं होती। तापीय दक्षता बढ़ जाती है।

७. अनेक गैसीय ईंधन निकृष्ट कोटि के ईंधन से तैयार हो सकते हैं।

८. अभ्यन्तर दहन इंजनों में गैसीय ईंधनों का उपयोग सीधे हो सकता है।

गैसीय ईंधनों के उपयोग में कुछ कठिनताएँ भी हैं। गैसों को इकट्ठा कर रखना सरल नहीं है। रखने के लिए बड़े-बड़े पात्रों की आवश्यकता होती है। कुछ गैसों को तो संग्रह कर रखना असम्भव होता है। भट्ठे में तैयार कर जलाने के लिए सीधे उन्हें ले जाते हैं। ऐसी दशा में जब उनका जलना बन्द करना पड़ता है तब बहुत कुछ गैसें खुली वायु में नष्ट हो जाती हैं। गैसों को कभी-कभी दबाव में बेलनों में रखने तथा द्रवीभूत कर रखने की भी आवश्यकता पड़ती है। प्राकृतिक गैसें इस प्रकार रखी जा सकती हैं।

प्राकृत गैस

यह गैस पेट्रोलियम कूपों से निकलती है। विशेषतः अमेरिका और रूमानिया में कच्चे पेट्रोलियम तेलों के साथ-साथ भी यह गैसें निकलती हैं और आसवन से निकालकर इकट्ठी की जा सकती हैं। इस गैस में हाइड्रोजन, मिथेन और ईंधन के अतिरिक्त अधिक वाष्पशील पैराफिन हाइड्रोकार्बन, प्रोपेन, ब्युटेन और पेण्टेन भी रहते हैं।

प्राकृत गैसों का तापन-मान अन्य सब ईंधन-गैसों से ऊँचा होता है। यह ११०० से १४०० बि० टि० यू० प्रतिघन फुट होता है। इस गैस के पूर्व-तापन की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि ऊँचे ताप पर ये विच्छेदित होकर कार्बन मुक्त करती है जो नलों में निक्षिप्त होकर रुकावटें पैदाकर बहाव को कम अथवा बिलकुल बन्द कर सकता है।

तरलीभूत पेट्रोलियम गैस

पेट्रोलियम कूपों तथा पेट्रोलियम तेलों से निकली गैसों में कुछ गैसें ऐसी होती हैं जो सामान्य ताप पर तो गैसीय होती हैं पर दबाव से तरलीभूत हो सकती हैं। ऐसी गैसों में प्रोपेन, ब्युटेन और पेराटेन हैं। पेराटेन का क्वथनांक २५ से ३५° से० है। भारत के ताप पर यह अधिकांश दिनों में गैसीय रहता है। पर ठंढे देशों अथवा शीतकाल में यह द्रव रहता है।

दबाव से यह शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाता है। ये वाष्पशील गैसें बेलनों में भरकर उपभोक्ताओं के पास वितरित की जा सकती हैं। पेराटेन का तापन-मान २५०० से ३५०० बि० टि० यू० प्रतिघन फुट होता है। यह तापन-मान प्राकृत गैस से भी ऊँचा है। यह गैस धातुओं के काटने और गैसों के कार्बनीकरण में प्रयुक्त होती है।

कोयला गैस या कोक गैस

कोयले को जब भभके में गरम करते हैं तब कोयले का कार्बनीकरण होता है। कार्बनीकरण में गैसें निकलती हैं। ऐसी गैसों को 'कोयला गैस' या 'कोक गैस' कहते हैं। चूंकि ये गैसें कोक निर्माण की भट्ठी में बनती हैं इन्हें 'कोक-भट्ठी गैस' भी कहते हैं। इन गैसों के निर्माण का वर्णन आगे विस्तार से होगा। अतः यहाँ अधिक नहीं दिया जाता है।

उत्पादक गैस

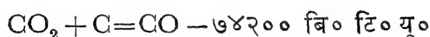
लकड़ी के कोयले, पत्थर के कोयले और कोक को तापदीप्त कर उस पर सीमित वायु के प्रदाय से गैसें प्राप्त होती हैं। ऐसी गैसों को 'उत्पादक गैस' कहते हैं। ये गैसें जनित्र में बनती हैं। जनित्रों को 'गैस उत्पादक' कहते हैं। जनित्र बड़े-बड़े आकार के ऊर्ध्वाधार अथवा रम्भाकार-ऊषा वाले भट्ठे होते हैं। इन भट्ठों के आस्तर अग्नि-ईंटों के बने होते हैं। इनमें ईधन ऊपर से डाला जाता है। ऊपर से गिरकर भट्ठे के तल पर यह बिखर कर फैल जाता है। झर्झरी द्वारा और ईंधन तल से वायु प्रविष्ट करती है। ईधन जलकर कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है।

कार्बन डाइ-आक्साइड के बनने में ऊष्मा का वहिर्गमन होता है। १६९२९० बि० टि० यू० ऊष्मा निकलती है।



$$C + O_2 = CO_2 + \text{१६९,२९० बि० टि० यू०}$$

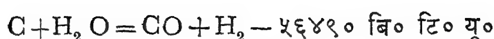
अर्थात् १२ पाउण्ड कार्बन के जलने में ३२ पाउण्ड आक्सिजन खर्च होता है और उससे ४४ पाउण्ड कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है तथा १६९,२९० बि० टि० यू० ऊष्मा निकलती है। तापदीप्त कार्बन के संस्पर्श में कार्बन डाइ-आक्साइड शीघ्र ही अवकृत हो कार्बन मनॉक्साइड बनता है। इस प्रतिक्रिया में ऊष्मा का अवशोषण होता है। पर यह प्रतिक्रिया प्रथम प्रतिक्रिया से मन्दतर गति से होती है।



$$CO_2 + C = CO - \text{७४२०० बि० टि० यू०}$$

इस कारण यद्यपि प्रतिक्रिया में ऊष्मा का अवशोषण होता है पर दोनों प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जनित्र का ताप ऊपर ही उठता है, नीचे नहीं आता।

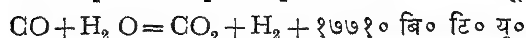
कुछ जनित्र में वायु के साथ-साथ नीचे से झर्झरी द्वारा भाप प्रविष्ट करायी जाती है। यहाँ कार्बन डाइ-आक्साइड और कार्बन मनॉक्साइड के बनने के साथ-साथ भाप की तापदीप्त कार्बन और कार्बन मनॉक्साइड की प्रतिक्रियाओं से हाइड्रोजन भी बनता है।



$C + H_2O = CO + H_2 -$ ५६४९० बि० टि० यू०



$C + 2H_2O = CO_2 + 2H_2 -$ ३८७८० बि० टि० यू०



$CO + H_2O = CO_2 + H_2 +$ १७७१० बि० टि० यू०

इन प्रतिक्रियाओं से कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है।

भाप के प्रवेश से केवल गैसों की मात्रा ही नहीं बढ़ती वरन् इससे जनित्र की झर्झरी ठंडी रहती और प्रझाम का बनना भी रुक जाता है। कम राखवाले और अधिक वाष्पशील कोयले को गैसों में परिणत करने के लिए प्रति पाउण्ड कोयले पर लगभग ५२ घन फुट वायु और ०·२ पाउण्ड भाप लगती है।

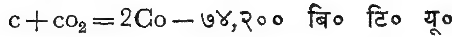
उत्पादक गैस का तापन-मान अपेक्षया अल्प, ११० से १७० बि० टि० यू० प्रति-घन फुट होता है। इसकी ज्वाला का ताप अपेक्षया नीचा होता है। कारण उत्पादक गैस में हाइड्रोजन की मात्रा थोड़ी रहती है। पर यह पर्याप्त सस्ता होता है। अतः अनेक उद्योग-धन्धों में इसका उपयोग होता है। कोक गैस के स्थान में चूल्हों में यह जलता है। इसके निर्माण का वर्णन विस्तार से आगे होगा। वायु के स्थान में आक्सिजन के उपयोग से उत्पादक गैस का तापन-मान बहुत कुछ बढ़ाया गया है।

जल-गैस

उत्पादक गैस की भाँति ही जल-गैस का निर्माण होता है। अन्तर केवल यह है कि ईंधन-तल पर वायु और भाप का प्रवेश बारी-बारी से कराया जाता है। जल-गैस भी वैसे ही जनित्र में तैयार होती है जैसे जनित्र में उत्पादक गैस तैयार होती है। जनित्र ऊर्ध्व रम्भाकार इस्पात का पात्र होता है। इसमें अग्नि-ईंट का आस्तर लगा रहता है। पेंदे में झर्झरी रहती है। शिखर पर गैस का निकास-मार्ग होता है।

जनित्र के ईंधन-तल को पहले वायु से भरते हैं। यहाँ प्रतिक्रियाएं वैसी ही होती हैं जैसी उत्पादक गैस के निर्माण में होती है। जो गैस बनती है उसमें नाइट्रोजन, कार्बन डाइ-आक्साइड और कार्बन मनॉक्साइड रहते हैं। यहाँ ऊष्मा का वहिर्गमन होता है और ईंधन तल का ताप ऊपर उठता है। वायु के भरने के समय को 'धमन' काल कहते हैं। जब ईंधन-तल पर्याप्त गरम हो जाता है तब वायु का भरना बन्द कर भाप प्रविष्ट कराते हैं। तापदीप्त कार्बन पर भाप की प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड बनते हैं। जनित्र में कई प्रतिक्रियाएं होती हैं। कौन प्रतिक्रिया किस पद पर होती है इसका ठीक-ठीक ज्ञान हमें नहीं है। सम्भवतः निम्नलिखित प्रतिक्रियाएँ होती हैं—

पहली तीन प्रतिक्रियाएं वही हैं जो उत्पादक गैस के निर्माण में होती है। चौथी प्रतिक्रिया इस प्रकार की है :—



$$c + co_2 = 2Co - \text{७४,२००}$$ बि० टि० यू०

कार्बन डाइ-आक्साइड कम से कम बने, इसके लिए ताप, गैस-वेग और संस्पर्श समय का नियंत्रण बहुत आवश्यक है। इन प्रतिक्रियाओं में ऊष्मा का खर्च होता है। इससे भट्ठी-तल का ताप शीघ्रता से गिर जाता है। ताप के गिर जाने से कार्बन डाइ-आक्साइड अधिक बनता है। इससे गैस का तापन-मान कम हो जाता है। कभी-कभी जब ताप १०००° से० के ऊपर रहे तब चक्र को बदल देने की आवश्यकता पड़ती है। अब भाप का प्रवेश बन्द कर वायु का भरना शुरू करते हैं।

भाप के 'प्रवेश काल' को 'धावन' काल कहते हैं। धावन काल में जो जल-गैस बनती है उसका तापन-मान उत्पादक गैस से ऊँचा होता है। सामान्यत: जल-गैस का तापन-मान प्राय: ३०० बि० टि० यू० प्रतिघन फुट होता है जो उत्पादक गैस के तापन-मान से ऊँचा है। जल-गैस हल्की नीली ज्वाला के साथ जलती है क्योंकि इसमें हाइड्रो कार्बन नहीं रहता। कभी-कभी इसे 'नीली गैस' भी कहते हैं।

कार्बुरित जल-गैस

जब जल-गैस के साथ तेल का वाष्प मिला रहता है तब उसे कार्बुरित जल-गैस कहते हैं। तप्त तल पर तेल के भंजन से तेल का वाष्प प्राप्त होता है।

जल-गैस जनित्र के साथ दो और कक्ष जोड़े जाते हैं। पहला कक्ष 'कारब्युरेटर' का और दूसरा कक्ष 'अधितापक' (superheater) का होता है। ये दोनों ही कक्ष ऊर्ध्वाधार रम्भाकार इस्पात के बने होते हैं। इनमें ऊष्म-सह ईंटों का आस्तर लगा रहता है। कक्ष अंशत: ईंटों से भरा भी रहता है। ये ईंटें गैस के बहाव के लिए अवरोधन का काम (checkerwork) करती हैं।

जनित्र चक्र में काम करता है। पहले वायु भरी जाती है (धमन काल), फिर भाप दी जाती है (धवन काल)। धमन में जो उत्पादक गैस जनित्र से निकलती है वह कारब्युरेटर और अधितापक द्वारा पारित होती है। कारब्युरेटर के शिखर से गौण वायु (secondary air) का प्रवेश इस कारण कराया जाता है कि गैस में बना कार्बन मनॉक्साइड जल जाय। इस दहन से जो ऊष्मा निकलती है वह कारब्युरेटर और अधितापक के ताप को ऊँचा रखती है।

जब उपयुक्त ताप पहुँच जाता है तब वायु के प्रवेश को रोक कर भाप को प्रविष्ट कराते हैं। जनित्र के शिखर से निकली गरम जल-गैसों को भी कारब्युरेटर के शिखर

से प्रविष्ट कराते हैं। साथ ही तेल को भी कारब्युरेटर में छिड़कते हैं। ताप्तदीप्त ईंट-चूल्हे के संस्पर्श से तेल के हाइड्रोकार्बन का भंजन होकर गैसीय उत्पाद बनता है। अधितापक में तेल का भंजन पूर्ण हो जाता और तप्त गैसें वहाँ से संघनित्र और शीतक में जाती हैं। ताप और तेल आदि के नियंत्रण से ऐसा उत्पाद प्राप्त होता है जिससे तापन-मान, घनता और अवयवों में विभिन्नता होती है।

तेल-गैस

कार्बुरित जल-गैस की भाँति ही तेल-गैस का निर्माण होता है। इसमें केवल तेल इस्तेमाल होता है। कुछ तेल को जलाकर कारब्युरेटर के ईंट-भट्ठे को गरम कर ताप इतना ऊँचा कर लेते हैं कि तेल का भंजन हो सके। जब तेल कारब्युरेटर में बहता रहता है तब दहन की वायु का प्रवेश बन्द कर देते हैं। तेल के हाइड्रोकार्बन का भंजन होकर गैसीय उत्पाद बनता है। इसे ठंडा कर शुद्ध कर लेते हैं। भंजन के समय कुछ कार्बन भी बनता है जो जनित्र में इकट्ठा होता रहता है। यदि कार्बन की मात्रा बढ़ जाय तो तेल का बहना रुक सकता है। कार्बन के इस निक्षेप को रोकने के लिए वायु प्रविष्ट कराते हैं। कार्बन के साथ इसकी क्रिया होकर कार्बन कार्बनमनॉक्साइड में बदलकर निकल जाता है। तेल-गैसों का तापन-मान और घनता विभिन्न होती है। तेल-गैस ही रसायनशाला में तैयार होकर गरम करने में व्यवहृत होती है। जनित्र में यह बनकर गैस-टंकी में वायु के साथ मिलाकर संगृहीत होती है।

वात-भ्राष्ट्र गैस

यह गैस लोहे के निर्माण में उपजात के रूप में प्राप्त होती है। वात-भ्राष्ट्र के शिखर से यह गैस निकलती है। इसमें प्रधानतया कार्बन मनॉक्साइड़ रहता है। हाइड्रोजन थोड़ी मात्रा में रहता है। इसमें कार्बन डाइ-आक्साइड और नाइट्रोजन पर्याप्त रहता है। अतः इसका तापन-मान अल्प, लगभग ९० से ११० बि० टि० यू० प्रतिघन फुट होता है। यह दूर नहीं भेजा जा सकता। जहाँ बनता है वहाँ ही भाप बनाने में इस्तेमाल होता है। इससे गैस-इंजन भी चल सकता है। कोकभट्ठी इससे गरम की जाती है। इसके अनेक उपयोगों का वर्णन आगे होगा।

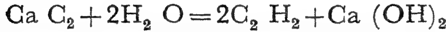
परिष्करणी तेल-गैस

पेट्रोलियम प्रभागों के भंजन में और पेट्रोलियम के परिष्कार में कुछ गैसें निकलती हैं जिनमें हाइड्रोकार्बन, संतृप्त और असंतृप्त दोनों प्रकार के रहते हैं। ऐसी गैसों का

संघटन एक-सा नहीं रहता। प्राकृत गैसों से यह गैस कुछ भिन्न होती है। इसका विशिष्ट भार और तापन-मान प्राकृत गैसों से भिन्न और कम होता है।

एसिटिलीन

कैलसियम कारबाइड पर जल की प्रतिक्रिया से एसिटिलीन गैस बनती है।



$$Ca\ C_2 + 2H_2\ O = 2C_2\ H_2 + Ca\ (OH)_2$$

इस गैस का तापन-मान बहुत ऊँचा, १४०० बि० टि० यू० प्रति घनफुट से ऊपर होता है। इसमें कार्बन की प्रतिशतता अधिक रहने से यह द्युतिमान ज्वाला के साथ जलता है। इसकी ज्वाला का ताप बहुत ऊँचा होता है। सैद्धान्तिक रूप से यह २६४२ से० होता है, धातुओं के काटने और जोड़ने में इसकी ज्वाला प्रयुक्त होती है। वायु के साथ यह विस्फोटक मिश्रण बनता है। अतः इसके साथ बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता पड़ती है। अनेक धातुओं, विशेषतः ताँबे के साथ यह विस्फोटक एसिटिलाइड बनता है।

द्रव-ईंधन

द्रव-ईंधन ठोस-ईंधन से अच्छे होते हैं। इनकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) द्रव-ईंधन कम स्थान, ठोस-ईंधन का प्रायः आधा स्थान, छेंकता है।

(२) एक ही तापन-मान के ईंधनों में द्रव-ईंधन का भार ३० प्रतिशत कम होता है।

(३) द्रव-ईंधन का संग्रह सरल होता है। किसी आकार की टंकी में यह रखा जा सकता है। संग्रह करने में गैसीय ईंधन से यह अधिक सरल होता है।

(४) कम परिश्रम से द्रव-ईंधन का प्रबन्ध हो सकता है। नलों के द्वारा यह सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को लाया जा सकता है।

(५) द्रव-ईंधन में राख प्रायः होती ही नहीं है।

(६) द्रव-ईंधन के दहन की दशा लचीली होती है। उसे सरलता से बदल सकते हैं।

(७) यदि द्रव-ईंधन बहुत अधिक वाष्पशील न हो तो संग्रह से वह नष्ट नहीं होता।

(८) अभ्यन्तर दहन इंजन में द्रव-ईंधन से सीधे शक्ति उत्पन्न हो सकती है।

(९) द्रव-ईंधन को पूर्व-तापन की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऊँचे ताप से विच्छेदन की सम्भावना रहती है।

द्रव-ईंधन की ज्वाला का नियंत्रण उतनी सरलता से नहीं होता जितनी सरलता से गैस-ईंधन की ज्वाला का नियंत्रण होता है। द्रव-ईंधन में यह एक दोष है।

पेट्रोलियम और उसके प्रभाग

कच्चा पेट्रोलियम ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है पर यदि पेट्रोलियम के विभिन्न प्रभागों में आसवन द्वारा अलग कर इस्तेमाल करें तो वह अधिक सुविधाजनक और कम खर्चीला होगा। आसवन से तेल का परिष्कार भी होता है। परिष्कार से गुणों में सुधार होता है। पेट्रोलियम के प्रभाग ही पेट्रोलियम या गैसोलीन और किरासन तेल हैं।

पेट्रोल के जलाने में वायु के साथ मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। अच्छे संमिश्रण से दहन जल्दी और एक रूप से होता है। पेट्रोल के जलाने में इसे वायु के साथ मिलाकर वाष्प बनाते हैं। यह वाष्प तब दहन-कक्ष में जाकर जलता है। यहाँ दहन वस्तुतः गैसीय-ईंधन का ही होता है। यदि पेट्रोलियम कम वाष्पशील है जैसे किरासन तेल में होता है तब उसे वाष्पीभूत करने के लिए गरम करने की आवश्यकता पड़ती है। किरासन तेल के क्वथनांक ताप के ऊपर ताप पर जो तेल आसुत होता है उसे 'ईंधन तेल' कहते हैं। ऐसा तेल शक्ति उत्पन्न करने में प्रयुक्त होता है। आटा पीसने की चक्की में यही तेल इस्तेमाल होता है। ऐसे तेल को विशेष प्रकार के बर्नरों में वायु के प्रबल प्रवाह से अथवा वाष्प से छोटे-छोटे कणों में विखरित करते हैं। कभी-कभी ऐसे तेल की तरलता (fludity) और विखरन की वृद्धि के लिए गरम करने की आवश्यकता पड़ती है।

पेट्रोलियम अनेक देशों में कूपों से प्राप्त होता है। कोयले के हाइड्रोजनीकरण से भी यह प्राप्त होता है। इसके निर्माण का वर्णन आगे होगा।

मृत्-शिलिका तेल

कुछ स्थलों में मृत्-शिलिका के वृहत् निक्षेप पाये जाते हैं। ये अवसादीय (sedimentary) चट्टानें हैं जिनमें कार्बनिक पदार्थ मिले रहते हैं। इनके भंजक आसवन से तेल प्राप्त होता है। एक टन मृत्-शिलिका से प्रायः १० से ६५ गैलन तक तेल प्राप्त हो सकता है। मृत्-शिलिका के भार का यह लगभग ४ से २५ प्रतिशत होता है। यह तेल पेट्रोलियम तेल से कुछ भिन्न होता है। इसमें असंतृप्त हाइड्रोकार्बन अधिक मात्रा में रहते हैं।

अनेक देशों में मृत्-शिलिका से तेल प्राप्त हुआ है। पेट्रोलियम के स्थान में इस

तेल का उपयोग हो सकता है। पर पेट्रोलियम से यह सस्ता नहीं पड़ता। सम्भव है, आसवन के सुधार और प्रभागों के परिष्कार की विधियों के सुधार से यह सस्ता प्राप्त हो सके।

ठोस-ईंधन

ठोस-ईंधनों में कई दोष हैं जिनसे इनका उपयोग धीरे-धीरे घट रहा है।

(१) ठोस-ईंधन में केवल वाह्य तल पर दहन होता है। इससे दहन अपेक्षया मन्द होता है।

(२) पूर्ण दहन के लिए आवश्यकता से अधिक वायु लगती है। द्रव और गैसीय ईंधन में जितनी वायु लगती है उससे कहीं अधिक।

(३) दहन में राख और धुआं दोनों बनते हैं।

(४) ठोस-ईंधन भट्ठियों में जलते हैं। भट्ठियों के बनाने में खर्च अधिक पड़ता है।

अच्छी भट्ठी बने, झर्झरी ठीक हो और ठोस-ईंधन को छानकर एक विस्तार का बनाकर प्रयुक्त किया जाय तो ठोस-ईंधन की दक्षता बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है।

ठोस-ईंधनों में नीचे लिखे ईंधन अधिक महत्त्व के हैं—

(१) लकड़ी—लकड़ी का व्यवहार घरेलू काम-काजों और उद्योग-धन्धे दोनों में समान रूप से होता है। लकड़ी के बुरादे और लकड़ी के कारखाने के निरर्थक अंश भी जलावन में काम आते हैं। लकड़ी का कोयला बनाकर भी उपयोग होता है। लोहे के निर्माण में वात-भट्ठी में कोक के स्थान पर लकड़ी के कोयले का उपयोग अच्छा समझा जाता है। इससे लोहा शुद्धतर उच्चकोटि का प्राप्त होता है। पर लकड़ी के कोयले का मूल्य कोक से अधिक होता है। महंगा होने के करण लकड़ी के कोयले का उपयोग उद्योग-धन्धों में सीमित है।

लकड़ी का तापन-मान अपेक्षया कम होता है। भिन्न-भिन्न किस्म की लकड़ियों के तापन-मान विभिन्न होते हैं। सूखी लकड़ी का तापन-मान ५००० से ६००० बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड होता है। नमी और आक्सिजन की उपस्थिति से इसका तापन-मान घट जाता है।

(२) जीर्णक—लकड़ी की भांति जीर्णक (पीट) का भी उपयोग जलावन के लिए होता है। जीर्णक का वर्णन आगे होगा।

(३) कोयला—इसका वर्णन आगे होगा।

(४) चूर्णित कोयला—चूर्ण किये कोयले का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

बड़े-बड़े बायलरों में, जहाँ प्रतिघंटा ५०,००० पाउण्ड से अधिक भाप बनती है, गरम करने के लिए चूर्ण किये कोयले का उपयोग होता है। बोकारो के थर्मल पावर हाउस में कोयले का ऐसा ही चूर्ण प्रयुक्त होता है। इसकी ज्वाला गैस की ज्वाला सी ही लंबी होती है पर इसमें दहन मन्द होता है। दहन के लिए बड़े-बड़े दहन-कक्ष की आवश्यकता पड़ती है। लाभ इसमें यह है कि निकृष्ट कोटि का कोयला या कोक भी इस्तेमाल हो सकता है।

(५) कोक—इसका वर्णन आगे होगा।

(६) इष्टका—लकड़ी के कोयले, पत्थर के कोयले और कोक के चूर्ण से इष्टका बनायी जाती है। इष्टका बनाने के लिए किसी बन्धक ऊष्मा और दबाव की आवश्यकता पड़ती है। इष्टका प्रधानतया घरेलू जलावन के लिए ही प्रयुक्त होती है।

(७) कोलायडल ईंधन—कोयले के बहुत बारीक चूर्ण को तेल में आस्रस्त करके जलाने से यह द्रव-ईंधन सा जलता है। तेल से ठोस चूर्ण अलग न हो जाय इसके लिए किसी स्थायिकारक (stabilizing agent) की आवश्यकता पड़ती है। एक प्रतिशत चूना-रोज़िन स्नेह इस काम के लिए उपयुक्त होता है। इस प्रकार तेल में स्थायी किये हुए कोयले के चूर्ण को 'कोलायडल ईंधन' या 'श्लेषामीय ईंधन' कहते हैं। इसका विस्तार छोटा होता है। कोलायडल का दहन स्वतः नहीं होता। इसका उपयोग जहाजों और रेलगाड़ियों में होता है।

चौदहवाँ अध्याय

पत्थर कोयले की उत्पत्ति

कोयला किससे बनता है, इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। सभी यह स्वीकार करते हैं कि पेड़-पौधों के युगों तक धरती के अन्दर सड़ने-गलने, दबाव और ऊष्मा से कोयला बनता है। भूरे कोयले और लिगनाइट सदृश कोयले में आँखों से देखने से भी पौधों की संरचना स्पष्ट देख पड़ती है, विटुमिन सदृश कोयले में सूक्ष्मदर्शी से देखने से कोशा-तन्तुएँ, बीजाणु और रेज़िन के कण देख पड़ते हैं। अंथ्रेसाइट सदृश कोयले में सूक्ष्मदर्शी से भी देखने पर कोशाओं का पता लगाना कुछ कठिन होता है।

कोयले की प्रकृति अनेक बातों पर निर्भर करती है। कैसे पेड़-पौधों से कोयला बना है; पेड़-पौधों का अपक्षय किस दर्जे तक हुआ है; किस दशा में जीर्णक बना है; जीर्णक पर कितना दबाव पड़ा है; कितनी ऊष्मा उत्पन्न होकर किस ताप पर कोयले के बनाने में कार्य हुआ है--इन सब बातों पर ही कोयले की प्रकृति निर्भर करती है; भूगर्भवेत्ताओं ने कोयले के बनने के काल को दो भागों में विभक्त किया है। एक कोयले की रचना का जीव-रासायनिक काल और दूसरा कोयले के बनने का प्रावैगिक-रासायनिक काल।

कोयले की रचना का जीव-रासायनिक काल

पेड़-पौधे जब धरती पर गिर पड़ते हैं तब उनका अपक्षय होना शुरू होता है। इस अपक्षय से लकड़ी से प्रथम जीर्णक (peat) बनता है। जीर्णक महापंकों में बनता है। महापंकों में जो पेड़ होते हैं उनमें छोटे-छोटे और शाकीय पौधे नहीं होते। वे वहाँ बड़े-बड़े पेड़ों के कारण पनपते नहीं हैं। धरती पर हरिता (moss) और कवाप्य (bchens) छाये रहते हैं। अनेक वर्षों के बाद पेड़ मर कर सूख जाते और तब गिर पड़ते हैं। धरती के उथल-पुथल से भी पेड़ों का गिर जाना सम्भव है। गिर पड़ने पर पेड़ विच्छेदित होना शुरू करते हैं। यह विच्छेदन अणु-जीवियों, बैक्टीरिया और कवकों के द्वारा होता है। इस काम में वायु और आर्द्रता से सहायता मिलती है। अणु-जीवियों से पेड़ की अधिकांश संरचनाएँ आक्रान्त होती हैं और उसका अपचयन

(disintegration) शुरू होता है। समय पाकर और पेड़ गिरकर पुराने पेड़ों को महापंकों में दबाते हैं। फिर और पेड़ उगते, बढ़ते और फिर मरकर गिरकर विच्छेदित होकर तह पर तह बनते जाते हैं। उन पर दबाव बढ़ता जाता है पर वायु के अभाव और प्रवाहहीन जल से सूक्ष्म-जीवी मर जाते हैं। तब उद्‌भिद् पदार्थों का और अपक्षय धीरे-धीरे मन्द होता जाता है। यदि और कोई क्रिया न हो तो इस प्रकार गड़ा हुआ पेड़-पौधा उसी आकार और संरचना का अनन्त काल तक पड़ा रह सकता है पर यह कार्य रुकता नहीं है। पौधों का बढ़ना, मरना और अपक्षय होना बराबर चलता रहता है। औद्‌भिदीय पदार्थों का मलबा (debris) कई फुट गहरा बन जाता है। ऐसे अनेक महापंक आज भी अमेरिका में हैं और जीर्णक बनाने का काम निरन्तर कर रहे हैं। एक समय में भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, हैदराबाद राज्य और आसाम में भी ऐसे ही महापंक थे जिनके कारण कोयले की खानें वहां आज मिलती हैं। भारत में आज ऐसे महापंक (स्वांप) और जंगल नहीं हैं जहां कोयला बनने का काम हो रहा है। भारत के महापंक लाखों वर्ष पूर्व में थे। ऐसे समय में थे जब कोई मनुष्य धरती पर नहीं था। उस समय केवल पेड़ पौधे ही उगे हुए थे और सम्भवतः कुछ ऐसे जन्तु थे जिनका आज अस्तित्व नहीं है।

जिस काल में पेड़-पौधों का यह अपक्षय हुआ था उस काल को 'जी.व-रासायनिक काल' कहते हैं। जीर्णक (peat) के निर्माण में पेड़ों के सब संघटक एक गति से विघटित नहीं होते। तेल और प्रोटोप्लाज़्म पहले विघटित होते हैं। फिर सेल्यूलोज और लिगनिन सदृश कार्बोहाइड्रेट विघटित होते हैं। बीजाणु, मोम और रेजिन अधिक प्रतिरोधक होते हैं। इस कारण बहुत काल तक वे अविघटित रह जाते हैं। रेज़िन तो बहुत अधिक काल तक अविच्छेदित रह जाता है। वह कोयले में भी पाया जाता है। जीर्णक के निक्षेप और गुणों पर पेड़-पौधों की प्रकृति, संघटकों के अपक्षय की डिगरी आदि का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

कोयले की रचना में प्रावैगिक-रासायनिक काल

जीर्णक का कोयले में परिवर्तन एक-पर-एक स्तर (strata) पड़ने से दबाव और ऊष्मा के कारण होता है। पहाड़ों के बनने और धरती के उथल-पुथल के कारण भी ऐसा हो सकता है। इस परिवर्तन में पौधों में उपस्थित खनिजों का भी हाथ है।

धरती की पर्पटी (crush) पर सदा ही कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। यह परिवर्तन लाखों वर्ष पहले बहुत अधिक होता था। कहीं धरती ऊपर उठती थी और कहीं धरती धँस जाती थी। कहीं पहाड़ उठता था तो कहीं समुद्र बन जाता था।

इससे जीर्णक धरती के अन्दर अधिकाधिक दबता जाता था। कहीं तल पानी से भरकर झील बन जाता था। पानी के भर जाने के कारण पेड़-पौधों का उगना बन्द हो जाता था। ऊंची धरती से भल (silt), रेत और मिट्टी आकर जीर्णक को ढँक देती थी। इससे जीर्णक अधिक सघन हो जाता है। इसके प्रतिकूल कभी-कभी जीर्णक का तल ऊपर उठ जाता, उसका पानी सूख जाता और ज़मीन सूख जाती या पहाड़-पहाड़ी बन जाती है। ऐसे बनने में जीर्णक पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। ऊष्मा भी उत्पन्न होती है। ऊष्मा कुछ तो तल के कारण और कुछ रासायनिक प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न होती है। ऐसी परिस्थिति बहुत काल तक बनी रहती है। इससे जीर्णक में अनेक परिवर्तन होते हैं। मिथेन गैस निकलती है। निक्षेप में कार्बन की मात्रा बढ़ती है। जीर्णक में धीरे-धीरे परिवर्तन होता हुआ, अनेक परिस्थितियों से पार करता हुआ अन्त में वह अंथ्रेसाइट में परिणत हो जाता है। ऐसा होने में आक्सिजन की मात्रा क्रमशः कम होती जाती है। हाइड्रोजन की मात्रा में विशेष अन्तर नहीं पड़ता। इससे मालूम होता है कि आक्सिजन केवल कार्बन डाइ-आक्साइड के रूप में ही निकलता है। केवल अंथ्रेसाइट में हाइड्रोजन की मात्रा कुछ कम रहती है। यहाँ हाइड्रोजन अवश्य ही हाइड्रो-कार्बन के रूप में निकलता है।

	जलमात्रा प्रतिशत	राखमुक्त के आधार पर शुष्क पदार्थ में मात्रा प्रतिशत			
		कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सिजन	९०० से० वाष्पशील पदार्थ
काठ (औसत)	२०	५०	६	४२·५	७५
जीर्णक	९०	६०	५·५	३२·३	६५
भूरा कोयला	६०—४०	६०—७०	प्रायः ५	२५ से अधिक	५० से अधिक
लिगनाइट	४०—२०	६५—७५	प्रायः ५	१६—२५	४० से ५०
उप-विटुमिनी	२३—१०	७५—८०	४·५—५·५	१२—२१	प्रायः ४५
विटुमिनी	१०	७५—९०	४·५—५·५	५—२०	१८—४०
अर्ध-विटुमिनी	५ से कम	९०—९२	४·०—४·५	४—५	१५—२०
अंथ्रेसाइट	५ से कम	९२·९४	३·०—४·०	३—४	१५

जीर्णक को लिग्नाइट और अंथ्रेसाइट में परिणत होने में, लाखों करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। कितने समय और कैसी परिस्थिति में यह समय लगा है, यह कोयले की प्रकृति से अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा अनुमान है कि कोयले के निर्माण का ताप १००° से० से लेकर ६००° से० तक रहता है। अधिक गहराई में पड़े कोयले पर १५०० वायु मण्डल तक का दबाव रह सकता है।

कुछ कोयले के निर्माण में बहुत अधिक दबाव लगा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। एक ही खान में भिन्न-भिन्न गहराई के कोयले पर विभिन्न दबाव का रहना स्वाभाविक है। इससे विभिन्न स्तरों के कोयले के विश्लेषण में अन्तर होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे समय को जब जीर्णक पर दबाव अधिक रहता और उसका ताप भी ऊँचा रहता है "प्रावैगिक-रासायनिक काल" (Dynamo-chemical period) कहते हैं। जीर्णक को कोयले में परिणत करने को जीर्णक का 'कोयलाकरण' (coalification) अथवा 'परिवर्तना' (metamorphism) कहते हैं।

कितने औद्भिद पदार्थ से कितना कोयला बनता है, इसका संगणन (computation) सरल नहीं है। ऐसे संगणन की कोई सन्तोषप्रद रीति हमें मालूम नहीं है। इस सम्बन्ध में जो कुछ अध्ययन और अनुसन्धान हुए हैं उनसे पता लगता है कि लकड़ी से जीर्णक बनने में लकड़ी का सात या आठ भाग जीर्णक के एक भाग में परिणत हो जाता है। १०० वर्ष में जीर्णक १ फुट की गहराई का बनता है। जीर्णक का ३ फुट स्तर बिटुमिनी कोयले के एक फुट स्तर में परिणत हो जाता है। इस प्रकार कोयले के एक फुट के स्तर के बनने में लकड़ी का प्रायः २० से २५ फुट स्तर लगता है।

कोयले के सब स्तरों में पर्याप्त मात्रा में खनिज लवण रहते हैं। कोयले के दो स्तरों के बीच बहुधा मिट्टी, घोंघे, शिलिका (slate) या अन्य कार्बनिक पदार्थों के स्तर रहते हैं। ये स्तर एक इंच से कई फुट तक की मोटाई के होते हैं। कोयले में लोहे के सल्फ़ाइड चूना-पत्थर, बालू, मिट्टी आदि भी मिली रहती है। इनके बड़े-बड़े टुकड़ों से लेकर छोटे-छोटे दाने तक पाये जाते हैं। जीर्णक के स्तर बनने के समय सम्भवतः ये पानी से आ जाते हैं।

सम्भव है कि कैलसियम सल्फ़ेट के अवकरण से सल्फ़ाइड बनता है। औद्भिद पदार्थों के अपक्षय से हाइड्रोजन सल्फ़ाइ बनकर उससे सल्फ़ाइड बनता है। वायु की उपस्थिति में सल्फ़ाइड के आक्सीकरण से भी सल्फ़ेट बनकर कोयले में रह सकता है। इस कारण पौधों की संरचना के साथ-साथ कोयले में खनिज पदार्थ संयुक्त रहते हैं।

कोयले के दो स्तर कभी भी एक से नहीं होते। सम्भव है, जिन पेड़-पौधों से वे

बने होते हैं वे एक से नहीं हों। कोयले के बनने की परिस्थितियाँ भी एक सी नहीं होतीं अतः कोयले के स्तरों का भिन्न-भिन्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

ऊपर के सिद्धांतों से अधिकांश कोयले के निर्माण की व्याख्या सरलता से हो जाती है। पर पंक-कोयले अथवा वर्ति-कोयले (boghead or cannel coal) की व्याख्या इनसे नहीं होती। ऐसे कोयले में बीजाणु और बीजाणु वाह्य कवच अधिक मात्रा में रहते हैं। ये बीजाणु प्रहारिता (licheus), हरिता (mosses) और पर्णांग के बने होते हैं। इनके बाह्य कवच पर मोम और रेज़िन सा पदार्थ अधिक रहता है। ये रासायनिक परिवर्तन और सूक्ष्म जीवियों की क्रिया के प्रतिरोधक होते हैं। यह सम्भव है कि ऐसे कोयले किसी जीर्णक-पंक के तालाब में बने हों जहाँ से वे पानी से बहाकर लाये जाकर बड़ी मात्रा में इकट्ठे हुए हों और समय पाकर मिट्टी से ढँक गये हों। पंक-कोयले भी इसी रीति से बनते हैं। पंक-कोयले में आप्यका अधिक रहती है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

कोयले का वर्गीकरण

कोयले अनेक प्रकार के होते हैं। उनके उपयोग भी अनेक हैं। अनेक स्थलों में वे पाये जाते हैं। धरती के अन्दर खानों में भिन्न-भिन्न गहराई से वे निकलते हैं। एक ही खान से निकले भिन्न-भिन्न गहराई के कोयले एक से नहीं होते। स्थान की विभिन्नता और खानों की गहराई से कोयले में विभिन्नता होती है। कोयले का वर्गीकरण अनेक प्रकार से हुआ है। उत्पादकों ने अपने दृष्टिकोण से वर्गीकरण किया है, उपभोक्ताओं ने अपने दृष्टिकोण से और वैज्ञानिकों ने अपने दृष्टिकोण से। किसी ने कोयले के एक गुण के आधार पर, किसी ने कोयले के दूसरे गुण के आधार पर और किसी ने कोयले के अनेक गुणों के आधार पर वर्गीकरण किया है। किसी ने विश्लेषण अंकों के आधार पर, किसी ने संरचना के आधार पर, किसी ने विस्तार और बाह्य रूप के आधार पर और किसी ने ऊष्मा के प्रति व्यवहार के आधार पर कोयले का वर्गीकरण किया है।

किस प्रकार के पौधों से कोयला बना है, इस दृष्टि से कोयले दो प्रकार के होते हैं। जो कोयले बड़े-बड़े पेड़ों और उनके वल्कों से बने हैं उन्हें धरणिक (humic) कोयला कहते हैं। भारत के सब कोयले इसी वर्ग के हैं। दूसरे प्रकार के कोयले छोटे-छोटे पौधों से बने होते हैं। इन्हें हम अधरणिक (sapropelic) कोयला कहेंगे। अधरणिक कोयला महत्त्व का नहीं है। इसकी मात्रा भी अधिक नहीं पायी जाती। भारत में यह कोयला बिल्कुल नहीं पाया जाता। आसवन से इससे बड़ी मात्रा में तेल प्राप्त होता है। वाष्पशील अंश इसमें अधिक और कार्बन कम रहता है। कभी-कभी दियासलाई से आग लगाने पर यह कोयला जलने लगता है।

अमेरिका में कोयले का जो वर्गीकरण हुआ है वह वर्गीकरण अधिक प्रामाणिक समझा जाता है। इस वर्गीकरण को अमेरिकी स्टैंडर्ड एसोसियेशन ने सन् १९३८ ई० में अभिग्रहण किया था। यह वर्गीकरण वाष्पशील अंश और स्थायी कार्बन के आधार पर हुआ है। ऊँची कोटि के कोयले को शुष्क कोयले के आधार पर और नीची कोटि के

कोयले को आर्द्र कोयले के और ऊष्मा उत्पन्न करने के आधार पर किया गया है।

यह वर्गीकरण प्राथमिक विश्लेषण पर आधारित है। यहाँ वाष्पशील अंश और स्थायी कार्बन की मात्रा निकालते हैं। इसमें निम्नलिखित समीकरण का उपयोग करते हैं।

वाष्पशील अंश (शुष्क खनिज लवण रहित कोयले में) की प्रतिशतता

= १०० — शुष्क खनिज लवण रहित स्थायी कार्बन प्रतिशतता

स्थायी कार्बन (शुष्क खनिज लवण रहित कोयले में) की प्रतिशतता

$$= \frac{\text{१०० स्थायी कार्बन प्रतिशतता—१५ गन्धक}}{\text{१०० — (आर्द्रता प्रतिशतता + १०८ राख प्रतिशतता + ०·५५ गन्धक प्रतिशतता)}}$$

आर्द्र खनिज लवण रहित बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड

$$= \frac{\text{१०० बि० टि० यू०—५००० गन्धक प्रतिशतता}}{\text{१००—१०८ राखप्रतिशतता—०·००५ गन्धक प्रतिशतता}}$$

यहाँ खनिज लवण से राख का मतलब नहीं है। उत्तापन से राख प्राप्त होती है। उत्तापन से कोयले के खनिज लवणों में परिवर्तन होता है। अतः खनिज लवणों की मात्रा राख में ज्यों की त्यों नहीं बनी रहती। राख से खनिज लवण की मात्रा निकालने में राख की मात्रा में संशोधन की आवश्यकता पड़ती है। आर्द्र कोयले का मतलब कोयले के उस जल से है जो खानों से कोयले के निकालने पर कोयले में विद्यमान रहता है।

यहाँ कोयले का वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है—

कोयला

काठ	जीर्णक	लिग्नाइट	उप बिटुमिनी	बिटुमिनी	अर्ध बिटुमिनी	अर्ध अंथ्रेसाइट	अंथ्रे-साइट	ग्रेफाइट

काठ कोयला नहीं है पर काठ से ही प्रायः समस्त कोयला प्राप्त होता है। जीर्णक भी कोयला नहीं समझा जाता। कोयला बनने की यह प्रथम अवस्था ह। उद्भिद्

पदार्थों के अंशतः अपक्षय से जीर्णक प्राप्त होता है। यह अपक्षय आर्द्र दशा में आर्द्र-स्थलों में होता है। आर्द्रस्थल या तो ऊँची भूमि का ढालवा तल होता है अथवा नीची भूमि का छिछला खात (shallow basin)। जीर्णक का बाह्य तल हलके भूरे रंग का होता है। उसमें औद्भिदी-संरचना स्पष्टतया देख पड़ती है। जैसे-जैसे हम जीर्णक के अभ्यन्तर भाग में प्रवेश करते हैं, रंग गाढ़ा हो जाता है तब जीर्णक न्यूनाधिक जेली सा श्लेषाभ होता है। इसमें औद्भिद संरचना दीख नहीं पड़ती। जीर्णक में जल की मात्रा ८० से ९० प्रतिशत रहती है पर वायु में खुला रखने से जल की मात्रा कम हो जाती है। यदि जीर्णक को वायु में सुखा दिया जाय तो जल की मात्रा कम होकर ६ से १५ प्रतिशत रह जाती है। जीर्णक को इससे अधिक सुखाया नहीं जा सकता। अधिक सुखाने से काष्ठ-कोशा की बनावट नष्ट हो जाती है। जीर्णक के सुखा देने पर वह कठोर और भंगुर हो जाता है। ऐसी दशा में जलावन के लिए इस्तेमाल हो सकता है। पर जीर्णक का ऊष्मा-मान अल्प होता है। साधारणतया यह ६००० से ९००० बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड होता है। जीर्णक कोयले से हलका होता है। हाथ से दबाने से चूर-चूर हो जाता है। इसके खोदने और सुखाने में अधिक खर्च पड़ता है।

जलावन के लिए जीर्णक का साधारणतया उपयोग नहीं होता पर जलावन के लिए उसका उपयोग हो सकता है। इसमें गन्धक की मात्रा कम होने से इसके उपयोग में लाभ है। आयर्लैंड सदृश कुछ देशों में जलावन के लिए जीर्णक इस्तेमाल होता है। यदि इसकी इष्टका बना लें तो जलावन के लिए यह अधिक सुविधाजनक होगा। जीर्णक के चूर्ण को दबाकर अथवा कोई बन्धक डालकर इष्टका बना सकते हैं। जीर्णक का उपयोग उर्वरक के रूप में भी हुआ है और होता है क्योंकि इसमें नाइट्रोजन २ प्रतिशत तक रहता है। वस्तुओं के लपेटने और पृथ्थकारक (insulator) के रूप में इसका उपयोग होता है। मिट्टी के ढीला करने में भी यह काम आ सकता है।

दक्खिन भारत की नीलगिरी पहाड़ी की ६००० फुट ऊंचाई की दलदल भूमि में जीर्णक पाया गया है। ऐसा समझा जाता है कि इस जीर्णक पंक में यह विस्तृत रूप से विद्यमान है। सुखाया हुआ जीर्णक जलावन के लिए ऊटकमंड लाया जाता है। कलकत्ते के आस-पास हुगली नदी के दोनों तटों पर १८ से ३५ फुट की गहराई में जीर्णक सा पदार्थ मिलता है। कश्मीर और नेपाल में भी जीर्णक पाया गया है। सम्भवतः वह जीर्णक नहीं है, लिग्नाइट है।

सारिणी

प्रजाति	कच्चे में आर्द्रता %	शुष्क राख-सहित कोयले में			
		कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सिजन	९००° से० पर वाष्प-शीलता
काठ	२०	५०	६	४२·५	७५
जीर्णक	९०	६०	५·५	३२·३	६५
भुरा कोयला	६०—४०	६०—७०	प्रायः ५	२५ से अधिक	५० से अधिक
लिगनाइट	४०—२०	६५—७५	प्रायः ५	१६—२५	४०—५०
उप-बिटुमिनी	२०—१०	७५—८०	४·५—५·५	१२—२१	प्रायः ४५
बिटुमिनी	१०	७५—९०	४·५—५·५	५—२०	१८—४०
अर्ध-बिटुमिनी	५ से कम	९०—९५	४·०—४·५	४—५	५—२०
अंथ्रेसाइट	५ से कम	९२—९४	३·०—४·०	३·४	१५

लिगनाइट

जीर्णक से कोयला बनने का लिगनाइट प्रथम क्रम है अतः लिगनाइट जीर्णक से बहुत मिलता-जुलता है। इसमें भी काष्ठ की संरचना रहती है और काष्ठ-कोशाएँ देखी जा सकती हैं। पर जीर्णक से यह अधिक सघन होता है। इसका रंग भूरा होता है। वायु में खुला रहने से रंग गाढ़ा हो जाता है। इसमें कुछ रेज़िन भी रहता है।

लिगनाइट में आर्द्रता २० से ४५ प्रतिशत रहती है। वायु में खुला रखने से सूखकर आर्द्रता १५ प्रतिशत हो जाती है। सूखने पर यह सिकुड़ता है और चूर-चूर हो जाता है। कभी-कभी आक्सिजन के शीघ्र अवशोषण के कारण इसमें स्वतः आग लग सकती है। इस कारण इसे सावधानी से वायु-शून्य स्थान में संग्रह करने की आवश्यकता होती है।

धुएँ के साथ यह शीघ्रता से जलने लगता है। तपाने की क्षमता अपेक्षया अल्प होती है। बिना सूखे लिगनाइट का तापन-मान ५५०० से ८००० बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड होता है। राख और आर्द्रता रहित लिगनाइट के आधार पर तापन-मान १०,००० से १५,००० बि० टि० यू० होता है।

आसाम, कश्मीर और पंजाब के तृतीयक कोयले लिगनाइट वर्ग के हैं। भारत के खटी कोयले भी इसी वर्ग के हैं। बीकानेर के पलान का कोयला लिगनाइट है।

रामपुर के आस-पास करुन नदी की रेत के नीचे भी लिगनाइट के पाये जाने का पता लगा है। ट्रांवनकोर और मालावार तटों पर लिगनाइट पाया जाता है। मद्रास के दक्खिन आर्कोट जिले में २० से ७० फुट की मोटाई में विस्तृत लिगनाइट पाया गया है। अमेरिका के अनेक स्थलों में हजारों मील के विस्तार में लिगनाइट पाया जाता है।

लिगनाइट जलावन में काम आता है। इसका उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इसका दोष यह है कि यह सरलता से चूर-चूर होकर ले जाने-ले आने में बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। इसका अल्प तापन-मान और ऊँच आर्द्रता भी बाधक है। इष्टका बनाकर इसका उपयोग अधिकता से होता है। उत्पादक गैस के निर्माण में यह प्रयुक्त हो सकता है। इससे जर्मनी में कोक भी तैयार हुआ है। इसके हाइड्रोजनीकरण से कृत्रिम पेट्रोलियम बन सकता है। कार्बनिक विलायकों से निष्कर्ष निकालने पर 'मोन्टान मोम' प्राप्त होता है।

भारत का लिगनाइट कोयला

धातु-निर्माण में उत्कृष्ट कोटि का कोयला इस्तेमाल होता है। ऐसे कोयले में राख की मात्रा बहुत थोड़ी रहनी चाहिये। फ़ास्फ़रस की मात्रा भी बहुत ही अल्प। यदि ऐसा न हो तो धातुएँ उत्कृष्ट कोटि की नहीं बनतीं। इनके भौतिक और रासायनिक गुणों में बहुत अन्तर आ जाता है जो वांछनीय नहीं है। भारत को उत्कृष्ट कोटि का कोयला कब तक मिलता रहेगा, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ऐसे कोयले के निक्षेप शीघ्र ही समाप्त हो सकते हैं। अन्य देशों के उत्कृष्ट कोटि के कोयले के समाप्त हो जाने का भी भय है, इसलिए प्रयत्न हो रहा है कि उन्हें जहाँ तक हो सके सुरक्षित रखा जाय। जहाँ-जहाँ जिन-जिन कामों के लिए उत्कृष्ट कोटि का कोयला आज प्रयुक्त किया जा रहा है वहाँ-वहाँ उन कामों के लिए अन्य किस्म के कोयले का उपयोग हो ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट कोटि के कोयले के संरक्षण के लिए जो प्रयत्न हो रहे हैं उनमें निम्नलिखित प्रयत्न उल्लेखनीय हैं।

(१) निकृष्ट कोयले की सफाई कर उससे उत्कृष्ट कोटि का कोयला प्राप्त किया जाय। सफाई करने की मशीनें झरिया कोयला क्षेत्र में बैठाने की योजना बनी है।

(२) उत्कृष्ट कोटि के कोयले को ऐसे निकाला जाय कि निकालने में उसका कम से कम अंश नष्ट हो।

(३) उत्कृष्ट कोटि के कोयले को जहाँ तक सम्भव हो निकृष्ट कोटि के कोयले के साथ मिलाकर काम में लाया जाय।

(४) वात-भट्ठी में ऐसा सुधार किया जाय कि उसमें निकृष्ट कोटि का कोयला भी प्रयुक्त हो सके।

(५) जहाँ तक सम्भव हो जिस स्थान से कोयला निकले उसके आस-पास ही उसका उपयोग हो ताकि परिवहन में कोयला नष्ट न हो।

(६) धातुओं के निर्माण में ऐसा सुधार किया जाय कि बिना कठोर कोक से भी काम चल सके।

(७) लोहे के निर्माण में लोहे के निम्नकोटि के खनिज से भी लोहा निकाला जा सके।

इसके लिए आज प्रयोग हो रहे हैं। कोक न बनने वाले कोयले, कोयले की धूलों, निम्नता पर कार्बनीकृत कोक के उपयोग के सम्बन्ध में अनुसन्धान हो रहे हैं। ऐसे प्रयोग अनेक देशों, इंग्लैंड, अमेरिका, भारत आदि में हो रहे हैं।

भारत में लिगनाइट पाया जाता है। दक्खिन आर्कोट में इसके विस्तृत निक्षेप पाये गये हैं। भारत के अन्य क्षेत्रों में भी लिगनाइट पाया गया है। ऐसा लिगनाइट कहाँ तक लोहे के निर्माण में प्रयुक्त हो सकता है? लोह-खनिज की धूल को क्या लिगनाइट के साथ मिलाकर छोआ से बांधकर इष्टका बनाकर धातु के निर्माण में प्रयुक्त कर सकते हैं, इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान प्रयोगशालाओं में खोजा जा रहा है। अभी तक इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे मालूम होता है कि कोक के स्थान में लिगनाइट का उपयोग सम्भव है। भारत की राष्ट्रीय प्रयोगशाला में जो प्रयोग अभी तक हुए हैं उनसे पता लगता है कि जिस लिगनाइट में १५ प्रतिशत नमी हो उसे यदि बहुत ऊँचे दबाव, प्रति वर्गइंच ५३५० पाउण्ड दबाव, पर दबाया जाय तो ऐसी इष्टका बनती है जो बहुत कठोर होती और वह धातु-निर्माण में प्रयुक्त हो सकती है। ऐसी इष्टका बिना किसी बाह्य बन्धक के सहयोग से बनी है। सम्भवतः लिगनाइट में उपस्थित मोम जैसे पदार्थों के रहने से ऐसी कठोर इष्टका बनने में सहायता मिलती है। पर यदि कोई बन्धक लिगनाइट में मिलाया जाय तो कोक ऐसा कठोर बन सकता है जो धातु-निर्माण में प्रयुक्त हो सके। छोआ के उपयोग में एक दोष यह है कि छोआ से बनी इष्टका वायु से नमी को खींचती है जिससे ऐसी इष्टका वायु में खुला रखने से गीली हो जाती है। यदि मिट्टी किस्म के किसी अन्य बन्धक का उपयोग हो तो सम्भवतः वह अधिक सुविधाजनक होगा। लिगनाइट में राख की मात्रा कम रहने से थोड़ी मिट्टी से धातु-मल की मात्रा अधिक बढ़ेगी भी नहीं।

प्रयोग में जो लिगनाइट प्रयुक्त हुआ है उसका विश्लेषण यह है।

	वायुशुष्क	राख-मुक्त
नमी	१०·८ प्रतिशत	११·२० प्रतिशत
वाष्पशील अंश	५२·९५ ,,	५४·९० ,,
राख	३·५५ ,,	—
स्थायी कार्बन	३२·७० ,,	३३·९० ,,

लोह-खनिज धूल का विश्लेषण

महीनता	६० अक्षि
आयर्न आक्साइड (Fe_2O_3)	८८·८%
गन्ग (विधातु)	१२·२%

चूना-पत्थर का विश्लेषण

कैलसियम कार्बोनेट, $CaCO_3$	९०·५७ प्रतिशत
मैगनीसियम कार्बोनेट, $MgCo_3$	२·०० ,,
मिश्र आक्साइड	लेश
अविलेय अंश	७·४३ प्रतिशत

छोआ मिलाकर जो इष्टका तैयार हुई थी उसे चूल्हे में ११०° से० पर सुखाकर खुली वायु में १२० घण्टा रखकर प्रति १४ घण्टे पर उसमें जल की मात्रा निर्धारित हुई थी। उससे जल का अवशोषण नियमित रूप से नहीं हुआ। पहले अवशोषण में जल की मात्रा बहुत अधिक थी। समय के बीतने से अवशोषण की मात्रा क्रमशः कम होती जाती है।

छोआ द्वारा निर्मित इष्टका

समय-अवधि (घण्टों में)	विभिन्न काल में अवशोषित जल की प्रतिशतता	अन्तिम २४ घण्टे में नमी	
		महत्तम	अल्पतम
२४	५·५	९८	८५
४८	२·७	९५	८०
७२	०·५७	९३	७०
९६	०·६७	९०	६२
१२०	०·५५	९२	६४

प्रयोग क्रमांक	खनिज लिगनाइट चूनापत्थर ग्राम में			लिगनाइट में जल प्रतिशतता	मिश्रण की भौतिक दशा	निरीक्षण
१	१००	४०	१०	शून्य	इष्टका	कच्चा लोहा धातु मल पर्याप्त तरल नहीं
२	१००	४०	१०	५·४	,,	,,
३	१००	१००	१५	१०·८	इष्टका छोआ के सहयोग से	अवकरण नहीं
४	१००	१००	१५	शून्य	,,	,,
५	१००	७५	१५	१०·८	,,	अपूर्ण अवकरण
६	१००	७५	१५	१०·८	चूर्णरूप	धातु, धातुमल से अलग नहीं
७	१००	७५	१५ चूना	१०·८	इष्टका (चूने से)	अवकरण नहीं
८	१००	७५	१५	१०·८	चूर्णरूप	अपूर्ण अवकरण
९	१००	७५	१५	१०·८	,,	,,
१०	१००	५०	१५	१०·८	,,	अवकृत लोहा गोलिक बना

इन प्राथमिक प्रयोगशाला प्रयोगों से कोई निश्चित परिणाम नहीं प्राप्त हुआ है पर आशा होती है कि यदि प्रयोग जारी रखा जाय तो उससे सन्तोषप्रद परिणाम निकल सकते हैं अर्थात् धातुओं के निर्माण में कठोर कोक के स्थान में लिगनाइट से बनी इष्टका का प्रयोग हो सकता है।

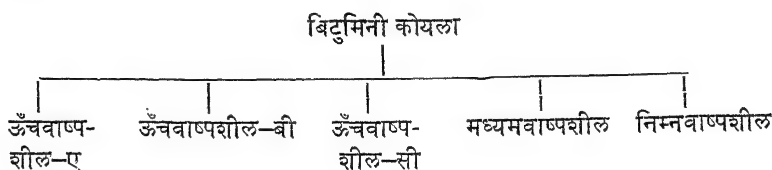
अर्ध बिटुमिनी कोयला या काला लिगनाइट

यह कोयला काले रंग का होता है। इसमें पिच सी द्युति होती है। रंग और संघटन में लिगनाइट से भिन्न होता है। लिगनाइट से अधिक सघन और अधिक कठोर होता है। १२ से ३० प्रतिशत जल रहता है। यह कोयला भी टूटता है पर चूर्ण में नहीं, पटिया (slate) में टूटता है। इस वर्ग के अच्छे कोयले का तापन-मान ८००० से ११००० बि० टि० यू० होता है। ईंधन के लिए यह अच्छा समझा जाता है। यह सरलता से जलाया जा सकता है। यदि गन्धक की मात्रा कम हो तो गैस के लिए यह अच्छा होता है। भारत के प्रादिनूतन काल के कुछ कोयले के क्षेत्र इसी वर्ग के हैं।

अमेरिका में इसके निक्षेप बड़े विस्तृत हैं। अनेक स्थलों, न्यू मैक्सिको, वाशिंगटन, मोन्टाना, वियोमिंग इत्यादि में यह कोयला पाया गया है।

बिटुमिनी कोयला

सब से अधिक महत्त्व का यही कोयला है। इसके उपयोग भी बिस्तृत हैं। ईंधन के लिए इसी कोयले का सबसे अधिक उपयोग होता है। इस कोयले में बिटुमिन बिलकुल नहीं होता। यह केवल बिटुमिन सा धुएँ के साथ पीली ज्वाला में जलता है। भंजक आसवन से बिटुमिन-प्रकृति का तारकोल यह प्रदान करता है। इस कोयले के पाँच अन्तर विभाग हैं।



बिटुमिनी कोयला सघन और कठोर होता है। इसका विश्लेषण ऊपर की सारिणी में दिया हुआ है। इसका तापन-मान ८००० से १५,५०० बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड होता है। इसका ईंधन अनुपात २·५ से कम होता है। ऊँच वाष्पशील कोयले का ईंधन अनुपात दो से नीचे और निम्नवाष्पशील कोयले का दो से ऊपर होता है। भारत का गोंडवाना कोयला अधिकांश बिटुमिनी होता है। रानीगंज का कोयला ऊँच वाष्पशील बिटुमिनी होता है।

ऊँच वाष्पशील बिटुमिनी कोयले की ज्वाला लम्बी होती है। इसका उपयोग अधिकता से गैस के निर्माण, तारकोल के आसवन और कांच के निर्माण में होता है।

मध्यम और निम्न वाष्पशील कोयले को कभी-कभी अर्ध-बिटुमिनी अथवा अधि-बिटुमिनी (super betuminous) कोयला भी कहते हैं। इसमें स्थायी कार्बन की मात्रा ऊँची होती है। इस कारण इसके जलाने में धुआँ कम बनता है। इसका तापन मान ऊँचा, १४५००–१५५०० बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड होता है। भाप बनाने में यह अधिक खर्च होता है। कोक और गैस के निर्माण के लिए यह कोयला अच्छा समझा जाता है और अधिकता से प्रयुक्त होता है। इसी के आधार पर कोयले को कोकीकरण (coking) और अकोकीकरण विभागों में विभक्त करते हैं। इसका तापन-मान सब से अच्छा होता है। तोड़ने पर छोटे-छोटे त्रिपार्श्वों में यह टूटता है। सामान्य

बिटुमिनी कोयला ऊर्ध्वाधार गाँठों पर टूटकर टुकड़े आयताकार (rectangular), स्तम्भाकार (columnor) और घनाकार (cubical) होते हैं। कभी-कभी उनका भंग (fracture) शंखाभीय (conchoidal) भी होता है।

उप-अंथ्रेसाइट अथवा अर्ध-अंथ्रेसाइट

अंथ्रेसाइट और निम्न वाष्पशील बिटुमिनी कोयले के बीच के कोयले को उप-अंथ्रेसाइट कहते हैं। ये अर्ध-बिटुमिनी कोयले से अधिक कठोर पर अंथ्रेसाइट से कम कठोर होते हैं। इनमें वाष्पशील अंश ८ से १४ प्रतिशत रहता है। ये अंथ्रेसाइट की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से जल उठते हैं, पीली ज्वाला से जलते हैं जो पीछे नीली ज्वाला में परिणत हो जाता है। इसका ईंधन अनुपात ५ से १० होता है।

अंथ्रेसाइट

अंथ्रेसाइट कोयला काला और कठोर होता है। इसमें अर्ध-धात्विक द्युति होती है। इसका वयन (texture) एक सा होता है। इसका भंग शंखाभीय होता है। इसमें वाष्पशील अंश अल्पतम होता है और स्थायी कार्बन महत्तम। इसका ईंधन अनुपात १० से अधिक होता है। इसके छूने से हाथ में काला धब्बा नहीं लगता। यह कठिनता से आग पकड़ता है, वह भी ऊँचे ताप पर। लकड़ी से यह जलाया नहीं जा सकता। गैस से अथवा बिटुमिनी कोयले के सहारे यह जलाया जाता है। इसकी ज्वाला छोटी, नीले रंग की और बिना धुएँ की होती है। पर एक बार आग लग जाने पर यह धीरता से (steadily) सारा का सारा जल जाता है।

इसका तापन-मान १३००० से १४००० वि० टि० यू० प्रति पाउण्ड होता है। इसमें वाष्पशील अंश ८ प्रतिशत से अधिक नहीं रहता। इसके तपाने से तारकोल नहीं बनता। ७६०° से० से ऊपर तपाने पर प्रतिटन ४००० से ८००० घनफुट गैस बनती है। इस गैस में ८० प्रतिशत हाइड्रोजन रहता है। अंथ्रेसाइट का प्रधान उपयोग जलावन के लिए है। इसका उपयोग धीरे-धीरे कम हो रहा है क्योंकि इसके स्थान में पेट्रोलियम, बिटुमिनी कोयले और गैस का उपयोग अब बढ़ रहा है।

भारत में कश्मीर और दारजिलिंग में यह कोयला मिलता है। पूर्व गोंडवाना के स्तरों में भी अंथ्रेसाइट पाया जाता है।

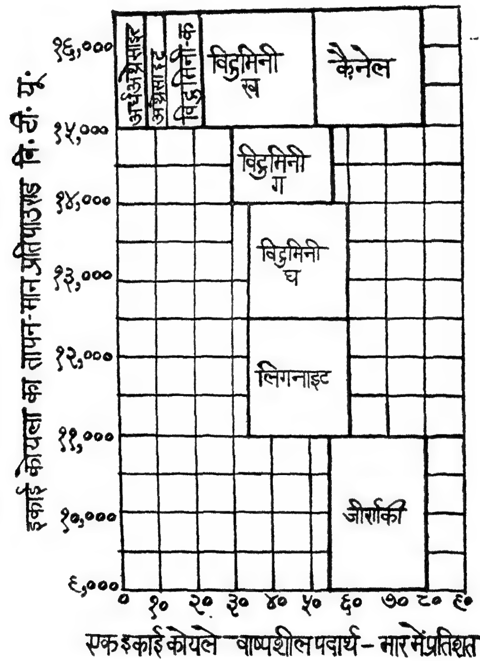
रालस्टन का वर्गीकरण

यह वर्गीकरण कोयले के अन्त्य विश्लेषण पर आधारित है। शुष्क, राख, गन्धक

और फ़ास्फ़रस रहित कोयले के अन्त्य विश्लेषण के अंकों के आधार पर यह वर्गीकरण होता है।

पार्र का वर्गीकरण

पार्र ने वाष्पशील अंश और तापन-मान के आधार पर कोयले का वर्गीकरण किया है। ऊपर के ए-एस-टी-एम सूत्र से ही वाष्पशील अंश और तापन-मान की गणना करते हैं। पार्र ने कोयले को निम्नलिखित नौ वर्गों में विभक्त किया है।



चित्र २१—पार्र का वर्गीकरण

भारत सरकार ने सन् १९२४ ई० में एक बोर्ड बनाया जिसे 'कोलग्रेडिंग बोर्ड' कहते हैं। इस बोर्ड का काम है निर्यात के लिए कोयले का वर्गीकरण करना। इस बोर्ड ने कोयले का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

कम वाष्पशील कोयला (बराकर के कोयले स्तर के लिए)	अधिक वाष्पशील कोयला (रानीगंज के कोयले स्तर के लिए)
चुने हुए ग्रेड—राख — १३% तक तापनमान, ७००० कलारीप्रतिग्राम या १२,६०० बि० टि० यू० प्रतिपाउण्ड	राख—११% तक तापनमान, ६८०० कलारी प्रति ग्राम या १२,२४० बि० टि० यू० प्रति पाउण्ड
ग्रेड नम्बर १ राख — १५% तक तापमान, ६५०० कलारी प्रति ग्राम या ११७०० बि. टि. यू. प्रति पाउण्ड	राख — १३%तक तापनमान, ६३०० कलारी प्रति ग्राम या ११,३४०० बि. टि. यू. प्रति पाउण्ड आर्द्रता ७% से कम
ग्रेड नम्बर २ राख — १८% तक तापनमान, ६००० कलारी प्रति ग्राम या १०८०० बि. टि. यू. प्रति पाउण्ड	राख — १६% तक तापनमान, ६००० कलारी प्रति ग्राम या १०,८०० बि. टि. यू. प्रति पाउण्ड आर्द्रता : १५%से कम
ग्रेड नम्बर ३ अन्य सब अधः कोटि के कोयले।	

ऊपर का वर्गीकरण बाहर भेजने के कोयले के लिए है। देश में खर्च होने वाले कोयले के लिए निम्नलिखित वर्गीकरण है। इसे 'कोल कमिश्नर का ग्रेडिंग' अथवा रेलवे ग्रेडिंग कहते हैं।

रानीगंज का कोयला			रानीगंज के अतिरिक्त अन्य कोयले	
	राख%		राख%	
चूना हुआ—ए	१७·५ से कम	तापन-मान की आवश्यकता नहीं	१५ से कम	आर्द्रता २% से अधिक नहीं रहनी चाहिए । तापन-मान की आवश्यकता नहीं।
चूना हुआ—बी	१७·५ से १९·०		१५ से १७	
ग्रेड नम्बर एक	१९·० से २४·०		१७ से २०	
ग्रेड नम्बर दो	—		२० से २४	
ग्रेड नम्बर ३—ए	—		२४ से २८	
ग्रेड नम्बर ३—बी	—		२८ से ३५	

सोलहवाँ अध्याय

कोयले के विशिष्ट लक्षण

भौतिक

कोयले देखने में एक से नहीं लगते। ऊपर से नीचे एक के बाद दूसरी चमकीली और मन्द पट्टियाँ देख पड़ती हैं। उनमें परतदार पट्टियाँ (laminated band) होती हैं। ऐसी पट्टियाँ सब प्रकार के कोयले, लिगनाइट से लेकर अंथ्रेसाइट तक, में देख पड़ती हैं। ये चमकीली और मन्द पट्टियाँ कोयले की ही होती हैं।

कोयले का रंग हलके भूरे रंग से लेकर पीत-भूरा, असित भूरा, भूरा-काला, नीला-काला, लौह-काला और पिच सा-काला होता है। कोयले की विरेखाएँ (streaks) लिगनाइट में हलके भूरे से लेकर गाढ़े भूरे रंग की, बिटुमिनी कोयले में असित भूरे से लेकर भूरे-काले रंग की और अंथ्रेसाइट में बिलकुल काले रंग की होती हैं। साधारणतया कोयले में जितना ही अधिक कार्बन होता है उसकी विरेखाएँ भी उतनी ही अधिक काली होती हैं। कोयले की द्युति विभिन्न, मन्द, रेज़िन सी, पिच सी, काँच सी अथवा धातु सी होती है।

विभिन्न कोयलों का विशिष्टभार विभिन्न होता है। विशिष्ट भार बहुत कुछ राख की मात्रा और प्रकृति पर निर्भर करता है। कोकीकरण कोयले में विशिष्ट भार = १·२७ + क, जहाँ विशिष्ट भार कोयले (जल संतृप्त कोयले) का आभासी (apparent) विशिष्ट भार और 'क' प्रति इकाई भार की राख की मात्रा है विटेकर (wittakar) के अनुसार यह सूत्र उसी कोयले में लागू होता है जिसमें राख की मात्रा ४० प्रतिशत से अधिक नहीं है। साधारणतया अंथ्रेसाइट का विशिष्ट भार महत्तम १·५ होता है और लिगनाइट का विशिष्ट भार लघुतम १·२ के लगभग होता है। अन्य कोयलों के विशिष्ट भार इनके बीच के होते हैं।

कोयले की कठोरता २ से ३ होती है। अंथ्रेसाइट की कठोरता ३ और कठोर बिटुमिनी कोयले की कठोरता २·५ होती है। सामान्य बिटुमिनी कोयले की कठोरता प्रायः २ होती है। कुछ लिगनाइट सड़े हुए काठ के ऐसे कोमल होते हैं। प्रायः

सब ही कोयले भंगुर और चूर-चूर हो जाने वाले (अवचूरार्य) होते हैं। कोयले का भाजन (cleavage) शंखाभीय (conchoidal) से लेकर असम तक होता है। अंथ्रेसाइट का भाजन शंखाभीय होता है। अधिकांश परतदार कोयलों में भाजन देख पड़ता है। कोयले के भाजन में ऊर्ध्वाधार सन्धियां होती हैं। इससे परतदार कोयला जब टूटता है तब उसका तल न्यूनाधिक चिकना होता है। भंजन का समतल (planc) निकट-निकट रह सकता है अथवा दूर-दूर पर। यदि भाजन-समतल निकट रहे तो कोयले के टुकड़े छोटे-छोटे होते हैं और हाथों से ऐसा कोयला चूर-चूर हो जाता है, यदि भाजन-समतल दूर-दूर रहें तो टुकड़े बड़े-बड़े होते हैं।

बिटुमिनी कोयले में कोयले की परत अथवा पट्टियाँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। ऐसे कोयले में साधारणतया चार प्रकार के पदार्थ मिले रहते हैं। इनके रूप विभिन्न होते हैं। तत्काल तोड़ने पर उनके विभिन्न रूप स्पष्ट देख पड़ते हैं। इनमें दो चमकीले होते हैं और दो मन्द द्युति के होते हैं।

रासायनिक द्रव्यों की प्रतिक्रिया

कोयले पर अनेक रासायनिक द्रव्यों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन हुआ है। इन द्रव्यों द्वारा कोयले को सरलतर अवयवों में तोड़ने की चेष्टाएँ हुई हैं। उनमें कुछ द्रव्यों से सफलता मिली है और कुछ से नहीं। कोयले के तोड़ने से जो उत्पाद प्राप्त हुए हैं उनसे कोयले के संघटन का कुछ आभास मिलता है, स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। कोयला साधारणतया क्रियाशील नहीं होता। अनेक प्रतिकारकों की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। सामान्य परिस्थिति में भी बहुत अल्प परिवर्तन होता है। उच्चंड (drastic) परिस्थितियों में ही कुछ उत्पाद बनते हैं जिनसे कोयले के संघटन के सम्बन्ध में कुछ अनुमान निकाला गया है।

ऊष्मा से कोयले का विच्छेदन होता है। इस विच्छेदन से अनेक उत्पाद प्राप्त हुए हैं। भिन्न-भिन्न ताप पर कुछ विभिन्नता से कोयले का विच्छेदन होता है। ऊष्मा-विच्छेदन का सविस्तर वर्णन आगे होगा। ऊष्मा-विच्छेदन के सिवाय आक्सीकरण, हाइड्रोजनीकरण, क्षार-विच्छेदन और हैलोजनीकरण के भी अध्ययन हुए हैं।

आक्सीकरण

वायु या आक्सिजन द्वारा बिटुमिनी कोयले के आक्सीकरण से पहला परिणाम यह होता है कि कोयले के कोकीकरण के गुण की हानि होती है। अधिक आक्सीकरण से कार्बन के आक्साइड और बहुत पेचीले कार्बोक्सिलिक अम्ल बनते हैं। ऐसे अम्लों को

'ह्यूमिक अम्ल' कहते हैं। ह्यूमिक अम्ल क्षारों में विलेय हैं पर अम्लों में नहीं। विलयनों के अम्लीकरण से रक्त-भूरा अवक्षेप प्राप्त होता है जो सूखने पर चमकीला काला शल्कल (flakes) बनता है। ह्यूमिक अम्ल कोई एक शुद्ध अम्ल नहीं है। यह अनेक अम्लों का मिश्रण होता है। ह्यूमिक अम्लों में कार्बाक्सिलिक मूलकों (—Cooh) के अतिरिक्त अन्य मूलक भी रहते हैं। ऐसे मूलकों में हाइड्राक्सिल, मेथिल, नाइट्रोजन, गंधक और आक्सिजन के अन्य मूलक हैं। उच्चंड आक्सीकरण से अधिक सरल उत्पाद प्राप्त होते हैं। इन्हें हम पहचान सकते हैं। ये क्षारीय विलयनों के सिवाय उदासीन और अम्लिक जलीय विलयनों में भी विलेय होते हैं।

अधिक और प्रचंड आक्सीकरण से मेलिटिक अम्ल सदृश बेंजीन-कार्बाक्सिलिक अम्ल प्राप्त होते हैं। उनसे फिर ऐसिटिक और आक्जैलिक अम्ल और अन्त में कार्बन डाइ-आक्साइड बनते हैं। निम्नकोटि के कोयले के आक्सीकरण से बड़ी मात्रा में कार्बन डाइ-आक्साइड और सरलतर वसा-अम्ल और निम्नतर बेंजीन कार्बाक्सिलिक अम्ल प्राप्त होते हैं। ऊँचकोटि के कोयले से उच्चतर बेंज़ीन कार्बाक्सिलिक अम्ल बनते हैं।

कोयले के आक्सीकरण के लिए जो प्रतिकारक (agent) प्रयुक्त हुए हैं वे हैं वायु, आक्सिजन, नाइट्रिक अम्ल, सलफ्युरिक अम्ल और परमैंगनेट के क्षारीय और अम्लिक विलयन हैं। वायु वा आक्सिजन से कोयले का चिटकना (weathering) कैसे होता है, इस पर बहुत कुछ काम हुआ है। कोयले के आक्सीकरण से प्राप्त मेलिटिक अम्ल का रंगों और प्लास्टिकों के निर्माण में प्रयुक्त होने का सुझाव है।

जल-विच्छेदन

कोयले का जल-विच्छेदन सामान्य और उच्च तापों पर हुआ है। यह जल-विच्छेदन दाहक सोडा द्वारा हुआ है। इसके लिए बहुत तनु विलयन से लेकर १०० प्रतिशत तक विलयन का उपयोग हुआ है। इससे अल्प मात्रा में क्षार-विलेय उत्पाद प्राप्त हुए हैं। इनमें फीनोल और अम्ल पाये गये हैं। निम्नकोटि के कोयले अधिक आक्रान्त होते हैं। उच्चकोटि के कोयले के जल-विच्छेदन में आक्सीकरण और हाइड्रोजनीकरण भी होते हुए देखे गये हैं। अन्य क्षारों से भी जल-विच्छेदन होता हुआ पाया गया है। क्षारों के अतिरिक्त अन्य प्रतिकर्ताओं से जल-विच्छेदन नहीं होता। जल-विच्छेदन के अध्ययन से पता लगता है कि जल-विच्छेद्य मूलक, एस्टर और एन्हीड्राइड कोयले में नहीं हैं।

हाइड्रोजनीकरण

कोयले के हाइड्रोजनीकरण का अध्ययन बहुत विस्तार से हुआ है। इससे पेट्रोलियम प्राप्त होता है। हाइड्रोजनीकरण २५० से ४५०° से०, विभिन्न दबाव और उत्प्रेरकों की उपस्थिति में हुआ है। हाइड्रोजनीकरण से कोयले का तरलीकरण होता है। अंथ्रेसाइट का तरलीकरण बहुत अल्प होता है। बिटुमिनी और लिगनाइट कोयले शीघ्रता से तरलीभूत हो जाते हैं। उनका ७० प्रतिशत कार्बन वाष्पशील पदार्थों से परिणत हो जाता है। वाष्पशील पदार्थ अधिकांश हाइड्रोकार्बन होते हैं। उनमें आक्सिजन यौगिकों की मात्रा भी पर्याप्त रहती है।

हाइड्रोजनीकरण में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। एक में हाइड्रोजन परमाणु द्विबन्ध के साथ संयुक्त होकर ऊँच अणुभार वाले यौगिक बनते हैं। दूसरे में इन यौगिकों का विपुरुभाजन और भंजन होता है। ये क्रियाएँ २०० से ४००° से० के बीच होती हैं। निम्नताप पर पहली क्रिया और ऊँच ताप पर दूसरी क्रिया होती है। ऊँच ताप पर उत्प्रेरकों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। भंजन के साथ-साथ सम्भवतः हाइड्रोजनीकरण और विपुरुभाजन भी होते हैं।

हाइड्रोजनीकरण से कोयले के संरचन और संघटन का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है।

हैलोजनीकरण

कोयले के क्लोरीकरण, ब्रोमीकरण और आयोडीकरण हुए हैं। उनसे कुछ उत्पाद भी प्राप्त हुए हैं पर इससे कोयले के संघटन का कुछ विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त होता।

विलायकों की क्रिया

कोयले पर अनेक विलायकों की क्रियाओं का अध्ययन हुआ है। ऐसे विलायकों में क्लोरोफार्म, कार्बनटेट्रा-क्लोराइड, ईथर, पेट्रोलियम ईथर, बेंजीन, फीनोल, पिरिडीन, टेट्रालिन और इनके मिश्रण हैं। टेट्रालिन एक प्रबल विलायक सिद्ध हुआ है। पिरिडीन अच्छे विलायक होने के साथ-साथ अच्छा श्लेषाभीय विक्षेपणकारक भी सिद्ध हुआ है। विभिन्न तापों पर, विभिन्न वातावरणों में और विभिन्न नमीवाले कोयले और निष्कर्षण की रीतियों का विशेष अध्ययन हुआ है।

कुछ कोयलों से शुद्ध यौगिक का अल्पमात्रा में पृथक्करण हुआ है। उन्हें पहचाना भी गया है। पर निष्कर्ष में अधिक अंश ऊँच अणुभार वाले रेज़िन का रहता है। निम्नकोटि के कोयले से बेंज़ीन, क्लोरोफार्म और ईथर सदृश कम क्वथनांक वाले

विलयनों से निष्कर्ष अधिक मात्रा में और बिटुमिनी कोयले से कम मात्रा में प्राप्त होता है। निष्कर्ष की रासायनिक प्रकृति में भी अन्तर देखा जाता है। लिगनाइट और जीर्णक से जो निष्कर्ष प्राप्त होता है उसमें अम्ल, अल्कोहल, एस्टर और कार्बोहाइड्रेट रहते हैं। बिटुमिनी कोयले से प्राप्त निष्कर्ष में हाइड्रोकार्बन रहते हैं। बेंज़ीन से जो निष्कर्ष प्राप्त होता है उसमें बेंज़ीन प्रकृति के यौगिक अपेक्षया अधिक रहते हैं। विभिन्न विलायकों के निष्कर्ष (एक्सट्रैक्ट) में विभिन्न यौगिक पाये गये हैं। ऐसा क्यों होता है, इसकी व्याख्या अभी तक सन्तोषप्रद नहीं दी गयी है।

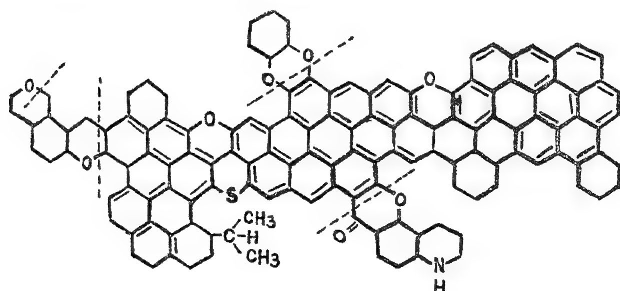
विभिन्न विलायकों द्वारा विलेयता के आधार पर कोयले के वर्गीकरण की चेष्टाएँ हुई हैं पर ऐसा वर्गीकरण व्यवसाय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं सिद्ध हुआ है। कोयले के अन्य गुणों से इसका कोई संबंध स्थापित नहीं हो सका है। कोयले के कोर्कीकरण गुण में विलायकों की क्रिया से अन्तर देखा गया है।

कोयले का उष्मा-विच्छेदन

गरम करने से कोयले का विच्छेदन होता है। विच्छेदन से अनेक यौगिक प्राप्त होते हैं। कुछ पेचीले पदार्थ भी जैसे अलकतरा और तेल प्राप्त होते हैं। यौगिकों में षड्भुजीय नैफ्थीन और बेंज़ीन यौगिक पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। ऊष्मा-विच्छेदन का विस्तार के साथ वर्णन आगे होगा।

रासायनिक संघटन

कोयले की रासायनिक प्रतिक्रियाओं और अन्य गुणों की सहायता से कोयले के संघटन के सम्बन्ध में कुछ परिणाम निकाले गये हैं। कोयले के अणु षड्भुजीय कार्बन



चित्र २२—कोयले के अणु

के वलयों से बने होते हैं। ये वलय बहुत विभिन्न विस्तार और विभिन्न आकार के होते हैं। अणु के अन्तिम छोरों में हाइड्रोजन परमाणु संयुक्त रहते हैं। जितना ही पुराना

कोयला होता है उतने ही बड़े उसमें बहु-चक्रीय वलय होते हैं। कार्बन वलय के अतिरिक्त उसमें ऐसे वलय भी रहते हैं जिनमें नाइट्रोजन, गंधक और आक्सिजन के परमाणु हों। षडभुजीय वलय के अतिरिक्त पाँच संख्यावाले वलय भी रहते हैं। ऐसे वलय सम्भवतः अणु के छोरों पर लगे रहते हैं। अणु के रूप कुछ इस प्रकार के होने का अनुमान लगाया गया है।

कोयले का विश्लेषण

कोयले के वर्गीकरण के पूर्व कोयले के संघटन का कुछ ज्ञान अत्यावश्यक है। कोयला उन्हीं तत्त्वों से बना है जिन तत्त्वों से लकड़ी बनी है। लकड़ी में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन, नाइट्रोजन, गंधक और कुछ खनिज पदार्थ रहते हैं। ये तत्त्व संयुक्तावस्था में लकड़ी और कोयले दोनों में रहते हैं। संयुक्त अणुओं के संघटन बड़े पेचीले होते हैं। किसी विशिष्ट यौगिक का कोयले से पृथक् करना कठिन है। कोयले में असंयुक्त कार्बन भी नहीं रहता।

कोयले का विश्लेषण दो प्रकार का होता है। एक प्राथमिक विश्लेषण (proximate analysis) और दूसरा अन्त्य विश्लेषण (ultimate analysis)।

प्राथमिक विश्लेषण

जिस विश्लेषण से कोयले में उपस्थित जल, वाष्पशील पदार्थ, राख और अवाष्पशील कार्बन की मात्रा निर्धारित होती है उसे 'प्राथमिक विश्लेषण' कहते हैं। प्राथमिक विश्लेषण बड़े महत्त्व का है। कोयले के वर्गीकरण में इसका उपयोग व्यापक रूप से होता है। यह विश्लेषण शीघ्रता से सम्पादित हो जाता है। इससे कोयले की प्रकृति का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। इससे जो परिणाम प्राप्त होता है उसे शुष्क कोयले की प्रतिशतता में प्रगट करते हैं। कोयले की आर्द्रता का इसमें स्थान नहीं है।

नमूना

विश्लेषण के लिए नमूने के चुनाव में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि कोयले का चुनाव ऐसा होना चाहिए कि कोयले की प्रकृति का उससे ठीक-ठीक पता लग सके। हर देश में इसके नियम बने हैं। उन नियमों के अनुसार ही नमूने का चुनाव करना चाहिए। ऐसा नमूना चुनकर उसका विश्लेषण करना चाहिए। ऐसे विश्लेषण के लिए कोयले को पीसकर ऐसा बना लेना चाहिये कि ६० अक्षि के छनने में वह छन सके। केवल आर्द्रता की मात्रा निर्धारण में इतना महीन पीसने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

नमी (आर्द्रता)

कोयले के एक नमूने को लेकर उसे तोड़कर छोटा-छोटा टुकड़ा बनाकर १०४ और ११०° से० पर गरम कर उसे सुखाना चाहिए। इससे भार में कमी होती है। भार की कमी से कोयले में नमी की मात्रा का निर्धारण होता है। भिन्न-भिन्न नमूनों में नमी की मात्रा विभिन्न होती है। भिन्न-भिन्न खानों के कोयलों में, भिन्न-भिन्न स्तरों के कोयलों में, भिन्न-भिन्न काल तक वायु में खुला रखने से नमी की मात्रा में विभिन्नता होती है। नमी की मात्रा मौसिम पर भी निर्भर करती है। सूखे समय में नमी कम और बरसात में अधिक होती है। नमी के निर्धारण में कोयले के चुनाव में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।

साधारणतया बिटुमिनी कोयले में नमी की मात्रा कम और लिगनाइट कोयले में अधिक रहती है। लिगनाइट में २० से ४५ प्रतिशत नमी पायी गयी है जब कि बिटुमिनी कोयले में १ से ३० प्रतिशत तक रह सकती है। कोयले के खरीदार अधिक नमी नहीं चाहते क्योंकि इसमें उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने में पानी के अंश का किराया व्यर्थ ही देना पड़ता है। ऐसे कोयले के जलाने में भी हानि है, क्योंकि पानी के अंश के निकालने में व्यर्थ ही ऊष्मा का कुछ अंश नष्ट हो जाता है।

कोयले में जल के अंश को लोगों ने दो वर्गों में विभक्त किया है। जल के एक अंश को वे 'असंयुक्त जल' अथवा 'असंयुक्त नमी' कहते हैं। यह अंश कोयले के सुखाने पर निकल जाता है। जल के दूसरे अंश को 'उन्देक्षीय जल' या 'उन्देक्षीय नमी' कहते हैं। यह अंश कोयले के सुखाने पर भी नहीं निकलता, कोयले में बना रहता है। इस कारण इसे कभी-कभी 'अन्तर्निहित नमी' (inherent moisture) भी कहते हैं।

ऊँचवर्ग के कोयले में 'अन्तर्निहित नमी' कम रहती है। निम्नवर्ग के कोयले में अधिक। लिगनाइट और भूरे कोयले, खानों से तुरन्त निकले कोयले के नमूनों में नमी ३० से ४५ प्रतिशत रहती है। वायु में खुला रखने से सूखकर नमी १५–२० प्रतिशत हो जाती है। बिटुमिनी कोयले में वायु में सूख जाने पर जल की मात्रा १० से १२ प्रतिशत रहती है।

कोयले में ५ प्रतिशत तक जल के रहने से कोई हानि नहीं होती। बायलर के लिए अथवा कोक बनाने के लिए इससे लाभ ही होता है। अधिक जलवाले कोयले सूखने पर चिटकते हैं और छूने से चूर-चूर हो जाते हैं।

वाष्पशील पदार्थ

कोयले का वाष्पशील पदार्थ वह अंश है जो कोयले के वायु-शून्य में गरम करने से वाष्पशील उत्पादों में परिणत हो जाता है। ऐसे वाष्पशील पदार्थ का निकलना गरम करने के ताप और समय पर बहुत कुछ निर्भर करता है। इस कारण वाष्पशील पदार्थों की मात्रा के निर्धारण में कोयले का गरम करना प्रमाप या प्रामाणिक परिस्थितियों में ही होना चाहिये। साधारणतया इसके लिए १ ग्राम सूखे कोयले को प्लाटिनम धातु की मूषा में रखकर ठीक ७ मिनट तक ९५० + २०° से० पर गरम करते और उससे भार में जो कमी होती है उसको १०० से गुणा करने पर वाष्पशील अंश की प्रतिशतता निकल आती है।

अंथ्रेसाइट में वाष्पशील पदार्थों की मात्रा २ से ८ प्रतिशत रहती है। बिटुमिनी कोयले में ४० प्रतिशत तक रहती है। कोयले के उपभोक्ताओं के लिए वाष्पशील अंश का ज्ञान अत्यावश्यक है। वाष्पशील अंश की अधिकता में जलने में लौ लम्बी होती और धुआँ अधिक निकलता है। कोयले के पूर्ण उपयोग के लिए वाष्पशील अंश का पूर्णतया जल जाना आवश्यक है। इसके लिए चूल्हे की झर्झरी (grate) ऐसी होनी चाहिये कि पूर्ण दहन के लिए पर्याप्त वायु उससे मिल सके। भाप-कोयले में वाष्पशील अंश की मात्रा कम—१५ से २५ प्रतिशत—रहती है और यह कोयला इस कारण पसन्द किया जाता है कि इससे धुआँ कम बनता है। बायलर के लिए जो कोयले का चूर्ण प्रयुक्त होता है उसमें वाष्पशील अंश की मात्रा अधिक रहती है। ऐसे कोयले के चूर्ण से निकली गैसें शीघ्रता से जलती हैं। कोयला-गैस के लिए अधिक वाष्पशील अंश वाले कोयले अच्छे समझे जाते हैं।

राख

वायु के आधिक्य में कोयले के पूर्ण रूप से जलने पर जो अवशिष्ट अंश बच जाता है वह 'राख' है। राख में केवल आकार्बनिक पदार्थ रहते हैं। कितने कोयले के जलाने से कितनी राख प्राप्त होती है इसी से राख की प्रतिशतता निकालते हैं। कोयले में २ से २० प्रतिशत तक राख रहती है। आसाम के कोयले में सबसे कम राख प्रायः ५ प्रतिशत तक पायी गयी है। गोंडवाना कोयला क्षेत्र के कोयले में १० प्रतिशत से अधिक राख रहती है। भिन्न-भिन्न वर्गों के कोयले, भिन्न-भिन्न स्थलों के कोयले और भिन्न-भिन्न स्तरों के कोयले में राख की मात्रा विभिन्न होती है। राख की अधिकता से कोयले का मूल्य कम हो जाता है। कारण यह कि यह निष्क्रिय पदार्थ है और जलने

में इसका कोई भाग नहीं है। राख की प्रकृति भी महत्त्व की है। किसी किस्म की राख से कोई हानि नहीं होती पर किसी किस्म की राख से होती है।

राख, मिट्टी, बालू, चूना-पत्थर, लौहमाक्षिक, मृच्छिलिका और अन्य खनिज लवणों से बनती है। कोयले के स्तरों में सूक्ष्म दशा में ये लवण बिखरे रहते हैं। ये कोयले कार्बनिक पदार्थों से संयुक्त रहते हैं। राखों में निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं।

	प्रतिशत
सिलिका, SiO_2	२०—६०
अलूमिना, Al_2O_3	१०—३५
फेरिक आक्साइड, Fe_2O_3	५—३५
कॉलसियम आक्साइड, CaO	१—२०
मैगनीशिया, MnO	०.३—४
टाइटेनिया, TiO_2	०.५—२.५
क्षार No_2O+K_2O	१—४
सल्फ़र ट्रायक्साइड SO_3	०.१—१२

रानीगंज कोयले क्षेत्र की राख के रासायनिक विश्लेषण से निम्नलिखित आँकड़े प्राप्त हुए हैं—

राख	२५.०२	प्रतिशत	कोयले का
सिलिका, SiO_2	६३.६६	,,	राख का
अलूमिना, Al_2O_3	२०.८२	,,	,,
फेरिक आक्साइड Fe_2O_3	४.३१	,,	,,
कैलसियम आक्साइड CaO	३.२५	,,	,,
मैगनीशिया MgO	०.००	,,	,,
टाइटेनिया TiO_2	२.५४	,,	,,
सल्फर ट्रायक्साइड SO_3	२.११	,,	,,
फ़ास्फ़रस पेन्टाक्साइड P_2OS	२.८६	,,	,,
मैंगनीज आक्साइड NgO	०.००	,,	,,
क्षार, सोडा और पोटाश, Na_2O K_2O	०.००	,,	,,
जोड़	८९.५५	,,	,,

समस्त कोयले में टाइटेनिया ०.६२ प्रतिशत रहता है।

दहन के लिए राख की अल्पमात्रा का होना बहुत आवश्यक है। इससे झर्झरी का संरक्षण होता है। राख की अधिकता हानिकारक होती है। उससे ऊष्मा अनावश्यक खर्च हो जाती है। राख के हटाने में श्रम लगता और खर्च पड़ता है। कभी-कभी प्रझाम (क्लिंकर) के बनने के कारण राख के निकालने में कठिनता बढ़ जाती है। यदि कोयले को किसी वस्तु के साथ गरम करना है, जैसे धातु के निर्माण में होता है, तो राख के लवण अपद्रव्य के रूप में धातुओं में आकर धातुओं की उत्तमता नष्ट कर सकते हैं। ऐसी कठिनता वात-भट्ठी में इस्पात के निर्माण में अथवा घूर्णक भट्ठी में सीमेंट के निर्माण में होती है।

चूल्हे के तल पर राख द्रवित होकर प्रझाम का सरन्ध्र पिंड बन सकता है। इससे वायु का प्रवेश रुक सकता और राख के हटाने में कठिनता हो सकती है। इससे कोयले के दहन में भी रुकावट पैदा हो सकती है। पर इससे प्रझाम के रूप में राख के हटानें में सुविधा होती है। प्रझाम को जल्दी-जल्दी हटाकर दहन को अच्छी दशा में रख सकने में सहायता मिलती है। राख के गलन का ताप ऊँचा रहना अच्छा है। इस ज्ञान के लिए राख का मृदुकरण ताप (Softening temperature) निकालते हैं। इसके लिए राख का एक छोटा शुण्डाकार (pyramid) बनाकर मन्द अवकरण वातावरण में गरम करते हैं। जिस ताप पर शुण्डाकार वलयाकार हो जाता है वही ताप राख का मृदुकरण ताप है।

स्थायी कार्बन

शुष्क कोयले के १०० भाग से राख और वाष्पशील अंशों की प्रतिशतता निकालने पर जो अवशिष्ट अंश बच जाता है वह कोयले के स्थायी कार्बन की प्रतिशतता है। इसके निर्धारण के लिए अलग से कोई प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती।

गन्धक

गन्धक संयुक्त रूप में कोयले में रहता है। गन्धक के कुछ कार्बनिक और कुछ अकार्बनिक यौगिक रहते हैं। अकार्बनिक यौगिकों में सल्फाइड और सल्फ़ेट रहते हैं। लोहे और कैलसियम के सल्फाइड, लौहमाक्षिक (FeS_2) और सल्फ़ेट [$CaSO_4$ और $Fe_2(SO_4)_3$] रहते हैं। लौह माक्षिक चूर्ण रूप से लेकर पिंड रूप तक सारे कोयले में फैला रह सकता है। कोयले में स्तर के रूप में भी यह रह सकता है। अभिनव (ताज़े) कोयले में सल्फ़ेट की मात्रा अल्प रहती है पर समय बीतने के साथ-साथ मात्रा बढ़ती जाती है। वायु के आक्सीकरण वातावरण से सल्फ़ाइड सल्फ़ेट में

परिणत होता रहता है। कभी-कभी इस आक्सीकरण से इतनी ऊष्मा उत्पन्न हो सकती है कि कोयले में स्वतः आग लग जाये और वह जलने लगे।

गन्धक के कार्बनिक यौगिक सारे कोयले में बिखरे रहते हैं।

गन्धक की मात्रा विभिन्न नमूनों में ०·५ से १० प्रतिशत या इससे अधिक रह सकती है। भारत के कोयले में गन्धक की मात्रा ०·५ से १० प्रतिशत रहती है। धातुओं के निर्माण में जो कोयला प्रयुक्त होता है उसमें गन्धक की मात्रा बहुत कम रहनी चाहिए। इंजनों के लिए भी अधिक गन्धक वाला कोयला हानिकारक है। इससे इंजन की धातुएँ गन्धक से आक्रान्त होकर शीघ्र नष्ट हो सकती हैं। इंजन का जीवन-काल इससे कम हो जाता है।

फ़ास्फ़रस

फ़ास्फ़रस कुछ तो फ़ास्फ़ेट के रूप में और कुछ कार्बन के यौगिकों के रूप में रहता है। जलने पर सारा फ़ास्फ़रस फ़ास्फ़ेट में परिणत हो जाता है। यह फ़ास्फ़ेट तब राख में रह जाता है। राख में फ़ास्फ़ेट के निर्धारण से फ़ास्फ़रस की मात्रा मालूम करते हैं। दहन में फ़ास्फ़रस का कोई विशेष भाग नहीं है। पर धातुओं के निर्माण में फ़ास्फ़रस का विशेष भाग हो सकता है। लोहे के निर्माण में जो कोयला प्रयुक्त होता है उसमें फ़ास्फ़रस की मात्रा अल्पतम रहनी चाहिए। अतः फ़ास्फ़रस की मात्रा का ज्ञान बहुत जरूरी है। लोहे के निर्माण में जो कोक प्रयुक्त होता है उसमें फ़ास्फ़रस की मात्रा ०·२ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए।

दामोदर घाटी के गिरिडीह कोयला-क्षेत्रों के कोयले में जो फ़ास्फ़रस रहता है वह दो रूपों में पाया जाता है। कुछ फ़ास्फ़रस तो कार्बन के साथ संयुक्त रहकर कार्बनिक यौगिकों के रूप में रहता है। सम्भवतः यह फ़ास्फ़रस पेड़-पौधों से सीधे कोयले में आया है। कुछ फ़ास्फ़रस फ़ास्फ़ेट के रूप में रहता है। साधारणतया यह फ़ास्फ़ेट कैलसियम फ़ास्फ़ेट के रूप में रहता है। यह अवश्य ही चट्टानों के फ़ास्फ़ेट से आया है और एपेट्राइट के रूप में रहता है।

अन्त्य विश्लेषण

अन्त्य विश्लेषण में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन, नाइट्रोजन और गन्धक की प्रतिशतता निकालते हैं। इन तत्त्वों का निर्धारण उन्हीं रीतियों से होता है जिनसे इनका निर्धारण कार्बनिक रसायन में कार्बनिक यौगिकों में होता है।

संक्षेप में कार्बन और हाइड्रोजन को आक्सिजन में जलाकर कार्बन डाइ-आक्साइड और जल बनाते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड को दाहक पोटाश के विलयन में

अवशोषित कर भार की वृद्धि से कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा मालूम करते और उससे कार्बन की प्रतिशतता निकालते हैं।

इसी प्रकार हाइड्रोजन के जलाने से जो जल बनता है उसे अनार्द्र कैलसियम क्लोराइड के टुकड़ों में अवशोषित कराकर भार की वृद्धि से जल की मात्रा मालूम करते और उससे हाइड्रोजन की प्रतिशतता निकालते हैं। साधारणतया ये रीतियाँ कुछ कठिन होती हैं। पर्याप्त अभ्यास और अनुभव से ही यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है, इससे व्यवसाय की दृष्टि से इनका निर्धारण सुविधाजनक नहीं है।

नाइट्रोजन के निर्धारण के लिए पीसे हुए कोयले के नाइट्रोजन को अमोनिया में परिणत करते हैं। अमोनिया की मात्रा से नाइट्रोजन की मात्रा मालूम करते हैं। इस रीति को केल्डाल की रीति कहते हैं। यह रीति अपेक्षया सरल है और कई प्रयोग एक साथ एक ही एक व्यक्ति द्वारा किये जा सकते हैं।

कोयले के नाइट्रोजन को अमोनिया में परिणत करने के लिए कोयले के चूर्ण को सान्द्र सलफ्युरिक अम्ल, पोटैशियम सल्फ़ेट और अल्प पारद के साथ उबालते हैं। इससे नाइट्रोजन अमोनियम सल्फ़ेट में परिणत हो जाता है। अमोनियम सल्फ़ेड के विलयन में सोडियम हाइड्राक्साइड डालकर उबालने से पारद अवक्षिप्त हो जाता और अमोनिया गैस के रूप में निकलकर प्रमाप सलफ्युरिक अम्ल में इकट्ठा होता है। सलफ्युरिक अम्ल के अवशिष्ट अंश की मात्रा के निर्धारण से अमोनिया की मात्रा मालूम हो जाती है और उससे नाइट्रोजन की मात्रा निकाली जाती है। साधारणतया कोयले में नाइट्रोजन की मात्रा १ से २ प्रतिशत रहती है। यह नाइट्रोजन कार्बन के साथ संयुक्त रहता है।

गन्धक की मात्रा निर्धारित करने की रीति वही है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। गन्धक को बेरियम सल्फ़ेट में परिणत कर बेरियम सल्फ़ेट की मात्रा से गन्धक की मात्रा निकालते हैं।

आक्सिजन की मात्रा निर्धारित करने की कोई प्रत्यक्ष रीति नहीं है। किसी नमूने में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, गन्धक और राख की प्रतिशतता निकाल लेने पर १०० में इनके योगों के घटा लेने पर जो अवशिष्ट अंक बच जाता है वही आक्सिजन की प्रतिशतता समझी जाती है।

अन्य विश्लेषण में अधिक समय लगता है। इसके करने के लिए अधिक दक्षता की आवश्यकता पड़ती है। इससे जो अंक प्राप्त होते हैं वे व्यवसाय की दृष्टि से उतने महत्त्व के नहीं हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से उनका महत्त्व भले ही बहुत अधिक क्यों न हो। इस कारण कोयले के व्यवसाय में प्राथमिक विश्लेषण ही पर्याप्त समझा जाता है।

प्राथमिक विश्लेषण से प्राप्त अंकों से ही कोयले का वर्गीकरण सरलता से हो जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के कोयले के विश्लेषण से निम्नलिखित अंक प्राप्त होते हैं।

सारिणी १—ईंधनों का औसत संघटन

	कार्बन %	हाइड्रोजन %	आक्सिजन %	नाइट्रोजन %
काठ	४९·६५	६·२३	४३·२०	०·९२
जीर्णकी	५५·४४	६·२८	३५·५६	१·७२
लिगनाइट	७२·९५	५·२४	२०·५०	१·३१
बिटुमिनी कोयला	८४·२४	५·५५	८·६९	१·५२
अंध्रेसाइट	९३·५०	२·८१	२·७१	०·९७

कोयले में कितना कार्बन असंयुक्त रहता है इसका ठीक-ठीक पता हमें नहीं है। सम्भवतः लिगनाइट सदृश निम्नकोटि के कोयले में इसका बिलकुल अभाव रहता है और अंध्रेसाइट सदृश ऊँचे वर्ग के कोयले में इसकी मात्रा रहती है। ऐसा समझा जाता है कि ग्रेफ़ाइट कोयले में बहुत अधिक अंश में असंयुक्त कार्बन रहता है। सम्भवतः परिवर्तित चट्टानों के साथ यह मिला हुआ रहता है।

सत्रहवाँ अध्याय

भारत के कोयला-क्षेत्र

समस्त संसार के कोयले का वार्षिक उत्पादन लगभग १५,००० लाख टन कूता गया है। इसका बहुत बड़ा अंश अमेरिका की खानों से निकलता है। अमेरिका के बाद जर्मनी, फिर ग्रेटब्रिटेन और तब रूस का स्थान आता है। समस्त कोयले के उत्पादन का प्रायः ७० प्रतिशत इन देशों की खानों से ही निकलता है। भारत का उत्पादन समस्त उत्पादन का २ प्रतिशत से कम ही है। औसतन प्रायः ३०० लाख टन कोयला भारत की खानों से निकलता है।

भारत की खानों से निकले कोयले का प्रायः ९८ प्रतिशत देश में ही खपता है। इसका एक-तिहाई रेलों में और एक छठांश धातु-निर्माण में प्रयुक्त होता है।

भारत के अनेक खण्डों में कोयले की खानें हैं। इन कोयलों का निर्माण भिन्न-भिन्न कालों से होता आ रहा है। भौमिकीय दृष्टि से वैज्ञानिकों ने भारत के कोयला-क्षेत्रों को चार प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया है।

(१) गोंडवाना कोयला-क्षेत्र
(२) महासरट (जुरेसिक) कोयला-क्षेत्र
(३) खटी (क्रीटेशियस) कोयला-क्षेत्र
(४) तृतीयक (टर्शयरी) कोयला-क्षेत्र

इन कोयला-क्षेत्रों के कोयले का निर्माण निम्नलिखित वर्षों से होता हुआ समझा जाता है।

कोयला-क्षेत्र	अनुयुग	वर्ष
(१) अधर गोंडवाना के समस्त कोयला क्षेत्र जिनमें दामोदर घाटी, महानदी-ब्राह्मनी घाटी, प्रांहित-गोदावरी घाटी, पेंच घाटी, वर्धा घाटी और सोन घाटी के कोयला-क्षेत्र सम्मिलित हैं।	अधरगिरियुग	२७० करोड़

कोयला-क्षेत्र	अनुयुग	वर्ष
(२) दामोदर घाटी के रानीगंज, झरिया के कोयला क्षेत्र, बोकारो कोयला-क्षेत्र के कुछ स्तर, हिमालय पर्वत के दार्जिलिंग के कोयला-क्षेत्र	उत्तर गिरियुग	२४० करोड़
कच्छ के कोयला क्षेत्र और नर्मदा घाटी के लमेटा घाट के कोयला-क्षेत्र	उत्तर महासरटयुग	१९२ करोड़
बरमा के कुछ कोयला क्षेत्र, पंजाब के कालाबाग के कोयला-क्षेत्र	अधर महासरटयुग	१९२ करोड़
आसाम की गोरो पहाड़ियों के दरांगिरि, रौंग्रेन्गिरि और खासी और जैन्तिया पहाड़ियों के कुछ कोयला-क्षेत्र	खटीयुग	१३५ करोड़
राजपूताने के पलान, कश्मीर के कलकोट के और पंजाब के दराडोट और माकेरवाला के कोयला-क्षेत्र	अधर प्रतिनूतन युग	६० करोड़
आसाम की खासी और जैन्तिया पहाड़ियों के चेरापूंजी, माओलोंग आदि के कोयला-क्षेत्र और उत्तर बरमा के कोयला-क्षेत्र	उत्तर प्रतिनूतन युग	४५ करोड़
आसाम के नामचिक, माकूम, जैपुर, नज़ीरा और नागा पहाड़ियों के कोयला-क्षेत्र और मद्रास के दक्खिन आर्कोट के लिगनाइट	मध्य नूतन युग	३० करोड़
कश्मीर के करेवा	अतिनूतन युग	१५ करोड़
बरमा के कुछ कोयला-क्षेत्र	प्रतिनूतन युग	६ करोड़

गोंडवाना के कोयला-क्षेत्र

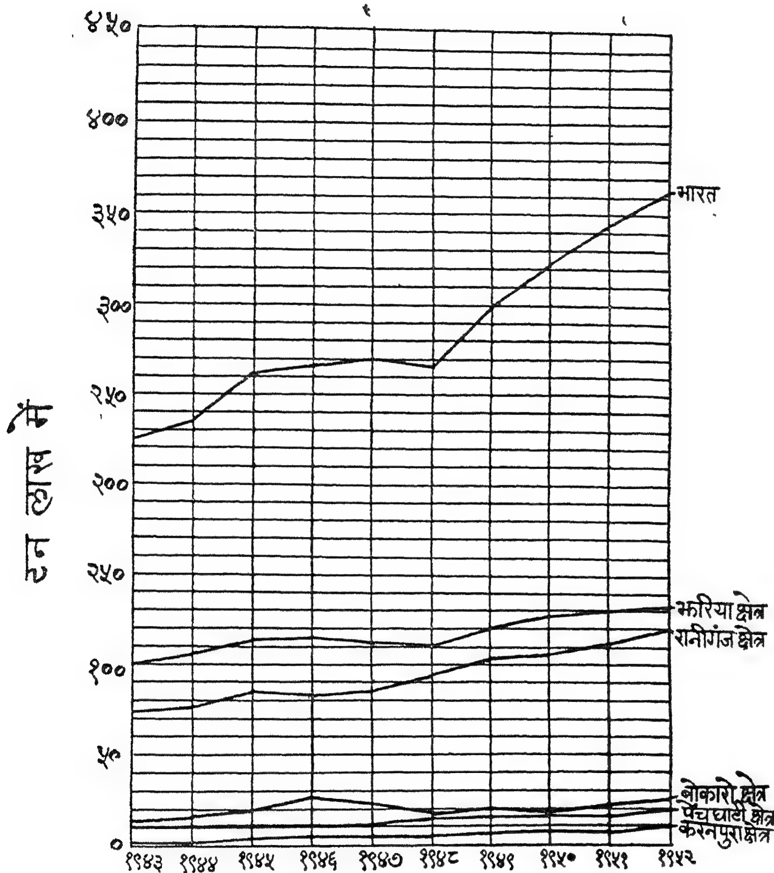
भारत के कोयला-क्षेत्रों में गोंडवाना कोयला-क्षेत्र सबसे अधिक महत्त्व का है। पहले-पहल यहाँ की ही खानों से कोयला निकाला गया था और आज भी समस्त कोयले के उत्पादन का प्रायः ९८ प्रतिशत कोयला यहाँ की खानों से ही निकलता है। गोंडवाना-क्षेत्र के कोयले बिटुमिनी और उप-बिटुमिनी प्रकार के होते हैं। निचले स्तरों के कोयले प्रबल कोकीकरण प्रकार के और ऊपरी स्तरों के कोयले अ-कोकीकरण अथवा कु-कोकी करण प्रकार के होते हैं। दार्जिलिंग हिमालय क्षेत्रों के कुछ कोयले अर्धबिटुमिन और अंथ्रेसाइट किस्म के होते हैं जो व्यावसायिक दृष्टिकोण से महत्त्व के नहीं हैं। तृतीयक स्तरों के कोयले लिगनाइट से लेकर उप-बिटुमिनी विभेद के होते हैं।

भारत की कुछ प्रमुख खानों के नाम यहाँ दिये जा रहे हैं। उनके विश्लेषण के आँकड़े भी साथ-साथ दिये जा रहे हैं।

कोयला-क्षेत्र	जल प्रतिशत	वाष्पशील अंश प्रतिशत	स्थायी कार्बन प्रतिशत	राख प्रतिशत
झरिया कोयला-क्षेत्र				
उत्तर पिपरातौर	१·९७	३२·०	५३·३	१४·७
हंटोडीह	२·०७	३२·२	५२·७५	१५·०५
भाटडीह	१·७	३१·०	५४·५	१४·५
मुरली डीह	२·२	२९·३०	५७·०	१३·७
जामदोबा (स्तर १८)	१·७०	२८·१०	५६·८०	१५·१०
नुनडीह (स्तर १८)	१·८०	२८·८	५९·३	११·९
भटगूरिया (स्तर १७)	२·०	२८·१३	५८·८५	१३·०
भगबन्ध (स्तर १७)	१·६	२७·२	५९·६	१३·२
भगबन्ध (स्तर १६)	१·३	२४·५	६०·२	१५·३
लोधना (स्तर १४)	१·६	२४·६	६१·०	१४·४
भगतडीह (स्तर १४)	१·२७	२२·८५	६४·७	१२·४५

कोयला-क्षेत्र	जल प्रतिशत	वाष्पशील अंश प्रतिशत	स्थायी कार्बन प्रतिशत	राख प्रतिशत
खासझरिया (स्तर १२)	१·१५	२१·६५	६२·३५	१६·०
केंवाडीह (स्तर १२)	०·७५	२०·१	६५·३	१४·६
घरियाजोबा (स्तर १०)	१·०	१९·०	६२·४	१३·६
घनसर (स्तर ८)	१·०	१७·३	६१·५७	२१·१३
नरखर की (स्तर ५)	०·६५	१४·१	६६·२	१९·७
भटियागारा (स्तर २)	०·६५	१४·२	६८·०	१७·८
रानीगंज कोयला-क्षेत्र				
नरसा मुडा	६·१	३३·३	५२·२	१४·६
घुसिक	७·५५	३४·८	५२·६	१२·६
नेगा	६·४	३२·१	५३·६५	१४·२५
दिशागढ़ (पश्चिमी भाग)	२·५७	३३·९५	५४·९५	११·१
समला (पूर्वीभाग)	११·०	३१·५	५७·१	११·४
संटोरिया (पश्चिमी भाग)	२·८१	३२·०	५९·०	९·०
पोनियाटी (पूर्वी भाग)	४·८५	३२·८३	५५·८	११·३५
बराकर कोयला-क्षेत्र				
चांच	१·६३	२८·९६	५६·०२	१३·३९
लामकडीह	१·५८	२८·७४	६०·२७	९·४१
बोकारो कोयला-क्षेत्र				
करगली	१·१६	२३·५७	५८·९६	१६·३१
दक्खिन के कोयला-क्षेत्र				
तालचीर	११·७१	३०·५४	४६·१८	११·५७
पेंचघाटी	७·४८	३१·२४	४४·२४	१७·०४
सिंगारेनी	७·१८	२८·७५	५०·७५	१३·७७

झरिया और रानीगंज के तथा कुछ अन्य प्रमुख कोयला-क्षेत्रों से कोयला निकालने में कैसी प्रगति हुई है वह यहाँ दिये वक्र से स्पष्ट हो जाता है। एक दूसरे वक्र से यह पता लगता है कि कोयले का उत्पादन किस मास में कितना होता है।



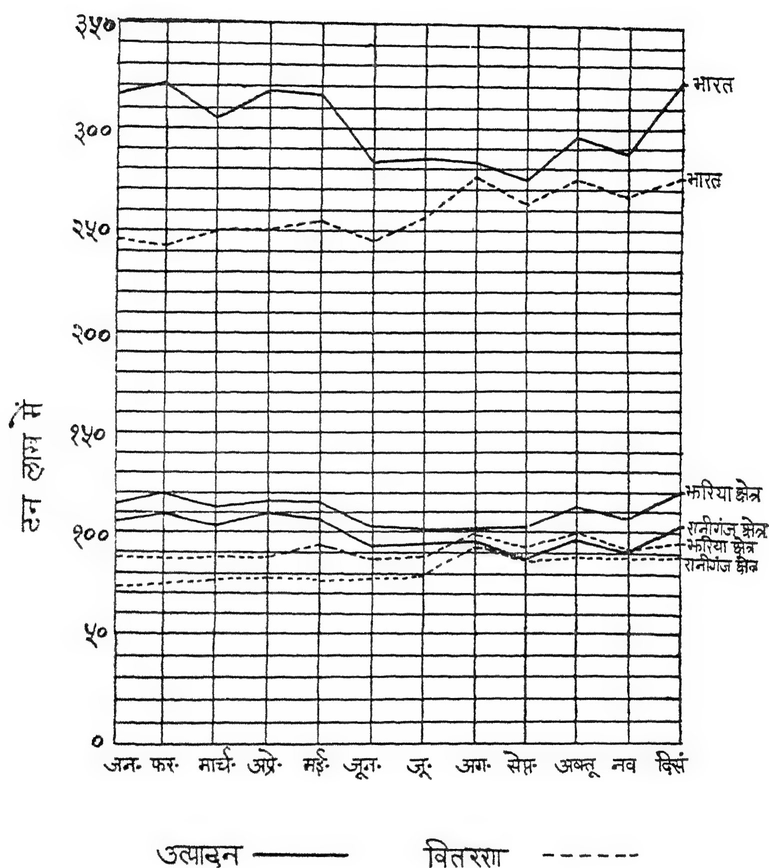
चित्र २३—भारत के कोयले का उत्पादन वक्र

गोंडवाना के किस कोयला-क्षेत्र से कितना कोयला निकला यह निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है।

खान	१९४३		१९४४		१९४५		१९४६	
	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता
बंगाल, बिहार और उड़ीसा								
बोकारो	१५,८३,५२४	६·२१	१५,४१,६४०	५·९०	२१,६६,५४१	७·४३	२७,७५,२८६	९·३२
दार्जिलिंग	—	—	५२४	—	८६४	—	९,१५५	०·०३
गिरिडीह	४७९,९४१	१.८८	५६१,८५५	२·१५	६४४,९३६	२·२१	४,६४,६५८	१·५६
जैन्ती	२५,६१६	०·११	२०,७६८	०·०८	१८,४२६	०·०८	१८,५७८	०·०६
झरिया	१०,१४५,८३०	३९·७७	१०७,२२,००४	४१·०४	११,६६२,५६९	३९·९८	११,८०१,१८८	३९·६६
करनपुरा	४,४४,१६६	१·७४	४७८,२६८	१·८३	७३६,९०८	२·५३	९५०,०३८	३·१८
पलामू (डाल्टनगंज)	१६,१२७	०·०६	२०,४३६	०·०८	२३,९९७	०·०८	३३,३२१	०·११
राजमहल पहाड़ी	४,७९९	०·०२	१८,८८३	०·०७	९,०६८	०·०३	—	—
रामगढ़	—	—	३,९८७	०·०२	४७,५७३	०·१६	५०,५५६	०·१७
रामपुर (रायगढ़-हिंगिर)	१२६,०१४	०·५०	१०२,७२९	०·४०	११२,५२९	०·३९	९६,०७७	०·३२
रानीगंज	७,५७१,७८०	२९·६८	७,७८५,४०३	२९·७९	८,५७६,९३३	२९·४१	८,१८४,३४०	२७·५०
मध्यभारत								
जोहिल्ला	४६,४६६	०·१८	७५,५६१	०·२९	११३,४१०	०·३९	१३७,२६७	०·४६
सोहागपुर	२०५,०१९	०·८०	१९७,२५०	०·७४	२४६,३९३	०·८४	२७२,३३९	०·९२
उमरिया	८४,१९५	०·३३	१०१,०८६	०·४०	११३,४६७	०·३९	१११,१३२	०·३८

मध्यप्रांत								
चाँदा	२२७,६९९	०·८९	१९९,२५६	०·७८	२११,८४३	०·७२	२३५,१९०	०·७९
बिलासपुर	३,१८०	०·०१	२,८७०	०·०१	२,७३३	०·०१	२,८८४	०·०१
पेंचघाटी (छिंदवारा)	१,३५०,३९०	५·२९	१,४२८,११०	५·४६	१,३९९,१३७	४·८०	१,३०९,५५१	४·४०
शाहपुर (बेतुल)	५,९२३	०·०२	—	—	—	—	—	—
योतमल	६९,८३७	०·२७	४७,६५०	०·१८	३५,५३०	०·१२	२२,७६४	०·०८
ईस्टर्न स्टेट्स एजेन्सी								
कोरिया	१,१९४,८९१	४·६८	८८७,९१६	३·३९	९९३,१६३	३·४१	१,०६२,०६७	३·५६
रायगढ़ स्टेट	१,७२७	०·०१	१,८३४	०·०१	१,३०४	०·०१	२,४१०	०·०१
तालचीर	४०९,८२०	१·६१	३७५,३६४	१·४४	३५९,३४४	१·२२	३६६,२९७	१·२२
हैदराबाद								
काठगोदाम	६३३,२७३	२·४८	५६७,७६३	२·१७	६४८,०८७	२·२२	६५७,३५९	२·२०
सस्टी	५७,१६४	०·२३	५२,९०९	०·२१	६५,५३६	०·२३	६९,३२३	०·२४
तन्दुर	३६६,९३३	१·४४	३११,२०४	१·१९	३०९,८१९	१·०६	३१३,७२४	१·०६

आसाम और पंजाब के कोयला-क्षेत्र अधर तृतीयक युग के हैं। इनके स्तरों में मृत-सिलिका और वालू-प्रस्तर भरे हुए हैं। उनमें समुद्री-जन्तुओं के कंकाल भी पाये जाते हैं जिससे मालूम होता है कि छिछले समुद्र में वृक्षों के निक्षेप से ये बने हैं। ऐसे कोयले के आस-पास पेट्रोलियम भी पाया जाता है।



चित्र २४—भारत के कोयले का मासिक उत्पादन वक्र

उत्तर आसाम के कोयले के स्तर बहुत मोटे होते हैं। ये कोयले उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। आसाम के रेल, जहाजों और चाय बागों में यही कोयले इस्तेमाल होते हैं। कुछ कोयले आसाम के बाहर भी बंगाल को भेजे जाते हैं। इनमें राख की मात्रा

अपेक्षया अल्प होती है। पर गन्धक की मात्रा कुछ अधिक रहती है। इनके स्तर मोटे भी होते हैं। ६० फुट से अधिक मोटे स्तर यहाँ पाये गये हैं। इनमें स्तर भी अनेक होते हैं और उन स्तरों से कोयला निकाला जा सकता है। यहाँ लिगनाइट भी पाये जाते हैं।

राजपूताना और पंजाब के कोयला-क्षेत्रों में लिगनाइट पाये गये हैं। इनमें रेज़िन भी देखा गया है। कश्मीर के जम्मू में बिटुमिनी और अर्ध-बिटुमिनी किस्म के कोयले पाये गये हैं। मद्रास के दक्खिन आरकोट जिले में भी कोयले पाये गये हैं। ये कोयले भी अच्छी किस्म के हैं और उप-बिटुमिनी विभेद के हैं। इनमें गन्धक और राख की मात्रा अपेक्षया अल्प होती है। साधारणतया तृतीयक कोयले में गन्धक की मात्रा अधिक ३ से ६ प्रतिशत तक रहती है।

आसाम के तृतीयक कोयले का विश्लेषण

	जल	वाष्पशील अंश	स्थायी कार्बन	राख
उत्तर लेदो कोयला-खान (३ नमूनों के विश्लेषणों के फल के आधार पर)	१·८०	४०·१५	५५·५९	२·४६
टिकाक कोयला-खान (५ नमूनों के विश्लेषणों के फल के आधार पर)	२·०९	३७·२५	५८·९९	१·६७
जयपुर कोयला-क्षेत्र (२५ विश्लेषणों के आधार पर)	६·४२	३९·८०	४८·७८	४·८२
नज़ीरा कोयला-क्षेत्र (१२ विश्लेषणों के आधार पर)	५·४९	३८·११	५०·०४	६·३६
डोगरिंग (गारो पहाड़ी)	३·०३	३४·८१	५८·२८	३·८८

राजपूताना और पंजाब के तृतीयक कोयले का विश्लेषण

	जल	वाष्पशील अंश	स्थायी कार्बन	राख
पलान (राजपूताना)	१२·५५	४६·६७	३६·३८	४·४०
दराडोट (पंजाब)	५·८७	४३·६५	३८·०४	१२·४४
पिध (पंजाब)	४·४४	४०·३८	३८·७०	१६·४८
माकेरवाल (पंजाब)	२·८०	४२·३४	३६·९४	१७·९२
माकेरवाल (पंजाब)	३·०४	४३·४३	४४·२९	९·२४
कालकोट (कश्मीर)	०·६३	१२·४५	७८·१२	१९·०
कालकोट (कश्मीर)	४·६२	१४·५४	६९·४४	११·४
खोरट (बलूचिस्तान)	२·२९	४१·५१	४६·५२	९·६८
शारिघ (बलूचिस्तान)	६·८०	४०·८०	४७·६०	४·८०

तृतीयक कोयले का उत्पादन १९४३ से १९४६ के बीच

	१९४३		१९४४		१९४५		१९४६	
	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता	टन	समस्त उत्पादन की प्रतिशतता
आसाम								
खासी और जैन्तिया पहाड़ी	१७,७३७		१९,६३७		१७,२७७		२७,७०८	
माकुम और लखिमपुर	२०८,५६८	०·९७	२६०,९४६	१·१६	२६५,९४७	१·०६	२९३,९१४	१·१८
नागा पहाड़ी	१६,७६३		१५,५८८		१४,९८५		१८,२८८	
शिवसागर	३,५१९		७,६०४		९,७८१		९,७०६	
बलूचिस्तान								
सिबि (खोस्त)	१५,९९१		१७,५३३		२०,८१०		२३,०७५	
सोर परास, माच और कलात	२७,०६७	०·२२	३४,८३८	०·३२	५९,२४०	०·४७	१११,२०८	०·६६
क्वेटा पिशिन	१२,८६९		३०,७६०		५७,४९९		६२,३५५	
सिंध (कराची)	—	—	६,२४५	०·०२	१२,२१३	०·०४	१५,९८९	०·०५
कश्मीर								
बरमूला	—	—	—	—	६०७			
रियासी	२,३२३		२,११६		४,०००		७३,००	
जम्मू								
मिरपुर	२००	०·०२	४५५	०·०१	—	०·०२	—	०·०३
हन्दवारा	३,६७६		—		—		१,२५०	
कटले	—		—		४२०		४५०	

	पंजाब								
	अटक	—		—		—		—	
	झेलम	४४,६७०		५०,६२९		५२,९१०		७६,८५२	
१२	मियावाली	५४,३५०	०·४२	११४,७७३	०·६७	९९,३८७	०·५६	१०३,५७४	०·६५
	शाहपुर	७,३८६		९,६६५		९,५२८		१२,२८०	
	राजपुताना								
	बिकानेर	३९,५७५	०·१५	५०,७१७	०·१९	४२,४३८	०·१५	५६,६६४	०·१९

गोंडवाना कोयला-क्षेत्र

गोंडवाना कोयला-क्षेत्र एक स्थान पर नहीं हैं। वे जहाँ-तहाँ देश के अनेक स्थलों पर फैले हुए हैं। वे अलवण जल के ७ नदी-क्षेत्रों में स्थित हैं। इन विभिन्न नदी-क्षेत्रों को (१) दामोदर नदी-क्षेत्र, (२) सोन-पलामू नदी-क्षेत्र, (३) महानदी नदी-क्षेत्र, (४) छत्तीसगढ़-रीवाँ नदी-क्षेत्र, (५) गोदावरी-वर्धा नदी-क्षेत्र, (६) सतपुरा नदी-क्षेत्र और (७) पूर्वी हिमालय नदी-क्षेत्र कहते हैं। ये कोयला-क्षेत्र बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यभारत, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मद्रास और पूर्वी हिमालय में स्थित हैं।

ये कोयले अधर गोंडवाना बनावट के हैं। इनके कोयले के स्तर दो क्रमों के बने हैं। बराकर कोयला-तल्प अधर गिरियुग का कोयला है। रानीगंज का कोयला-तल्प उत्तर गिरियुग का है। बराकर का कोयला अधिक परिपक्व किस्म का कोयला है। इसमें जल की मात्रा कम रहती है और वाष्पशील अंश भी कम रहता है।

दामोदर घाटी कोयला-क्षेत्र

(१) **झरिया कोयला-क्षेत्र**—झरिया का कोयला-क्षेत्र सबसे बड़ा कोयला-क्षेत्र है। समस्त उत्पादन का प्रायः ४० प्रतिशत कोयला यहाँ के ही क्षेत्रों से निकलता है। यहाँ के कोयला-क्षेत्र प्रायः १०५ वर्ग मील के घेरे में हैं। १८ से २० ऐसे स्तर हैं जिनमें बराकर तल्प के कोयले हैं और ९ ऐसे स्तर हैं जिनमें रानीगंज तल्प के कोयले हैं। बराकर तल्प के सबसे निचले स्तर के कोयले को स्तर १ और सबसे ऊपर के स्तर के कोयले को स्तर १८ कहते हैं। ऊपर के ८ स्तर के कोयले उत्कृष्ट कोटि के हैं। ये कोक बनाने वाले कोयले हैं। झरिया कोयला-क्षेत्रों के कोयले में पौधों के फौसिल, पत्ते, जड़, धड़ इत्यादि बहुधा पाये जाते हैं।

बराकर कोयला तल्प के कोयले में (१) कम वाष्पशील अंश २६ प्रतिशत तक (२) मध्यम वाष्पशील अंश २६ से २८ प्रतिशत और (३) उच्च वाष्पशील २८ प्रतिशत के ऊपर के कोयले पाये जाते हैं। रानीगंज तल्प के कोयले उच्च वाष्पशील वाले बराकर तल्प के समान नहीं होते पर जल की मात्रा उनमें कुछ अधिक रहती है।

झरिया कोयला-क्षेत्र से निकलने वाले समस्त कोयले की संचिति इस प्रकार कूती गयी है।

तल से	५०० फुट की गहराई तक		२०,००० लाख टन
,,	१००० फुट	,,	३५,००० लाख टन
,,	२००० फुट	,,	४५,००० लाख टन

पर कोयला-क्षेत्र का जीवन वस्तुतः स्तर ९ के ऊपर कोक बननेवाले उत्कृष्ट कोटि के कोयले पर निर्भर करता है। ऐसे कोयले की मात्रा २००० फुट की गहराई तक की ८६०० लाख टन कूती गयी है। इस आधार पर कोयला-क्षेत्र का जीवन ६०—७० वर्ष हो सकता है।

झरिया कोयला-क्षेत्र के स्तर १० से ऊपर के कोयले कोक बननेवाले उत्तम कोटि के होते हैं। अतः धातु-निर्माण के लिए कोक बनाने में यहाँ का ही कोयला प्रयुक्त होता है। यहाँ का जो कोयला निकृष्ट कोटि का होता है वह घरेलू ईंधन के लिए, कोमल कोक के निर्माण के लिए सर्वोत्तम समझा जाता है पर यहाँ पर खुली वायु में कोयले को जलाकर कोमल कोक तैयार होता है। इससे करोड़ों रुपये के कोल-कार्बनीकरण के उप-उत्पादन नष्ट हो जाते हैं। यह एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय हानि है। इसे रोकने का शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिए। कोयले को खुली वायु में जलाकर कोक बनाने की प्रथा कानूनन बन्द हो जानी चाहिए।

बोकारो-कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला-क्षेत्रों में कोयले के २९ स्तर पाये गये हैं। इन स्तरों की मोटाई ४ से ६९ फुट तक पायी गयी है। यहाँ के कुछ कोयले उत्कृष्ट कोटि के, कोक बननेवाले होते हैं। ऐसे कोयले का उष्मा-मान ७,००० कलरी से ऊपर होता है। यहाँ के कोयले में फ़ास्फ़रस की मात्रा ०·३ प्रतिशत से कम रहती है। बोकारो के पूर्वी क्षेत्र में करगली स्तर है जिसके एक खण्ड में १२५ फुट मोटा स्तर पाया गया है। यहाँ के कोयले की मात्रा ८००० लाख टन कूती गयी है जिसमें लगभग ३००० लाख टन उत्तम कोटि का कोक बननेवाला कोयला है।

चन्द्रपुरा कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला-क्षेत्र लगभग ४०० एकड़ भूमि में है। यह झरिया से पच्छिम चन्द्रपुरा रेलवे स्टेशन के निकट है। यहाँ का कोयला प्रथम श्रेणी का नहीं है। अधिकांश कोयले को द्वितीय श्रेणी का कह सकते हैं। यहाँ कोयले के दो स्तर एक २५ फुट से अधिक मोटाई के और दूसरे लगभग १० फुट मोटाई के पाये गये हैं।

रामगढ़ कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। कोयला-क्षेत्र लगभग ३० वर्ग मील तक फैला हुआ है। यहाँ के कोयले में मोटे-मोटे अनेक स्तर पाये गये हैं।

दक्खिन करनपुरा और उत्तर करनपुरा कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला-क्षेत्र में अनेक स्तर ५० फुट तक मोटाई के पाये गये हैं। अरगड़ा का स्तर तो ९० फुट मोटा पाया गया है। उत्तर करनपुरा में कुछ स्तर ७२ फुट से अधिक मोटाई के मिले हैं। यहाँ के कोयले देखने में साधारणतया निष्प्रभ होते हैं। दक्खिन करनपुरा के

कोयले अर्ध-कोक बननेवाले और उत्तर करनपुरा के अधिकांश कोक न बननेवाले होते हैं। कोयले का कलरी-मान ६५०० से ६९०० कलरी रहता है। अरगड़ा के कोयले का कलरी-मान ऊँचा होता है। २००० फुट की गहराई तक के कोयले की संचिति लगभग ७५०० लाख टन कूती गयी है। सन् १९५७ में भू-गर्भ विशेषज्ञों ने दक्खिन करनपुरा के कोयले की संचिति का अनुमान लगाया है। इसके लिए ५७ सुराख बनाये गये थे। इन सूराखों की गहराई २१,५०७ फुट थी। यहाँ का कोयला उत्कृष्ट कोटि का पाया गया है। ४९० लाख टन यहाँ की संचिति कूती गयी है। केवल गिडी का कोयला ४०० लाख टन और अरगड़ा और सिरका का कोयला ३३० लाख टन कूता गया है।

औरंगा कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला-क्षेत्र प्रायः १०० वर्गमील में फैले हुए हैं। कोयले के अनेक स्तर हैं जिनमें कुछ स्तर तो लगभग ४० फुट तक के मोटे हैं।

हुटार कोयला-क्षेत्र—पलामू जिले में औरंगा कोयला-क्षेत्र से १२ मील पच्छिम में यह कोयला-क्षेत्र है। लगभग ८० वर्ग मील में यह फैला हुआ है। यहाँ के स्तरों की मोटाई विभिन्न पायी गयी है। लगभग १३ फुट मोटाई तक के स्तर पाये गये हैं। यहाँ के कोयले में जल का अंश अपेक्षया अधिक होता है। यहाँ का कोयला कोक न बननेवाला होता है।

डाल्टेनगंज कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयले बराकर तल्प के होते हैं। कोयला-क्षेत्र ३२ वर्ग मील तक फैला हुआ है। यहाँ की खोदाई से ६ इंच से ५ फुट तक मोटाई के १४ स्तर पाये गये हैं। एक स्तर तो करीब ३० फुट मोटाई का पाया गया है। राजहारा के निकट एक वर्गमील के कोयले की संचिति ९० लाख टन कूती गयी है।

हजारीबाग कोयला-क्षेत्र

गिरिडीह या करहरबारी कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला-क्षेत्र प्रायः ११ वर्ग मील में फैला हुआ है जिसमें ७ वर्गमील में कोयला निकलता है। कोयले के ३ स्तर हैं, करहरबारी निचला, करहरबारी ऊपरी और पहाड़ी स्तर। ऊपरी करहरबारी स्तर जो ४ से १० फुट मोटाई का था प्रायः समाप्त हो गया है। निचला करहारी स्तर १०–१४ फुट मोटाई का है। इसका कोयला धातु-निर्माण के लिए भारत के सब कोयले से उत्तम है। इसमें फ़ास्फ़रस की मात्रा बहुत कम है पर इस कोयले का उपयोग केवल रेलवे इंजनों के लिए हो रहा है। इस कोयले में गन्धक की मात्रा भी बड़ी अल्प ०·५ प्रतिशत से कम ही है। पर देखने में यह कोयला निष्प्रभ होता है। यहाँ

के कोयले की संचिति प्रायः २०० लाख टन कूती गयी है और वह २५ वर्ष से अधिक काल तक काम दे सकता है।

चोप कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला क्षेत्र में ४ फुट मोटाई का एक स्तर पाया गया है।

इतखोरी कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला-क्षेत्र में तीन स्तर के होने की सूचना मिली है। निचला स्तर ८ फुट मोटाई का, मध्य का स्तर ४ फुट मोटाई का और ऊपर का स्तर अज्ञात मोटाई का पाया गया है। यहाँ के कोयले की संचिति १५ लाख टन कूती गयी है।

राजमहल के कोयला-क्षेत्र

हुरा और जिलबारी कोयला-क्षेत्र—फुलबेरा गाँव के निकट डकैटा पहाड़ी में कोयले के ९ फुट स्तर का विवरण मिला है। जिलबारी के निकट प्रायः ६ फुट मोटाई के दो स्तर पाये गये हैं।

चुपरमिता कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र लगभग ७ मील लंबा है। कुछ स्थानों में ९ फुट और ६ फुट मोटाई के दो स्तर पाये गये हैं। यहाँ का कोयला निकृष्ट कोटि का है।

पछवारा कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला निकृष्ट कोटि का होता है। कोयला कोक बननेवाला नहीं है। ईंट पकाने के लिए ही इसका उपयोग होता है।

ब्रह्मनी कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र लगभग ७० वर्गमील में फैला हुआ है। यहाँ की संचिति प्रायः २००० लाख टन कूती गयी है। यहाँ का एक कोयला-क्षेत्र, हुरा कोयला क्षेत्र अच्छे भविष्यवाला मालूम पड़ता है।

देवघर कोयला-क्षेत्र

कुन्दित-करैया कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र खैरबानी गाँव के निकट है। यहाँ के कोयले के दो पतले स्तर पाये गये हैं।

सहजुरी कोयला-क्षेत्र—इस कोयला-क्षेत्र में १८ से २५ फुट मोटाई के कोयले के दो स्तर हैं। कोयला उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। यहाँ की संचिति लगभग २२० लाख टन कूती गयी है।

जयन्ती कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला-क्षेत्र में तीन स्तर हैं जिनमें वाष्पशील अंश कम मात्रा में है। इसका निचला स्तर ४ फुट ४ इंच मोटाई का है। यह कोयला उत्तमकोटि का है। इसका कलरीमान ७२१५ कलरी है। यहाँ के अच्छे कोयले

की संचिति का लगभग २० लाख टन अनुमान है जिसका १० लाख टन कोयला कोक बननेवाला कोयला है।

रानीगंज कोयला-क्षेत्र

रानीगंज का कोयला-क्षेत्र कुछ बंगाल में है और कुछ बिहार में। यह कोयला-क्षेत्र लगभग ६०० वर्ग मील में फैला हुआ है। यहाँ के कोयले दोनों बराकर तल्प और रानीगंज तल्प के हैं।

बराकर तल्प के कोयले इन स्थलों पर हैं—

दमगरिया स्तर — यह कोयला कोक न बननेवाला है। इसका कलरीमान ७,१५० कलरी है।

लायकडीह स्तर — यह कोयला अच्छा कोक बननेवाला है। इसका कलरी मान ७,६०० कलरी है।

रामनगर स्तर — यह कोक बननेवाला कोयला है। इसका कलरीमान ७,२०० कलरी है।

बेगुनिया स्तर — यह भी कोक बननेवाला कोयला है। इसका कलरीमान ७,००० है।

रानीगंज तल्प के कोयले इन स्थलों पर हैं:—

पोनिहाटी स्तर	—	इस कोयले का कलरीमान	७,२०० कलरी है
जम्बद-नेगा स्तर	—	यहाँ के कोयले का कलरीमान	६,८०० कलरी है
दिशेरगढ़ स्तर	—	यहाँ के कोयले का कलरीमान	७,२०० कलरी है
घुसिक स्तर	—	यहाँ के कोयले का कलरीमान	६,९०० कलरी है

रानीगंज कोयला-क्षेत्र के नीचे स्थानों में धातु-निर्माण के लिए कोक बनाने के कोयले प्राप्य हैं। ये कोयले अकेले अथवा उत्कृष्ट कोटि के झरिया-कोयला-क्षेत्रों के कोयले के साथ मिलाकर कोक बनाने में इस्तेमाल हो सकते हैं।

रामनगर, लायकडीह, बैगुनिया, पोनिहाटी और दिशेरगढ़।

गैस बनाने के उत्तम कोयले दिशेरगढ़, सैक्टोरिया और पोनिहाटी के होते हैं।

कोक न बननेवाले उत्कृष्ट कोटि के कोयले, डामागोरिया सलनपुर, 'ए' स्तर, गौरांगडीह स्तर, सेमलास्तर रघुनाथ वाट्टीस्तर, जम्बद-नेगा स्तर, घुसिक स्तर और बद्जना स्तर के होते हैं।

रानीगंज के कोयले की समस्त संचिति २००० फुट तक की गहराई के पहले लगभग ९,०००० लाख टन कूती गयी थी पर अब सबसे आधुनिक अनुमान जो १९५६

में किया गया है यह है कि संचिति की मात्रा १३,०००० लाख टन है। इनमें प्रायः २३०० लाख टन कोयला अच्छे प्रकार का कोक बननेवाला कोयला है। भारत के समस्त कोयले के उत्पादन का प्रायः २९ प्रतिशत कोयला रानीगंज की खानों से निकलता है। यह प्रायः ८५ लाख टन होता है। वैज्ञानिकों का अब अनुमान है कि यहाँ का कोयला कुछ शताब्दियों तक चल सकता है।

दार्जिलिंग कोयला-क्षेत्र

दार्जिलिंग जिले के तीन धरिया और लिशु और रमती नदियों के बीच के क्षेत्रों में कोयले का पता लगा है। तीन धरिया का कोयला-स्तर ११ फुट मोटाई का होता है। लिशु क्षेत्र में भी कोयले के स्तर पाये गये हैं। इनमें कुछ कोयले कोक बननेवाले उत्कृष्ट किस्म के कोयले हैं। यहाँ के कोयले में राख की मात्रा १३ से २६ प्रतिशत के बीच रहती है। यहाँ की संचिति लगभग ५० लाख टन कूती गयी है। जलपाई गुड़ी जिले में दियाना नदी के तट पर बंगाल, भूटान की सीमा पर ग्रेफाइट के भी स्तर पाये गये हैं। कुछ में स्थायी कार्बन ४० प्रतिशत से अधिक पाया गया है। इनके सिवाय एबोर, मिरि, डफला, आका, भूटान पहाड़ियों में भी कोयले पाये गये हैं।

उड़ीसा कोयला-क्षेत्र

तालचिर कोयला-क्षेत्र—तालचिर के निकट प्रायः ११ वर्ग मील में कोयले के क्षेत्र हैं जिसमें कोयले के दो स्तरों से कोयला निकाला जा सकता है। शिखर स्तर प्रायः ९ फुट मोटा और पेंदा स्तर १३ फुट मोटा है। यहाँ के कोयले निष्प्रभ होते हैं और मृत्-शिलिका के ऐसे देख पड़ते हैं। उनमें राख अपेक्षया कम होती है पर जल का अंश १० प्रतिशत तक रहता है। यहाँ के कुछ कोयले अच्छे होते हैं और उनका कलरीमान ६००० से ७००० कलरी रहता है।

इबनदी या रामपुर कोयला-क्षेत्र—यहाँ के कोयला-क्षेत्र में अनेक स्तर पाये गये हैं। कोयला अच्छे किस्म का होता है यद्यपि जल की मात्रा कुछ अधिक रहती है। इसका कलरीमान ६,६०० कलरी रहता है। रामपुर स्तर की संचिति २० वर्ग मील क्षेत्र और ६०० फुट गहराई तक की १००० लाख टन कूती गयी है।

हिंगिरि कोयला-क्षेत्र—गांगपुर राज्य के हिंगिर में यह कोयला-क्षेत्र स्थित है। इसका क्षेत्र ४० वर्ग मील तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र के एक स्तर की ४५ फुट गहराई तक का कोयला निकला है।

तल से ३०–३५ फुट नीचे २ फुट गहराई का एक पतला-स्तर है। गंजाम जिले के गोछुआ और कट्रंगिया के बीच के क्षेत्र में पाया गया है।

अभी हाल सन् १९५७ ई० में घोषणा हुई है कि उड़ीसा के गंजाम जिले के पाकिरी पहाड़ी क्षेत्रों में कोयले के विशाल निक्षेप का पता लगा है। यदि इस कोयले को निकाला जाय तो उड़ीसा में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग-धन्धों में जितने कोयले की आवश्यकता होगी उसकी बहुत बड़े अंश में यहाँ के कोयले से पूर्ति हो जायगी। उड़ीसा के इस निक्षेप का विशेषज्ञों द्वारा परीक्षण हो रहा है और आशा है कि विशेषज्ञों की रिपोर्ट शीघ्र ही प्राप्त होगी।

रीवाँ कोयला-क्षेत्र

सिंगरौली कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र प्रायः ५०० वर्गमील में फैला हुआ है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर तक यह क्षेत्र फैला हुआ है। यहाँ के कुछ स्तर १८ फुट मोटे और कुछ ६ फुट मोटे हैं।

कोरार कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला-क्षेत्र ९ वर्ग मील में है। कोयला अच्छी किस्म का है। ४ से ८ फुट मोटे चार स्तर पाये गये हैं। यह क्षेत्र उमरिया कोयला-क्षेत्र के निकट है।

उमरिया कोयला-क्षेत्र—यह कोयला क्षेत्र केवल ६ वर्गमील में स्थित है। यहाँ के क्षेत्र की विशेषता यह है कि कोयले में समुद्री फ़ौसिल भी मिलते हैं। यहाँ कोयले के ६ स्तर हैं जिनमें चार स्तरों से कोयला निकाला जा सकता है। कोयले की मोटाई लगभग २५ फुट की है। यहाँ के कोयले के कलरीमान ४६०० से ६३०० कलरी तक के हैं। यहाँ के कोयले की संचिति २४० लाख टन कूती गयी है।

जोहिल्ला नदी-क्षेत्र—उत्तर जोहिल्ला क्षेत्र ११½ वर्गमील और दक्खिन जोहिल्ला क्षेत्र ३½ वर्गमील में है। इस क्षेत्र में एक दूसरे से २० फुट दूरी के अन्दर दो स्तर एक शिखर स्तर १७ फुट का और पेंदे का स्तर ६ फुट का पाया जाता है। कोयला साधारणतया अच्छी किस्म का है। ५०० फुट की गहराई तक के कोयले की संचिति लगभग ३०० लाख टन कूती गयी है।

सोहागपुर कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र १२०० वर्गमील में फैला हुआ है। ३ से ५ फुट मोटाई के ९ स्तर पाये जाते हैं। यहाँ के कुछ कोयले उत्कृष्ट कोटि के हैं। १०–१५ प्रतिशत उनमें राख पायी जाती है।

मध्यप्रदेश के कोयला-क्षेत्र

मध्यप्रदेश के कोयला-क्षेत्र तीन समूह के हैं। छत्तीसगढ़, सतपुरा और वार्धा-घाटी के।

छत्तीसगढ़ कोयला-क्षेत्र

ततपानी रामकोला कोयला-क्षेत्र—ये कोयला-क्षेत्र यद्यपि मध्यप्रदेश में ह पर वास्तव में दामोदर घाटी के पूर्वी छोर पर सरगुजा में ही स्थित हैं। इनके दो क्षेत्र हैं। पूर्वी क्षेत्र और पच्छिमी क्षेत्र। सारा क्षेत्र प्रायः ८०० वर्गमील में फैला हुआ हैं जिसके लगभग १०० वर्ग मील में कोयला पाया जाता है।

पूर्वी ततपानी क्षेत्र में ५,६०० कलरी के ३ फुट के स्तर, लगभग ६२०० कलरी के ६ फुट २ इंच के स्तर और ४,२०० कलरी के ८ फुट के स्तर हैं। रामकोला क्षेत्र में ६००० कलरी के ३ फुट के एक स्तर और एक १७ फुट के स्तर हैं।

झिलमिलि कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र सरगुजे में है। ४ फुट मोटाई के इसमें ३ से ४ स्तर हैं। यहाँ के कुछ कोयले का कलरीमान लगभग ७००० कलरी है। कुछ कोयले कोक बननेवाले हैं। यहाँ के कोयला-क्षेत्र की संचिति प्रायः ९५ लाख टन कूती गयी है।

सनहट कोयला-क्षेत्र—यह क्षेत्र प्रायः ३३० वर्गमील में कोरिया में है। इस क्षेत्र को कोयले के तीन क्षेत्रों (horizons) में बाँट सकते हैं। (१) पूर्वी क्षेत्र के १६ मील के कटिबन्ध (belt) जिसमें लगभग ५ फुट मोटाई के कोयले के ४ स्तर हैं। (२) नगर क्षेत्र जिसमें ३½–१० फुट मोटाई का एक स्तर है। (३) चर्चा क्षेत्र जिसमें ३ फुट के स्तर हैं। इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में और भी कई दूसरे कोयला-क्षेत्र हैं। पूर्व क्षेत्र के कुछ कोयले में राख की मात्रा केवल १५ प्रतिशत के लगभग है।

झगराखण्ड कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र २२ वर्ग मील में स्थित है। रीवाँ के सोहागपुर कोयला-क्षेत्र के सबसे पूर्वी छोर पर यह स्थित है और उसी का एक भाग समझा जा सकता है पर कोरिया में होने के कारण इसे दूसरा नाम दिया गया है। इस कोयला-क्षेत्र में कोयले के तीन संस्तर (horizons) हैं जिनमें ५–८ फुट मोटाई का प्रायः चिपटा एक स्तर है जिसके कोयले में केवल १२ प्रतिशत राख है। इस कोयला-क्षेत्र की एक बड़ी अनन्य (unique) आकृति कोयला-स्तरों को काटती हुई रेत-पत्थर की भित्ति (dyke) की उपस्थिति है।

कुरासिया कोयला-क्षेत्र—इस कोयला-क्षेत्र के पूरब में ६ कोयला संस्तर हैं जिनके स्तर १ फुट तक मोटे हैं। पच्छिम में ३६ फुट मोटाई के सात स्तर हैं। यहाँ के कुछ कोयले उत्तम कोटि के हैं। अनेक स्तरों के कोयले का कलरीमान लगभग ७००० कलरी है।

कोरियागढ़ कोयला-क्षेत्र—यह क्षेत्र ६ वर्गमील में फैला हुआ है। अभी तक

कोयले के समस्त निक्षेप का पूरा पूरा-पता नहीं लगा है। पर अनेक स्तर ३ से ५ फुट मोटे पाये गये हैं।

बिस्रामपुर कोयला-क्षेत्र—(सरगुजा)—रजनसुही के निकट २ से ६ फुट मोटाई के कई कोयले के स्तर, बगरा के निकट दो स्तर और कोरिया के निकट कई स्तर पाये गये हैं। गागर नाला के निकट पाये गये कोयले में राख की मात्रा केवल ७ प्रतिशत है। महान नदी के क्षेत्र में ७½ फुट मोटा कोयला का स्तर विद्यमान है। इसका कलरीमान ५००० कलरी है। तुलसी के निकट अन्य कोयले के स्तर भी हैं पर उनकी जाँच ठीक प्रकार से नहीं हुई है। कोयला-क्षेत्र का विस्तार प्रायः ४०० वर्गमील में है।

बंसार कोयला-क्षेत्र—इस क्षेत्र के कोयले की भी नाप-जोख अभी नहीं हुई है।

लखनपुर कोयला-क्षेत्र—इस क्षेत्र के पूर्वी और पच्छिमी दो खण्ड हैं। यह प्रायः १३५ वर्ग मील में फैला हुआ है। पूर्वी खण्ड ५० वर्ग मील और पच्छिमी खण्ड ८५ वर्गमील में है। पूर्वी खण्ड में कोयले के दो स्तर २ फुट और ५½ फुट मोटाई के हैं। पच्छिमी खण्ड में दो स्तर एक ३½ फुट मोटाई का और दूसरा ७½ फुट मोटाई का है। इस क्षेत्र के कोयले में राख की मात्रा २०·२५ प्रतिशत है। सलित के निकट दो और स्तर पाये गये हैं जिनके कोयले में राख की मात्रा लगभग १२ प्रतिशत है।

पंचवाहिनी कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र सरगुजा में है और ४½ वर्ग मील के विस्तार में फैला हुआ है। यहाँ दो स्तर तीन-तीन फुट के पाये गये हैं। दोनों स्तर अच्छी किस्म के कोयले के हैं।

दगहा मुँडा कोयला-क्षेत्र—यह भी सरगुजा में ४½ वर्गमील में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में कई पतले-पतले स्तर पाये गये हैं।

सिन्दुरगढ़ कोयला-क्षेत्र—यह भी सरगुजा में है। यह प्रायः २० वर्गमील के क्षेत्र में फैला हुआ है। कई स्तर यहाँ पाये गये हैं। बुकमुकु के निकट एक स्तर १० फुट मोटाई का है। यह कोयला कोक बननेवाला नहीं है। इसमें २३·१ प्रतिशत राख है। अमलीहारा के निकट एक ४ फुट मोटाई के स्तर के कोयले में केवल ६·४ प्रतिशत कोयला है। यहां के कोयले की संचिति प्रायः ४०० लाख टन कूती गयी है।

रामपुर कोयला-क्षेत्र—यह भी सरगुजा में है। यहाँ के स्तर साधारणतया पतले हैं पर एक स्तर १२ फुट मोटाई का पाया गया है। यहाँ के कोयले विभिन्न किस्म के हैं। एक कोयले में केवल ५ प्रतिशत राख और दूसरे में ३० प्रतिशत राख पायी गयी है।

कोरबा कोयला-क्षेत्र—कोयलावाली चट्टानें यहाँ प्रायः २०० मील तक फैली हुई हैं। पूर्वी रेलवे के चम्पा रेलवे स्टेशन के प्रायः १४ मील पच्छिम में कोरबा है। हसडो नदी के पच्छिमी तट पर दो अलग-अलग वाह्यस्तर में ७० फुट मोटाई का स्तर पाया गया है। दूसरे स्थानों में १५० फुट मोटाई के स्तर का भी उल्लेख है। अहरन नदी क्षेत्र में एक फुट मोटाई का स्तर पाया गया है जिसके कोयले में राख की मात्रा ६·८ से १३·४१ पायी गयी है। कोरबा से २२ मील पच्छिम में गंजार नाला में २२ फुट मोटे स्तर का उल्लेख है। गंजार और दोगरा नाला के संगम पर, बाग देवा के एक मील उत्तर पच्छिम घोघरी नाला, और रायल के एक मील उत्तर पूर्व में खोलार नाला में भी कोयले के स्तर का पता लगा है। जतराज और कुसमुन्डा के मोटे स्तर भी कोरबा के ही स्तर हैं। यहाँ के क्षेत्रों की संचिति २५०० लाख टन कूती गयी है जिनमें २५० लाख टन उत्कृष्ट कोटि का है।

सोनपुरी अथवा ऊपरी कुसुमडिया स्तर के तीन खण्डों की मोटाई ७२ फुट है। तीन खण्डों, पेंदे, मध्य और ऊपरी के कोयलों का कलरीमान क्रमशः ९०००, ८,८०० और १०,५०० बि० टि० यू० पाउण्ड है। घोर देवा के दक्खिन-पूर्व में भैरोताल के निकट २० फुट के कोयले का स्तर है। इसका कलरीमान लगभग ११,००० बि० टि० यू० पाउण्ड है। घोरदेवा क्षेत्र में एक या दो और स्तर के होने का सन्देह होता है। राज गमर गाँव के प्रायः एक मील पच्छिम में फुलुकडीत में एक महत्त्व का ६ फुट का स्तर पाया गया है। इसका कलरीमान प्रायः ११,००० बि० टि० यू० पाउण्ड है। इस कोयला क्षेत्र की जाँच ठीक-ठीक नहीं हुई है। यह कोयला-क्षेत्र आशाजनक मालूम पड़ता है।

माँड नदी कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र बराकर चट्टानों को कोरबा कोयला-क्षेत्र से मिलाता है। यह प्रायः २०० वर्ग मील में स्थित है। गोपाल नाला के क्षेत्र के उत्तरा खण्ड में अच्छी किस्म के अनेक स्तर हैं। इस क्षेत्र में कोयले के ४ स्तर एक दूसरे से मिले हुए हैं। कुछ स्तर १६–२० फुट मोटे हैं। खोदाई से दो स्तर क्रमशः १९ फुट और १३ फुट मोटे जुबिलीस्तर और हीरालाल स्तर पाये गये हैं। हीरा-लाल स्तर के कोयले में ३५ प्रतिशत राख रहती है।

कंकानी कोयला-क्षेत्र—रायगढ़ के १२ मील उत्तर-पच्छिम में यह क्षेत्र स्थित है। इसके अनुसन्धान की आवश्यकता है।

रायगढ़-हिंगिर कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र २०० वर्गमील में फैला हुआ है। इसमें अनेक स्तर हैं पर वे अधिकांश पतले हैं। बेन्डरा नदी के मुख के निकट प्रायः ६ फुट मोटे परतदार कोयले के दो स्तर और कालो नदी में ६ फुट मोटे स्तर हैं।

ये स्तर आशाजनक प्रतीत होते हैं। रायगढ़ के कोयला क्षेत्रों की ठीक-ठीक जाँच नहीं हुई है।

दक्खिन-रायगढ़-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र प्रायः २५ वर्गमील में फैला हुआ है। दिबदोरा के निकट एक छेद में १४ फुट का स्तर पाया गया है।

सत्पुरा कोयला-क्षेत्र

मोहपानी कोयला-क्षेत्र—यह कोयला-क्षेत्र रेलवे का है। इसमें ४ स्तर हैं। यहाँ के कोयले का कलरीमान ६०००–७००० कलरी है। इस क्षेत्र की संचिति ४० लाख टन है।

सोनदा कोयला-क्षेत्र—इस कोयला-क्षेत्र में कोयला निकालने योग्य किसी स्तर का अभी पता नहीं लगा है। कोयले का बहुत पतला स्तर पाया गया है। इस क्षेत्र के अनुसन्धान की आवश्यकता है।

शाहपुर कोयला-क्षेत्र—इस क्षेत्र में कोयलावाले ३ क्षेत्र हैं। गुरगुंडा, मरदानपुर और कटासुरा स्तर कठिनाई से ५ फुट मोटाई का है।

डुलहरा कोयला-क्षेत्र—यह १½ वर्ग मील क्षेत्र में है। खोदाई से ६ फुट मोटे स्तर का पता लगा है।

पथखेरा कोयला-क्षेत्र—खोदाई से यहाँ तीन स्तरों का एक ४ फुट ६ इंच, दूसरा ६ फुट और तीसरा १४ फुट मोटे स्तर का पता लगा है। यह प्रायः १६ वर्ग मील में फैला हुआ है। यहाँ की संचिति १५० लाख टन कूती गयी है।

बह्मन वरा कोयला-क्षेत्र—कोयले के टुकड़े यत्र-तत्र नदी के पेट में पाये गये हैं। कोयले का क्षेत्र नहीं मिला है।

ऊपरी तावा घाटी कोयला-क्षेत्र—टन्डसी गाँव के निकट ५ फुट मोटा एक स्तर पाया गया है।

कन्हन घाटी कोयला-क्षेत्र—मध्यभारत के ये क्षेत्र कन्हन नदी से पेंचघाटी तक फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों को निम्नलिखित ६ खण्डों में विभक्त किया है।

१. दमुआ कलिछपुर—यहाँ के कोयले बराकर प्रकृति के हैं। ये पूर्व-पच्छिम में फैले और उत्तर की ओर झुके हुए हैं। कलिछपुर के निकट ९ फुट मोटा स्तर पाया गया है जो पीछे १५ फुट मोटा हो गया है। दमुआ के निकट कोयले के ३ स्तर हैं। इनमें एक स्तर से जो १४ फुट मोटा है कोयला निकाला जा रहा है। इसे 'कन्हन खान' कहते हैं। यहाँ कोयले का कलरी-मान ६,५०० कलरी है। यहाँ का कोयला कोक बनने वाला है।

२. घोरावारी निमखेरा कोयला-क्षेत्र—यह क्षेत्र दमुआ के निकट ही है। घोराबारी खान में १५ फुट मोटा स्तर है पर इसका केवल ८ फुट का कोयला निकाला जा सकता है। इसका कलरी-मान ६३४८ कलरी है। इस कोयले में राख की मात्रा १७-१९ प्रतिशत है पर जल की मात्रा केवल २ से २·५ प्रतिशत है। इससे कठोर कोक प्राप्त होता है। घोरावारी स्तर के नीचे दो और स्तर मिलते हैं। दोनों १० फुट मोटे हैं। निकटवर्ती नदी में कुछ अन्य छोटे-छोटे स्तर भी देखे गये हैं।

३. पनारा जिनौर-क्षेत्र—जुनोर देव खान में १४ फुट मोटे एक स्तर से कोयला निकाला जाता है। इस कोयले का कलरीमान ३,६०२ कलरी है।

४. दलता जमाई-क्षेत्र—दोनगरिया खान में दलता-स्तर पाया गया है। कोक बननेवाला कोयला यहाँ है। इसका कलरीमान ३,६०२ कलरी है। यहाँ के कोयले दो स्तरों में हैं जिनमें एक स्तर १० फुट मोटा है। कोयले अच्छे किस्म के नहीं हैं।

५. जामकुन्दा क्षेत्र और हिंगलादेवी—ये दोनों क्षेत्र साथ-साथ हैं। इस क्षेत्र की घोगरी खान में ५¾ फुट मोटाई का एक स्तर है। इसका कलरी-मान ५,५०० कलरी है। यहाँ ४ स्तर पाये गये हैं जिनकी मोटाई ५ फुट से कम है। नज़ारपुर में शिखर स्तर ५½ फुट मोटा है।

पेंचघाटी कोयला-क्षेत्र

पेंचघाटी में कोयले के प्रायः नव-दस विभिन्न क्षेत्र हैं। ये गोंडवाना के नीचे दक्खिन में हैं।

१. गजन डोह-क्षेत्र—मृत-शिलिका के ८ फुट के नीचे ५ फुट का कोयले का एक स्तर पाया गया है। यह स्तर उत्तर की ओर काले पत्थर में झुकता है। यह देखने के लिए एक स्तर अविच्छिन्न है, काले-पत्थर के खोदने की आवश्यकता है।

२. बरकुही-क्षेत्र—यह क्षेत्र बरकुही रेलवे स्टेशन के समीप है। यहाँ के एक स्तर प्रायः ७ फुट मोटे से कोयला निकाला जाता है। इसके ऊपर ४ फुट मोटे एक और स्तर का पता लगा है।

३. भण्डरिया मुटारिया-क्षेत्र—परसिया के एक मील दक्खिन-पच्छिम में गोगरा-नाला में प्रायः ८ फुट मोटाई के एक स्तर का पता लगा है।

४. चाँद मेटा डोंगर-चिकली-क्षेत्र—चाँद मेटा की खोदाई में कोयले के कई स्तर पाये गये हैं, जिनमें एक स्तर ९½ फुट मोटा है। यह कोयला कन्हन श्रेणी का ही है पर कोक बननेवाला नहीं है। इस क्षेत्र में १५० लाख टन कोयला प्राप्त है।

५. एकलैरा-न्यूटन-चिकली-क्षेत्र—यहाँ के एक ८ फुट स्तर का कोयला अच्छी किस्म का है। यहाँ का कोयला कोक बननेवाला नहीं है। जल की मात्रा ऊँची रहती है। इस कोयले के स्तर में कई स्थानान्तरण है।

६. परसिया-खिरसा डोह क्षेत्र—इस क्षेत्र में ६ फुट, ५ फुट और ४½ फुट के तीन स्तर पाये गये हैं। शिखर का स्तर पेंच-घाटी के कोयला-क्षेत्र का प्रमुख स्तर है।

७. खनवारा हिराई-क्षेत्र—इस क्षेत्र में एक पतला स्तर पाया गया है जिसके कोयले का कलरीमान लगभग ६,३०० कलरी है।

८. दिघवानी-छिंदा-क्षेत्र—इस क्षेत्र में कोयले के ३ स्तर सब मिला के १२½ फुट मोटाई के पाये गये हैं। एक खण्ड में १५½ फुट मोटाई का भी पाया गया है। कुछ स्थलों में कोयले के साथ नदी द्वारा लायी मिट्टी भी मिली हुई है।

९. सिरगरा-हरन भता-क्षेत्र—प्रायः ६० फुट की खोदाई में कोयले के दो स्तर पाये गये हैं। इनमें एक स्तर पेंच-घाटी कोयला-क्षेत्र का प्रमुख स्तर है।

वार्धा घाटी कोयला-क्षेत्र

इस क्षेत्र में ९ कोयला क्षेत्र हैं जिनमें ६ महत्व के हैं।

१. बन्दार कोयला-क्षेत्र—भोरपुर गाँव के समीप ८५ फुट की गहराई पर ७ फुट मोटा, १२९ फुट की गहराई पर १७ फुट मोटा, २४३ फुट की गहराई पर ३ फुट (कोयले के शिलिका) मोटा और १६२ फुट की गहराई पर ६ फुट मोटे स्तर पाये गये हैं। निकटतम रेलवे स्टेशन से ३० मील की दूरी पर यह क्षेत्र है। इसका कोयला अभी निकाला नहीं गया है। इसकी संचिति १०८० लाख टन कूती गयी है।

२. वरोरा खान-क्षेत्र—यह क्षेत्र ४२० एकड़ में है। यहाँ दो स्तर, एक २२ फुट मोटा और दूसरा १० फुट मोटा पाये गये हैं। कोयले का कलरीमान लगभग ५,५०० कलरी है। कुछ स्थलों की खोदाई से ४ स्तरों का पता लगा है। इस क्षेत्र में प्रायः १२० लाख टन कोयला प्राप्य है।

राजुर या ऊन कोयला-क्षेत्र—बरार के यवतमाल जिले में यह क्षेत्र स्थित है। पिसगाँव में तल से ७७ फुट नीचे २७–३१ फुट कोयला पाया गया है। राजुर में तल से १६० फुट नीचे १८–३० फुट कोयला पाया गया है। गणेशपुर में तल से २४५ फुट नीचे कोयला पाया गया है। राजुर कोयले का कलरी-मान ६,५४० कलरी है। इस क्षेत्र के कोयले की संचिति २४०० लाख टन कूती गयी है।

घुगुस-तेलवासा कोयला-क्षेत्र—तेलवासा के आमने-सामने जुनारा में कोयला पाया गया है। तेलवासा में वार्धा नदी के पूर्वी तट पर प्रायः ५९ फुट मोटाई का कोयले

का एक स्तर पाया गया है। तेलवासा की एक नयी खोदाई में तल के १२५ फुटकी गहराई में तीन स्तर ८ फुट, २१ फुट और १३ फुट मोटाई के पाये गये हैं जिनका कोयला निकाला जा सकता है। १३ फुट मोटाई वाला कोयला सर्वोत्कृष्ट कोयला है। घुगुस में ३७ फुट और ३३ फुट मोटाई के दो स्तर पाये गये हैं। घुगुस के कोयले का कलरी-मान ६१०० से ७००० कलरी है। कोयले में जल की मात्रा ऊँची है और यह कोयला कोक बननेवाला नहीं है। इस क्षेत्र में प्रायः १५००० लाख टन कोयले का अनुमान है। घुगुस का मोटा स्तर दूर तक दक्खिन में जाता है और कहाँ तक जाता है इसका ठीक पता नहीं लगा है। ऐसा समझा जाता है कि यहाँ का कोयला लगभग १०० वर्गमील तक फैला हुआ है।

चाँदा कोयला-क्षेत्र—चाँदा नगर के पूर्व में महाकाली खान में ८१ फुट की गहराई में १९ फुट मोटा स्तर और १२० फुट की गहराई में २६ फुट मोटा स्तर पाया गया है। ऐसा समझा जाता है इस क्षेत्र में चट्टानों में बहुत कुछ कोयला छिपा हुआ है।

वल्लरपुर कोयला-क्षेत्र—सस्टी के निकट खोदाई में ६२ फुट पर ३२ फुट मोटे एक स्तर का और १२० फुट पर २६ फुट मोटे दूसरे स्तर का पता लगा है। वल्लरपुर कोयले का कलरी-मान ६००० और ६,४०० कलरी है। यहाँ के कोयले की संचिति ४०० लाख टन कूती गयी है पर यदि सब क्षेत्रों को मिला लें तो संचिति २०००० लाख टन तक हो सकती है।

प्रान्तीय गोदावरी घाटी कोयला क्षेत्र

गोंडवाना स्तर वार्धा घाटी होता हुआ हैदराबाद होकर मद्रास तक चला जाता है। यहाँ प्रायः ४५०० वर्ग मील में यह फैला हुआ है। इनमें २०० वर्गमील मध्यप्रदेश में, ६०० वर्गमील मद्रास में और शेष ३,७०० वर्गमील हैदराबाद में है। यहाँ के कोयला-क्षेत्रों को दो समूहों में बाँट सकते हैं। एक समूह हैदराबाद की खानें हैं और दूसरा समूह मद्रास की खानें हैं।

हैदराबाद (दक्खन) की खानें

सस्टी-क्षेत्र—यह क्षेत्र प्रायः २०० वर्ग मील में वार्धा नदी के पच्छिम सस्टी के दक्खिन-पूर्व में फैला हुआ है। सस्टी के निकट ५० फुट कोयला मालूम होता है। सस्टी में खोदाई से ७८ फुट की गहराई पर २७ फुट का स्तर पाया गया है। यहाँ का अधिकांश कोयला कठोर अच्छा कोयला है। पाउनी में ६० फुट स्तर का पता लगा है। यहाँ के कोयले का कलरी-मान ६१७५ कलरी के लगभग है।

अन्तरगाँव-अकबरपुर कोयला-क्षेत्र—लाथी घाट के दक्खिन अन्तरगाँव के निकट में ६ फुट का स्तर पाया गया है। यहाँ के कोयले में २० प्रतिशत के सन्निकट राख की

मात्रा है। अन्तरगाँव के पच्छिम में और अन्तर श्रेणी में ५ फुट स्तर की मेहराब सी कोयले की बनावट है।

तन्डुर कोयला-क्षेत्र—तन्डुर होकर बेलमपल्ली रेलवे स्टेशन के पूर्व तक कोयला फैला हुआ है। अरेगुरा के निकट १५ फुट मोटा कोयले का स्तर है। इसमें जल की मात्रा ९·४ प्रतिशत और राख की मात्रा १२·२ प्रतिशत पायी गयी है। दो स्तर ऐसे यहाँ पाये गये हैं जिनसे कोयला निकाला जा सकता है। इन स्तरों की मोटाई विभिन्न है। कोयले का कलरी-मान ६,४६० कलरी है। इसके आस-पास और भी कोयला पाये जाने की सम्भावना है। तन्डुर और गोदावरी नदी के बीच १०० वर्गमील में कोयला पाये जाने की आशा है।

चिनुर क्षेत्र—चिनुर में कोयला पाया गया है। बराकर श्रेणी के कोयले ४० मील में फैले हुए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोयले भी पाये जाते हैं। इनसे कोयला अभी निकाला नहीं जाता।

करलपल्ली कोयला-क्षेत्र—करलपल्ली नदी में बराकर चट्टानें पायी जाती हैं। यहाँ प्रायः १०५६ एकड़ में कोयले की खान है। यहाँ कोयले के दो स्तर, ९ फुट और ६ फुट मोटे हैं। इन दोनों स्तरों में ३७·५ लाख टन कोयले का अनुमान है।

बन्दाला-अल्ला पाली-क्षेत्र—इस क्षेत्र के कोयले का स्तर ६ फुट मोटा है। यह क्षेत्र यत्र-तत्र फैला हुआ है। इस क्षेत्र के अनुसन्धान की आवश्यकता है।

लिकाला क्षेत्र—यहाँ कोयले के ४ स्तर पाये गये हैं। ये जैसे-जैसे पच्छिम की ओर बढ़ते हैं नीचे झुकते जाते हैं। इनमें दो स्तर २ फुट, एक स्तर ५ फुट और एक स्तर २ फुट मोटा है।

सिंगरेनी कोयला-क्षेत्र—इस क्षेत्र में अधर गोंडवाना चट्टान की उपस्थिति देखी जाती है। यह १९ वर्ग मील में, प्रायः ११ मील लम्बा और दो मील चौड़ा है। खोदाई से कोयले के ४ स्तरों का पता लगा है। ऊपरी स्तर ६ फुट मोटा है और इसका कोयला उत्तम कोटि का है। दूसरे दो स्तर पतले हैं। पेंदे का स्तर ३६ फुट मोटा है। इस मोटे स्तर के नीचे भी छः स्तर कोयले के हैं जिनमें पेंदे के ऊपर का स्तर ६ से ७ फुट मोटा और सर्वोत्तम कोटि का है। इसमें जल की मात्रा ७ प्रतिशत और राख की मात्रा ११ प्रतिशत है। इसका कलरी-मान लगभग ६००० कलरी है। यहाँ की संचिति ३६० लाख टन ऐसे कोयले की है जो निकाली जा सकती है।

कोट्टा-कुदेम कोयला-क्षेत्र—सिंगरेनी कोयले की खानों से यह २४ मील पूर्व में है। करीब ४०० फुट गहराई में कोयले के स्तर पाये गये हैं।

कन्नेगिरि कोयला-क्षेत्र—यहाँ बराकर चट्टानें पायी गयी हैं। पर कोयले के

लिए यहाँ खोदाई नहीं हुई है। यहाँ से १० मील की दूरी पर ही उत्तर की ओर कोटाकुदेम कोयला-क्षेत्र में कोयला पाया गया है।

दमार चेर्ला-क्षेत्र—इस क्षेत्र में खोदाई से कोयले के ३ स्तर पाये गये हैं। सबसे निचला स्तर ३१४ फुट की गहराई में ६ फुट मोटा आशाजनक प्रतीत होता है।

वेदादानुरु क्षेत्र—यहाँ १८८ फुट की गहराई की खोदाई में ४ पतले स्तर पाये गये हैं। इनमें एक स्तर ४½ फुट मोटा है। यहाँ के क्षेत्र का ठीक-ठीक अन्वेषण अभी नहीं हुआ है। क्षेत्र के ठीक-ठीक पता पाने के लिए प्रायः १५०० फुट गहराई तक खोदाई की आवश्यकता है।

मद्रास राज्य में गोंडवाना कोयला-क्षेत्र

बराकर कोयले मद्रास राज्य के पूर्वी गोदावरी ज़िले में पाये जाते हैं। लिंगाला, बद्राचेल्लम और बेद्दादानोल स्थानों में पाये जाते हैं। ये सब स्थान हैदराबाद राज्य की सीमा के पास हैं। लिंगाला में ४ स्तर पाये गये हैं जिनमें ३ दो-दो फुट मोटे और एक ५ फुट मोटा है। पाँच फुट मोटा स्तर नदी के बीच में है। यह कोयला-क्षेत्र प्रायः ५ वर्ग मील में फैला हुआ है। यहाँ का कोयला काम का है। हैदराबाद राज्य के दरमचेर्ला क्षेत्र के सामने मेंगन परम क्षेत्र है जहाँ उत्कृष्ट कोटि के कोयले का स्तर पाया गया है। इसकी औसत मोटाई ५½ फुट है। यह क्षेत्र प्रायः १० वर्ग मील में फैला हुआ है। इसकी संचिति का अनुमान २४० लाख टन लगाया गया है। १९ वीं सदी के अन्त में यहाँ से कई हजार टन कोयला निकाला गया था।

उत्तर प्रदेश के कोयला-क्षेत्र

दक्खिन रीवां का सिंगरौली कोयला-क्षेत्र उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर ज़िले तक पूर्व में फैला हुआ है। इसी क्षेत्र में कोटा नामक कोयला-क्षेत्र है जहाँ अनेक पतले-पतले स्तर कोयले के पाये गये हैं। इनमें २ या ३ स्तर उत्कृष्ट कोटि के कोयले के हैं जो निकाले जा सकते हैं। अन्य स्तर निकृष्ट कोटि के हैं। इस क्षेत्र में जो खोदाई और पर्यवेक्षण हुए हैं उनसे पता लगता है कि कोयले उत्कृष्ट कोटि के हैं।

तृतीयक कोयला-क्षेत्र

तृतीयक कोयला-क्षेत्रों से भारत के समस्त कोयले का केवल २ प्रतिशत कोयला निकलता है पर ये कोयले उन स्थानों के लिए महत्त्व के हैं जहाँ से ये कोयले निकलते हैं, क्योंकि यही कोयले उन स्थानों में काम आते हैं। ऐसे कोयले आसाम, राजपूताना, कश्मीर और मद्रास में हैं।

तृतीयक कोयले अपेक्षया आधुनिक हैं। ये कोयले इतने आधुनिक हैं कि साधारणतया लिगनाइट ही तक ये बने रहते पर ऊँचे दबाव के कारण ये बिटुमिनी अवस्था तक पहुँच गये हैं। कश्मीर का तृतीयक कोयला तो अंथ्रेसाइट अवस्था तक पहुँच गया है।

तृतीयक कोयले में गन्धक की मात्रा अधिक, ३ से ८ प्रतिशत रहती है। यह गन्धक कुछ तो कार्बनिक गन्धक के रूप में और कुछ पाइराइटीज़ (माक्षिक) और सल्फ़ेट के रूप में रहता है। माक्षिक ढेले के रूप में स्तरों में और कोयले में सूक्ष्मता से बिखरे हुए रूप में भी पाया जाता है। ऐसे कोयले आक्सीकृत होते हैं और सरलता से टूटकर "स्टैक"* बनते हैं। इनमें स्वतः आग लगने की संभावना रहती है।

आसाम

आसाम में दो श्रेणियाँ हैं। एक उत्तर आसाम के बैरेल में और दूसरी पच्छिम आसाम के जैन्तिया में। बैरेल के क्षेत्र उत्तर प्रादिनूतन युग के और जैन्तिया के क्षेत्र अधर प्रादिनूतन युग के हैं। आसाम के जिन क्षेत्रों से कोयला निकाला जाता है उन्हें हम तीन मण्डलों—ऊपरी मण्डल, मध्य मण्डल और निचले मण्डलों—में बाँटते हैं।

ऊपरी मण्डल में उत्तर आसाम के कोयला-क्षेत्र हैं। ये उत्तर प्रादिनूतन युग के हैं और सम्भवतः अधर आदि-नूतन युग तक चले जाते हैं।

मध्य मण्डल में खासी और जैन्तिया पहाड़ियों के पतले स्तर हैं। ये अधर प्रादिनूतन युग के हैं।

निचले मण्डल में गारो, खासी, जैन्तिया और मिकिर पहाड़ियों के पतले अन्तरित स्तर हैं। इन कोयलों के विश्लेषण ऊपर दिये गये हैं। यदि इन कोयलों से गन्धक निकाल दिया जा सके तो कोयले की उत्कृष्टता बढ़ जायगी और साथ ही गन्धक की भी प्राप्ति होगी जिसका अभाव भारत में बहुत अधिक है। गन्धक के लिए भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

उत्तर आसाम के कोयला-क्षेत्र

नामफुक-नामचिक कोयला-क्षेत्र—नामफुक के दक्खिन पहाड़ियों में कोयले के स्तर पाये जाते हैं। नामचिक नदी के समीप तल से ३६० फुट की गहराई में ६० फुट का कोयला-स्तर पाया गया है। इसमें २६ फुट का स्तर सर्वोत्कृष्ट कोटि का है। कोयले का नीचे की ओर अत्यधिक झुकाव (डिप स्टीप) है।

---

*ढेर जो १०८ घनफुट के बराबर हो, कोयला नापने की इकाई।

माकुम कोयला-क्षेत्र—तिराप नदी के दक्खिन-पच्छिम में लखीमपुर और शिवसागर जिलों की दक्खिनी सीमा पर यह कोयला-क्षेत्र है। यह अच्छी किस्म का लिगनाइट है। कोयले का स्तर १५ से ६० फुट तक पाया गया है। कई और पतले स्तर हैं। यहाँ भी कोयले का नीचे की ओर अधिक झुकाव (डिप स्टीप) है।

जयपुर कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला २० मील तक फैला हुआ है। पूर्व की ओर इसका dip steep है। डिसांग नदी खंड में प्रायः ४५ फुट कोयले ६ स्तरों में पाये गये हैं।

नज़ीरा कोयला-क्षेत्र—यहाँ का कोयला प्रायः १६ मील तक फैला हुआ है। दक्खिन-पूर्व की ओर इसका (dip steep) होता जाता है। यहाँ कोयले के कई स्तर हैं जिनमें पाँच स्तरों से कोयला निकाला जा सकता है। ये पाँच स्तर प्रायः ७० फुट मोटे हैं। अन्य कोयला-क्षेत्र जांजी और डिसाई, नज़ीरा कोयला क्षेत्र के दक्खिन-पच्छिम में क्रमशः ८ मील और २० मील की दूरी पर हैं।

मिकिर पहाड़ी के कोयला-क्षेत्र

मिकिर पहाड़ियों में कई स्थलों पर २० फुट तक मोटे कोयले के स्तर पाये गये हैं। पर यहाँ का कोयला आसाम के अन्य कोयलों से निकृष्ट कोटि का है। लंगलोई पहाड़ी में १२ फुट का स्तर, डिसोमा नदी में ३ से ४ फुट के दो स्तर, नम्बोर और डोइग्रुंग नदियों में ३–७ फुट मोटे निकृष्ट कोटि के स्तर पाये गये हैं। ये स्तर अंधर प्रादिनूतन युग के हैं।

खासी और जैन्तिया पहाड़ी

चेरापुंजी के आसपास प्रादिनूतन युग के कोयले अनेक स्थलों पर पाये जाते हैं। ये रोंगासानोवा, लैट्रिनव्यू और माओ लौंग में हैं। जैन्तिया पहाड़ी के अनवी और लाका डोंग में भी हैं। यहाँ के कोयले कोक बननेवाले उत्कृष्ट कोटि के हैं। राख की मात्रा ५ से २० प्रतिशत रहती है। गंधक कुछ अधिक रहता है पर कलरीमान ६५०० से ७७५० कलरी के बीच रहता है। खासी पहाड़ी के निचले मण्डल के कोयले में रेज़िन के बिन्दु पाये गये हैं। पर ऊपरी मण्डल के कोयले निकृष्ट कोटि के हैं। जल की मात्रा अधिक होने के कारण ये कोयले कोक नहीं बनते अथवा बहुत कम बनते हैं।

गारो पहाड़ी के कोयला-क्षेत्र

सबसे निचले प्रादिनूतन युग के कोयले यहाँ के कोयला-क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

कैलाश शिखर के निचले ढाल पर सिमसांग घाटी के पूर्व में बलजोंग, डोगरिंग और वैमौंग के कोयला-क्षेत्र हैं। बलजोंग क्षेत्र में दो स्तर पाये गये हैं। ऊपर वाला स्तर ३½ फुट मोटा और २०० फुट नीचे वाला स्तर करीब ६ फुट मोटा है। दोनों स्तर के कोयले उत्कृष्ट कोटि के हैं। डोगरिंग क्षेत्र में नीचे वाला स्तर ६ से ९ फुट मोटा है। वैमोंग कोयला क्षेत्र में ३ स्तर हैं। ऊपर का स्तर ४½ फुट मोटा, बीच का प्रायः २ फुट मोटा और नीचे का ५ फुट तक मोटा है। ये सब कोयले उत्कृष्ट कोटि के हैं। इन क्षेत्रों के उत्तर में तुरा पहाड़ी के दक्खिन और महत्त्व के दो स्तर पाये गये हैं। ये बहुत अधिक गहराई में नहीं हैं। पर बहुत दूर तक पहाड़ियों में फैले हुए हैं। यहाँ के नमूने से मालूम होता है कि ये उत्कृष्ट कोटि के हैं। तुरा पहाड़ी के उत्तर में सिमसांग घाटी में दरांग गिरि और रौंग्रेन गिरि के आस-पास भी कोयले पाये गये हैं जो खानों से निकाले जा सकते हैं।

राजपूताना

पलान कोयला-क्षेत्र—बीकानेर से १३ मील दक्खिन-पच्छिम में रेतीली मरुभूमि में प्रादिनूतन नाणकाश्न चूने-पत्थरों के नीचे लिगनाइट कोयले पाये गये हैं। इनकी कुल मोटाई २० फुट तक जाती है। यहाँ के कोयले में जल की मात्रा अधिक २० से ३० प्रतिशत पायी गयी है। वाष्पशील अंश ऊँचा और कलरीमान नीचा पाया गया है। सूखने पर कोयला टूटता है। इसमें स्वतः आग लगने की संभावना रहती है। इसकी इष्टका बनाकर इस्तेमाल कर सकते हैं।

जोधपुर के उत्तर-पच्छिमी भाग में शिव के प्रायः ४० मील पच्छिम में ३३० फुट की गहराई के एक कुएं में प्रायः १० फुट मोटाई का लिगनाइट का एक स्तर पाया गया है।

हिमालय

मंडी के दक्खिन भाग में कोयले का एक स्तर पाया गया है। इस कोयले में माक्षिक की ग्रन्थिकाएँ पायी गयी हैं। इस माक्षिक से गन्धक प्राप्त हो सकता है। बिलासपुर के देहलांग में कोयले के २ फुट के स्तर पाये गये हैं। सूखे कोयले के विश्लेषण से स्थायी कार्बन ६० प्रतिशत, राख २९ प्रतिशत और वाष्पशील अंश ११ प्रतिशत पाया गया है।

कश्मीर

कश्मीर के दक्खिन-पच्छिम किनारे के पास हिमालय की तराई की पहाड़ियों में अधर प्रादिनूतन युग का कोयला पाया गया है। इन क्षेत्रों का विस्तार से अध्ययन

हुआ है। कुछ स्थानों के कोयले के स्तर ऐसे हैं कि उनसे कोयला निकाला जा सकता है। ये कोयले अच्छी किस्म के भी हैं। पर परिवहन की सुविधा नहीं है क्योंकि स्थान पहाड़ी है और निकट में रेलवे नहीं है। ये कोयला-क्षेत्र चनाब नदी के दोनों तटों पर जम्मू प्रान्त के रियासती जिले में हैं।

जम्मू की कोयले की खानों को हम तीन समूहों में बाँट सकते हैं। एक समूह चनाब नदी के पच्छिम में है। यह प्रमुख समूह है। इस समूह में कालकोट, मेटका, महोगला, चकर और डांडली कोयला-क्षेत्र हैं। दूसरा समूह उत्तर में है। इसमें धनसाल और सवाल कोट की खानें हैं। तीसरा समूह चनाब के पूरब में है। इसमें लड्डा और अन्य कोयला-क्षेत्र हैं।

कश्मीर में तृतीयक कोयले के दो कोयला-क्षेत्र पाये गये हैं—ऊपर के कोयला-क्षेत्र और नीचे के कोयला-क्षेत्र। नीचे के कोयला-क्षेत्र बौक्साइट से मिले हुए हैं। इन क्षेत्रों के अधिक कोयले अंथ्रासाइट किस्म के हैं। शुद्ध अंथ्रासाइट और बिटुमिनी कोयले के बीच के ये कोयले हैं। ये बहुत अंश में कोक बननेवाले कोयले हैं।

मद्रास

दक्खिन आर्कोट जिले के कुड्डालोर क्षेत्र में महत्त्व के लिगनाइट के निक्षेप पाये गये हैं। भारत के भौमिकी-आपरीक्षण विभाग ने इन क्षेत्रों का परीक्षण किया है। वृद्धाचलम और कुड्डालोर तालुकों के बीच के स्थानों में खोदाई हुई है। दक्खिन रेलवे के कुड्डालोर-वृद्धाचलम शाखा के नेववली रेलवे स्टेशन के आस-पास ४ से ५ मील तक फैला हुआ है। खोदाई से पता लगता है कि ५२ वर्गमील में यह कोयला-क्षेत्र फैला हुआ है जिसके लगभग २३ वर्गमील में लिगनाइट के स्तर हैं जिनकी मोटाई १०॥ फुट से लेकर ५१ फुट तक है। स्तर की औसत मोटाई करीब २२ फुट है। अधिभार (Over burden) की मोटाई १६३·२ फुट है। अधिभार और लिगनाइट का महत्तम अनुपात २४·१ : १; लघुतम अनुपात ४·५ : १ और औसत अनुपात ८·८ : १ है।

यहाँ के अनेक नमूनों का विश्लेषण हुआ है। विश्लेषण से पता लगता है कि कोयला बहुत अच्छी किस्म का है। इनके औसत कलरी-मान ९,००० बि० टि० यू० है और ५० प्रतिशत से अधिक कोयले का कलरी-मान ९,५०० बि० टि० यू० के ऊपर है। औसत जल की मात्रा १४ प्रतिशत, वाष्पशील अंश ४३ प्रतिशत और स्थायी कार्बन ३५ प्रतिशत है। राख अपेक्षया कम है। फास्फरस की मात्रा नगण्य और गंधक की औसत मात्रा १ प्रतिशत से कम। यहाँ की समस्त संचिति ४९८० लाख टन कूती गयी है।

अठारहवाँ अध्याय

भारत में कोयले का व्यवसाय

भारत में कोयले का ज्ञान बहुत प्राचीन है और उसका उपयोग बहुत दिनों से होता आ रहा है। कब से कोयले का उपयोग शुरू हुआ, इसका ठीक-ठीक पता हमें नहीं लगता पर खानों से कोयले निकालने का काम और कोयले का व्यापार अपेक्षया आधुनिक है और अंग्रेज़ों के भारत आने पर ही शुरू हुआ। उद्योग-धन्धों और घरेलू ईंधन के रूप में सार्वजनिक रूप से कोयले का उपयोग भी आधुनिक युग में ही अंग्रेज़ों के आने के बाद ही शुरू हुआ।

इंग्लैंड में कोयले का उपयोग अपेक्षया अधिक प्राचीन है। तृतीय हेनरी के राज्यकाल में सन् १२३९ ई० में कोयला निकालने का लाइसेंस पहले-पहल दिया गया था। सन् १३०६ ई० में लण्डन में कोयले के उपयोग की निषेधाज्ञा जारी की गयी थी। पर सन् १३२५ ई० में फ्रांस और इंग्लैंड के बीच कोयले का व्यापार शुरू हुआ। कोयला इंग्लैंड से फ्रांस जाता था और उसके स्थान में फ्रांस से अनाज आता था। इसी समय में न्यू कैसल नामक स्थान कोयला-क्षेत्र के लिए प्रसिद्ध हो गया। यहाँ से ही कोयला जहाजों पर लाद कर लण्डन और अन्य बन्दरगाहों, फ्रांस, हालैण्ड और जर्मनी जाता था। इसके बाद इंग्लैंड के अनेक स्थलों में कोयला पाया गया और न्यू कैसल का महत्त्व तब धीरे-धीरे कम होने लगा। अन्य क्षेत्रों से अब कोयला बाहर जाने लगा। सन् १७७६ ई० तक इंग्लैंड के ब्लीथ (Blyth), हार्टले (Hartley) और डरहम (Durham) के कोयला-क्षेत्र प्रसिद्ध हो गये और यहाँ की खानों से कोयला बाहर जाने लगा।

जब अंग्रेज भारत आये तब वे कोयले के उपयोग के आदी थे और उसकी खोज करने लगे। प्रारम्भ में तो वे अपने कामों के लिए कोयला इंग्लैंड से मँगाते रहे पर वह महँगा पड़ता था, इससे भारत में कोयले के उत्पादन की बात सोची जाने लगी। वारेन हेस्टिंग्ज ने सन् १७७४ ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी के दो व्यक्तियों, ग्रैण्ट हीटले (Grant Heatley) और जौन समर (John Summer) को खानों से कोयला निकालने का लाइसेंस दिया। ग्राण्ट हीटले ने बीरभूम जिले में कोयले

का पता लगाया था। इस सम्बन्ध में एक लेख सन् १८४२ ई० में बंगाल के एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में छपा था। दुर्भाग्यवश वहाँ का कोयला इंग्लैंड के कोयले के मुकाबले में बहुत निकृष्ट कोटि का सिद्ध हुआ तब तक लार्ड कौर्नवालिस भारत के गवर्नर-जेनेरल हो कर आ गये थे। उनकी इस तरफ कोई रुचि नहीं थी। इस कारण कुछ वर्षों तक भारत की खानों से कोयला निकालने का काम रुका रहा। फर-कुहार (Farquhar) और मोटे (Motte) ने सन् १७७७ ई० में दामोदर और बड़ाकर नदियों के बीच झरिया के आस-पास की खानों से कोयला निकालने के लिए प्रार्थनापत्र दिया। लोहे के कारखानों में कोयले की इस समय बड़ी आवश्यकता थी। अभी तक लोहे के निर्माण में इंग्लैंड का ही कोयला प्रयुक्त होता था। उस समय अनाज जहाजों पर लद कर विलायत जाता था और वहाँ से जहाज के पेंदे के बोझ को ठीक रखने के लिए कोयला लद कर आता था। ऐसा कोयला महंगा पड़ता था। ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने कोयले के स्थान में लकड़ी के कोयले के व्यवहार का सुझाव दिया था। इस बीच अर्ल आफ मिण्टो भारत के गवर्नर-जेनेरल होकर आये और उन्होंने भारत के कोयले की फिर से जांच करने का आदेश दिया। यह काम युद्ध विभाग को सौंपा गया। इसके फलस्वरूप कर्नल हार्डविक (Hardwicke) ने कोयले की परीक्षा कर सन् १८०९ ई० में फिर सम्मति दी कि कोयला उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। पर इससे संतुष्ट न रह कर मार्किस ऑफ हेस्टिंग्स ने फिर आज्ञा दी कि भारतीय कोयले की पुनः परीक्षा की जाय। विशेषकर यह देखा जाय कि धातु-निर्माण के लिए यह कोयला ठीक है अथवा नहीं। इसके लिए इस विषय के किसी विशेषज्ञ को यह काम सौंपने का आदेश दिया गया। यह भी कहा गया था कि खानों की गहराई से कोयला निकालकर उसकी परीक्षा की जाय ताकि जिस कोयले की परीक्षा हो वह औसत गुण का हो। साधारणतया ऊपर तल का कोयला अच्छा नहीं होता और उसका ह्रास अधिक हुआ रहता है। इस बीच देखा गया कि कलकत्ते का कोई व्यापारी दामोदर नदी द्वारा नावों पर कोयला ले जाकर उसका उपयोग कर रहा है।

इस काम के लिये रूपर्ट (Rupert) इंग्लैंड से बुलाये गये। उन्होंने बंगाल के कोयला-क्षेत्रों के कोयले की परीक्षा की। उन्होंने सन् १८१५ ई० में रिपोर्ट लिखी। वह रिपोर्ट सन् १८३३ ई० में एशियाटिक रिसर्चेज़ के जर्नल में छपी। उनका मत था कि बंगाल का कोयला अनेक कामों के लिए इंग्लैंड के कोयले से बुरा नहीं है। चूने की भट्ठी में अब लकड़ी के कोयले के स्थान में पत्थर का कोयला इस्तेमाल होने लगा।

भारत सरकार ने जोन्स को खानों से कोयला निकालने के लिए ४००० पाउण्ड पेशगी दी पर जोन्स को कोयला निकालने में सफलता नहीं मिली। कलकत्ते की कुछ अन्य कम्पनियों ने रानीगंज खानों से कोयला निकालने के लिए सन् १८२० ई० में एक अलग कम्पनी बनायी। सन् १८३९ में ३६,००० टन कोयला इन खानों से निकला था। सन् १९५४ ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने कोयला निकालने का काम शुरू किया। धीरे-धीरे कोयला निकालने की तायदाद बढ़ती गयी। सन् १८५७-५८ ई० में भारत की खानों से २९३,४४३ टन कोयला निकला और उसी वर्ष ९२,९८३ टन कोयला बाहर से आया था। कलकत्ते में जब चटकल (जूट के कारखाने) खुले तब कोयले की माँग बहुत बढ़ गयी और कोयले का व्यवसाय चमक उठा। निम्न आंकड़ों से कोयले के उत्पादन और इसके व्यापार की वृद्धि का कुछ पता लगता है।

वर्ष	मात्रा टन में	समस्त मूल्य रु०	प्रतिटन मूल्य खानों पर रु० आ० पा०
१८६८	४५९,४०८	—	—
१८७८	९२५,४९४	—	—
१८९८	४,६०८,१९६	—	—
१९०४	८,३४८,५६१	—	—
१९०६	९,७८३,२५०	—	—
१९२९	२३,४१८,७३४	८,९३,५९,१२४	३ – १४ – ०
१९३०	२३,८०३,०४८	९,२६,२५,३२३	३ – १४ – ०
१९३१	२२,७१६,४३५	८,२६,९८,३६४	३ – १३ – ०
१९३२	२०,१५३,३८७	६,८०,९१,८०४	३ – ६ – ०
१९३३	१९,७८९,१६३	६,११,७७,७३९	३ – २ – ०
१९३४	२२,०५७,४४७	६,३०,६०,९५१	२ – १४ – ०
१९३५	२३,०१६,६९५	६,५२,२०,८४०	२ – १३ – ०
१९३६	२२,६१०,८२१	६,२४,९८,४०४	२ – १२ – ०
१९३७	२५,०३६,३८६	७,८१,०२,४३९	३ – २ – ०
१९३८	२८,३४२,९०६	१०,६४,२३,८३५	३ – १२ – ०
१९३९	२७,७६९,११२	९,८७,२३,९१६	३ – ९ – ०
१९४०	२९,३८८,४९४	१०,५१,६५,२३२	३ – ९ – ०

१९४१	२९,४६३,७४२	१०,७६,७९,०१४	३ – १० – ०
१९४२	२९,४३३,२५३	१३,०९,०५,०६४	४ – ७ – ०
१९४३	२५,५११,९०९	१६,९५,०७,३२९	६ – १० – ०
१९४४	२६,१२६,६७६	२७,२३,९२,१३१	१२ – १२ – ६
१९४५	२९,१६७,१५२	३२,८०,९९,००८	१४ – ३ – ४
१९४६	२९,७६६,०१८	३५,७३,८७,७१३	१२ – ० – ०
१९४७	३०,१४४,५०५	४३,८९,७९,३५४	१४ – ९ – ०
१९४८	३०,१२४,१७५	४५,१८,६२,६२५	१५ – ० – ०
१९४९	३१,६९५,३७५	४७,०९,३०,६२५	१५ – ० – ०
१९५०	३२,२९६,७२४	४६,६६,७६,७३७	१४ – ७ – ०
१९५१	३४,४३२,३९६	५०,५७,२५,८१६	१४ – ११ – ०
१९५२	३६,३०३,५८९	५३,५४,७७,९३८	१४ – १२ – ०
१९५३	३५,९८०,४०८	५२,८४,६२,२४२	१४ – ११ – ०
१९५४	३६,८८३,५४२	५३,९४,२१,७८९	१४ – १० – ०
१९५५	३८,२२५,९५९	५२,४१,८१,८२२	१४ – ११ – ०

किस प्रान्त से कितना कोयला निकलता है इसका कुछ अनुमान निम्न आंकड़ों से लगता है।

प्रान्त	कोयले का उत्पादन टन में	
	१९४०	१९४६
आसाम (खासी और जैन्तिया हिल के साथ-साथ)	२७७,४४०	३४९,५१६
बलूचिस्तान (खलात राज्य के साथ-साथ)	१८,८८९	१९६,६३८
बंगाल	८,४५३,०८३	६,९५३,९६९
बिहार	१५,३४४,९९२	१७,३३३,१५२
मध्यभारत	३३३,३०५	५२०,७३८
मध्यप्रान्त	१,८०६,३१३	१,५७०,३८९
पूर्व राज्य एजेन्सी	१,६०५,००९	१,४३०,७७४
उड़ीसा (तलचीर राज्य के साथ-साथ)	६२,६६०	९६,०७७
पंजाब	१९५,६१०	१९२,७०६
राजपूताना (बीकानेर)	४०,५८८	५६,६६४

किस राज्य से कितना कोयला सन् १९४७ से १९५५ तक निकला

उत्पादन टन में है

वर्ष	आसाम	बिहार	उड़ीसा	पच्छिम बंगाल	मध्यप्रदेश
१९४७	३५५,००१	१७,३१८,१६५	४३१,७४२	७,६४६,३५७	२,५९०,४११
१९४८	३५८,०५०	१६,३४५,२४९	४२३,१०३	८,१२९,५४१	३,००५,१३५
१९४९	३८६,१०२	१७,३४१,७९२	३९७,६४३	८,८०३,८१३	२,९४३,०४०
१९५०	३९२,८०६	१७,४९०,७३०	३७५,७६४	८,९७०,८२३	३,०४०,३५०
१९५१	४६६,०५९	१८,५८८,३००	४८१,८१५	९,६४५,५६६	३,२०२,६१९
१९५२	४९३,१८९	१९,२८६,२९८	४५९,४३३	१०,३३८,३७७	३,४४९,०७७
१९५३	४८३,१७३	१९,०११,८६४	४८९,९६८	१०,२२६,२०६	३,५२३,७६९
१९५४	४९५,५३०	१९,१५६,६१३	५२६,४८६	१०,६०३,०२९	३,६१६,५४८
१९५५	५४२,९६७	१९,४२३,६१८	५५२,३७०	११,३३७,८३८	३,७३९,१९९

कोयले का उत्पादन (क्रमागत)

उत्पादन टन में है

वर्ष	हैदराबाद	राजस्थान	विन्ध्यप्रदेश	कश्मीर	कच्छ	समस्त
१९४७	१,१६३,०७७	६२,०९९	५६९,०२६	८,६२७	—	३०,१४४,५०५
१९४८	१,०६९,५३७	७२,३७१	७२०,६९७	४९५	—	३०,१२४,१७५
१९४९	१,०९२,४३६	६७,३६५	६६०,९८०	२,२०४	—	३१,६९५,३७५
१९५०	१,२१३,८०३	२०,२०३	७९२,१६४	११	७०	३२,२९६,७२४
१९५१	१,२६९,२४०	३३,०७६	७४३,८४७	१,८७४	—	३४,४३२,३९६
१९५२	१,४३४,१९४	४५,१३३	७९६,१६४	१,७२४	—	३६,३०३,५८९
१९५३	१,३३१,१४३	३४,४३३	८७८,६११	१,२४१	—	३५,९८०,४०८
१९५४	१,५०१,४९२	२९,६१५	९५१,४९७	२,७३२	—	३६,८८३,५४२
१९५५	१,५४०,५७१	२८,९४४	१,०६०,४५२	—	—	३८,२२५,९५९

प्रारम्भ में कोयले के व्यवसाय में कमी इस कारण थी कि कोयले के ढोने के लिए रेल के डब्बे पर्याप्त मात्रा में मिलते नहीं थे। सन् १८८५ ई० में कोयले की ९५ खानें थीं जिनमें केवल बंगाल में ९० खानें थीं (उस समय बिहार भी बंगाल में ही सम्मिलित था)। सन् १९०० में खानों की संख्या २८६ थी जिनमें २७१ खानें केवल बंगाल में थीं। सन् १९०६ में खानों की संख्या ३०७ हो गयी जिनमें केवल बंगाल में २७४ खानें थीं। सन् १९५५ में खानों की संख्या ८५३ हो गयी जिनमें ४८४ ऐसी खाने हैं जिनमें यन्त्रों से काम होता है और शेष ३६९ ऐसी खानें हैं जिनमें केवल हाथों से काम होता है। विभिन्न राज्यों में खानों की संख्या इस प्रकार है——

आसाम	१६
पश्चिमी बंगाल	२२२
बिहार	५४०
मध्यप्रदेश	५१
उड़ीसा	६
विन्ध्यप्रदेश	१३
हैदराबाद	४
राजस्थान	१

इन खानों में सन् १९५५ में ३४७,९८० व्यक्ति काम करते थे जिनमें पुरुष ३००,३२६ और स्त्रियाँ ४७,६५४ थीं। इनमें १८७,४०६ खानों के अन्दर और शेष खानों के बाहर काम करते थे। स्त्रियों के लिए खानों के अन्दर नीचे काम करना वर्जित है। बालकों के लिए भी खानों में काम करना वर्जित है।

सन् १९५५ में भारत में करीब ४९५ जायण्ट स्टॉक कोयला कम्पनियाँ थीं। इनकी परिदत्त पूंजी लगभग २२·७३ करोड़ की है। इनमें से १३ आसाम में, २४ बिहार में, ११ बम्बई में, ६ मध्यप्रदेश में, ४३८ पश्चिम बंगाल में, १ हैदराबाद में, ३ विन्ध्यप्रदेश में और १ उड़ीसा में हैं। इन कम्पनियों द्वारा समस्त कोयले का प्रायः तीन-चतुर्थांश उत्पादन होता है। शेष कोयला निजी खानों से छोटे-छोटे अनेक फार्मों के द्वारा निकाला जाता है।

रानीगंज का कोयला-क्षेत्र पहले सबसे बड़ा था। यहाँ की खानों से ही सबसे अधिक कोयला निकलता था। सन् १९०० में ६१·२ लाख टन समस्त कोयले का २५·५ लाख टन केवल रानीगंज की खानों से निकला था। पर सन् १९०६ से स्थिति बदल गयी है। अब झरिया की खानों से सबसे अधिक कोयला निकलने लगा है।

पूर्व में भारत की खानों से वार्षिक उत्पादन के जो वक्र दिये हुए हैं उनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

भारत के कोयले का अधिक अंश, प्रायः ९८ प्रतिशत, भारत में ही खर्च होता है। कोयले का बहुत थोड़ा अंश देश से बाहर जाता है। देश में जो कोयला खपता है उसका अधिक अंश भारतीय रेलों में खर्च होता है। उसके बाद धातु-निर्माण का स्थान है। वस्त्र-व्यवसाय, घरेलू ईंधन, बिजली उत्पादन और अन्य उद्योग-धन्धों में कोयला खर्च होता है। भारत में कोयले का उत्पादन सन् १९५५ में प्रायः ३८२·३ लाख टन हुआ था जिसका मूल्य ५६०३ लाख रुपया होता है। इस वर्ष बाहर से केवल २१६० टन कोयला आया था। भारत में जो कोयला खपता है उसकी खपत विभिन्न मदों में किस तरह हुई, इसका पता निम्नांकित आंकड़ों से लगता है। ये आंकड़े सन् १९५५ के हैं जो भारत सरकार द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट से लिये गये हैं।

कोयले और कोक के उपभोक्ता	कोयले और कोक की मात्रा	समस्त खपत की प्रतिशतता
(१) परिवहन		
रेलवे	१२,२९२,१३६	३६·८
पोर्ट ट्रस्ट रेलवे	१४५,६५६	०·४
ट्रैमवे	४१७	—
भीतरी स्टीमर सर्विस	२६०,०८८	०·८
छोटे-छोटे स्टीमर सर्विस	१९,१३१	०·१
भारतीय कोष्ठक (bunker)	२४२,३६९	०·७
(२) वस्त्र-व्यवसाय		
पुतलीघर	१,७२९,२८१	५·२
चटकल (जूटमिल)	४७३,४१९	१·४
ऊन मिल	४१,५६०	०·१
रेशम कारखाने	१२१,१२४	०·४
(३) धातु-निर्माण		
लोहा और इस्पात के कारखाने	३,५५४,६१५	१०·७
ताँबे के कारखाने	४३,८३४	०·१
लोहे के सामान बनाने के कारखाने	१०७,७९३	०·३

कोयले और कोक के उपभोक्ता	कोयले और कोक की मात्रा	समस्त खपत की प्रतिशतता
(४) **अधातु खनिज उत्पादन**		
ईंट की भट्ठियाँ	१,५५८,६८३	४·७
उष्ण-सह निर्माण की भट्ठियाँ	८२,६७५	०·२
काँच-भट्ठियाँ	२१२,७१५	०·६
बर्तन-भट्ठियाँ	१००,९४९	०·३
सीमेन्ट भट्ठियाँ	१,५६५,४४०	४·७
चूना-भट्ठियाँ	१४०,६११	०·४
(५) **रासायनिक उत्पाद**		
रासायनिक उद्योग-धन्धे	२६६,७९८	०·८
वनस्पति कारखाने	२६८,४२१	०·८
दियासलाई, साबुन और अफीम के कारखाने	१६,४८६	—
(६) **कृषि और कृषि सम्बन्धी कार्य** जिसमें चाय-बगीचे, दुग्धशाला, रुई से बिनौला निकालने के कार्य भी सम्मिलित हैं।	७२३,०४२	२·१
(७) **खाद्य-निर्माण**		
खाद्य-उत्पाद, चीनी, बरफ और स्टार्च के कारखाने।	४१०,६४४	१·३
(८) मद्य के कारखाने (डिस्टिलरी)	९२,२०८	०·३
(९) कागज के कारखाने	५८३,३७२	१·७
(१०) तम्बाकू के कारखाने	१०३,३५१	०·३
(११) इंजीनियरिंग के कारखाने	३३६,९९८	१·०
(१२) बिजली कम्पनियाँ और गैस कारखाने	३,१२८,६८६	९·४
(१३) म्युनिसिपैल्टियाँ	१२८,९४३	०·४

कोयले और कोक के उपभोक्ता	कोयले और कोक की मात्रा	समस्त खपत की प्रतिशतता
(१४) अन्य कारखाने जैसे तेल क्षेत्र, अभ्रक खानें, लकड़ी, चमड़े, रबर कारखाने, कोक चूल्हे, आर्डिनेन्स, कुटीर उद्योग कारखाने आदि आदि हैं।	१,२४९,११५	३·७
(१५) ईंधन	१,८३९,६७२	५·५
(१६) निर्यात		
पाकिस्तान	९८३,६३७	२·९
अन्य देश	६३२,६३१	१·९

भारत में कोयले का उत्पादन, आयात और निर्यात

वर्ष	उत्पादन टन	आयात टन (क)	निर्यात टन (क)
१८८५	१,२९४,२२१	७९०,९३०	७५०
१८९०	२,१६८,५२१	७८४,६६४	२६,३०१
१८९५	३,५४०,०१९	७६१,९९६	८१,१२६
१९००	६,११८,६९२	१३५,६४९	४९०,४९१
१९०५	८,४१७,७३९	१९७,७८४	७८३,०५१
१९०९	११,८७०,०६४	४९०,४२१	५६३,९४०
१९१३	१६,२०८,००९	६४४,९३४	७५९,२१०
१९१८	२०,७२२,४९३	५४,३४६	७४,४६६
१९१९	२२,६२८,०३७	४८,६७५	५०८,६३५
१९२०	१७,९६२,२१४	३९,७२७	१,२२४,८७२
१९२१	१९,३०२,९४७	१,०९०,७४९	२७७,८५२
१९२२	१९,०१०,९८६	१,२२०,६३९	१५०,०५५
१९२३	१९,६५६,८८३	६२४,९१८	१८२,६०६

भारत में कोयले का उत्पादन, आयात और निर्यात

वर्ष	उत्पादन टन	आयात टन (क)	निर्यात टन (क)
१९२४	२१,१७४,२८४	४६३,७१६	२७२,४३६
१९२५	२०,९०४,३७७	४८३,१६०	२६७,०२६
१९२६	२०,९९९,१६७	१९३,९०८	६६१,७११
१९२७	२२,०८२,३३६	२४३,६०३	६२०,१३५
१९२८	२२,५४२,८७२	२१०,१८६	६७०,३८४
१९२९	२३,४१८,७३४	२१८,५६०	७६६,२३२
१९३०	२३,८०३,०४८	२१७,०२९	५०६,५२१
१९३१	२१,७१६,४३५	८८,०३५	४४९,०२१
१९३२	२०,१५३,३८७	४७,५४४	५२१,९०८
१९३३	१९,७८९,१६३	६७,३३०	४२८,८००
१९३४	२२,०५७,४४७	७२,१६१	३३०,२३४
१९३५	२३,०१६,६९५	७७,०७५	२१७,५८४
१९३६	२२,६१०,८२१	९५,९३६	१९७,२१२
१९३७	२५,०३६,३८६	६४,८५०	८७३,३१०
१९३८	२८,३४२.९०६	४६,७४०	१,३४३,०३३
१९३९	२७,७६८,७६१	४९,५१७	१,६८८,०९२
१९४०	२९,३८८,४९४	५,२७४	२,११२,२८१
१९४१	२९,४६३,७४२	८,१४५	१,७३२,१७६
१९४२	२९,४३३,२५३	८,६६६	४२२,००१
१९४३	२५,५१२,१०९	२,२०१	२६३,६८६
१९४४	२६,१२६,६७६	४२३	१०३,६४३
१९४५	२९,१६७,१५२	१,१५७	५४,०३९
१९४६	२९,७६६,०१८	८,३५५	४६४,५०५
१९४७	३०,१४४,५०५	—	—
१९४८	३०,१२४,१७५	—	—
१९४९	३१,३९५,३७५	—	—

भारत में कोयले का उत्पादन, आयात और निर्यात

वर्ष	उत्पादन टन	आयात टन (क)	निर्यात टन (क)
१९५०	३२,२९६,७२४	—	९४९,९९०*
१९५१	३४,४३२,३९६	—	२,७९८,२७२
१९५२	३६,३०३,५८९	—	३,३०२,११५
१९५३	३५,९८०,४०८	—	१,९९१,३४७
१९५४	३६,८८३,५४२	—	२,०२१,९५६
१९५५	३८,२२५,९५९	२,१६०**	१,५७४,४२५

किस देश से कब कितना कोयला आया (टन में)

वर्ष	ग्रेट ब्रिटेन	आस्ट्रेलिया	दक्खिन-अफ्रिका युनियन	जापान	पुर्तगाली अफ्रिका	अन्य देश
१९२०	३३,७८६	१,०४३	१७६,३७६	१,२१६	१५०	५,९८९
१९३०	२०,२५८	१,१९०	१८६,०२९	१,५१२	५,०६१	२,९७९
१९३१	२९,९७४	३,४००	४८,७१६	४५	—	५,९००
१९३२	१९,८११	४,०७०	२०,४१८	७८२	—	२,४६३
१९३३	११,१७४	४,२४८	४५,२५८	४३५	—	६,२१५
१९३४	१३,३४०	६,९८१	४५,२६९	१,६२८	—	४,९४३

*आयात बहुत अल्प केवल बरमा और अमेरिका से क्रमशः १६० और २००० टन हुआ है। सन् १९४७ से आयात की मात्रा क्रमशः कम होती जा रही है पर वास्तविक आंकड़े प्राप्य नहीं हो सके।

**इनमें कोयले के साथ कोक भी सम्मिलित है।

किस देश से कब कितना कोयला आया (टन में)

वर्ष	ग्रेटब्रिटेन	आस्ट्रेलिया	दक्खिन-अफ्रिका युनियन	जापान	पुर्तगाली अफ्रिका	अन्य देश
१९३५	१३,०२२	२,६२४	४२,३१४	१९०	५,६४८	१३,२७७*
१९३६	१९,२७८	४,५९३	४८,४७२	१,१७९	७,०९४	१५,३२०*
१९३७	२३,५५५	२,७५१	२२,१०२	२,२५७	७,५७३	६,६१२*
१९३८	१४,०९०	४१०	२३,१७०	९८	७,६४१	१,३३१
१९३९	६,६३१	—	३७,०५१	—	—	३,०७६
१९४०	३,५६७	—	४१०	—	—	१,०४९
१९४१	३,०७९	—	१,०८८	—	—	३,८४१
१९४२	२,१०१	—	४,५८५	—	—	१,७००
१९४३	२५१	—	४००	—	—	९९६
१९४४	२७७	—	—	—	—	१४६
१९४५	३०१	—	—	—	—	१
१९४६	—	—	९,३४५	—	—	—

भारत के स्वतंत्र होने के बाद कोयले का आयात बहुत ही अल्प हो गया है। अल्प मात्रा में केवल बरमा और अमेरिका से कोयला आया है।

खानों पर कोयले के मूल्य और निर्यात के मूल्य में जो अन्तर होता है वह निम्नांकित आँकड़ों से मालूम होता है—

वर्ष	खानों पर मूल्य प्रतिटन	निर्यात मूल्य प्रतिटन
	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
१९२९	३ – १० – ०	१० – ६ – ०
१९३०	३ – १२ – ०	११ – ५ – ०
१९३१	३ – ११ – ०	११ – ३ – ०

*इन आँकड़ों में जर्मनी का कोयला भी सम्मिलित है।

खानों पर कोयले के मूल्य और निर्यात के मूल्य में जो अन्तर होता है वह निम्नांकित आँकड़ों से मालूम होती है, क्रमागत—

वर्ष	खानों पर मूल्य प्रतिटन	निर्यात मूल्य प्रतिटन
	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
१९३२	३– ३–०	९–१५–०
१९३३	२–१५–०	९–१०–०
१९३४	२–१४–०	९–१३–०
१९३५	२–१३–०	८– ९–०
१९३६	२–१२–०	८– ५–०
१९३७	३– २–०	९– २–०
१९३८	३–१२–०	९–१५–०
१९३९	३–१२–०	९– ६–०
१९४०	३– ९–०	९–१०–०
१९४१	३– ९–०	९–१०–०
१९४२	३–१०–६	९–१०–०
१९४३	९–१३–०	१३– २–०
१९४४	१२–१३–०	२२– ०–०
१९४५	१४– ३–०	१६– ५–०
१९४६	१२– ०–०	१७– १–०
१९४७	१४– ९–०	—
१९४८	१५– ०–०	—
१९४९	१५– ०–०	—
१९५०	१४– ७–०	—
१९५१	१४–११–०	—
१९५२	१४–१२–०	—
१९५३	१४–११–०	—
१९५४	१४–१०–०	—
१९५५	१४–११–०	—

सन् १९४७ से निर्यात की मात्रा बहुत कम हो गयी है। केवल पाकिस्तान और सीलोन कुछ कोयला जाता है।

कोयले के व्यवसाय की स्थिति क्या है इसका बहुत कुछ ज्ञान कोयले के स्कन्ध (stock) की स्थिति से होता है। जब कोयले की मांग कम रहती है तब स्कन्ध की मात्रा बढ़ जाती है और जब कोयले की मांग बढ़ जाती है तब खानों से निकला सारा का सारा कोयला खतम हो जाता है और स्कन्ध की मात्रा घट जाती है। साधारणतया उत्पादन ऐसा होना चाहिए कि वर्ष के अन्त में स्कन्ध की मात्रा अधिक घटे-बढ़े नहीं। स्कन्ध के बढ़ने का कारण परिवहन की कठिनता भी होती है। मांग के रहते हुए भी रेल के डिब्बों की कमी से कोयला खानों से भेजा नहीं जा सकता और वह खानों में ही पड़ा रहता है। प्रयत्न बराबर हो रहा है कि रेल के डिब्बे पर्याप्त संख्या में प्राप्य होते रहें जिससे कि कोयला ज़ल्दी से जल्दी उपभोक्ताओं के पास पहुँचाया जा सके।

कोयले के व्यवसाय में यदि वृद्धि करना है तो उसके लिए दो बातों का प्रयत्न आवश्यक है। एक तो निर्यात बढ़ाना चाहिए जैसा ऊपर कहा गया है। आज भारत के बाहर केवल पाकिस्तान और सीलोन को कोयला भेजा जाता है। अन्य एशियाई देशों को भी कोयला भेजने का प्रयत्न होना चाहिए। दूसरा, घरेलू ईंधन और उद्योग-धन्धों में कोयले का उपयोग भारत में बढ़ाया जाय। उत्तर भारत में कोमल कोक के उपयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। लकड़ी और उपले के स्थान में अब कोमल कोक का उपयोग बढ़ रहा है। कोमल कोक के निर्माण में वृद्धि भी हो रही है। ऐसा कोक निकृष्ट कोयले से भी बन रहा है। यदि कोयले का कार्बनीकरण निम्न ताप पर किया जाय तो उससे उत्कृष्ट कोटि का कोमल कोक ही नहीं प्राप्त होगा बल्कि उससे ऐसा तेल भी प्राप्त होगा जो पेट्रोल के स्थान में मोटर गाड़ियों और हवाई जहाजों में प्रयुक्त हो सकता है और जिसकी भारत में बहुत कमी है। निकृष्ट कोटि के कोयले से पेट्रोलियम भी बन सकता है। फिशरट्रौप्श विधि से पेट्रोलियम प्राप्त करने में ऐसा कोयला प्रयुक्त हो सकता है। यह भी सम्भव है कि बायलर और भट्ठों में कोयले का चूर्ण इस्तेमाल हो। बोकारो के थर्मल स्टेशन में कोयले के चूर्ण से ही बिजली प्राप्त होती है।

कोयले की संचिति (Reserves)

भारत में कोयले की कितनी संचिति है, इसका कुछ अनुमान विशेषज्ञों द्वारा लगाया गया है। इस अनुमान के बाद भी कुछ नयी खानों का पता लगा है। पुरानी खानों में भी कुछ खानों की वास्तविक संचिति कितनी है इसका ठीक-ठीक अनुमान अब भी नहीं लगा है।

गोंडवाना के कोयला-क्षेत्रों में २००,००० लाख टन कोयले का अनुमान लगाया गया है जिसमें ४५,००० से ५०,००० लाख टन उत्कृष्ट कोटि का कोयला समझा जाता है और २०,००० लाख टन ऐसा कोयला है जो धातु के निर्माण के लिए कठोर कोक बनाने में इस्तेमाल हो सकता है।

तृतीयक कोयलों के सम्बन्ध में सर सीरिल फौक्स (Sir Cyril Fox) का अनुमान है कि आसाम के कोयला क्षेत्रों में दो अरब टन और उत्तर-पश्चिमीय भारत में ३० करोड़ टन कोयला, दोनों मिलाकर २ अरब ३० करोड़ टन कोयला विद्यमान है। मद्रास के दक्खिन आर्कोट ज़िले में १ अरब टन लिगनाइट कोयला भी प्राप्य है । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कोयला-क्षेत्रों का भी उत्तर प्रदेश, रीवाँ इत्यादि स्थानों में पता लगा है जिनकी तादाद का ठीक-ठीक अनुमान अभी लगाया नहीं गया है । इधर कुछ नये कोयला-क्षेत्र उड़ीसा में भी पाये गये हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है, कोयले के व्यवसाय का प्रारम्भ सन् १७७४ ई० में हुआ। पहले-पहल रानीगंज की खानों से कोयला निकालने का काम शुरू हुआ। पीछे झरिया की खानों से शुरू हुआ। प्रारम्भ में व्यवसाय का विकास मन्द था। रेल के डिब्बे पर्याप्त संख्या में मिलते नहीं थे। धीरे-धीरे व्यवसाय की उन्नति होने लगी। आज कोयले का व्यवसाय भारत का एक महत्त्व का व्यवसाय है । देश के उद्योग-धन्धे जैसे-जैसे बढ़ते गये, रेलमार्ग अधिकाधिक बढ़ता गया, वैसे-वैसे कोयले के व्यवसाय में भी बढ़ती होती गयी। वस्तुतः कोयले की खपत देश के उद्योग-धन्धों के विकास का द्योतक है क्योंकि भारत का बहुत अल्प कोयला बाहर जाता है। प्रायः ९८ प्रतिशत देश में ही खपता है। सबसे अधिक कोयले का उत्पादन १९५५ ई० में ३,८२,२५,९५९ टन हुआ जब कि १९३० ई० में महत्तम उत्पादन केवल २,३८,०३, ०४८ टन ही था।

कोयले के व्यवसाय की जाँच के लिए सरकार ने अब तक चार कमेटियाँ बनायी हैं। पहली कमेटी १९२० में बनी थी। इस कमेटी से कहा गया था कि वह जाँच कर बतावे कि कोयले की खानों से कोयला निकालने में क्या सुधार होना चाहिए ताकि कोयले के निकालने में जो कोयला नष्ट हो जाता है उसे बचाया जा सके । दूसरी कमेटी १९२५ ई० में बनी। इस समय कोयले का निर्यात कम हो रहा था, अतः उसका निर्यात कैसे बढ़ाया जाय इसकी जाँच के लिए कमेटी बनायी गयी। उसके लिए आवश्यक था कि बाहर भेजा जानेवाला कोयला उत्कृष्ट कोटि का हो। इसी कमेटी की सिफारिश पर कोल ग्रेडिंग बोर्ड बना था जिसने भिन्न-भिन्न श्रेणियों में कोयले के वर्गीकरण का प्रमाप निश्चित किया और केवल उत्कृष्ट कोटि के कोयले

को ही बाहर भेजने की अनुमति प्रदान करने की सिफारिश की। यह कोयला कैसा होना चाहिए, इसका उल्लेख वर्गीकरण प्रकरण में हो चुका है।

तीसरी कमेटी १९३७ ई० में बनी। इस कमेटी का नाम 'कोल माइनिंग कमेटी' था। इस कमेटी का काम था कोयले के व्यवसाय की पूरी जाँच करना और यह बताना कि

(१) कोयले के व्यवसाय में लगे कार्यकर्ताओं के बचाव के लिए व्यवस्था का क्या प्रबन्ध होना चाहिए और

(२) कोयले के व्यर्थ नष्ट हो जाने से बचाने के लिए किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए।

इस कमेटी के सुझाव से खानों पर और कोयले के ठीक तरह से लादने पर सरकार के खान-विभाग द्वारा नियंत्रण का सिद्धान्त स्वीकृत हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कोयले के संरक्षण और नियंत्रण की अधिक आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कारण १९४६ ई० में भारतीय कोयला खान कमेटी (इण्डियन कोल फील्ड कमिटी) की स्थापना हुई। इस कमेटी को निम्नलिखित काम सौंपे गये——

(१) कोयला-व्यवसाय के संबंध में इससे पहले जो कमेटियाँ समय-समय पर बनी थीं उनकी सिफारिशों पर पुनः विचार करना——

(क) उन सिफारिशों में किन-किन सिफारिशों पर अमल हुआ और उनसे क्या परिणाम निकला, उसकी जाँच करना।

(ख) जिन सिफारिशों पर अमल नहीं हुआ है अथवा अंशतः अमल हुआ है उन पर विचार करना और निर्णय करना कि उन सिफारिशों पर अमल करने की आवश्यकता है या नहीं।

(२) कोयले के व्यवसाय से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य समस्याओं पर विचार करना और उनके सम्बन्ध में सिफारिश करना तथा यह भी बताना कि धातु-निर्माण वाले कोयले और भाप-कोयले के संरक्षण की आवश्यकता है या नहीं। कोयले की नयी खानों के खोलने, पुरानी खानों के बँटवारे, कोयले के मूल्य निर्धारण और कोयले के व्यवसाय की अर्ध-व्यवस्था पर सम्मति देना।

इस कमेटी की सिफारिश के फलस्वरूप ही धनबाद के निकट जियालगोड़ा में राष्ट्रीय ईंधन अनुसन्धान शाला की स्थापना हुई जिसमें कोयले के सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान हो रहे हैं। अनुसन्धान का एक विषय यह भी था कि कोयले में गन्धक की मात्रा कैसे कम की जा सकती है।

एक दूसरी सिफारिश इस कमेटी की यह थी कि धातुओं के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले कोयले उत्कृष्ट कोटि के हों।

एक तीसरी सिफारिश यह थी कि कोयला-क्षेत्रों की रेल-गाड़ियाँ और पूर्वी रेलवे की हावड़ा से मोगलसराय तक की गाड़ियाँ बिजली से चलायी जायं।

भारत में आज कोक का भी निर्माण हो रहा है। कोक के निर्माण में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। कोक दो प्रकार के होते हैं; कठोर कोक और कोमल कोक। कठोर कोक उन सभी कामों में प्रयुक्त हो सकते हैं जहाँ कच्चा कोयला प्रयुक्त होता है। पर धातुओं के निर्माण में कठोर कोक का विशेष महत्त्व है। धातुओं के निर्माण में प्रयुक्त होनेवाले कोयले में गन्धक की मात्रा अल्पतम रहनी चाहिए। कठोर कोक में गन्धक की मात्रा अल्पतम रहती है। इस कारण धातुओं के निर्माण में कठोर कोक का ही उपयोग होता है। कोमल कोक हलका होता है। उसमें जल्दी आग पकड़ लेती है। कठोर कोक में आग जल्दी नहीं पकड़ती। इस कारण घरेलू ईंधन के लिए कठोर कोक ठीक नहीं है। कच्चा कोयला भी घरेलू ईंधन के लिए ठीक नहीं है। इसमें जल्दी आग भी नहीं पकड़ती और धुआँ भी बहुत बनता है। इस कारण कोमल कोक ही घरेलू ईंधन के लिए ठीक समझा जाता है।

भारत में कौन-कौन कम्पनियाँ कितना कठोर कोक तैयार करती हैं उसके आंकड़े यहाँ दिये जा रहे हैं।

भारत में १९३४ से १९४६ तक कठोर-कोक तैयार करने की मात्रा की सारिणी

नाम कम्पनी	१९३९ टन	१९४० टन	१९४१ टन	१९४२ टन	१९४३ टन	१९४४ टन	१९४५ टन	१९४६ टन
टाटा आयर्न और स्टील कम्पनी लिमिटेड	९६३,७७१	१,०९९,२८८	१,१२८,८१६	१,०९०,०३३	९९४,२९८	८२३,१३४	८४७,५१२	९६७,९६५
इण्डियन आयर्न और स्टील कम्पनी लिमिटेड	६६९,९६९	५६२,३९४	५८५,३८५	७६२,७६३	५५८,९१०	५६०,९५०	५३९,८७६	४६५,४९१
बंगाल आयर्न एण्ड क०	—	१८१,५४४	२५३,६५१	—	—	—	—	—
लोधना कोलियेरी क० लिमिटेड	६०,९४३	४८,४५२	४९,६५८	४२,४४८	५०,४९१	५५,६८५	५०,९१५	५२,२१७
बराकर कोल कम्पनी लिमिटेड	९०,८११	८१,७१७	८१,२२२	६२,७३१	५०,६६८	६२,८८७	६७,८२७	६७,८१०
बरारी कोक क० लि०	५९,०२५	६१,६६९	७२,३२९	६९,५५६	६४,८४३	६४,४८८	५९,११६	५४,६१०
इस्टर्न कोल क० लि०	३५,२२५	३९,५६७	३९,००९	३४,२२४	३७,५०८	३६,०३५	३९,१५३	३९,८२०
स्टेट रेलवेज कोल डिपार्टमेण्ट	३२,९३०	२७,१८०	२५,८००	२६,९४०	२६,१७०	२६,५००	२८,९४६	२६,६१८
बोकारो एण्ड रामपुर लिमिटेड	३,६६३	६,७२८	८,०२५	६,११०	३,४२०	१००	१०४	—
सेन्ट्रल कुरकेंड कम्पनी	—	११२	१४०	२४२	६	५	९	४१
आसाम रेलवे एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड	३५५	४४३	४४८	५०१	५४१	६२५	५९७	४२६
समस्त कोक उत्पादन	१,९१६,६९	२,१०९,०९४	२,२४४,४८३	२,०९५,५४	१,७८६,८५५	१,६३०,४०९	१,६३४,०५५	१,६७४,९९८
कितने कोयले से	२,६९३,८२७	२,९८४,५५९	३,१५७,०६६	२,९४९,५१३	२,५४५,८४८	२,३१६,२१३	२,३५५,४३६	२,४०६,०४६
प्राप्त कोक की प्रतिशतता	७१·१५	७०·६६	७१·०९	७१·०५	७०·१८	७०·३९	६९·४१	६९·६२

कठोर-कोक तैयार करने में कहाँ का कितना कोयला लगा, इस सारिणी में देखिए।

कोयले का उद्गम	१९३९ टन	१९४० टन	१९४१ टन	१९४२ टन	१९४३ टन	१९४४ टन	१९४५ टन	१९४६ टन
झरिया कोयला-क्षेत्र	२,५७९,६५८	२,८६५,८४०	२,९९०,३३४	२,७८१,९३०	२,३७४,१४५	२,१४९,१५३	२,१६२,५३९	२,२७२,९६२
गिरिडीह कोयला-क्षेत्र	४३,६७०	३५,६२९	३४,३००	३४,७२०	३३,३००	३५,०००	३८,०००	३८,६९७
रानीगंज कोयला-क्षेत्र	६१,४२९	६६,३३९	१०२,८६३	१०८,७१८	११३,४४६	११६,५८२	१०२,७०८	५९,५१७
बोकारो कोयला-क्षेत्र	७,३८१	१४,३८१	२७,९६२	२२,२०१	२२,८१७	१३,००३	४९,९०२	३३,३९८
लखीमपुर (नामडांग) कोयला-क्षेत्र	१,६८९	२,३७०	१,६०७	१,९४४	२,१४०	२,४७५	२,२८७	१,४७८
समस्त जोड़	२,६९३,८२७	२,९८४,५५९	३,१५७,०६६	२,९४९,५१३	२,५४५,८४८	२,३१६,२१३	२,३५५,४३६	२,४०६,०४६

कोमल-कोक कितना तैयार हुआ, उसकी सारिणी

	१९३९ टन	१९४० टन	१९४१ टन	१९४२ टन	१९४३ टन	१९४४ टन	१९४५ टन	१९४६ टन
रानीगंज	३१,१९०	२२,०००	२६,९३९	३७,०१४	५२,४०१	४३,७६४	७१,६४१	७८,१९२
झरिया	८६१,४४५	९४०,९६६	९०८,४६६	४६३,२३४	३५८,५२१	४४०,७२४	५८७,९३६	६०७,९२५
बोकारो	३,३२३	३,१४३	३,०६४	४,१८९	५,१८०	६,३१२	४,४२६	४,५२३
रामगढ़	—	—	—	—	—	—	४००	२,९८१
करनपुरा	—	—	—	५४	—	७५	—	—
बिलासपुर	—	—	—	—	—	—	४६	—
समस्त जोड़	८९५,९५८	९६६,१०९	९३८,४६९	५०४,४९१	४१६,१०२	४९०,८७६	६६४,४४९	६९३,६२१

भारत से कोयला और कोक को विभिन्न देशों का निर्यात (टनों में)

देश	१९३५	१९३६	१९३७	१९३८	१९३९	१९४०
इडेन	—	—	२३,३७०	—	—	—
ब्रि० पू० अफ्रिका	२०	४०	३९	१६०	—	—
मौरिशस	१,००१	३,३१७	१,७५०	२,२५८	—	—
सीलोन	१४६,२३२	१४९,११४	३७९,४८४	२५३,३८६	३५३,२२९	४५३,८२०
बरमा	—	—	३९४,१३८	६१४,८५६	४६४,७४०	५१९,२४१
स्ट्रेट सेटल०	१६,८५०	१६,९२८	४४,९८४	७,५०८	१०१,८६१	१७४,२१३
सुमात्रा	—	—	१७,८७२	८,६०४	—	—
इजिप्ट	—	—	—	—	—	—
हाँगकाँग	४६,७१८	५,०३८	७,५५३	७२,२६२	२११,८६०	१७७,७१३
चीन	—	—	—	—	४४०,६५५	५७६,२९४
अन्य देश	६,७६३	२२,७७५	३,५६०	३८	९८,३९६	१८७,९४३
समस्त निर्यात	२१७,५८४	१९७,२१२	८७३,३१०	१,३४३,०३३	१,६७०,७४१	२,०८९,२२४
कोक निर्यात	—	—	—	—	१७,३५१	२३,०५७
मूल्य रुपये में	१८,६२,३३८	१,६४४,६३४	८१,३९,९८२	१३,५५०,६०९	१६,३३४,६७२	२०,६४४,९०५

भारत से कोयला और कोक का विभिन्न देशों को निर्यात (टनों में), क्रमागत

देश	१९४१	१९४२	१९४३	१९४४	१९४५	१९४६
इडेन	—	४,९०१	८,९०६	—	—	—
ब्रि० पू० अफ्रिका	—	—	—	—	—	—
मौरिशस	—	—	—	—	—	—
सीलोन	२३५७५०	२७९,४३८	२०६,००३	४५,६६०	२७,८१७	११८,५४६
बरमा	४४०,१०२	६०,७१५	—	—	—	—
स्ट्रेट सेटल०	१६२,३८०	—	—	—	—	—
सुमात्रा	—	—	—	—	—	—
इजिप्ट	—	६२,६३८	३८,१०४	५७,८१८	—	—
हाँगकाँग	८०,६४८	८९८	—	—	—	—
चीन	१२५८६	२,७५०	—	—	—	—
अन्य देश	७२९,२०५	६,६५५	९,९९३	१५	२६,०४३	३४४,९७६
समस्त निर्यात	१,६९०,६७१	४१७,९९५	२६३,००६	१०३,६४३	५४,०३९	४६४,५०५
कोक निर्यात	४१,५०५	४,००६	६८०	१५०	१७९	९८३
मूल्य रुपये में	१७,२७०,१६४	४,२३४,६४८	३,४९८,९८०	२,२८६,८५५	८८७,५२१	८१४२,४४७

कोयले और कोक का निर्यात (टनों में)

देश	१९५०	१९५१	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५
बरमा	१२६,५९२	१३४,९१७	२००,०६९	२५६,१४१	२६३,३३९	१९९,४३२
सीलोन	३२२,२१७	२९१,२७५	२७७,८३३	२२०,९६९	२६८,३८७	२१६,६०९
हौंगकौंग	१०५,०८८	१४८,८२२	२१४,०३१	८७,२२३	११७,४६६	३०,६६४
सिंगापुर	३०,९९२	११६,९०२	१२३,६५०	४५,३४५	४१,२३०	६०,६१२
साउथ कोरिया	६,९२७	—	१०१,२९६	२००,२०६	३४०,०९५	३१,४८१
पाकिस्तान (पूर्वी और पच्छिमी)	—	९४६,९१६	१,१४३,८७८	७६२,२१८	८३४,८७०	९७७,८९३
इडेन	६,१२३	४८,०३२	४१,७५०	—	३,८६३	९,३९९
इजिप्ट	९,११८	९९,२७५	३०,५४३	—	४,८६३	१४,८७१
ईस्ट अफ्रिका	—	२१,७३५	३९,०६८	२०	३५,१७८	८,७१३
जापान	९६,६८१	५४३,२१९	७६५,७६७	४१२,९६४	९३,६६५	१७,३१९
अन्य देश	२४६,२५२	४४७,१७९	३६४,२३०	६,२६१	११,०००	७,४२६
जोड़	९४९,९९०	२,७९८,२७२	३,३०२,११५	१,९९१,३४७	२,०२१,९५६	१,५७४,४२५

कोयले की खानों में सन् १९५५ में कोक-उत्पादन की सारिणी

राज्य और क्षेत्र	कोमल कोक टन में	कठोर कोक टन में
आसाम	—	—
खासी और जैन्तिया	३,०५४	—
लखीमपुर	—	१४८
पश्चिम बंगाल	—	—
दार्जिलिंग	१००	—
बीरभूम	४०३	—
बर्दवान्	४९,९१८	—
बिहार	—	—
बोकारो	३८,४७४	७,४५५
रामगढ़	१०,२२५	—
करनपुरा	२,८२३	—
झरिया	१,४३५,३२२	२४६,६८६
रानीगंज	१०८,१८२	२,८९१
करनपुरा	२३६	२,८९१
जोड़	१,६४८,७३७	२५७,१८०

सन् १९५५ में भारत में कोक बनाने के ९ संयन्त्र थे, जिनमें तीन संयन्त्र इस्पात के कारखानों से सम्बन्धित थे और एक सिन्दरी उर्वरक के कारखाने से सम्बन्धित था। सन् १९५४ में कोक का निर्माण २३,९६,४०२ टन था किन्तु १९५५ में यह बढ़कर २५,३०,९२२ टन हो गया। कोक के संयन्त्रों में ४८३,८५१ टन कोक बना था जिसमें ४५४,९४२ कठोर कोक और २८,९०९ अन्य प्रकार का कोक था। इस्पात के कारखानों के संयन्त्रों में २०,४७,०७१ टन कोक बना था जिसमें १८,८८,८६६ टन कठोर कोक और १५८,२०५ टन कोमल कोक था। कुल कोक २५,३०,९२२ टन तैयार हुआ था।

कोयले की खानों में दुर्घटनाएँ बहुत होती हैं। उनमें लोगों को सामान्य से लेकर गम्भीर चोटें लगती हैं। कुछ लोग इन चोटों से खानों में काम करने के योग्य नहीं रह जाते। कुछ लोग मर जाते हैं। खानों में कुछ वर्षों की दुर्घटनाओं से मृत्यु-संख्या और प्रति एक हजार पर मृत्यु-संख्या इस प्रकार है—

वर्ष	मृत्यु-संख्या	मृत्यु-संख्या प्रति हजार पर
१९४१	३०३	१·२६
१९४२	३४२	१·२९
१९४३	३२८	१·३५
१९४४	३६५	१·२८
१९४५	३०७	०·७८
१९४६	३२८	०·७८
१९४७	२६३	०·६४
१९४८	२७२	०·६९
१९४९	२७०	०·६४
१९५०	२७३	०·६०
१९५१		
१९५२		
१९५३		
१९५४		०·९६
१९५५	३०९	०·८९

भारत में खनिकों की मृत्युसंख्या ग्रेट ब्रिटेन के खनिकों की मृत्यु-संख्या की अपेक्षा कुछ अधिक है। भारत के खनिकों की दक्षता ग्रेट ब्रिटेन के खनिकों की दक्षता से कुछ कम है पर कोयला-उत्पादन का खर्च भारत में ग्रेट ब्रिटेन से कम पड़ता है। सुझाव दिया गया है कि भारत में भी मशीनों से ही कोयला निकालने का काम होना चाहिए जैसा पाश्चात्य देशों में होता है। पर मशीनों का उपयोग बड़ी-बड़ी कम्पनियों की खानों में ही हो सकता है। छोटे-छोटे खानवालों के लिए मशीनों का उपयोग सम्भव नहीं है। आशा है कि कोयले के व्यवसाय की वृद्धि से मशीनों का उपयोग भारत में दिन-दिन बढ़ता जायगा।

खनिकों और खानों में काम करनेवालों की सुरक्षा के लिए सरकार ने एक कानून १९२३ ई० में बनाया। इस कानून का नाम 'इण्डियन माइन्स ऐक्ट' है। इस कानून

के अनुसार कुछ नियम बने जिन्हें इण्डियन कोल माइन्स रेगुलेशन कहते हैं । ये नियम १९२६ ई० में बने। इनमें १९२९ ई० में कुछ सुधार हुआ। १९२९ ई० में स्त्रियों खानों में काम न करने के सम्बन्ध का नियम बना।

इन नियमों के होते हुए भी कोयले की खानों में समय-समय पर अनेक दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। तीन बड़ी दुर्घटनाएँ तो केवल एक वर्ष १९३५ ई० में झरिया और गिरिडीह के कोयला-क्षेत्रों में हुई थीं जिनमें सैकड़ों आदमियों की जानें गयी थीं। एक बड़ी दुर्घटना १९५५ ई० में खानों के पानी से भर जाने के कारण हुई जिससे खान के अन्दर काम करनेवाले सब के सब मर गये थे और जिसके अनुसन्धान के लिए भारत सरकार ने एक स्वतंत्र कमेटी बनायी थी।

कोयले के व्यवसाय में कितने आदमी किस प्रान्त में लगे हुए हैं उसका ज्ञान निम्नलिखित सारिणी से होता है

प्रान्त	१९३९	१९४०	१९४१	१९४२	१९४३	१९४४	१९४५	१९४६	औसत
आसाम	२,४६३	२,७०४	२,७७४	२,४३३	३,०४८	३,७६९	३,६८८	४,१७५	३,१३२
बलूचिस्तान	५५६	५९६	६४२	१,१२१	१,५८२	२,१३६	३,४३८	४,७८८	१,८५७
बंगाल	५९,६३२	६४,१६७	६३,९३०	५९,४३४	५९,६५६	६६,९१५	७४,९४८	७९,५९९	६६,०३५
मध्यभारत	३,०९९	३,२४५	३,६२५	४,०६८	३,६४५	४,५३३	८,६८०	९,८१९	५,०८९
ईस्टर्न स्टेट एजेंसी	९,५९९	१२,५५२	११,७८३	१३,२४९	११,९११	१०,९२७	१२,६१७	१३,२९७	११,९९२
मध्यप्रान्त	१४,८६९	१५,५१८	१६,७२४	१७,३५०	१६,९५१	१८,५७५	१८,५४५	२०,४६८	१७,३७५
हैदराबाद	१२,८९८	११,५२७	११,६४३	१२,२७६	११,२६५	१३,२५९	१७,२२८	१९,३२२	१३,६७७
कश्मीर	२,३६३	१५	—	३०	२००	४५	१६०	६५	३६०
उड़ीसा	५७६	५३०	६२०	९८६	७९८	९७३	८९७	१,१२५	८१३
पंजाब	२,८७५	२,८९५	२,९०७	२,३३७	२,३२२	२,८६४	२,८४७	३,१४७	२,७७४
राजपूताना	१,०९१	१५९	१५७	१६८	१३५	२२२	१७४	२०८	२८९
सिंध	—	१९	७५	६६	१३७	१९३	४५३	४६३	१७६
समस्त जोड़	२३१,४६३	२३७,०१७	२४६,०२७	२४५,६८८	२४१,४७२	२८५,४२८	२३४,४४५	३६७,४४१	२७३,६२३

सन् १९४७–५५ तक खान में काम करनेवाले व्यक्तियों की संख्या

वर्ष		पुरुष	स्त्रियाँ	बच्चे	जोड़	समस्त जोड़	कश्मीर	
१९४७	खान के नीचे	१५१,८१४	२,८८२	—	१५४,६३६	३६३,९९४	१०७	स्त्रियों का खान के नीचे काम करना अब वर्जित है। बच्चों को भी खानों में काम करना वर्जित है। पहले देशी राज्यों की खानों में ही बच्चे काम करते थे। देशी राज्यों के भारत में मिल जाने के बाद वहाँ भी बच्चों का काम करना वर्जित हो गया है।
	खान के बाहर	१३७,६१७	७१,६२१	१२०	२०९,३५८			
१९४८	खान के नीचे	१५८,८४७	२,५५६	—	१६१,४०३	३४८,३८३	?	
	खान के बाहर	१२६,६९५	६०,०५२	२३३	१८६,९८०			
१९४९	खान के नीचे	१६४,२०१	—	—	१६४,२०१	३४५,१९०	९०	
	खान के बाहर	१२३,८२६	५७,०५१	११२	१८०,९८९			
१९५०	खान के नीचे	१७१,९६१	—	—	१७१,९६१	३४९,८८९	१०	
	खान के बाहर	१२०,५३८	५७,३९०	—	१७७,९२८			
१९५१	खान के नीचे	१७८,१७४	—	—	१७८,१७४	३५१,९७५	१२०	कश्मीर की खानों में काम करनेवाले व्यक्तियों की संख्या समस्त जोड़ में सन्निहित नहीं है। जहां प्रश्न सूचक चिह्न हैं वहाँ के आँकड़े प्राप्य नहीं हैं।
	खान के बाहर	११८,५७५	५५,२२६	—	१७३,८०१			
१९५२	खान के नीचे	१८२,७६२	—	—	१८२,७६२	३४८,६६३	७५	
	खान के बाहर	११४,४३३	५१,४६८	—	१६५,९०१			

सन् १९४७–५५ तक खान में काम करनेवाले व्यक्तियों की संख्या

वर्ष		पुरुष	स्त्रियाँ	बच्चे	जोड़	समस्त जोड़	कश्मीर
१९५३	खान के नीचे	१८१,४९१	—	—	१८१,४९१	३४१,१९३	५०
	खान के बाहर	११०,८९०	४८,८१२	—	१५९,७०२		
१९५४	खान के नीचे	१८२,१०४	—	—	१८२,१०४	३४०,९६४	२३०
	खान के बाहर	११०,९८४	४७,८७६	—	१५८,८६०		
१९५५	खान के नीचे	१८७,४०९	—	—	१८७,४०६	३४७,९८०	?
	खान के बाहर	१७२,९२०	४७,६५४	—	१६०,५७४		

१९५५ में विभिन्न कोयला-क्षेत्रों में कार्य होने की दिन-संख्या और कार्यवाहक पर्याय (man-shifts)

कोयला-क्षेत्र	वर्ष में कार्य होने की दिन-संख्या	वर्ष में कार्यवाहकों की संख्या			
		खनक और बोझक	खानों के नीचे और बाहर के कार्यवाहक	बाहर के श्रमिक	जोड़
आसाम	२९७	७१६,०३३	४२०,९१७	४८८,११६	१,६२८,०६६
दार्जिलिंग	२११	—	७५,४१८	२२,१४१	९७,५५९
रानीगंज	२९७	१२,१०९,६९६	१०,०२६,३४१	११,८४५,४०४	३३,९८१,४४१
झरिया	२९७	१३,०७९,८१५	८,६५०,५७३	१४,४८१,१५२	३६,२११,५४०
बोकारो	३०४	१,४६९,७१६	२,३७५,६०४	१,४४७,७२५	५,२९३,०४५
गिरिडीह	३०९	५३५,३१५	३९५,९६४	४१३,००१	१,३४४,२८०
करनपुरा	३०५	८५४,६५४	१,३५२,७५९	९१२,९८५	३,१२०,३९८
रामगढ़	२९१	२६५,४९१	३१४,१७८	२४०,५१६	८२०,१८५
जैन्ती	२८२	२६,६५५	९,१२४	१४,०९२	४९,८७१
राजमहल	२९८	१०,७९५	४,१५०	६,१९७	२१,१४२
डाल्टेनगंज	३१०	१०१,१२३	३४,९८८	५०,८४३	१८६,९५४
हुटार	३१०	११४,९११	६५,४२८	६२,३५९	२४२,६९८
मध्यप्रदेश	३०७	२,८४८,२७१	३,४५५,७७१	३,३१५,१५३	९,६१९,१९५
विन्ध्यप्रदेश	३०७	७९६,८०१	६९०,०९८	८५१,८३५	२,३३८,७३४
उड़ीसा	३०२	४०५,२१३	८७२,४११	५९९,२९१	१,८७६,९१५
हैदराबाद	३०८	१,६१६,७६८	१,४६०,६१०	१,९७३,५३२	५,०५०,९१०
राजस्थान	३०६	१५,१४६	११,६३७	२५,६२७	५२,४१०
जोड़		३४,९६९,४०३	३०,२१५,९७१	३६,७४९,९६९	१०१,९३५,३४३

कोयले की स्टॉक-कम्पनियाँ *, उनकी पूँजी और लाभ

वर्ष	३१ मार्च को स्टाक कम्पनियों की संख्या	उनकी चुकता पूँजी हजार में	लाभ (आधार १९३९=१००)
१९४३	२१५	८,९७,६२	९५·६
१९४४	२२५	८,८४,८९	२३७·०
१९४५	२६६	९,१५,१८	२५८·३
१९४६	३०६	१०,४६,४२	१९८·५
१९४७	३६२	११,१६,७८	१७१·८
१९४८	३८४	१५,११,३०	२०१·०
१९४९	३९९	१६,८९,२७	२८७·२
१९५०	४२८	१८,३९,४६	२०९·२
१९५१	४४२	१८,२०,९१	१७८·२
१९५२	४४८	२१,०९,३७	२२०·४
१९५३	४५८	२१,६७,९३	१४५·३
१९५४	४७५	२२,४२,०९	१५३·०
१९५५	४९५	२२,७२,८८+	— —

*इन कम्पनियों की भारत में रजिस्ट्री हुई है। इनके अतिरिक्त चार विदेशी कम्पनियाँ हैं जिनकी चुकता पूँजी ३२ लाख की है जो भारत में कार्य कर रही हैं

+यह अंक अस्थायी है।

उन्नीसवाँ अध्याय

कोयले का खनन

धरती के अन्दर छिपे हुए कोयले और खनिजों के बाहर निकालने के कार्य को 'खनन' कहते हैं। आज खनन एक बड़े महत्व का व्यवसाय है। लाखों मनुष्य इस व्यवसाय में लगे हुए हैं। यह व्यवसाय नया नहीं है। हजारों वर्षों से होता आ रहा है। पहले खनन धरती के तल पर या उसके कुछ नीचे ही होता था। बहुत गहरा नहीं जाता था। हाथों से ही खनन होता था। १८ वीं सदी के अन्त में खनन में भाप-इंजन का व्यवहार शुरू हुआ। आज हजारों फुट नीचे तक खनन होता है और वहाँ से खनिजों को निकाल कर बाहर तल पर लाया जाता है। खनन के कार्य में भी पर्याप्त सुधार हुआ है। वैज्ञानिकों के प्रयत्न से नये-नये साधनों का आविष्कार हुआ है जिनके उपयोग की शिक्षा संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में आज दी जाती है। ऐसे विश्वविद्यालयों से निकले स्नातक ही आज खानों के मैनेजर होते हैं। ऐसे विशेष शिक्षित व्यक्तियों की मांग आज बहुत बढ़ गयी है, भारत में खनन की शिक्षा बनारस हिन्दू यूनिवरसिटी के कालेज आफ माइनिंग में और बिहार युनिवरसिटी के धनबाद स्कूल आफ माइनिंग में दी जाती है। आई० एस-सी० पास छात्र भरती किये जाते और चार वर्ष की शिक्षा के बाद उत्तीर्ण होने पर डिगरी दी जाती है।

पहले जो व्यक्ति खानों में काम करते थे वे मैले-कुचैले रहते थे। उनका काम ही कुछ ऐसा था कि वे साफ़-सुथरे न रह सकते थे। नगर से दूर खानों में वे काम करते थे और वहाँ ही रहते थे। ऐसे लोगों का एक अलग समाज बन गया था। उनके वस्त्र कुछ भिन्न होते थे और उनके आचार-विचार में भी कुछ भद्दापन आ गया था। सभ्य मनुष्यों के संस्कार की उनमें कुछ कमी थी। उनमें कुछ उजड्डपन भी था। यद्यपि खनकों का बाह्यरूप आकर्षक नहीं था पर वे बड़े परिश्रमी, उत्कृष्ट कोटि के खिलाड़ी और दुःख में मदद करनेवाले होते थे। आज खनकों और सामान्य व्यक्तियों में कोई अन्तर नहीं रह गया है।

जब किसी नयी खान से कोयला निकालना होता है तब पहले कोयले का परीक्षण कर मालूम करते हैं कि वहाँ का कोयला किस किस्म का है। कोयले का नमूना लेकर

उसका विश्लेषण करते हैं। विश्लेषण से पता लगाते हैं कि किस काम के लिए वह कोयला अधिक उपयुक्त है। यदि वह कोयला उनके लिए ठीक है तो काम आगे बढ़ाते हैं, नहीं तो उसे वहीं छोड़ देते हैं। यदि खानों में काम जारी रखना है तो कोयले की गहराई, लम्बाई और चौड़ाई, विभिन्न स्तरों की मोटाई, आदि का भी पता लगाते हैं।

कोयले के नमूने निकालने में खानों में छेद करते हैं। छेद करने के लिए विशेष प्रकार के उपकरण प्रयुक्त होते हैं। साधारणतया यह उपकरण एक नली होती है जिसे 'आन्तरक नली' (Core tube) कहते हैं। इस नली में वह वलय (Ring) या उद्दन्त होता है जो खोदता है और जिसमें हीरा जड़ा रहता है। आन्तरक नली और उद्दन्त एक खोखले छड़ से बंधे रहते हैं। यह छड़ सतह पर रहता है। इसे यंत्रों से घुमाते हैं। घुमाने से हीरा उद्दन्त चट्टानों को काटता और कटा हुआ अंश आन्तरक नली में इकट्ठा होता है। जब पाँच या छः फुट की चट्टान कट जाती है तब उसे सतह पर ला कर नली से नमूना निकाल कर उसका विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार के कटाव से स्तर की मोटाई का भी पता लगता है। कहाँ तक और कितनी मात्रा में कोयला फैला हुआ है, इसका भी ज्ञान इसी विधि से हो जाता है। प्रति टन कोयला निकालने में कितना खर्च पड़ता है इसकी गणना कर अनुमान लगाते हैं। जब परिणाम संतोषप्रद होता है तब खान का वास्तविक खनन शुरू करते हैं।

यदि कोयले का स्तर सतह से बहुत नीचा नहीं है तो १२ फुट चौड़े और ६ फुट ऊँचे दो रास्ते बनाते हैं। यह रास्ता सतह से ३० अंश कोणनत होता है। पर आज कल ऐसे रास्तों के स्थान में ऊर्ध्वाधार कूपक (Shaft) का होना अच्छा समझा जाता है। कूपक बनाने में वहाँ की मिट्टी की दशा का ज्ञान आवश्यक है। यदि मिट्टी सामान्य है और उसमें जल और बालू नहीं है तो सामान्य रीति से वहाँ खोदाई करते हैं। यदि पानी अधिक है और मिट्टी में चूना पत्थर अथवा लाल पत्थर विद्यमान है तो 'सीमेंटीकरण' का सहारा लेते हैं। यदि मिट्टी में बालू है और वह जल से ओत-प्रोत है तो 'हिमीकरण' रीति का उपयोग करते हैं।

सामान्य खोदाई में जहाँ कूपक बनाना होता है वहाँ कहीं गोलाकार, वृत्ताकार और कहीं आयताकार चिन्ह बनाते हैं।

ऊपर की मिट्टी चट्टान तक खोदकर हटा लेते हैं। चिह्न के ऊपर अग्र उपयंत्र (head gear) बनाकर उस पर घूमकर खोदने वाला इंजन (winding engine) बैठाते हैं।

कूपक के पेंदे में ४ से ४$\frac{1}{2}$ इंच लम्बाई के अनेक छोटे-छोटे छेद (bore hole)

बनाकर उसमें विस्फोट रख कर जलाते हैं। विस्फोट से चट्टानें टूट जातीं और टूटी चट्टानें बड़ी-बड़ी बाल्टियों में इकट्ठी होती हैं। ऐसी बाल्टियों में १ से ४ टन तक खनिज अँटता है। जब बाल्टियाँ भर जातीं तब निकाल कर सतह पर लाकर इकट्ठा करते हैं।

कोयले की गहराई जैसे-जैसे बढ़ती जाती है गोलाकार कूपक के पार्श्व में लोहा या लकड़ी के वलय रखते जाते हैं, ताकि पार्श्व से मिट्टी गिरकर कूपक को बन्द न कर दे। वलय के बाद लोहे की चादर या लकड़ी का तख्ता डालते हैं। कूपक की गहराई जब ३० फुट या इससे अधिक पहुँच जाती है, तब ईटों का अथवा क्रांकीट का अस्तर बनाते हैं। यह अस्तर रस्सी के सहारे कूपक में लटके आदमियों द्वारा बनाया जाता है।

कूपक के मध्य से रस्सी द्वारा बाल्टी ऊपर नीचे आती जाती है। इससे कूपक की खोदाई और अस्तर की बनाई साथ-साथ चलती है। कूपक में धातु की चादर की एक नली भी, २४ इंच से ३० इंच की, वायु के प्रवेश और निकास के लिए रहती है। सम्पीड़ित वायु के लिए भी एक नल लगा रहता है।

जहाँ धरती में पानी अधिक रहता है वहाँ १५ से ३० कोण पर खोदाई करके सीमेंटीकरण रीति का उपयोग करते हैं। १०० फुट की खोदाई हो जाने पर सीमेंट और पानी को दबाव से उसमें प्रविष्ट कराते हैं। सीमेंट को पानी से दूध-सा पतला द्रव बनाकर धीरे-धीरे उसका गाढ़ापन बढ़ाकर छोटा-सा गढ़ा कर देते हैं। जब सीमेंट और पानी का यह द्रव प्रतिवर्ग इंच पर १००० पाउण्ड के दबाव पर भी प्रविष्ट नहीं करता तब काम बन्द कर देते हैं। सीमेंटीकरण सत्तर-सत्तर फुट पर तब तक करते हैं जब तक पानी वाला तल समाप्त नहीं हो जाता। पानी वाले तल के समाप्त हो जाने पर फिर सामान्य रीति से खोदाई करते हैं।

यदि कहीं सरंध्र मिट्टी मिल जाय तो सीमेंट के साथ सोडियम सिलीकेट और अमोनियम सल्फेट मिला देते हैं। इनसे सीमेंट-जेलीसा पदार्थ बनता है जो सीमेंट के लिए स्नेहक का काम करता और पीछे जमकर कड़ा हो जाता है।

यदि कहीं बालू की सतह मिल जाय तो हिमीकरण रीति का उपयोग करते हैं। हिमीकरण रीति में नमक के विलयन को –२०° सें० ठंढाकर संकेन्द्रित नलों के द्वारा प्रविष्ट कराते हैं। वाह्यनल पेंदे में बन्द होता और अभ्यन्तर नल पेंदे में खुला रहता है। अभ्यन्तर नल से नमक का ठंढा विलयन जाता और बाह्य नल से निकलता है। इससे वर्फ की वलय अथवा वृत्ताकार दीवारें बनतीं और इसके संरक्षण में खोदाई होती है। खोदाई के बाद ढालवें लोहे का वलय डालकर जोड़ों को जलरुद्ध कर देते हैं।

कूपक की खोदाई का खर्च धरती की प्रकृति, कूपक की गहराई और कुछ अन्य बातों पर निर्भर करता है। प्रति गज गहराई की खोदाई का खर्च १२०० रुपया तक पहुँच सकता है।

कूपक के ठीक पेंदे में पंजर का स्टेशन होता है। वहाँ ही ठेले में भरकर कोयला आता है। बड़ी खानों में आठ घंटे के दिन में २००० तक ठेले वहाँ आते हैं और उनका कोयला बाहर निकाला जाता है। कूपक के पेंदे से तीन प्रमुख सड़कें निकलती हैं। एक सड़क कोयले के लाने के लिए, एक सड़क खनकों के आने-जाने के लिए और एक सड़क दूषित वायु के निकास के लिए रहती है। इन तीन सड़कों से फिर छोटी-छोटी सड़कें निकलती हैं। सारी खान इन छोटी-छोटी सड़कों से भरी रहती हैं। ये सड़कें सब दिशाओं में, ऊपर नीचे सब ओर जाती हैं। ये सड़कें समय-समय पर आवश्यकतानुसार जब कोयला निकालने का काम शुरू हो जाता है तब बनती हैं।

कोयला-निष्कासन

खानों से कोयला निकालने की साधारणतया दो रीतियां प्रयुक्त होती हैं। एक रीति को "एक-क्रम" निष्कासन रीति और दूसरे को "दो-क्रम" निष्कासन रीति कहते हैं। दूसरी रीति को 'गत्ता और स्तम्भ' (Board and Pillar) रीति भी कहते हैं। इन रीतियों के सिद्धान्त प्रायः एक से ही हैं यद्यपि विस्तार में कुछ अन्तर अवश्य है। कोयले का निकालना केवल हाथों से हो सकता है अथवा केवल यंत्रों से हो सकता है।

पहली रीति में कोयले का तल तैयार किया जाता है। यह तल एक सौ गज से लेकर कई सौ गज तक लम्बा हो सकता है। इस तल से ४½ फुट से ५½ फुट गहराई का कोयला काटकर इकट्ठा किया जाता है। इसके काटने से छत और गच के बीच का स्थान खाली हो जाता है। इन दोनों के बीच के स्थान को सूखे पत्थर की गिट्टी से भर देते हैं। यदि इसे भरा न जाय तो छत के झुक जाने की सम्भावना हो सकती है। स्मरण रखना चाहिए कि चट्टानों का भार बहुत अधिक होता है। प्रति फुट गहराई में प्रतिवर्ग इंच पर एक पाउण्ड का भार पड़ता है। गच और छत के बीच ऊर्ध्वाधार खम्भे और छड़े रखकर छत को गिरने से बचाते हैं।

प्रायः खनक कोयले को काटता और तोड़ता (blast) है। काटने के लिए 'कोयला कर्तक' इस्तेमाल होता है। कर्तक (cutter) से हाथ द्वारा अथवा मशीन द्वारा काटा जाता है। कोयले को फिर ठेले (tub) में भर कर परिवाहक (conveyor) द्वारा कूपक तक पहुँचाने के लिए छोड़ देते हैं। कोयले के काटने से जो नया

छत बनता है उसके नीचे एक मजबूत आलम्ब लगाते हैं। आलम्ब एक पंक्ति में लगाया जाता है। आलम्ब बराबर-बराबर दूरी पर होता है। साधारणतया तीन-तीन फुट की दूरी पर आलम्ब लगाते हैं।

यदि कोयला काटने में मशीन का उपयोग हुआ है तो कुछ लोग कोयले को काटते, कुछ परिवाहक पर रखते तथा कुछ लोग रास्ते के दोनों ओर मोटी दीवार खड़ी करते हैं ताकि रास्ता बना रहे और छत धँसने न पावे। कुछ लोग केवल सड़कों के निर्माण के लिए रहते हैं। दीवार खड़ी करने का काम साधारणतया रात्रि में होता है।

अधिकांश खानों में आजकल मशीन से ही कोयला काटा जाता है। भारत की विभिन्न खानों में सन् १९५५ में ५२७ भिन्न-भिन्न किस्म की मशीनें कोयला काटने में प्रयुक्त हुई थीं। १५१ खानों में इनका उपयोग होता था। इनमें सब से अधिक, २५३ मशीनें, केवल रानीगंज में प्रयुक्त हुई थीं। छोटे-छोटे खान वाले ही हाथ से कोयला काटते हैं। कोयला काटने की मशीनों में एक जंजीर होती है। जंजीर में एक नोकीला औजार "गैंती" (picks) लगी रहती है। गैंती आयताकार जिब (jib) पर शीघ्रता से घूमती है। जिब ३½ फुट से ६ फुट तक लम्बा होता है। गैंती कोयले को काटकर जिब पर रख देती और जिब जंजीर द्वारा घूमता है। मशीन को घुमाने के लिए बिजली अथवा सम्पीड़ित वायु का उपयोग करते हैं। ४० से ५० अश्व-बल से वह घूमती है। एक बार में औसतन १०० गज कोयला यह मशीन काटती है। दूसरे दिन मशीन विपरीत दिशा में काटती है। जब कटाई समाप्त हो जाती है घूर्णक बरमे (drills) से हाथ से ३ से ६ फुट की दूरी पर सुराख बनाकर उसमें विस्फोट रखकर उसके धमाके से कोयले को तोड़ते हैं। टूटे कोयले को परिवाहक पर फिर रख देते हैं। परिवाहक रबर-कैनवास का बना होता है। यह गतिशील होता है। किसी-किसी खान में परिवाहक के स्थान में प्रकम्पन द्रोणी (Shaking trough) होती है जो झटका देकर कोयले को आगे बढ़ाती जाती है। कुछ खानों में अचल द्रोणी (Stationary trough) भी होती है जो जंजीर के द्वारा खींची जाकर कोयले को निकालती है।

सन् १९५५ में भारत की खानों में ७८ से ९९ (औसतन ८८) यांत्रिक परिवाहक —किसी मास में ७८ और किसी मास में ९९—कार्य करते थे जिनसे ९८,६८६ से १३२, ७२९ टन तक कोयला निकाला गया था।

प्रत्येक खान में कोयले को द्रोणी में रखने का काम हाथों से ही होता है। कुछ खानों में मशीनों द्वारा रखने की चेष्टाएँ भी हुई हैं। इसे यांत्रिक उद्भरण (mechanical loading) कहते हैं। भारत की खानों में ६ से ८ तक ऐसे यंत्र हैं पर किसी मास में ५ से अधिक काम में नहीं आये हैं। कहीं-कहीं यांत्रिक उद्भरण में सफलता भी मिली

हैं। अमेरिका में इस रीति में अधिक सफलता मिली है। अमेरिकी खानें अपेक्षया आधुनिक हैं। वे बहुत अधिक गहराई तक खोदी नहीं गयी हैं। इंलैण्ड की अधिकांश खानें ५० वर्ष से अधिक काल से खोदी जा रही हैं। उनकी गहराई बहुत अधिक हैं और उनके सर्वश्रेष्ठ कोयले निकाले जा चुके हैं।

कोयले को खानों से बाहर निकालना बड़ा पेचीदा कार्य है। यदि किसी खान से प्रतिदिन २००० टन कोयला निकाला जाता है, तो ऐसी खानों में ४ से ५ टन अँटनेवाले टब ४,६ या ८ की संख्या में प्रतिदिन कूपक के पेंदे में पहुँचते हैं। ये टब चारो दिशाओं से कोयला-क्षेत्र के अनेक स्थलों से आते हैं। कोयला भरे टबों के अतिरिक्त खाली टब भी चारों ओर खानों में जाते हैं। कोयले के निकालने का काम बड़ा प्राविधिक (technical) होता है। इसका ठीक-ठीक ज्ञान खानों में जाकर देखने से ही हो सकता है।

खानों में वायु के आवागमन का काम भी बड़े महत्त्व का है। खानों से जलने वाली और दूषित गैसों को हलका करने और निर्दोष बनाने की आवश्यकता पड़ती है। खानों को ठंढा रखने और नमी को कम करने के लिए बड़ी मात्रा में वायु की आवश्यकता पड़ती है। खानों के गरम भाग से ठंढे भाग में और ठंढे से गरम भाग में वायु का प्रवाह आप से आप होता रहता है। वायु का ऐसा संचालन प्राकृतिक आवागमन है। यह पर्याप्त नहीं है। पर्याप्त वायु के आवागमन के लिए यंत्रों, वायु खींचने वाले पंखों, का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिए दो किस्म के पंखों का उपयोग होता है। ऐसे पंखों से प्रति मिनट ४००,००० घन फुट तक हवा खींचने की आवश्यकता पड़ती है। इनके इंजन ४०० से ५०० अश्वबल के होते हैं। ये पंखे धरती के वाह्य तल पर स्थित होते हैं। कभी-कभी खानों के अन्दर भी सहायक पंखों के रखने की आवश्यकता पड़ती है। सन् १९५५ में भारत की १४९ खानों में २३७ वायु खींचनेवाले पंखे प्रयुक्त हुए थे जब कि सन् १९५४ में केवल २२२ पंखे थे।

खानों में मिथेन नामक एक ज्वलनशील गैस कोयलों से निकलती है। मिथेन की मात्रा विभिन्न रह सकती है। प्रति टन कोयले में २००० घन फुट तक मिथेन रह सकती है। यह आवश्यक है कि खानों की वायु में मिथेन की मात्रा २½ प्रतिशत से अधिक न रहे। अधिक रहने से आग लग जाने की सम्भावना रहती है। वायु के प्रवाह से खानों की आर्द्रता भी कम रखी जा सकती है। गरम खानों में पसीने के उद्वाष्पन से ही खनकों को ठंढक पहुँचायी जा सकती है। पसीना तब ही सूखता है जब वायु में आर्द्रता कम रहती है। बिना पसीने के उद्वाष्पन से ठंढक नहीं उत्पन्न की जा सकती।

कभी-कभी खानों में पानी भी इकट्ठा हो जाता है। किसी-किसी खान में प्रतिदिन १००० गैलन तक पानी इकट्ठा हो सकता है। ऐसे पानी को निकाल डालने

का प्रबन्ध होना चाहिए। पानी के पम्प से पानी निकाला जाता है। इसके लिए अनेक प्रकार के पम्प इस्तेमाल होते हैं। यह बड़ा आवश्यक है कि पम्प करने का प्रबन्ध बहुत अच्छा हो, नहीं तो खानों में दुर्घटनाएँ हो जाने का भय रहता है। धनबाद के निकट हाल में ही एक खान में पानी के कारण अनेक व्यक्तियों की जान चली गयी। बिजली से चलनेवाले पम्प अधिक विश्वसनीय होते हैं।

खानों में रोशनी का प्रबन्ध रहना बहुत आवश्यक है। यह रोशनी ऐसी होनी चाहिए कि उससे जलनेवाली गैसों में आग लगने का भय न रहे। खनक एक वहनीय (Portable) लैम्प सदा अपने साथ रखता है। पहले डेवी-संरक्षण लैम्प इसके लिए प्रयुक्त होता था। ऐसे लैम्पों में तेल जलता था। पर आज बैटरीवाले बिजली के टॉर्च इस्तेमाल होते हैं। ये लैम्प हाथों में अथवा कमर में बँधे रहते हैं और उनका बल्व हैट में लगा रहता है। ऐसे लैम्पों की कैंडल सामर्थ्य एक से चार होती है। भारत की खानों में सन् १९५५ में ३९,८९३ लैम्प प्रयुक्त हुए थे जिनमें १२१२४ बिजली के लैम्प, ६२५३ डेवी-संरक्षण लैम्प और शेष अन्य प्रकार के लैम्प थे।

खानों में विस्फोटन की सम्भावना रहती है पर विस्फोटन से उतने आदमी नहीं मरते जितने छतों के गिरने से मरते हैं। १९४५ ई० में इंलैंड में प्रति १००० मनुष्यों में ०·८ मनुष्यों की मृत्यु हुई थी जिनमें ५० प्रतिशत से अधिक मनुष्यों की मृत्यु केवल छत गिरने से हुई थी।

सन् १९५५ में भारत में जितनी दुर्घटनाएँ हुई उनमें २१५ ऐसी दुर्घटनाएँ थीं जिनमें ३३९ मनुष्यों की मृत्यु हुई और २,७८० ऐसी दुर्घटनाएँ थीं जिनमें २८५० व्यक्ति गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त हुए थे। मृत्यु की संख्या प्रति १००० मनुष्यों में ०·८९ व्यक्तियों की थी और क्षतिग्रस्तों की संख्या प्रति १००० में ८·२८ व्यक्तियों की थी। प्रति दस लाख टन कोयले के उत्पादन पर ८·०८ मनुष्यों की मृत्यु हुई थी।

खानों में चालन-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक भाप से प्राप्त शक्ति ही प्रयुक्त होती थी। सारा काम उसीसे होता था। पर आज भाप के साथ-साथ सम्पीड़ित वायु और बिजली का भी उपयोग अधिकता से हो रहा है। खानों में भाप से इंजन चलते हैं। प्रत्येक खान में बायलर अवश्य रहता है। साधारणतया प्रति घंटा ३०,००० पाउण्ड भाप की जरूरत पड़ती है। पहले लंका-शायर बायलर प्रयुक्त होता था। आज जल-नल बायलर का उपयोग होता है।

बिजली और सम्पीड़ित वायु का उपयोग आज बहुत अधिक बढ़ गया है। प्रति-टन कोयले के निकालने में प्रतिघंटा २० किलोवाट बिजली खर्च होती है। यदि हर साल २००० लाख टन कोयला निकालना पड़े तो उसके लिए ४,०००० लाख

किलोवाट बिजली खर्च होगी। सन् १९५५ में ३६४ कोयले की खानों में बिजली प्रयुक्त हुई थी जिनका अश्व-बल २५८,५४६ था जब कि सन् १९५४ में केवल ३४९ खानों में २२२,००६ अश्वबल प्रयुक्त हुआ था।

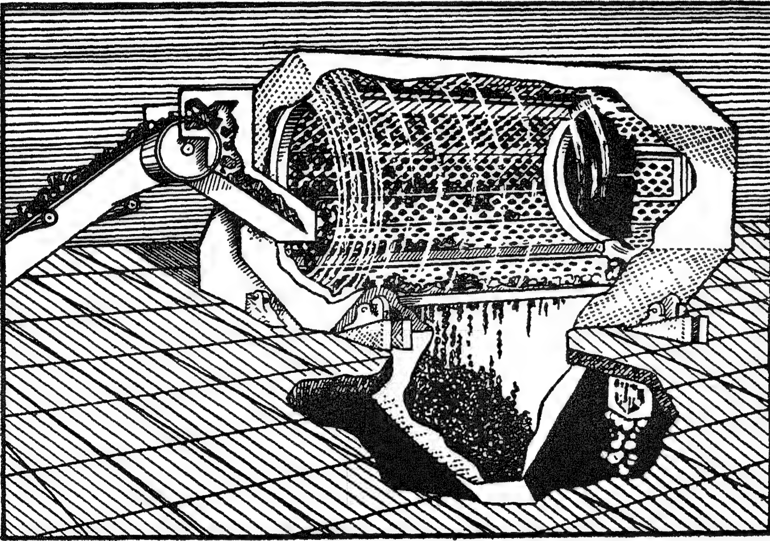
सन् १९५५ में खानों कोयला में तोड़ने के लिए विस्फोटकों का उपयोग हुआ था। ऐसे विस्फोटकों की मात्रा १८,३४,६३० पाउण्ड थी जिसमें २२,७३,४६६ पाउण्ड ऊँचे विस्फोटक थे और ५,३००,५८३ पाउण्ड बारूद था। इस वर्ष १०,३४६,३६८ विस्फोटक-यंत्र (detonators) प्रयुक्त हुए थे।

बीसवाँ अध्याय

कोयले की चलाई और सफ़ाई

जैसा कोयला खानों से निकलता है वैसा कोयला बेचने के योग्य नहीं होता। बेचने के लिए कोयले को तैयार करना पड़ता है। यह चलाई और सफ़ाई से होता है।

खानों से निकले कोयले में कंकड़ और सीप (shale) मिले रहते हैं। इनसे कोयले में राख की मात्रा बढ़ जाती है। इस कारण कंकड़, सीप और सलेट का निका-



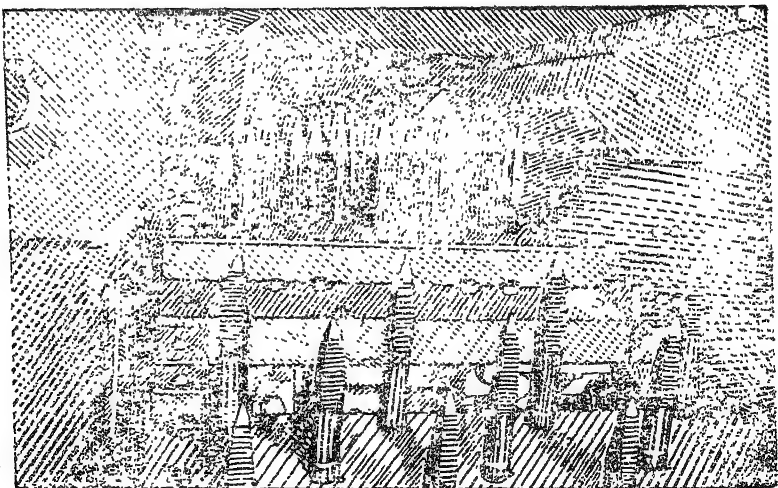
चित्र २५--ब्रैडफोर्ड ब्रेकर

लना बहुत जरूरी है। कुछ खानों में हाथों से चुनकर कंकड़ों को निकालते हैं पर बड़े और आधुनिक खानों में 'धावन' अथवा 'शुष्क धावन' रीति का उपयोग होता है।

खानों से निकले कोयले एक आकार के नहीं होते। कुछ टुकड़े बड़े-बड़े पिंडों में, कुछ छोटे-छोटे ढेरों में और कुछ धूल या सूक्ष्म कणों में होते हैं। इन्हें अलग-अलग

करने की आवश्यकता पड़ती है। बड़े-बड़े पिंडों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ते हैं। कोयले के तोड़ने की मशीनें होती हैं। एक ऐसी मशीन ब्रैडफोर्ड ब्रेकर (Bradford Breaker) है। इसमें एक बेलनाकार डिंडिम (drum) होता है। इसमें एक विशेष प्रकार के मजबूत इस्पात के पट्ट बने होते हैं। ऐसे पट्टों में एक विस्तार के छेद होते हैं। ऐसे छेद एक इंच से १·७५ इंच तक व्यास के होते हैं। यह डिंडिम एक अनुदैर्घ्य अक्ष पर घूमता है। डिंडिम में एक ओर से कोयला प्रविष्ट होता है और ऊपर उठकर पेंदे में गिरता है। बार-बार गिरने से कोयले टुकड़े-टुकड़े होकर छेदों से निकल कर नीचे गिर पड़ते और पत्थर के टुकड़े दूसरी ओर पहुँचकर निकाल लिये जाते हैं। डिंडिम बिलकुल क्षैतिज न होकर कुछ तिरछा होता है जिससे पत्थरों के निकलने में सहूलियत होती है। चूँकि कोयला धीरे-धीरे गिरता है इससे धूल अधिक नहीं बनती। ऐसी मशीन ६ से १२ फुट व्यास तक की और ८ फुट से २२ फुट तक लम्बी होती है। बड़ी-बड़ी मशीनों में प्रतिघंटा २५० से ४८० टन तक कोयला टूट सकता है। घूर्णन की चाल प्रति मिनट १२ और १८ चक्कर रहती है। ऐसी ब्रैडफोर्ड मशीन का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

कोयला तोड़ने की एक दूसरे प्रकार की मशीन होती है जिसे 'पिक ब्रेकर' कहते हैं। पिक ब्रेकर में तोड़ने के लिए इस्पात के नोकदार काँटे होते हैं। काँटों की दूरी

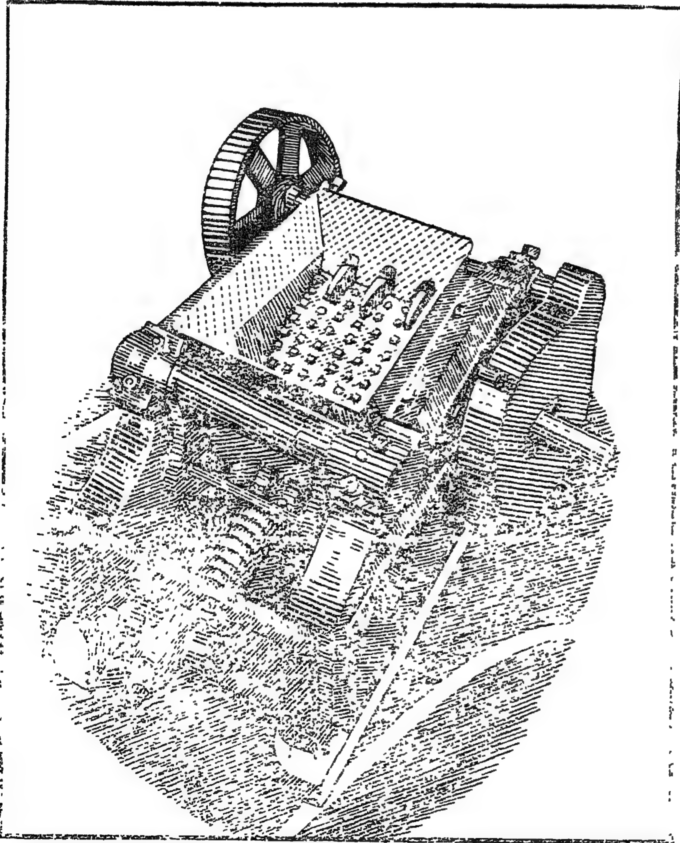


चित्र २६—पिक ब्रेकर का मंच

कितनी रहनी चाहिए, यह कितना बड़ा टुकड़ा तोड़ना है उस पर निर्भर करता है।

पहले कोयले को बड़े-बड़े टुकड़ों में तोड़ते हैं। फिर उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ते हैं। बड़े-बड़े टुकड़ों में तोड़ने के लिए चित्र में ऊपर के काँटे हैं और छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ने के लिए छोटे-छोटे काँटे 'गौण काँटे' हैं। प्राथमिक काँटे दूर-दूर और गौण काँटे पास-पास रहते हैं। इस तरह तोड़ने में कोयले की कुछ धूलें भी बनती हैं। उसका भी उपयोग है।

कोयले में यदि अधिक कंकड़ पत्थर न हों तो दलित्र का उपयोग हो सकता है।



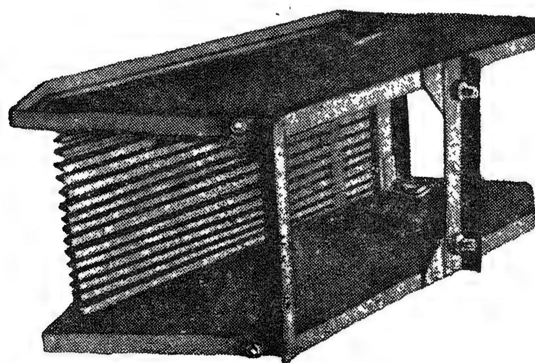
चित्र २७—एक-रम्भ दलित्र

दलित्र में दाँतवाले रम्भ होते हैं। किसी दलित्र में एक रम्भ होता है, किसी में दो

और किसी में दो से अधिक। एक रम्भवाले दलित्र में रम्भ कोयले को पट्ट पर दबा कर तोड़ता है। दो या दो से अधिक रम्भवाले दलित्रों में दो रम्भों के बीच में कोयला टूटता है। ये रम्भ बड़े मजबूत और कठोर होते और इस्पात के पात्र में स्थित रहते हैं। ऊपर से कोयले के बड़े-बड़े टुकड़े प्रविष्ट होते हैं। बीच में टूट कर कोयले के छोटे-छोटे टुकड़े पेंदे से निकल जाते हैं। उन्हें छ.नकर अलग-अलग आकार के कोयले को अलग-अलग इकट्ठा करते हैं। एक ऐसे एक-रम्भ दलित्र (Single Roll-crusher) का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

कोयले के विभिन्न आकार के टुकड़ों को अलग-अलग करने की आवश्यकता पड़ती है। कोयले का यह श्रेणी-विभाजन चलाई (Screening) के द्वारा होता है। चलाई के लिए अनेक प्रकार की चलनी प्रयुक्त होती हैं। उनमें निम्नलिखित चलनी अधिक महत्त्व की हैं—

(१) छड़ चलनी (Bar screen) **या गुरुता चलनी** (Gravity screen) —यह चलनी लोहे के छड़ की बनी होती है। यहाँ छड़ आवश्यक दूरी पर एक दूसरे के समानान्तर रखे होते हैं। ये ऐसे नत रखे रहते हैं कि कोयले के टुकड़े उन पर

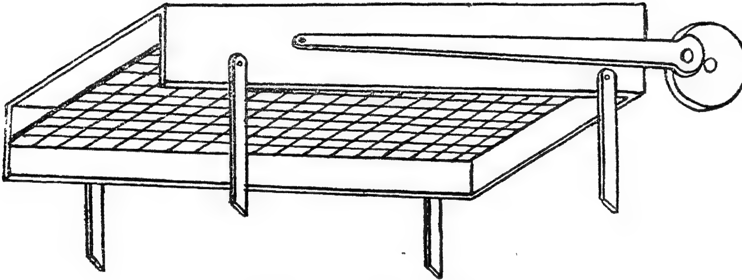


चित्र २८—छड़ चलनी

गुरुता से फिसल सकें। बड़े-बड़े टुकड़े फिसल कर पेंदे में चले आते और छोटे-छोटे टुकड़े छड़ों के बीच से निकल कर नीचे गिर पड़ते हैं। नीचे अधोवाप (हॉपर) में वे इकट्ठे होते हैं। ऐसी चलनी करीब ३ से ६ फुट चौड़ी और ८ से १२ फुट लम्बी होती है।

ऐसी चलनी बड़ी सरल और सस्ती होती है। इसके बैठाने में खर्च कम पड़ता है। इसके चलाने में शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसकी देख-रेख में किसी सावधानी की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। पर इसमें कोयले का श्रेणी-विभाजन ठीक-ठीक नहीं होता। गिरने से कोयला कुछ टूट भी जाता है। अब भी छड़-चलनी व्यवहार में आती है पर अब उसका प्रचलन धीरे-धीरे कम हो रहा है।

कम्पन चलनी (Shaking screen)—कम्पन चलनी एक आयताकार नत पट्ट होती है। पट्ट में उचित विस्तार और आकार के छेद होते हैं। पट्ट मजबूत फ्रेम में एक नम्य (flexible) स्तम्भ पर चढ़ाया होता है। यह फ्रेम घूमनेवाले

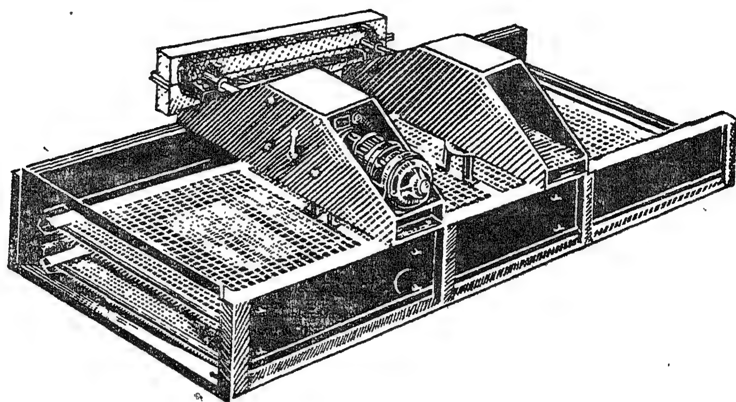


चित्र २९—कम्पन चलनी

यंत्र से जुटा रहता है। यह यंत्र चलनी को आगे-पीछे कम्पित करता है। कम्पन से कोयले छनकर नीचे गिर पड़ते हैं। एक के ऊपर दूसरी, कई श्रेणियों के चलते रहने से भिन्न-भिन्न विस्तार के कोयले अलग-अलग किये जा सकते हैं। ऐसी चलनी में १/४ इंच तक के कोयले अलग-अलग किये जा सकते हैं। यह चलनी भी काम करने में सरल और सस्ती होती है और इससे पर्याप्त कोयला चाला जा सकता है। इसी सिद्धान्त पर बेलनाकार चलनी भी बनी है। बेलन के पट्ट में छेद होते हैं। छेद भिन्न-भिन्न विस्तार के होते हैं। यह भी अनुदैर्ध्य कक्ष पर परिभ्रमण करता है। इसमें भी कोयला अनेक श्रेणियों में विभाजित हो सकता है। साधारणतया कोयले दो विस्तारों में अलग-अलग किये जाते हैं।

परिभ्रमित चलनी (Vibrating screen)—महीन कोयले को मोटे कोयले से अलग करने में यह चलनी अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। इसमें तार जाली लगी रहती है। कम्पन की गति प्रति मिनट ५०० से २००० तक रहती है। यहाँ भी चलनी कई किस्म की होती है। यहाँ कम्पन यंत्रों से अथवा विद्युत्-युक्ति से होता

है। क्षितिज के ४०° कोण पर चलनी रखी रहती है। चलनी २ से ६ फुट चौड़ी और ३ से २० फुट लम्बी रह सकती है। १/८ इंच के और इससे छोटे कोयले इससे सरलता से अलग हो जाते हैं। विभिन्न-अक्षिकी तार जाली के व्यवहार से कोयले कई श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं।



चित्र ३०—परिभ्रमित चलनी

इनके अतिरिक्त अन्य किस्म की चलनी प्रयुक्त होती है। बेलनाकार चलनी का भी उपयोग हुआ है। बेलनाकार चलनी में भिन्न-भिन्न विस्तार के छेदों की मजबूत जाली लगी रहती है। छेदों से विभिन्न विस्तार के कोयले अलग-अलग हो जाते हैं।

कोयले की सफ़ाई

कोयले में लकड़ी, लोहे आदि के टुकड़े मिले रहते हैं। इन्हें निकाल देना बड़ा आवश्यक है। यह कोयले की सफ़ाई करने से होता है। कोयले में गन्धक और राख की मात्रा कम करने के लिए भी सफ़ाई आवश्यक है। यह सफ़ाई कंकड़ों के हाथ से चुनकर निकालने अथवा धावन-रीति अथवा शुष्क-धावन रीति से होता है।

कोयले की सफ़ाई के अनेक लाभ हैं। घरेलू चूल्हों में लोग साफ कोयले के व्यवहार को पसन्द करते हैं, उद्योग-धन्धों में भी साफ कोयले की मांग रहती है। साफ़ कोयले से उत्कृष्ट कोटि का कोक बनता है। लोहे के निर्माण में राख की कमी से कम ईंधन खर्च होता है। इससे भट्ठे का खर्च कम हो जाता है। लोहा भी उत्तम प्राप्त होता है। बायलर में राख की कमी से बायलर का उत्पादन बढ़ जाता है। राख में कोयले की क्षति भी कम होती है। यदि कोयले को पीसना पड़े तो कंकड़ों के कारण

पिसाई का खर्च बढ़ जाता है। यदि अधिक राख बने तो उसके हटाने में खर्च भी अधिक पड़ता है।

पर सफ़ाई में लाभ तभी है जब खर्च कम पड़े। कंकड़ों के हटा लेने से कोयले का भार कम हो जाता है। इस कारण प्रति टन साफ़ कोयले की दर बढ़ जाती है। साफ़ कोयला इस कारण महंगा पड़ता है।

कोयले की राख दो कारणों से बनती है। एक कारण कोयले में कंकड़-पत्थरों का रहना है। ये कंकड़-पत्थर खानों से आते हैं। कोयला-स्तरों के गचों, छतों और कंकड़ों की पट्टियों (band) से आते हैं। इन्हें सफ़ाई से दूर किया जा सकता है। कोयले की अधिकांश राख इन्हीं कंकड़-पत्थरों से आती है। कोयले की कुछ राख कोयले में ही निहित रहती है। यह राख उन पौधों से आती है जिनसे कोयला बना है। पौधों में कुछ मिट्टी मिली रहती है। यह भी कोयले की राख में रह जाती है। ऐसी राख को कोयले से निकाल नहीं सकते। यदि कोयले में ऐसी राख आवश्यकता से अधिक मात्रा में रहे तो विशेष-विशेष कामों के लिए ऐसे कोयले इस्तेमाल नहीं किये जाते। इन्हें ऐसे कामों में प्रयुक्त करते हैं जिनमें अधिक राख से विशेष क्षति नहीं होती।

कोयले में कंकड़ दो रूपों में रहते हैं। कुछ कंकड़ कोयले के साथ पर अलग रहते हैं। ऐसे कंकड़ों को धुलाई से बड़ी सरलता से निकाल सकते हैं। कुछ कंकड़ कोयले के साथ बंधे हुए रहते हैं। इन्हें दूर करने के लिए कोयले को तोड़ने की आवश्यकता पड़ती है। कोयले के तोड़ लेने पर तब फिर धुलाई से कंकड़ों को निकाल सकते हैं।

कोयले में कंकड़ों का वितरण एक्स-किरण परीक्षण से जाना जा सकता है। एक्स-किरण चित्र में कंकड़ काले-काले धब्बे के रूप में देख पड़ते हैं।

धुलाई के पूर्व कोयले का परीक्षण कर देख लेना चाहिए कि धावन से लाभ हो सकता है या नहीं। ऐसे धावन के लिए एक उपयुक्त द्रव चाहिए। ऐसे द्रव का विशिष्ट भार १·२५ और १·६० के बीच अथवा इससे कुछ ऊँचा रहना चाहिए। ऐसा द्रव बेंजीन और कार्बन टेट्रा क्लोराइड के विभिन्न आयतन में मिलाने से प्राप्त होता है। कैलसियम और यशद क्लोराइड का विलयन भी इस्तेमाल हो सकता है।

कोयले और कोयले में उपस्थित कुछ खनिजों के विशिष्ट भार इस प्रकार हैं।

शुद्ध बिटुमिनी कोयला	१·२८–१·३७
सीप और सलेट मिला हुआ कोयला	१·४०–१·६०
सीप, मिट्टी और चूना पत्थर मिला हुआ कोयला	२·०–२·६४
माक्षिक (पाइराइटिज)	२·४–४·९५
कैलसाइट (चूना-पत्थर)	२·७
जिप्सम	२·३

विशिप्ट-भार की विभिन्नता के कारण कोयले की सफाई हो सकती है। ऐसी विधि को 'प्लव और निमज्ज' (Float and Sink) विधि कहते हैं। इस विधि में ऐसे द्रव को चुनते हैं जिसका विशिष्टभार शुद्ध कोयले और अपद्रव्य के बीच के विशिष्टभारों के बीच का, १·२५ विशिष्टभार का, होता है। कोयले के थोड़े नमूने को उसमें डालते हैं। कुछ कोयला बैठ जाता और कुछ उतरा जाता है। इन्हें अलग-अलग कर लेते हैं। जो कोयला बैठ गया है उसे फिर अधिक विशिष्टभार के द्रव में वैसा ही करते हैं और उन्हें अलग-अलग इकट्ठा कर उनमें राख की मात्रा निर्धारित करते हैं। परिणाम को इस प्रकार अंकित करते हैं—

सारिणी—प्लव और निमज्ज परीक्षण का परिणाम

कोयला प्रभाग का विशिष्टभार	प्रतिशत प्राप्ति	राख प्रतिशत
१·२५ से कम	५·०	०·८
१·२५ से १·३० के बीच	६०·०	२·५
१·३० से १·३५ ,,	१०·०	८·०
१·३५ से १·४० ,,	४·०	१६·०
१·४० से १·५० ,,	३·०	२५·०
१·५० से १·६० ,,	३·०	३५·०
१·६० से ऊपर	१·५	७०·०

जो अंश बैठ जाता और जो अंश उतराया रहता है उसका संचयी सम्बन्ध निम्न-लिखित सारिणी से स्पष्ट हो जाता है।

विशिष्टभार	उतराया अंश		बैठा हुआ अंश	
	प्राप्ति प्रतिशत	राख प्रतिशत	प्राप्ति प्रतिशत	राख प्रतिशत
१·२५	५	०·८	९५	१६·०
१·३०	६५	२·४	३५	३९·३
१·३५	७५	३·१	२५	५१·८
१·४०	७९	३·८	२१	५८·५
१·५०	८२	४·६	१८	६४·१
१·६०	८५	५·६	१५	७·०

इस परीक्षण से पता लगता है कि बड़े पैमाने पर धुलाई से कैसा कोयला किस मात्रा में प्राप्त हो सकता है।

साधारणतया यदि कोयले के टुकड़े ३ इंच से बड़े हों तो हाथ से चुनकर सफ़ाई करते हैं। यदि टुकड़े ३ इंच से छोटे हों तो यंत्रों का सहारा लेना पड़ता है। हाथ से चुनने के लिए धीरे-धीरे चलनेवाला एक परिवाहक (conveyor) होता है। परिवाहक पर कोयला धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। परिवाहक के बगल में आदमी खड़े रहते हैं। कंकड़ों और निकृष्ट कोटि के कोयले को उठाकर अलग रखते जाते हैं। यदि चमकीले और धुँधले कोयले को भी अलग करना हो तो उसे भी अलग करते जाते हैं। कुछ लोग चमकीला कोयला चाहते और कुछ लोग धुँधला चाहते हैं। उनके लिए ऐसा करने की आवश्यकता पड़ती है।

हाथ से चुनने के स्थान में यंत्रों का उपयोग अब धीरे-धीरे बढ़ रहा है। अब तो ऐसे कोयले की मांग अधिक है जिसके रासायनिक और भौतिक गुण एक विशेष प्रकार के हों। इसके लिए यांत्रिक धावन का उपभोग अब अधिकाधिक हो रहा है।

धावन के अनेक यंत्र बने हैं। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न किस्म के यंत्र प्रयुक्त होते हैं। उनकी बनावट में बहुत विभिन्नता देखी जाती है। पर जिस सिद्धान्त पर ये यंत्र बने हैं उनमें बहुत विभिन्नता नहीं है। कोयले की धुलाई जल से हो सकती है। गुरुता के कारण वे पृथक् होते हैं। ऐसी धुलाई को 'आर्द्र धावन' कहते हैं। आर्द्र धावन में जल का उपयोग होता है। कुछ धावन में जल का उपयोग नहीं होता। इसके लिए अन्य द्रव्य प्रयुक्त होते हैं। ऐसी धुलाई को 'शुष्क धावन' कहते हैं। कोयले की सफाई में इनके अतिरिक्त 'प्लव और निमज्ज' रीति और 'फेन उत्प्लावन' रीति का भी उपयोग होता है। इनमें आर्द्र धावन रीति से ही अधिक कोयले की सफ़ाई होती है।

मध्य युग में १९ वीं शताब्दी में खनिजों की सफाई और धुलाई के लिए एक किस्म के पात्र का उपयोग होता था जिसे 'जिग' कहते थे। इसी 'जिग' के आधार पर आधुनिक यंत्र बने हैं जिन्हे 'जिग' धावक कहते हैं। जिग धावक के निम्नलिखित आवश्यक अंग होते हैं--

(१) पानी में डूबे हुए सछिद्र गहरे झर्झर (grid) में कोयला रखा जाता है।

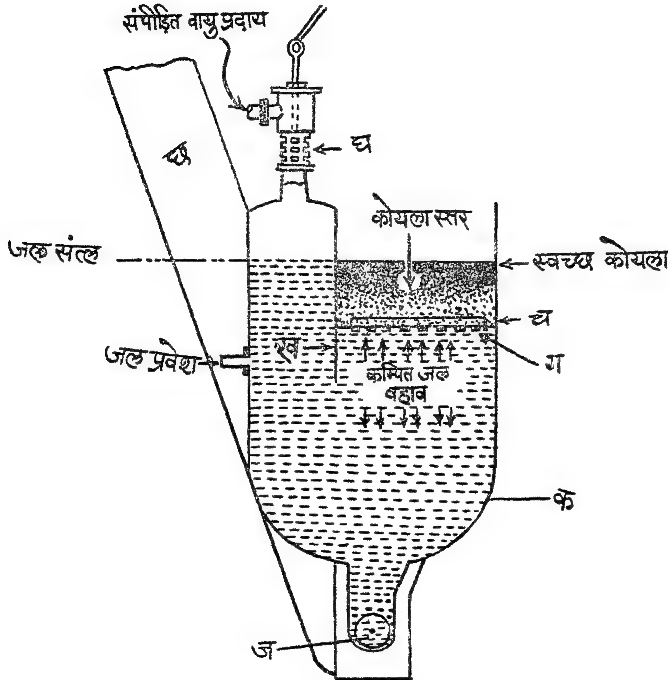
(२) कोयले के तल पर पानी ऊपर नीचे स्पन्दन (pulsate) करता है। ऊपर उठने पर कोयले का तल उठ जाता है और टुकड़ों को हिलने-डोलने का अवसर मिलता है। कम विशिष्टभार के टुकड़े ऊपर उठते और अधिक विशिष्टभार के टुकड़े नीचे बैठते हैं। नीचे जाने पर वे फिर कंकड़-पत्थरों से मिल जाते हैं।

(३) कई बार के ऊपर नीचे आने-जाने से ऊपर के कोयले हलके होते और नीचे के भारी। ऊपर के कोयले ऊपर से हटा लिये जाते हैं और नीचे के कंकड़ पेंदे में बैठ जाते हैं।

जिगों में 'बौम जिग' सब से आधुनिक है। इस जिग की दो विशेषताएँ हैं। इस जिग में विभिन्न विस्तार के कोयले की धुलाई हो सकती है जब कि अन्य जिगों में केवल एक विस्तार के कोयले ही धोये जाते हैं। इस जिग में वायु के दबाव से स्पन्दन होता है जिससे कोयला ऊपर नीचे उठता है।

बौम जिग में एक टंकी 'क' होती है। यह पानी से भरी रहती है। अनुदैर्घ्यतः यह एक व्यवधान 'ख' द्वारा दो कक्षों में बंटा रहता है। इस बंटने के कारण ही यह अंग्रेजी अक्षर यू आकार का हो जाता है। यू के एक बाजू में झर्झर 'ग' रहता है। झर्झर पर कोयले की एक फुट मोटी तह रखी जाती है। यू के दूसरे बाजू में वायु का बल्ब 'घ' लगा रहता है। यह बल्ब सम्पीड़ित वायु के साथ जुटा रहता है। इसी वायु से पानी ऊपर नीचे एक मिनट में ३० से ६० बार स्पन्दन करता है।

कोयला दाहिने पार्श्व से प्रविष्ट कर दो सछिद्र झर्झरों से निकलकर वामपार्श्व में जाता है जहाँ साफ कोयला निकाल लिया जाता है। कोयले के भारी टुकड़े प्रवेश स्थान पर ही नीचे बैठ जाते और 'च' बिल से और 'घ' उत्थापक से निकाल लिये जाते हैं। सूक्ष्म मल 'ज' भ्रमि द्वारा उत्थापक में आता है।



चित्र ३१—बौमजिग रेखाचित्र

मल ज्यों ही इकट्ठा हो उसे हटा लेना अच्छा होता है, नहीं तो कोयले के साथ वह फिर मिल जा सकता है। पहले यह काम हाथों से होता था पर आज यह आत्मग-युक्ति से होता है। इसके लिए एक प्लव 'झ' रहता है। यह कोयले और कंकड़ के बीच में स्थित रहता है। यदि कंकड़ का स्तर बढ़ जाय तो प्लव ऊपर उठ जाता और तब कंकड़ के निकास की गति बढ़ जाती है।

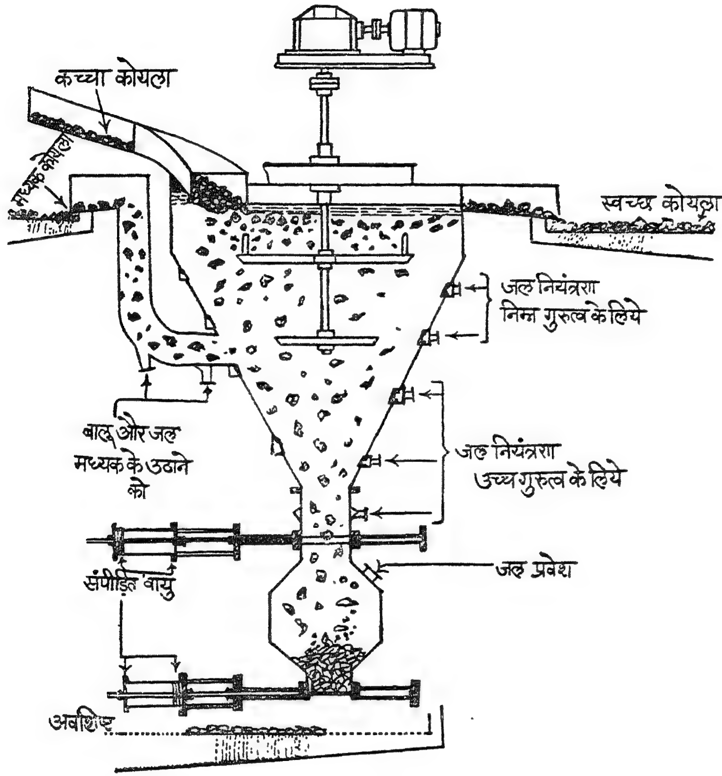
चाँस धावक (Chance Washer)—चाँस धावक में एक शंक्वाकार पात्र होता है। इसमें उचित विशिष्टभार का बालू (बालू का विस्तार ४० और ८० अक्षि के बीच रहता है) और जल का मिश्रण प्रक्षुब्ध किया रहता और तब कच्चा

कोयला उसमें प्रविष्ट करता है। ऐसे कोयले में $\frac{1}{16}$ इंच से महीन कोयले की धूल नहीं रहनी चाहिए। बालू के ऊपर साफ कोयला तैरता है और विलोडक के घूर्णन से उस स्थल पर पहुँच जाता है जहाँ से एक व्यवधान के ऊपर चलनी से निकल जाता है। यदि कुछ बालू उसमें चिपकी हो तो जल की फुहारों (spray) से निकाल ली जाती है। शंकु के पेंदे में कंकड़ इकट्ठा होता और समय-समय पर बल्ब से निकाल कर संग्रह-कक्ष में गिरा दिया जाता है। इस यंत्र से एक ओर साफ कोयले और दूसरी ओर कंकड़-पत्थर निकलते हैं। पर ऐसी युक्ति भी बनी है जिससे

चित्र ३२—बौमजिग का सामान्य दृश्य

मध्य कोयला भी निकाला जा सकता है। ऐसे कोयले में कोयला और कंकड़ दोनों मिले रहते हैं। जल और बालू को प्रक्षुब्ध रखने के लिए सम्पीड़ित वायु का उपयोग होता है। इन्हें प्रक्षुब्ध रखना बहुत आवश्यक है ताकि मिश्रण का भार इतना ऊँचा रहे ताकि कोयला उस पर तैरता रहे। कभी-कभी कोयले के ऊपर उठने में सहायता देने के लिए पानी में कुछ क्रिसोल सदृश पदार्थ मिले रहते हैं जो फेन बन कर कोयले को

उठाते हैं। क्रिसोल की मात्रा बड़ी अल्प लगती है। प्रति टन कच्चे कोयले के लिए १ से ५ पाउण्ड क्रिसोल इस्तेमाल हो सकता है।



चित्र ३३—"चाँस" धावक

बारबाय धावक (Barvoy's Washer)—एक तीसरे किस्म का धावक बारबाय धावक है। यह आयताकार पात्र है। नीचे की ओर पतला होता जाता है। इस पात्र को कुछ अधिक सघन द्रव से भरते हैं। ऐसा द्रव जल में महीन पीसा हुआ बेराइटीज (बेरियम सल्फेट) और मिट्टी के मिलाने से प्राप्त होता है। पात्र के एक ओर से कोयला प्रविष्ट करता और ऊपर तैरता हुआ यांत्रिक संकिर (rake) से निकाल लिया जाता है। द्रव का विशिष्ट भार ऐसा रहता है कि कंकड़ और मध्यक (middlings) पात्र में बैठ जाते और वहाँ से दूसरे पात्र में निकाल लिये जाते

हैं। इस पात्र में भी वैसा ही द्रव रखा रहता है। यह द्रव धीरे-धीरे ऊपर नीचे उठता रहता है। यहाँ कंकड़ नीचे बैठ जाता और मध्यक ऊपर उठकर अलग हो जाता है। साफ़ और मध्यक कोयले और कंकड़ पर पानी का फुहारा देकर चिपके द्रव को निकाल लेते हैं। पानी के फुहारे से द्रव जो पतला हो जाता है उसे फिर संकेन्द्रित कर गाढ़ा बना लेते हैं।

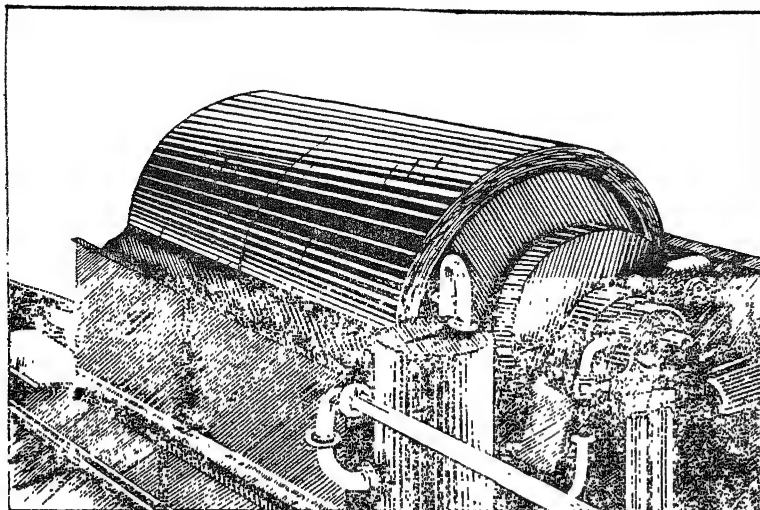
स्वफेन उत्प्लावन संयन्त्र—इस संयन्त्र में उत्प्लावन के लिए किसी प्रतिकारक की आवश्यकता होती है। ऐसा प्रतिकारक अलकतरा अथवा पेट्रोलियम का अंश होता है। प्रतिकारक में कोई ऐसा पदार्थ रहना चाहिए जो कोयले के तल पर अवशोषित हो जाय। इसमें ऐसा पदार्थ भी रहना चाहिए जो छोटे-छोटे बुलबुले बनकर कोयले में सटकर कोयले को हलका बनाकर ऊपर तल पर उठा सके। दूसरे काम के लिए क्रिसोल अच्छा समझा जाता है। यह अलकतरे में रहता है। प्रति टन कच्चे कोयले की सफ़ाई के लिए ऐसे प्रतिकारक का एक से पाँच पाउण्ड तक लग सकता है। यह मात्रा कुछ अधिक नहीं है।

कोयले की सफ़ाई के पहले कोयले से महीन कणों, धूलों, को निकाल डालना जरूरी होता है। यदि ऐसा न किया जाय तो पानी धूल से भर जाता और द्रव के विशिष्टभार को बदल देता है। इससे पानी फिर इस्तेमाल के योग्य नहीं रहता। धूल के निकालने के लिए कोयले को महीन चलनी से चालने और बीच-बीच में फटकने की आवश्यकता पड़ती है। फटकन के लिए वायु का प्रवाह चाहिए। महीन कोयले के अनेक उपयोग हैं। धूल निकालने के लिए कोयले का सूखा रहना आवश्यक है। भींगे कोयले से धूल ठीक तरह से नहीं निकलती।

लोष्ठन (flocculation)—पानी में जो कोयले की धूल रह जाती है उसे निकालने की आवश्यकता पड़ती है। यदि ऐसे पानी को निथारक टंकी में ले जाकर छोड़ दें तो धूल बैठ जाती है। यह क्रिया बड़ी मन्द होती है पर यदि उस पानी में अल्प मात्रा में कोई लोष्ठकारक प्रतिकारक डालें तो धूल-कण मिलकर शीघ्र पिंड बन जाते और ये जल्दी ही नीचे बैठकर ऊपर के पानी को स्वच्छ कर देते हैं। इसके लिए प्रतिकारक के रूप में चूना अथवा स्टार्च का क्वाथ (concoction) या दोनों के मिश्रण उपयुक्त होते हैं।

छानना (filtration)—कोयले के महीन कणों को अथवा स्वच्छ कोयले को पृथक् करने के लिए कभी-कभी छानने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए ड्रम (डिंडिम) छनना (drum filter) प्रयुक्त होता है। यहाँ बेलनाकार ड्रम विवर्ता (trunnions) पर आधारित होता है और धीरे-धीरे परिभ्रमण

करता है। डिडिम का निचला भाग उस टंकी में डूबा रहता है जिसमें छननेवाला पदार्थ रखा रहता है। डिडिम का अभ्यन्तर भाग कई हिस्सों में बंटा रहता है। प्रत्येक भाग में एक नल जोड़ा रहता है। ये नल फिर मध्य के एक बल्ब से जुटे रहते हैं। उसी बल्ब से चूषण का प्रबन्ध रहता है।



चित्र ३४—ड्रम फिल्टर

कोयले से पानी निकालना—धोये कोयले को चलनी में रखने से कोयले का पानी बहुत कुछ बह कर निकल जाता है। पर महीन और जले कोयले से पानी जल्द नहीं निकलता। इसके लिए कोयले को जल-निष्कासन (drainage) कोलकी या कोष्ठ (bunker) में पर्याप्त समय तक रखने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अनेक कोष्ठ रहना चाहिए। कोष्ठ के पेंदे में छड़-जाली रहती है जिससे पानी बह जाता है।

पानी को जल्द निकालने के लिए आजकल केन्द्रापसारक का उपयोग होता है। केन्द्रापसारकों में डिडिम होता है अथवा पिटक। ये बहुत द्रुत गति से घूमते हैं। उसमें कोयला रख दिया जाता है। डिडिम के छेदों अथवा पिटक के छेदों से पानी निकल जाता है। इसके लिए विशेष प्रकार के शुष्ककारक होते हैं। एक ऐसा शुष्ककारक मक्नैली कार्पेन्टर कोल ड्रायर (Mcnally-carpenter coal drier)

है जो अमेरिका में प्रयुक्त होता है। इसमें साधारणतया $\frac{३}{८}$ इंच से छोटे कोयले भी छाने जा सकते हैं। प्रति घंटा ४० टन तक कोयला इसमें सुखाया जा सकता है। धोये कोयले का पानी इस यंत्र में २४·२६ प्रतिशत से गिरकर ६·७७ प्रतिशत हो जाता है।

कोयले की धुलाई में जो पानी प्रयुक्त होता है उसमें कोयले के महीन कण लटके रहते हैं। उस पानी को फिर से काम में लाने के पहले इन कणों को अंशतः निकाल लेना आवश्यक होता है। इसके लिए ऐसे पानी को किसी स्थलकारक (thickener) में रखकर निथरने के लिए छोड़ देते हैं। स्थलकारक एक छिछला बेलनाकार टंकी सा होता है। टंकी के पेंदे के निकट कई लम्बे बाजू होते हैं जो बाह्य दीवार तक फैले होते हैं। ये एक केन्द्र के ऊर्ध्वाधार अक्ष पर धीरे-धीरे घूमते हैं। इन बाजुओं में फलक (blades) होते हैं जो स्थूलकारक के पेंदे के ठीक ऊपर होते हैं।

स्थूलकारक का व्यास २० से २०० फुट का होता है और गहराई प्रायः १० फुट। बाजू फी घंटा ४ से ८ परिभ्रमण करते हैं।

कोयले की धुलाई से गन्धक की मात्रा कम हो जाती है। अतः गन्धक आक्सी-कृत हो अम्ल नहीं बनता। इससे कोयले की अम्लता बढ़ती नहीं है। गन्धक के आक्सीकरण से पानी की अम्लता धीरे-धीरे बढ़ती है। अम्लता से पात्र का क्षारण होता है। इसे रोकने के लिए पानी में चूना डालकर अम्लता का निराकरण करते हैं।

शष्क धावन में पानी के स्थान में वायु के उपयोग से कोयले की धुलाई होती है। यह रीति कोयले के छोटे-छोटे टुकड़ों के लिए $\frac{१}{२}$ इंच या इससे कम के लिए अधिक उपयोगी है। ऐसे कोयले पानी की धुलाई से जल्दी सूखते नहीं हैं। बड़े-बड़े टुकड़ों की भी इससे सफ़ाई हो सकती है। वायु से जो छोटे-छोटे टुकड़े उड़ते हैं उन्हें पकड़ रखने के लिए विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता होती है।

इस काम के लिए अनेक प्रकार के शोधक (cleaner) बने हैं। कुछ शोधक जिग-किस्म के होते हैं और कुछ लौण्डर किस्म के। इस प्रकार के शोधक प्रधानतया अमेरिका में प्रयुक्त होते हैं।

भारत की कोयले की खानों में कोयले की धुलाई के संयन्त्र अभी बैठाये नहीं गये हैं पर घोषणा हुई है कि शीघ्र ही ऐसे संयन्त्र झरिया की खानों में बैठाये जायंगे। झरिया कोयला-क्षेत्र के दुगधा, पथरडीहा और भोजुडीह में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में धोने के संयन्त्र बैठाने की घोषणा हुई है। धावन संयन्त्र प्रत्येक स्थान में एक-एक होंगे। प्रत्येक संयन्त्र में प्रति घण्टा ५०० टन कोयले की धुलाई की क्षमता होगी। प्रत्येक संयन्त्र के बैठाने में लगभग अढ़ाई करोड़ रुपया लगेगा। इन संयन्त्रों से इतना

कोयला निकलेगा कि देश के इस्पात के सब कारखाने के लिए पर्याप्त होगा। किस स्थान पर ये संयन्त्र बैठाये जायंगे इसका सर्वेक्षण समाप्त हो चुका है और शीघ्र ही संयन्त्र बढ़ाने के लिए और कार्यकर्त्ताओं के निवास के लिए आवश्यक गृहों का निर्माण शुरू होनेवाला है। सम्भव है कि अब तक कार्य शुरू हो गया हो।

धूल का बनना रोकना—कोयले के तोड़ने में न्यूनाधिक मात्रा में धूल बनती है। धूल बनना रोकने के लिए प्रयत्न हुए हैं। कोयले के परिवहन में भी कोयले बहुत कुछ टूट जाते हैं। यदि कोयले पर अल्प मात्रा में पेट्रोलियम तेल अथवा कैलसियम क्लोराइड का विलयन छिड़क दिया जाय तो कोयले का टूटना बहुत कुछ रोका जा सकता है। इसके लिए प्रति टन कोयले में एक पाइण्ट से एक गैलन तक पेट्रोलियम तेल लग सकता है। सरंध्र कोयले में इससे विशेष लाभ होते देखा गया है।

इष्टका-निर्माण—कोयले की धूल को उपयोगी बनाने की एक रीति उन्हें इष्टका में परिणत करने की है। साधारणतया जिस कोयले में राख की मात्रा कम रहती है उसकी इष्टका बनाना अच्छा होता है। यदि कोयले में राख की मात्रा अधिक रहे तो ऐसे कोयले के बांधने में बंधक अधिक खर्च होता है। इससे इष्टका का मूल्य बढ़ जाता है। अधिक बंधक से इष्टका से धुआं भी अधिक बनता है।

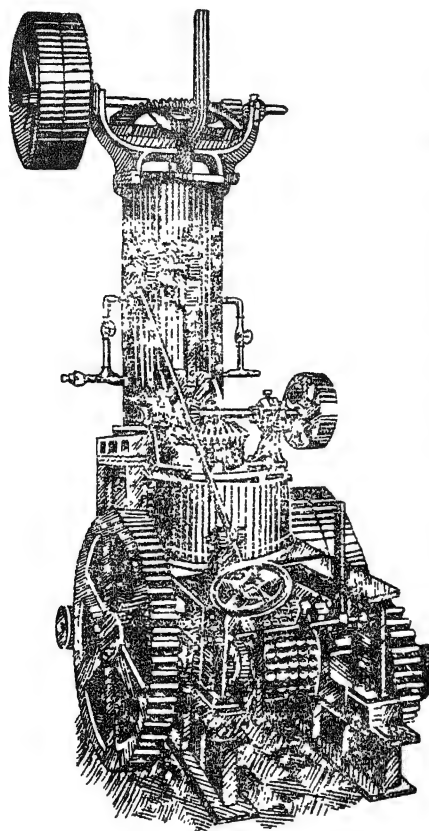
बंधक के रूप में साधारणतया अलकतरे का व्यवहार होता है। धूल को प्रायः ८ प्रतिशत पिच से मिलाकर और यदि आवश्यक हो तो एक बार फिर पीसकर उसे 'कुक्कर' (pug) ऊष्मक में तपाते हैं। यह ऊष्मक ऊर्ध्वाधार बेलन के आकार का होता है जिसे भाप से प्रायः ९५° सें० तक गरम कर सकते हैं।

ऐसी दशा में पिच पिघल कर धूल के साथ मिलकर चिपकने वाली गाढ़ी पिष्टि बनता है। इस पिष्टि को साँचे में रखकर प्रेस में दबाते हैं। जैसा साँचा रहेगा वैसी ही इष्टका बनेगी। इसके लिए साधारणतया दो प्रकार के प्रेस प्रयुक्त होते हैं। एक 'पलंजर' (plunger) प्रेस और दूसरा 'रोल प्रेस'।

पलंजर प्रेस—पलंजर प्रेस में बड़ी-बड़ी इष्टकाएँ बनती हैं। यहाँ साँचा इस्पात का होता है। एक स्थान में पिष्टि साँचे में प्रविष्ट करती है। दूसरे स्थान में पिष्टि दबायी जाती है। प्रतिवर्ग इंच पर एक टन या इससे अधिक दबाव पड़ता है। तीसरे स्थान में इष्टका साँचे से निकाल ली जाती है।

रोल प्रेस—रोल प्रेस में अण्डाकार इष्टका बनती है। इसमें दो बड़े-बड़े गोलक (rollers) होते हैं। इन गोलकों के मुख पर दन्ति (indentations) बनी होती है। बेलनों को एक दूसरे के संसर्ग में लाकर दबाते हैं। दोनों बेलनों की दन्ति एक साथ मिलकर आवश्यक आकार का साँचा बनती है। ज्यों-ज्यों बेलन घूमते हैं

उष्ण पिष्टि उनमें प्रविष्ट होकर इष्टका बनती और आधे साँचे को हटा लेने पर वह उससे निकल कर गिर पड़ती है ।


चित्र ३५—इष्टका मशीन

इष्टका बनाने में सब से बड़ी कठिनता पिच की उपलब्धि है। सब स्थान पर पिच नहीं मिलता। पिच के स्थान में दूसरा कोई ऐसा सन्तोषप्रद पदार्थ नहीं प्राप्त हो सका है जो उसका स्थान ग्रहण कर सके। पिच से बनी इष्टका के जलने में धुआँ अधिक बनता है। यदि साफ़ कोयले की धूल से इष्टका बनाकर उसको कार्बनीकृत कर लें तो इष्टका के जलने पर धुआँ नहीं बनता। ऐसी इष्टका उत्कृष्ट कोटि की होती है। भारत में पिच के स्थान में छोए के उपयोग का प्रयत्न हो सकता है पर छोए में जो पदार्थ रहते हैं वे जल्दी सूखने वाले नहीं होते और सूख जाने पर भी वायु से जल ग्रहण कर सकते हैं। अनुसन्धान से ही ठीक-ठीक पता लग सकता है कि इष्टका बनाने में छोए का कहाँ तक उपयोग हो सकता है। लिगनाइट के बाँधने में छोए का उपयोग हुआ है पर वह अभी तक सन्तोषप्रद नहीं सिद्ध हुआ है। धनबाद के इण्डियन स्कूल आफ माइन्स में ऐसे प्रयोग हुए हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

कोयले का संचयन

खानों से कोयला निकाल कर चलाई, सफाई और क्रम-विभाजन के बाद कोयले के संग्रह और वितरण का प्रश्न उपस्थित होता है। कोयले की मांग आज इतनी बढ़ गयी है कि वितरण का प्रश्न बड़ा जटिल हो गया है। उद्योग-धन्धों के अतिरिक्त घरेलू ईंधन के रूप में कोयले का उपयोग बहुत अधिक बढ़ गया है। खानों से निकलने पर रेल के डब्बों के द्वारा अथवा ट्रकों से ही भारत में कोयला खानों से बाहर भेजा जाता है। खानों के निकट समुद्र-तट या नदी न होने से दूसरा कोई उपाय नहीं है। देश से बाहर भेजने के लिए जहाजों का उपयोग अवश्य हो सकता है पर यह तभी सम्भव है जब कोयला रेल के डब्बों में बन्दरगाहों पर लाया जाय।

भारत की रेल कम्पनियों के पास माल के इतने डब्बे नहीं हैं कि कोयले का वितरण ठीक-ठीक हो सके। यही कारण है कि कभी समाचार आता है कि कोयले के अभाव में कानपुर की मिलें बन्द हो रही हैं तो कभी समाचार आता है कि कोयले के बिना अहमदाबाद की मिलें बन्द हो रही हैं और कभी समाचार निकलता है कि बनारस के पानी कल के लिए केवल हफ़्ते भर के लिए कोयला बच गया है और यदि कोयला इस बीच नहीं मिला तो पानी का मिलना बन्द हो जायगा।

भारत में जहाजों के द्वारा भी कोयले का वितरण होता है। दूर समुद्रतट के नगरों को जहाजों से कोयला जाता है। देश के बाहर भी अनेक देशों को जहाज़ द्वारा कोयला जाता है। ग्रेट ब्रिटेन में अनेक जहाज़ कम्पनियाँ केवल कोयला ढोने के लिए बनी हैं।

कोयले के संग्रह की सदा ही आवश्यकता पड़ती है। कभी कोयला कम खर्च होता है, कभी अधिक। जाड़े में साधारणतया ३० प्रतिशत अधिक कोयला खर्च होता है। कभी-कभी झगड़ों के कारण, हड़ताल के कारण, छुट्टी के कारण, रेल डब्बों की कमी के कारण कारखानों अथवा नगरों में कोयला नहीं पहुँच पाता। ऐसे अवसरों के लिए कोयले का संग्रह कर रखने की आवश्यकता पड़ती है।

कोयले का संग्रह महंगा पड़ता है। संग्रह के लिए उपयुक्त स्थान होना चाहिए, ऐसा स्थान जहाँ कोयला सुरक्षित रखा जा सके। यह स्थान छोटा और बड़ा दोनों हो सकता है। कहीं ५, ७, १० टन कोयले के संग्रह की आवश्यकता पड़ती है और कहीं २५०,००० टन तक कोयला रखना पड़ता है।

ह्रास

रखने से कोयले का ह्रास होता है। कोयला कुछ न कुछ ज़रूर सूखता है। इससे भार में कमी होती है। कोयले का कुछ वाष्पशील अंश भी धीरे-धीरे निकल जाता है। अधिक वाष्पशील अंशवाले कोयले में ह्रास ३ से ५ प्रतिशत तक हो सकता है। जैसे-जैसे समय बढ़ता है, ह्रास की वार्षिक गति कम होती जाती है। कोयले के तापन-मान में भी यदि वह खुले स्थान में रखा है तो कुछ कमी होती है पर बड़ी अल्प-मात्रा में।

कोयले के संग्रह में कभी-कभी स्वतः आग लग जाती है। आग लगने के कारणों पर बहुत अनुसन्धान हुआ है। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक निबन्ध निकले हैं। उनके रोकने के सुझाव पर भी बहुत कुछ विचार हुआ है। जिस कोयले में वाष्पशील अंश अधिक रहता है उसमें आग लगने की अधिक सम्भावना रहती है। एक आकार या परिमाण के कोयले में उतनी आग नहीं लगती जितनी भिन्न-भिन्न आकार के मिले हुए कोयले में आग लगती है।

ऐसा समझा जाता है कि कोयले का मन्द आक्सीकरण होता है। इससे ऊष्मा उत्पन्न होती है। धीरे-धीरे यह ऊष्मा इतनी बढ़ जा सकती है कि उससे आग लग जाय। पर यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है। यह कहा जा सकता है कि स्वतः दहन के कारणों का हमें अभी तक निश्चित रूप से पता नहीं लगा है। कोयला ऊष्मा का चालक नहीं है। मन्द आक्सीकरण से जो ऊष्मा बनती है वह जहाँ की तहाँ बनी रहती है। ताप धीरे-धीरे उठता जाता है। अन्त में ताप इतना ऊँचा पहुँच जाता है कि कोयला आप से आप जल उठता है। कोयले का वाष्पशील अंश आग लगने में सहायता करता है।

कोयले के संग्रह-स्थान में आग बुझाने का प्रबन्ध रहना बहुत आवश्यक है। पानी से आग बुझायी जा सकती है। पर आग बुझाने के लिए पानी अच्छा नहीं समझा जाता। ऐसा देखा गया है कि जिस कोयले में पानी का अंश अधिक रहता है उसमें आग लगने की प्रवृत्ति अधिक होती है।

कोयले में आग लगने से बचाने के लिए निम्नलिखित उपायों का करना आवश्यक है।

(१) कोयले को अधिक ऊँचाई अथवा गहराई के ढेर में नहीं रखना चाहिए। १००० टन कोयले को यदि एक एकड़ भूमि में फैला दिया जाय तो उसकी मोटाई प्रायः एक फुट होगी। इससे अधिक मोटाई में कोयले को रखना ठीक नहीं है।

(२) एक स्थान में सब कोयले का ढेर नहीं रखना चाहिए। पाँच टन के ढेर में रखना अच्छा होता है। अधिक से अधिक २० टन कोयले को एक ढेर में रख सकते हैं। इतने ढेर में रखने से आग बुझाने में सहूलियत होती है।

(३) कोयले के ढेर को किसी निष्क्रिय महीन पदार्थ से ढक देना अच्छा होता है। इसके लिए अंथ्रेसाइट का गूँधा हुआ चूर्ण, चिमनी की धूलि, बिटुमिनी का आच्छादन इस्तेमाल हो सकता है। ऐसा करने से वायु का प्रवेश कुछ सीमा तक रोका जा सकता है जिससे दहन न हो।

(४) समय-समय पर कोयले के सारे ढेर का ताप नियमित रूप से लेना चाहिए। ४०, ४० फुट की दूरी पर प्रत्येक दिशा में ताप लेना चाहिए। इसके लिए उत्ताप मापी (पाइरोमीटर) का उपयोग करना अच्छा होता है। जहाँ कहीं भी ताप ऊँचा पाया जाय वहाँ के कोयले का विशेष रूप से परीक्षण करना चाहिए।

बाइसवाँ अध्याय

कोक कोयला

कुछ कोयला ऐसा होता है जिसका कोक बन सकता है और कुछ ऐसा होता है जिसका कोक नहीं बन सकता। इसके लिए कोयले की परीक्षा वायु की अनुपस्थिति में गरम करने से होती है।

गरम करने से कोयला यदि कोमल हो जाय और फिर अन्त में न्यूनाधिक ठोस पिंड में बदल जाय तो ऐसा कोयला कोक बननेवाला कोयला है। कुछ कोयले गरम करने से चूर-चूर हो जाते अथवा दुर्बलता से चिपकनेवाले पिंड में बदल जाते हैं। ऐसे कोयले कोक बननेवाले कोयले नहीं हैं।

कोक बननेवाले सब प्रकार के कोयले से अच्छे कोक नहीं बनते। अच्छे कोक का बनना दो बातों पर निर्भर करता है। एक कोयले के कोशों की बनावट और दूसरे कोयले में गन्धक और राख की मात्रा।

ये दोनों गुण कदाचित् ही किसी एक कोयले में पाये जाते हैं। किसी कोयले में एक गुण होता है तो किसी में दूसरा। अतः कोक बनाने में साधारणतया दो या दो से अधिक किस्म के कोयले को मिला कर तब इस्तेमाल करते हैं।

कोयले के गुणों के अतिरिक्त अन्य कई बातों पर भी अच्छे कोक का बनना निर्भर करता है। इनमें निम्नलिखित बातें अधिक महत्त्व की हैं—

(१) कोयले की सूक्ष्मता
(२) कोयले का घनत्व
(३) भट्ठी की प्ररचना और विस्तार
(४) गरम करने का ताप
(५) भट्ठी के गरम करने का क्रम (rate)

कोक बनाने का उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकता है। कुछ कारखाने धातु-निर्माण के लिए कोक बनाते हैं। कुछ कारखाने 'उत्पादक गैस' के लिए कोक बनाते और कुछ कारखाने 'घरेलू ईंधन' के लिए कोक बनाते हैं। कोक बनाने में कोक के अति-

रिक्त गैस, अलकतरा, हलका तेल और अमोनिया आदि उप-उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। इन उत्पादकों का मूल्य उनकी उपयोगिता पर निर्भर करता है। कोक-निर्माण के उप-उत्पाद महत्त्व के हैं और उनका विचार भी रखना आवश्यक होता है।

कोक बनाने का कारखाना वहाँ ही खोलना चाहिए जहाँ कोयला जल्दी और नियमित रूप से प्राप्त हो सके, कोयले का मूल्य कम हो और कोयले को कारखाने तक लाने में कम खर्च पड़े। कोक का उपयोग भी निकट में ही हो सके तो और अच्छा होगा। साधारणतया खानों के समीप ही कोक बनते हैं अथवा उन कारखानों के निकट जिनमें कोक प्रयुक्त होता है।

कोयले के किसी विशिष्ट गुण से कोक बनने का संबंध नहीं जोड़ा जा सका है पर ऐसा समझा जाता है कि कोक बनने का गुण कोयले के आणविक संगठन से सम्बन्ध रखता है। एक परिकल्पना के अनुसार कोक बनने का गुण कोयले में उपस्थित बाँधनेवाले यौगिकों पर निर्भर करता हैं। कुछ कोयले में ऐसे पदार्थ पाये गये हैं जो लकड़ी के कोयले को बांध सकते हैं। कुछ कोयले से फीनोल अथवा पिरिडीन सदृश विलायकों के द्वारा बाँधनेवाले पदार्थ को निकाल लेने पर उससे दृढ़ता से चिपकनेवाला कोक नहीं बनता। पर यह सिद्धान्त सन्तोषप्रद नहीं समझा जाता। कोयले को नीचे ताप पर ही प्रारम्भिक द्रवण-अवस्था तक गरम करके ठंढा होने पर पीसें, तो उससे जो पदार्थ प्राप्त होता है वह फिर कोक नहीं बनता। यदि बाँधनेवाले पदार्थों के कारण ही कोक बनता हो तो इस उपचार से कोक बनने का गुण नष्ट नहीं होना चाहिए। फिर कोक समांग पदार्थ है और इसकी संरचना में बाँधनेवाली किसी वस्तु की उपस्थिति का पता नहीं लगता।

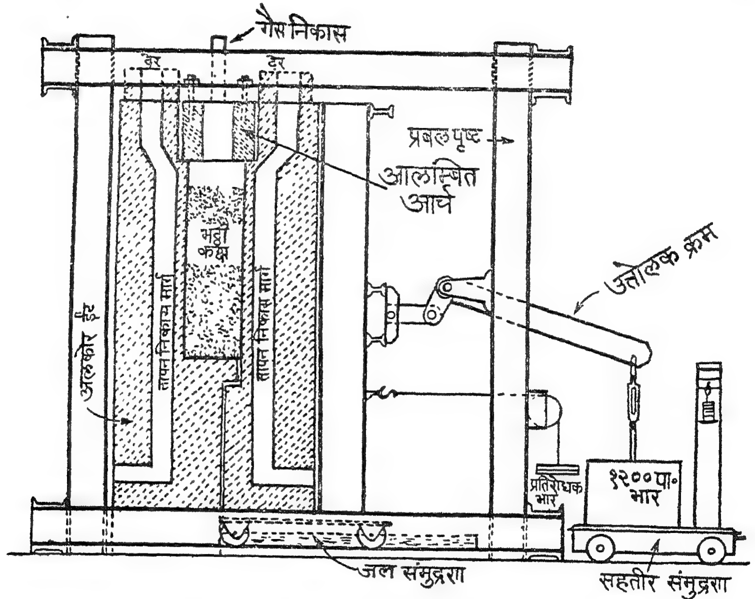
कोक के लिए कोयले का चुनाव—कैसा कोयला कोक के लिए अच्छा होगा, यह बहुत कुछ अनुभव पर निर्भर करता है। इसमें कोयले के प्राथमिक विश्लेषण से बहुत कुछ सहायता मिलती है। प्राथमिक विश्लेषण में हमें नमी, राख, गन्धक और फ़ास्फ़रस आदि का पता लगता है। अमेरिका, रूस, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड आदि देशों में अनेक कोयलों का विश्लेषण होकर उनसे कोक प्राप्त हुआ है। ये आँकड़े प्राप्य हैं और उनकी सहायता से हम निर्णय कर सकते हैं कि कोई कोयला कोक के लिए उपयुक्त हैं अथवा नहीं। अन्य विश्लेषणों के आधार पर भी कोयले के चुनाव का सुझाव है पर यह रीति विश्वसनीय नहीं समझी जाती और व्यापार में उसका कोई महत्त्व नहीं है।

इन विश्लेषणों के फलस्वरूप ऐसा मालूम होता है कि बिटुमिनी कोयला कोक के लिए उत्तम है। कम वाष्पशील बिटुमिनी, मध्यम वाष्पशील बिटुमिनी और उच्च-

वाष्पशील बिटुमिनी कोयले, विशेषतः अन्तिम किस्म के कोयले, कोक के लिए अच्छे समझे जाते हैं।

आश्मिक विश्लेषण—कोयले के चुनाव के लिए उसका आश्मिक विश्लेषण भी कभी-कभी उपयोगी सिद्ध होता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों में इसका महत्त्व अधिक है।

लघु अनुमाप में परीक्षण—कोक बनने के गुण का बड़े पैमाने पर परीक्षण करना सम्भव नहीं होता। अतः अल्प मात्रा में परीक्षण की चेष्टाएँ हुई हैं और इसके फलस्वरूप कुछ परीक्षण अल्प मात्रा में किये जा सकते हैं। ऐसे एक परीक्षण को 'बक्स परीक्षण' कहते हैं। इसके लिए एक छोटा-सा बक्स होता है। यह बक्स किसी धातु का अथवा तारजाली का बना होता है। इसमें एक घनफुट या इससे कुछ अधिक



चित्र ३६—कोक निर्माण का चूल्हा (छोटे पैमाने का)

कोयला अँटता है। कोयला रखकर बक्स को चूल्हे में डाल देते हैं। बक्स में रखने का कारण यह है कि बक्स का कोयला भट्ठी के अन्य कोयले से मिल न जाय। कुछ निश्चित काल तक बक्स को भट्ठी में रखकर तब उसे निकाल कर कोयले का परीक्षण करते हैं। इससे कोयले के सम्बन्ध में बहुत कुछ पता लग जाता है पर यह परीक्षण उतना

विश्वसनीय नहीं है। यहाँ किस स्थिति में कोयला गरम होता है, उसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। गरम करने की परिस्थिति को भी इच्छानुसार बदल नहीं सकते। इससे अच्छी रीति लघु अनुमाप 'चूल्हा परीक्षण' है।

लघु अनुमाप चूल्हा परीक्षण—इस परीक्षण के लिए एक छोटे चूल्हे की आवश्यकता पड़ती है। बड़े पैमानेवाले चूल्हे का ही यह छोटा रूप होता है। इस प्रकार के परीक्षण के लिए अनेक प्ररचना के छोटे-छोटे चूल्हे बने हैं। अमेरिका की कौपर्स कम्पनी (Koppers Company) ने एक चूल्हा बनाया है जो अनेक कारखानों में प्रयुक्त होता है। वह चूल्हा इस प्रकार का है—

चूल्हा ४२ इंच ऊँचा होता है। दरवाजे के अन्दर का स्थान २८ इंच लम्बा और १२ इंच चौड़ा होता है। दोनों तरफ गैस के जलने से चूल्हा गरम होता है। जलनेवाली गैस पेंदे से आकर ऊपर उठती है। चूल्हे की एक दीवार अचल होती है पर उसकी दूसरी दीवार अचल नहीं होती। वह बेलन पर चल सकती है। पर कोक बनने के समय यह दीवार भी अचल ही रहती है। इस दीवार पर जो दबाव पड़ता है वह दबाव उद्याम (lever) के द्वारा स्थानान्तरित हो एक मंच स्केल पर सूचित होता है। कोक बनने के समय कोयले का फैलाव जितना होता है उसी के अनुसार दीवार पर दबाव पड़ता और यह दबाव उद्याम द्वारा स्थानान्तरित हो मंच के स्केल पर अंकित होता है। ऐसे चूल्हे में प्रायः ४०० पाउण्ड कोयला अँटता है। शिखर के एक विवर से कोयला डाला जाता है। कोक के बन जाने पर नीचे से कोक निकाल लिया जाता है। शिखर के एक दूसरे विवर से गैसें निकलकर वायु में मिल जाती हैं।

ऐसे कई चूल्हे साथ-साथ बने रहते हैं। बीच के चूल्हे में वास्तविक प्रयोग होता है। अन्य चूल्हे बीच के चूल्हे को ठीक-ठीक अवस्था में रखने के लिए आवश्यक होते हैं। तीन चूल्हों से भी काम चल जाता है। प्रयोगवाला चूल्हा बीच में रहता है और दो चूल्हे दो तरफ पार्श्व में रहते हैं।

कोक का परीक्षण—कोयले के वाष्पशील अंश के निर्धारण में मूषा में कोक का जो बटन रह जाता है उससे भी कोक बनने के गुण का पता लग सकता है। यदि कोयला कोक बननेवाला नहीं है तो कोई बटन नहीं बनता। यदि कोयला दुर्बल कोक बननेवाला है तो मूषा में केवल सूक्ष्म चूर्ण रह जाता है। यदि कोयला अच्छा कोक बननेवाला है तब मूषा में केवल एक पिंड रह जाता है।

कोयले से कितना कोक बनता है इसका ज्ञान बड़े पैमाने पर अथवा लघु अनुमाप रीति से भी हो सकता है। ऐसे प ीक्षण इस्पात के भभके में किये जाते हैं। ऐसे

भभके २६ इंच ऊँचे होते हैं। कुछ का व्यास १८ इंच का और कुछ का १३ इंच का होता है। १८ इंच व्यासवाला भभका निम्न ताप पर या मध्यम ताप पर ९००° से० से १०००° से० पर प्रयुक्त होता है। इन्हें बिजली से गरम करते हैं। वाष्पशील उत्पादों को संघनित्र, अलकतरा-अवक्षेपक और मार्जक में संग्रह करते हैं। भभके को ८००°, ९००° और १०००° से० पर गरम कर सकते हैं।

कोक का बनना निम्नलिखित गुणों पर निर्भर करता है—

(१) **वाष्पशील अंश**—कोक बननेवाले अमेरिकी कोयले में वाष्पशील अंश १६ से ४१ प्रतिशत या इससे अधिक रहता है। कोक की मात्रा वाष्पशील अंश पर निर्भर करती है। जितना ही अधिक वाष्पशील अंश होगा उतना ही कम कोक बनेगा। धातु-निर्माण के कोक में वाष्पशील अंश की मात्रा २३ से ३२ प्रतिशत रहती है। गैस-निर्माण के कोक में वाष्पशील अंश का अधिक रहना अच्छा होता है क्योंकि ऐसे कोक से अधिक गैसें बनती हैं।

चित्र ३७—कोक निर्माण का चूल्हा (बड़े पैमाने का)

कोयले में वाष्पशील अंश के अधिक रहने से यह समझना ठीक नहीं है कि ऐसा कोयला गैस बनने के उपयुक्त ही है। जिस कोयले में आक्सीजन अधिक रहता, ८ से ११ प्रतिशत, और वाष्पशील अंश, ३२ से ४२ प्रतिशत, रहता है वह कोयला गैस के लिए अच्छा समझा जाता है। पर कार्बन डाइ-आक्साइड और कार्बन मनॉक्साइड के अधिक रहने और मिथेन के कम रहने से ऐसी गैस का तापन-मान कम होता है। अधिक आक्सीजन वाले कोयले में जल की मात्रा भी अधिक रहती है।

सुनम्यता और फुलाव—यदि कोकवाले कोयले को वायु की अनुपस्थिति में गरम करें तो एक ऐसा ताप आता है जब कोयला कोमल होना शुरू होता है, अधिकांश कोयले में यह ताप ४००° से० के निकट में होता है। जैसे-जैसे ताप ऊपर उठता है कोयला द्रवित हो सुनम्य पिंड बनता है और उससे गैस और संघनीय वाष्प निकलते हैं। यदि गरम करना और गैस का निकलना जारी रहे तो धीरे-धीरे द्रवित कोयला फिर ठोस बनकर या जमकर छोटे-छोटे छेदवाला कोक बनता है। ऐसा ही कोक बाजारों में बिकता है। कोयले की सुनम्यता साधारणतया ५००° से० के लगभग ताप पर नष्ट हो जाती है। सुनम्य दशा में कोयला फैल सकता है, सिकुड़ सकता है अथवा ज्यों का त्यों रह सकता है। यदि कोयला फैलता है तो यह फैलना तापन-तल की दिशा में होता है, पर भभके अथवा चूल्हे में फैलना बहुत कुछ स्थायी दीवारों के कारण बँधा होता है। फैलता हुआ कोयला भभके या चूल्हे की दीवारों पर दबाव डालता है।

विभिन्न कोयलों का फैलाव एक-सा नहीं होता। सुनम्यता में भी अन्तर देखा जाता है। कोक बननेवाले कोयले में फैलाव बिलकुल नहीं होता अथवा बहुत अल्प होता है। जिस कोयले में वाष्पशील अंश अधिक रहता है उससे बना सुनम्य पिंड अपेक्षया अधिक तरल होता है और उससे गैसें शीघ्रता से निकलती हैं। ऐसा कोयला फैलता नहीं है, वह सिकुड़ता है। कम वाष्पशील अंशवाले कोयले से जो सुनम्य पिंड बनता है वह अधिक श्यान (viscouss) होता है इसमें गैसें सरलता से प्रविष्ट नहीं कर सकतीं। वे फैलती हैं और फैल कर कोयले को फुला सकती हैं। सुनम्यता और फैलाव बहुत कुछ गरम करने की स्थिति पर निर्भर करता है। जब कोयले के एक टुकड़े को मूषा में गरम करते हैं तब कोयले का आयतन कई गुना बढ़ सकता है पर यही कोयला जब भभके में गरम किया जाता है तब भभके की दीवार और आस-पास के कोयले और कोक से बँधे होने के कारण अपेक्षया बहुत कम फैलता है।

ऐसा सुझाव रखा गया है कि सुनम्य दशा में कोयले के व्यवहार से कैसा कोक बनेगा इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसके लिए कोयले की सुनम्यता, कोयले के फैलाव, भभके या चूल्हे की दीवार पर दबाव, प्रसमूहन (agglutinating) और संपुजन (agglomnerating) के नाप की आवश्यकता पड़ सकती है। इनके नापने की रीतियाँ प्रयोग सिद्ध (empirical) हैं। अतः इन गुणों का नापना प्रामाणिक अवस्था में ही होना चाहिये ताकि उनके परिणाम तुलनात्मक हो सकें।

सुघटचता—सुघटचता नापने की रीतियाँ अनेक हैं।

(१) **बेधनमापी रीति**—इस रीति में कोयले को गरम करते हैं। ऐसे कोयले में एक सुई अथवा तार-पाशी (wire-loop) द्वारा बेधन से सुघटचता नापते हैं। यहाँ सुई कोयले में प्रविष्ट करती है, कितना अंश सुई का प्रविष्ट करता है यह कोयले की सुघटचता की माप है। गीज़लर (Giesler) बेधनमापी में एक सुई रहती है।

विरूपण परीक्षण में एक विलोडक रहता है। सामान्य कोयले में वह अचल रहता है। गरम करने पर जब कोयला कोमल हो जाता तब विलोडक धीरे-धीरे घूमता है। जैसे-जैसे कोयले की कोमलता अथवा तरलता बढ़ती है, विलोडक अधिकाधिक द्रुत गति से घूमता है। घूमने की गति को ताप के विरुद्ध वक्र बनाकर तरलता की माप करते हैं।

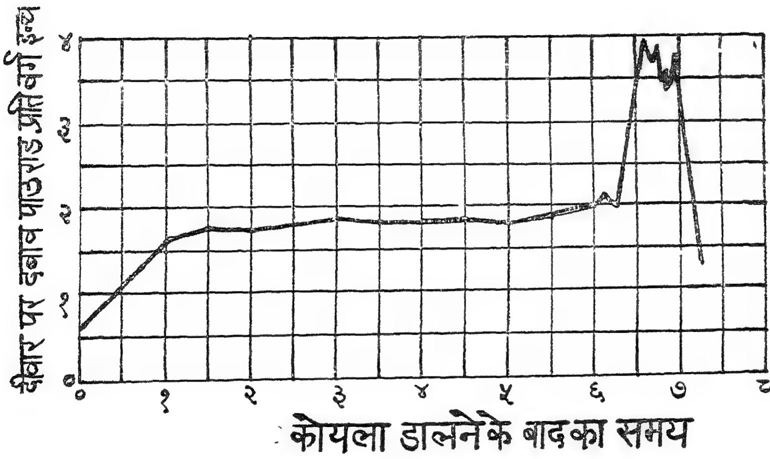
इसी सिद्धान्त पर जो उपकरण बने हैं उन्हें प्लास्टोमीटर कहते हैं। ऐसे एक प्लास्टोमीटर को 'डेविस प्लास्टोमीटर', दूसरे को 'गीज़लर-टाइप प्लास्टोमीटर', तीसरे को 'अगडे-डाम डालयलेटोमीटर' कहते हैं। इस परीक्षण से यह ठीक-ठीक पता नहीं लगता कि कोई कोयला कोक वाला है या नहीं।

कोयले का फुलाव—कोयले के गरम करने से उसका आयतन बढ़ जाता है। इसे कोयले का 'फुलना' या 'फुलाव' कहते हैं। चूल्हे में कोयले के फूलने की माप सरल नहीं है। अतः फूलने की माप सीधी रीति से नहीं की जा सकती पर कोयले के फूलने से चूल्हे की दीवार पर दबाव पड़ता है। इस दबाव को हम सरलता से माप सकते हैं। पर फूलने वाले सब ही कोयले से दबाव नहीं बढ़ता। कभी-कभी बहुत अल्प फूलनेवाले कोयले से दबाव अधिक बढ़ जाता है यद्यपि कोक बननेवाले कोयले और फुलाव से कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है पर कोयले के फुलाव का ज्ञान बहुत आवश्यक है क्योंकि बहुत अधिक फूलनेवाले कोयले को चूल्हे में रखने से दबाव के बढ़ जाने से चूल्हे के फट जाने की सम्भावना बढ़ सकती है। गरम करने से दबाव में कैसा परिवर्तन होता है उसका ज्ञान इस वक्र से हो जाता है।

ऐसा देखा जाता है कि जिस कोयले में वाष्पशील अंश बहुत अल्प होता है वह सबसे अधिक फैलता है और जिस कोयले में वाष्पशील अंश बहुत अधिक हो वह सबसे कम फैलता है।

कोयले में राख की मात्रा का भी कोयले के आयतन के प्रसार में प्रभाव पड़ता है। जिस कोयले में राख कम होती है वह कोयला कम फैलता है। कोयले के आयतन पर तप्त करने की गति और समय का भी प्रभाव पड़ता है।

कोकवाले कोयले में जल की मात्रा साधारणतया ३ और ६ प्रतिशत के बीच रहती है। पर वर्षा अथवा बर्फ के कारण जल की मात्रा अधिक भी रह सकती है। कोयले में अधिक जल के रहने से अधिक ऊष्मा का खर्च होता है। जल के एक पाउण्ड के निकालने में १००० ब्रिटिश ऊष्मा-मापक खर्च होता है। इससे कोक बनाने में समय भी अधिक लगता है। अधिक जल से चूल्हे की ईंटें भी जल्द क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। अधिक जल के कारण कोक की प्रकृति में अन्तर हो सकता है। ऐसा कोक जल्दी टूट सकता है।



चित्र ३८—कार्बनीकरण ताप और दीवार पर दबाव

कोयले के खनिज पदार्थ कोक में रह जाते हैं। इससे चूल्हे की धारिता जहाँ तक कोयले का प्रश्न है कम हो जाती है। कुछ खनिज पदार्थों से कोक की उत्तमता बढ़ जाती और कुछ से कम हो जाती है।

गन्धक से धातु निर्माण के लिए कोक की उत्तमता नष्ट हो जाती है। कुछ गन्धक तो अलकतरा तेल और गैस में निकल जाता है पर कुछ कोक में रह ही जाता है। ईंधन के लिए कोक में गन्धक का रहना अच्छा नहीं है।

उत्तम कोक बननेवाले कोयले में विभिन्न अवयवों की मात्रा इस प्रकार की रहनी चाहिये—

(१) जल की मात्रा ४ प्रतिशत से अधिक न हो।

(२) राख की मात्रा सूखे कोयले के भार पर ९ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए।

(३) राख का द्रवणांक १२०५° से० से नीचे न रहना चाहिए ।

(४) धातु-निर्माण के सूखे कोक में गन्धक की मात्रा १ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए। भट्ठी में प्रयुक्त होने वाले सूखे कोक में गन्धक की मात्रा १·३ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए और गैस निर्माण के कोक में गन्धक की मात्रा १·५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए ।

(५) गैस-निर्माण के लिए कोयले में वाष्पशील अंश, जल और राख मुक्त कोयले के आधार पर ३५ प्रतिशत से कम नहीं रहना चाहिए ।

तेईसवाँ अध्याय

कोयले का कार्बनीकरण

कच्चे कोयले का उपयोग राष्ट्रीय हानि है। इससे अनेक उपयोगी और बहुमूल्य उत्पाद नष्ट हो जाते हैं। राष्ट्र-हित की दृष्टि से कच्चे कोयले का उपयोग न होना ही अच्छा है। पर कोक का निर्माण आज इतना नहीं हो रहा है कि वह कच्चे कोयले का स्थान पूर्णतया ले सके। कोक का निर्माण जैसे-जैसे बढ़ेगा कच्चे कोयले का उपयोग उसी अनुपात में कम होता जायगा। ज्योंही कोक का निर्माण पर्याप्त मात्रा में होने लगे, कच्चे कोयले का उपयोग कानूनन बन्द कर देना चाहिए।

विशेषज्ञों का मत है कि भारत का कोयला १०० वर्ष तक चल सकता है। सम्भव है कि भविष्य में और खानें निकल आवें जिससे भारत के कोयले का जीवन-काल और बढ़ जाय। जब तक कोयले के स्थान में प्रयुक्त होनेवाले अन्य किसी सुविधाजनक पदार्थ का आविष्कार नहीं होता तब तक कोयले का उपयोग बड़ी मितव्ययिता के साथ करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक काल तक हम उसे काम में ला सकें।

कच्चा कोयला घरेलू ईंधन के लिए ठीक नहीं है। यह देर से आग पकड़ता है। इसके जलने में धुआँ अधिक बनता है जिससे वायु दूषित हो जाती है। जलावन के लिए आज कोक प्रयुक्त होता है। इसके लिए कोक कोमल होना चाहिये। कठोर कोक जलावन के लिए ठीक नहीं है। वह जल्द आग नहीं पकड़ता।

कोयले को जब वायुशून्य पात्र में गरम करते हैं तब उसे कोयले का 'कार्बनीकरण' कहते हैं। गरम करने का ताप इतना ऊँचा होना चाहिए कि कोयले का विच्छेदन शुरू हो जाय। कोयले के गरम करने से उसका वाष्पशील अंश गैस के रूप में निकलकर आसुत होकर द्रव और गैस प्राप्त होती है। पात्र में कोयले का अवशिष्ट-अंश 'कोक' रह जाता है।

जब गरम करने का ताप ५५०° –७००° सें० रहता है तब ऐसे कार्बनीकरण को 'निम्नताप कार्बनीकरण' कहते हैं। ९०० से १३००° सें० के बीच के कार्बनीकरण को 'उच्च ताप कार्बनीकरण' कहते हैं। इन दोनों के बीच के ताप ७०० से ९००° सें० के बीच के कार्बनीकरण को 'मध्य ताप कार्बनीकरण' कहते हैं।

निम्नताप कार्बनीकरण से उत्पाद इस प्रकार के प्राप्त होते हैं।

(१) द्रव उत्पाद की मात्रा महत्तम प्राप्त होती है। द्रव में पैराफिन हाइड्रो-कार्बन अधिक मात्रा में रहते हैं। अतः ऐसा द्रव पेट्रोल के स्थान में मोटरकार या वायुयान में व्यवहृत हो सकता है।

(२) इससे जो कोक प्राप्त होता है उसे अर्ध-कोक (Semicoke) या मृदु कोक (Softcoke) कहते हैं। उसमें वाष्पशील अंश ८ से २० प्रतिशत के लगभग रह सकता है। यह कोक जल्दी आग पकड़ लेता है। इसमें धुआँ भी कम बनता है। इंग्लैंड में ऐसे कोक को 'कोयलाइट' (Coalite) कहते हैं। जलावन के लिए यह कोक अच्छा होता है। पर सामान्य कोक से यह कुछ महंगा पड़ता है।

(३) इससे जो गैस प्राप्त होती है उसका आयतन प्रति टन कोयले से २००० से ७००० घनफुट होता है। इसका कलरी-मान प्रतिघन फुट ७०० से १००० ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक होता है। यह बहुत कुछ कोयले की प्रकृति, कार्बनीकरण के ताप और संयन्त्र पर निर्भर करता है। गैस में भी पैराफिन हाइड्रोकार्बन अधिक रहते हैं।

(४) अलकतरे की मात्रा कम, प्रति टन कोयले में १० से १८ गैलन, प्राप्त होती है। यह अलकतरा सड़कों के बनाने के लिए अच्छा नहीं होता।

मध्यताप कार्बनीकरण से जो कोक प्राप्त होता है वह सरन्ध्र होता है और उसमें कुछ वाष्पशील अंश विद्यमान रहता है। यह कोक जल्दी से आग पकड़ लेता है। घरेलू ईंधन के लिए यही कोक उपयुक्त होता है। यह कोक सस्ता भी होता है। इससे जो गैस और द्रव प्राप्त होते हैं वे वैसे ही होते हैं जैसे उच्च ताप कार्बनीकरण से प्राप्त होते हैं।

उच्च ताप कार्बनीकरण

उच्च ताप कार्बनीकरण का प्रधान उद्देश्य कोक प्राप्त करना होता है। कोयले का लगभग ७० प्रतिशत अंश कोक के रूप में प्राप्त होता है। ऐसा कोक लोहे और इस्पात के निर्माण में ईंधन के लिए ठीक होता है। ताँबा, सीसा, जस्ता, चाँदी आदि धातुओं के निर्माण के लिए भी यह अच्छा होता है। ऐसे कोक को 'कठोर कोक' कहते हैं। घरेलू जलावन के लिए यह कोक ठीक नहीं होता। यह जल्दी आग नहीं पकड़ता। गैसों के निर्माण के लिए यह कोक अच्छा होता है।

ऐसा कोक बनाने का संयन्त्र पहले-पहल १९०९ ई० में भारत में बैठाया गया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए गिरीडीह में मेसर्स साइमन कार्वेज लिमिटेड (Messrs. Simon Carves Ltd.) ने इस संयन्त्र को बैठाया था। उस समय

उसमें ५० चूल्हे जलते थे जिसमें प्रतिदिन ३०० टन कोक बनता था। इसके बाद लोधना, लोयाबाद, जमशेदपुर, बरारी, भंवरा, कुल्टी, हीरापुर में और संयन्त्र बैठाये गये। टाटा आयर्न और स्टील कम्पनी ने जमशेदपुर में जो संयन्त्र बैठाया वह भारत के सब संयन्त्रों से बड़ा है। वहाँ प्रतिदिन ५,४०० टन कोयले का कोक बनता है। साल में प्रायः २० लाख टन कोयला इस्तेमाल होता है। सारे भारत में इस समय लगभग ३७ ·५ लाख टन कठोर कोक बनता है। सिन्दरी के उर्वरक कारखाने में भी कोक निर्माण का एक संयन्त्र लगा हुआ है जो कारखाने के उपयोग के लिए कोक तैयार करता है।

यहाँ कार्बनीकरण ८०० से १३००° से० के बीच ताप पर होता है। १३००° से० ताप के लिए भट्ठे की दीवार अग्नि मिट्टी अथवा अर्ध-सिलिका की बनी होती है। कोक बनने में कम से कम १८ घंटे का समय लगता है। पुराने कारखानों में इसका दुगुना तक समय लग सकता है। चूल्हे की चौड़ाई और कार्बनीकरण के ताप का कोक की प्रकृति और गैस और अन्य उत्पादों की उपलब्धि पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। झरिया के कोकवती कोयले से उत्कृष्ट कोटि का कठोर कोक प्राप्त होता है। ऐसे कोक में राख की मात्रा ऊँची, कम से कम १५ प्रतिशत, होती है। साधारणतया कोक में राख की मात्रा २२ प्रतिशत तक रह सकती है। लोहे के निर्माण में अधिक राख वाला कोक अच्छा होता है क्योंकि भारत का लौह-खनिज इतना शुद्ध होता है कि यदि अधिक राखवाला कोक न इस्तेमाल हो तो धातुमल (slag) के लिए बाहर से चूना-पत्थर डालने की आवश्यकता पड़ सकती है। भारत के कोक में गन्धक और फ़ास्फ़रस की मात्रा कम (० ·५ प्रतिशत से कम) रहती है। लौह-निर्माण के लिए यह बहुत अच्छा है।

भारत में कोक-निर्माण के जितने संयन्त्र लगे हैं उनमें या तो कठोर कोक अथवा ईंधन-कोक बनता है। ऐसे संयन्त्रों के उप-उत्पाद अलकतरे, अमोनिया और गैस होते हैं। ये सब ही बड़े काम के पदार्थ हैं।

कुछ रसायनज्ञों का मत है कि भारत के लिए निम्नताप कार्बनीकरण अच्छा है। इससे जो तेल प्राप्त होगा उसका पेट्रोल के स्थान में कुछ सीमा तक उपयोग हो सकता है। भारत में पेट्रोलियम की कमी है और कुछ सीमा तक उसकी पूर्ति इससे हो सकती है।

पाश्चात्य देशों में निम्नताप कार्बनीकरण के अनेक संयन्त्र बने हैं और कुछ देशों में वे कार्य कर रहे हैं। भारत के लिए भी एक संयन्त्र का सुझाव दिया गया है और एक ऐसा संयन्त्र छोटे पैमाने पर काम कर रहा है। प्रस्तुत लेखक ने भी एक ऐसा छोटा

सा संयन्त्र डालमिया नगर में बैठाया था जो दो वर्षों तक बड़ा सन्तोषप्रद काम देता रहा।

इण्डियन केमिकल सोसायटी के जर्नल (१९४० के) में ऐसे अनेक संयन्त्रों का वर्णन है जो निम्नताप कार्बनीकरण में प्रयुक्त हो सकते हैं। निम्नताप कार्बनीकरण से अलकतरा अधिक (प्रति टन १५–१८ गैलन) और गैस कम (३ से ४ हजार घनफुट) प्राप्त होती है पर गैस का कलरी-मान ऊँचा होता है। अलकतरे और गैस दोनों की प्रकृति मध्य और ऊंच-ताप कार्बनीकरण से प्राप्त पदार्थों से भिन्न होती है। ऐसे अलकतरे और गैस की उपयोगिता कम नहीं है। इससे प्राप्त मृदु कोक घरेलू जलावन में इस्तेमाल हो सकता है। इसका कठोर कोक भी बन सकता है और धातु-निर्माण के लिए वह अच्छा होता है।

फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में निम्नताप कार्बनीकरण के संयन्त्र लगे हैं। जर्मनी में एक समय १९३८ ई० में १५ ऐसे संयन्त्र काम करते थे।

निम्नताप कार्बनीकरण में कोयला अन्दर से अथवा बाहर से दोनों प्रकार से गरम किया जा सकता है। अभ्यन्तर तापन में ईंधन कम खर्च होता है। गैसें हल्की होती हैं और उत्पादक का अंशतः आक्सीकरण होता है। अग्नि मिट्टी के बने भभके में यह सम्पादित होता है। ताप के ऊँचा न होने से भभके का जीवन बढ़ जाता है। यहाँ कोयले के सम्पर्क में तापन-गैसें आती हैं। इससे कार्बनीकरण शीघ्रता से होता है, यहाँ उत्पाद एक सा बनता है।

वाह्य तापन में भी कुछ लाभ है। यहाँ वाष्पशील अंश अधिक रहता है। कोयला अधिक सघन होता है। गैस गाढ़ी रहती है। मेरे विचार में भारत में निम्न-ताप कार्बनीकरण का कुछ संयन्त्र बैठाना चाहिये।

अभी घोषणा हुई है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारत में अनेक कारखाने निम्नताप पर कार्बनीकरण के खुलने वाले हैं। इन कारखानों से प्रारम्भ में २,००,००० टन अर्ध-कोक प्रतिवर्ष निकलेगा, जो घरेलू ईंधन के लिए प्रयुक्त होगा। इससे लकड़ी और उपलों का प्रयोग कम हो जायगा। जंगलों का विनाश रुक जायगा जिससे मिट्टी का उससे संरक्षण हो सकेगा। गोबर खाद के लिए बच जायगा।

ऐसे कारखाने का पहला संयन्त्र दक्खन के हैदराबाद में बैठाया जा रहा है। इसमें प्रतिदिन ८० टन अर्ध-कोक तैयार होगा। इसमें निकृष्ट कोटि का, लिग-नाइट और अन्य, कोयला प्रयुक्त होगा, ऐसा कोयला जो साधारणतया प्रयुक्त नहीं होता और जिससे आवश्यक गुण का कोक नहीं बनता।

कोयले का गैसीकरण

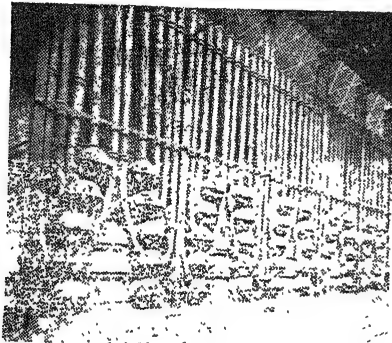
कोयले के कार्बनीकरण से जो गैस प्राप्त होती है उसे कोयला-गैस कहते हैं। कोयला-गैस ज्वलनशील होती है। इसका उल्लेख पहले-पहल उस पत्र में मिलता है जिस पत्र को डा० जौनक्लेटन ने राबर्ट बायल के पास सन् १६९१ में लिखा था। यह पत्र सन् १७८१ के रायल सोसायटी के ट्रैंजैक्शन में छपा है। सन् १७८३ ई० में मिन्कलर्स ने बैलून में इस्तेमाल के लिए कोयला-गैस तैयार की और अपने कमरे को प्रकाशित करने के लिए उसका उपयोग किया। सन् १७९२ ई० में विलियम मुर्डोक (Murdoch) ने अपने घर और आफिस में रोशनी के लिए कोयला-गैस का व्यवहार किया। सन् १७९८ में एक कारखाने में, सन् १९०५ में दूसरे कारखाने में कोयला गैस से रोशनी की गयी। सन् १८१२ में एक कम्पनी को लण्डन में रोशनी के लिए कोयला-गैस के निर्माण की अनुमति प्रदान की गयी और तब से कोयला-गैस का उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ता गया और आज तो संसार के सैकड़ों नगरों की रोशनी कोयला-गैस से हो रही है। कोयला-गैस का स्थान अब बिजली ले रही है। सस्ती बिजली के प्राप्त होने से बिजली का उपभोग बहुत बढ़ेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। जल-प्रपात द्वारा बिजली के उत्पादन से बिजली अवश्य ही और सस्ती मिलेगी।

पहले कोयले का कार्बनीकरण निम्नताप पर होता था। इस ताप पर गैस कम बनती है पर ऐसी गैस की प्रदीप्ति उत्पन्न करने की क्षमता बड़ी ऊँची होती है क्योंकि ऐसी गैस में भारी हाइड्रोकार्बन की मात्रा अधिक रहती है। इस गैस की प्रदीप्ति-क्षमता और भी बढ़ जाती है यदि उसमें कुछ कैनेल कोयला (Canel coal) मिला दिया जाय। ऊँच ताप पर कोयले के गरम करने से अधिक गैस प्राप्त होती है पर उससे धातु के भभकों का जीवन कम हो जाता है। इससे अब नये-नये भभकों की खोज होने लगी और उसके फलस्वरूप अग्नि-मिट्टी के भभकों का आविष्कार हुआ। अब तो भभके ऐसे ऊष्म-सह (refractory) पदार्थों से बने हैं जो १४००° सें० तक गरम किये जा सकते हैं।

प्रकाश उत्पन्न करने के स्थान में आज ऊष्मा उत्पन्न करने के लिए गैसों का व्यवहार अधिक होता है। गैसों का मूल्य इस कारण कलरी-मान से आँका जाने लगा है। गैस बनाने के जो पात्र आज प्रयुक्त होते हैं वे या तो भभके होते हैं अथवा कक्ष अथवा चूल्हे।

भभके क्षैतिज होते हैं अथवा ऊर्ध्वाधार। क्षैतिज भभके सिलिका के अथवा सिलिकामय अग्नि-मिट्टी के बनते हैं। ये साधारणतया २० फुट लम्बे और २३.८

१६ इंच छेद के और ⌓ आकार के होते हैं। भभके धातु के, ढालवें लोहे के, बनते हैं और द्वार ढक्कन से बन्द किये जा सकते हैं। इसमें एक नली लगी रहती है जिससे वाष्पशील अंश बाहर निकलता है। एक पंक्ति में दो-दो भभके रखकर पाँच श्रेणियों में दस भभके रहते हैं। ऐसी दस-दस श्रेणियों की अनेक पंक्तियां रह सकती हैं। भभके को उत्पादक गैस से गरम करते हैं। कोक से उत्पादक गैस बनाते हैं। पहले से गरम की हुई वायु के साथ मिलकर उत्पादक गैस कक्ष में जलती है। भभके की श्रेणियों में जाकर भभके को गरम करती है। दहन कक्ष का ताप १३५०° से० तक पहुँच जाता है। कक्ष से निकली तप्त गैसों से वायु को गरम कर उसका ताप ७००° से० तक पहुँचा देते हैं। वहाँ से फिर तप्त गैस बायलर में जाकर भाप उत्पन्न करती है। वहाँ से प्रायः २३०° से० पर गैस निकलती है। भभके में एक बार में १२–१३ हंडरवेट कोयला भरा जाता है। द्वार को खोलकर कोयला डालकर उसे तुरन्त बन्द कर दिया जाता है। कोयलेके कार्बनीकरण में प्रायः १२ घंटों का समय लगता है। वाष्पशील पदार्थ नली से निकल जाता है। गैस के ठंढे होने पर अलकतरा पृथक् हो जाता है। गैस को सक्रिय कार्बन पर प्रवाहित करने से बेंजोल निकल जाता है। जब कार्बनीकरण पूर्ण हो जाता है, नली को बन्द कर द्वार को खोलकर उष्ण कोक को निकाल कर पानी से बुझाते हैं। भभकों और नलियों का प्रबन्ध कैसे रहता है, यह चित्र से स्पष्ट होता है।



चित्र ३९—क्षैतिज भभके की श्रेणियाँ

सविराम ऊर्ध्वाधार कक्ष—इसे कभी-कभी कक्ष-चूल्हा भी कहते हैं। यह आयताकार होता है। एक बार में दो से पाँच टन कोयले का कार्बनीकरण हो सकता है। यह शुण्डाकार होता है। यदि २१ फुट ऊँचा रहे और शिखर ९ फुट ७½ इंच ×८ इंच और पेंदा १० फुट×१२½ इंच रहे तो इसमें ३¾ टन कोयला अँट सकता है और प्रतिदिन ५½ से ८¼ टन कोयले का कार्बनीकरण हो सकता है। कक्ष सिलिका का बना होता है। उत्पादक गैस से गरम होता है। वायु को पूर्व में गरम कर लेते हैं। यह काम क्षैतिज चिमनी-नली में होता है। यह कक्ष के पार्श्व में रहता है। चिमनी-नली का ताप ९००°–९५०° से० शिखर पर और १३००–१५००° से०

पेंदे में होता है। कक्ष के पेंदे में कब्जे द्वारा द्वारी लगी रहती है। इसी से कोक निकाला जाता है। कोयला डालने के लिए शिखर पर प्रवेश-मार्ग होता है, गैस के निकलने के लिए पेंदे और शिखर दोनों ओर निकास-मार्ग होते हैं। कक्ष श्रेणियों में बने होते हैं। एक साथ सात-सात कक्ष रह सकते हैं। प्रत्येक कक्ष उत्पाद गैस से तप्त होता और पुनराप्त्र (recuperator) द्वारा वायु तप्त होती है।

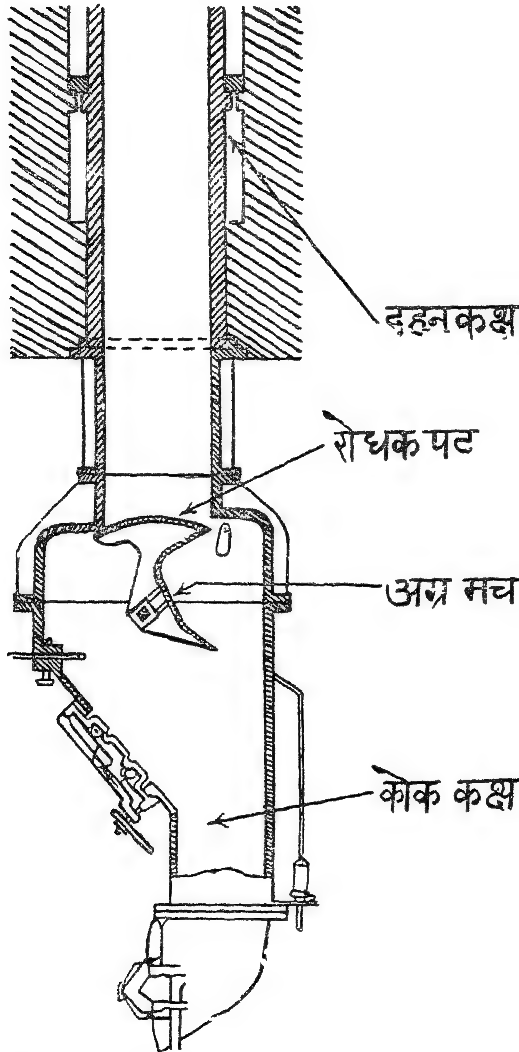
लगभग १२ घण्टे में कोयले का कार्बनीकरण पूर्ण हो जाता है। पहले दो से तीन घंटे में कक्ष के पेंदे में भाप ले जाते हैं। तप्त कोयले पर भाप से जल-गैस बनती है जो गैस के तापन-मान को बढ़ा देती है। गैस के नियंत्रण से गैस के कलरी-मान का नियंत्रण होता है। जब कार्बनीकरण पूरा हो जाता है तब कोक को चक्री (Car) में निकाल कर पानी से बुझाते हैं। ऐसे एक बूडौल-डक्हम इंटरमिटेण्ट वर्टिकल चैम्बर का चित्र यहाँ दिया हुआ है।

अविराम ऊर्ध्वाधार भभका—यह भभका ऊँची कोटि के सिलिका का बना होता है तथा यह आयताकार अथवा अण्डाकार होता है। पेंदे की ओर चौड़ा होता जाता है। गैस-निर्माण के जितने कारखाने हैं उनके प्रायः ५० प्रतिशत से अधिक कारखानों में इसी किस्म का भभका प्रयुक्त होता है। इस भभके में कई लाभ हैं। इसमें धूल और धुआं नहीं बनता। यह अधिक साफ-सुथरा रहता है। इससे विभिन्न कलरी-मान की गैसें प्राप्त होती हैं। गैसें भी अधिक प्राप्त होती हैं। यदि भभका १० इंच चौड़ा और शिखर पर प्रधान अक्ष १०३ इंच हो तो ऐसे भभके में प्रतिदिन १२ टन तक कोयले का गैसीकरण हो सकता है। शिखर से कोयला ऐसी गति से गिरता रहता है कि पेंदे तक पहुँचते-पहुँचते कार्बनीकरण पूर्ण रूप से हो जाता है। भभके के पेंदे के एक दूसरे कक्ष—शीत कक्ष—होकर कोक निकलता है। शीतक कक्ष में भाप से कोक ठंडा किया जाता है। तप्त कोक और भाप के संसर्ग से जल-गैस बनती है। यह गैस वाष्पशील पदार्थों और कोयला गैसों से मिलकर भभके के शिखर से निकल जाती है। समय-समय पर शीतक-कक्ष से कोक निकाल लिया जाता है। जिस गति से



चित्र ४०—बडौल-डक्हम इंटरमिटेण्ट वर्टिकल चैम्बर

कोक निकलता है उसी गति से ऊपर से कोयला डाला जाता है। कोयला अधोवाप (hoppers) द्वारा भभके में गिरता है।



चित्र ४१—द्वैत्रिज्य विसर्जक (Sector Dischrager)

ग्लोवर-वेस्ट वर्टिकल रिटार्ट (Glover-west vertical Retort) में आजकल एक युक्ति द्वैत्रिज्य विसर्जक (Sector Discharger), लगी रहती है जिससे कोक अविराम गति से न निकल कर ३० से ६० मिनट के अन्तर पर स्वतः निकलता रहता है।

भभका उत्पाद गैस के जलने से गरम होता है। चिमनी क्षैतिज या ऊर्ध्वाधार होती है। चिमनी-गैस का ताप १३५०° से० तक चढ़ सकता है। ऊँच ताप पेंदे में होता है अथवा शिखर पर। ऐसे भभके के ऊर्ध्वाधार अंश का चित्र यहाँ दिया हुआ है। द्वैत्रिज्य विसर्जक (Sector Discharger) कैसे कार्य करता है, उसका चित्र से बहुत कुछ पता लगता है।

अचल ऊर्ध्वाधार भभका—सविराम और अविराम किस्मों के बीच अचल ऊर्ध्वाधार भभका होता है। इसमें दोनों किस्मों के

बीच एक अचल ऊर्ध्वाधार भभका होता है। इसमें दोनों किस्मों के भभकों के लाभों का समावेश है। ऐसे भभके आज अनेक कम्पनियाँ बना रही हैं। भभके सिलिका के आयताकार होते हैं। ये बाहर से तप्त किये जाते हैं। भभके के पेंदे में ईंट का अस्तर और धातु का शीतक कक्ष रहता है।

ऊपर से कोयला डालकर १२ घंटे तक भभके में रखकर शीतक कक्ष में गिरा देते हैं। तप्त कोक शीतक कक्ष में रहता है । भभके में ऊपर से ताजा कोयला डालकर कार्बनीकरण को चालू रखते हैं। शीतक कक्ष में कोक को भाप से ठंढा करते हैं। तप्त कोक और भाप से जल-गैस बनकर ऊपर उठकर कोयला-गैस से मिलकर बाहर निकलती है ।

भभके में एक बड़ा लाभ यह है कि कोयले के छोटे-छोटे टुकड़े अथवा मिश्रित कोयले का भी कार्बनीकरण हो सकता है ।

अनेक कम्पनियाँ हैं जो कोक बनाने का संयन्त्र तैयार करती हैं, उनकी धारिता और विस्तार में कुछ भिन्नता अवश्य रहती है ।

कोक बनाने के संयन्त्र में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है—

(१) कोक अच्छे किस्म का और एक सा बने ।

(२) कोक के निर्माण में कम से कम ईंधन लगे।

(३) संयन्त्र में वाष्पशील अंश की क्षति न्यूनतम हो।

(४) संयन्त्र ऐसा हो कि आवश्यकता पड़ने पर उसकी मरम्मत सरलता से की जा सके।

(५) उसके अनेक चूल्हे ऐसे हों कि यदि एक चूल्हा निकम्मा हो जाय तो उससे अन्य चूल्हों का काम बन्द न हो।

इसके लिए आवश्यक है कि गैस-निकास नलियाँ ऊर्ध्वाधार हों । क्षैतिज निकास-नलियाँ भी बनी हैं और उनसे सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुआ है । कोयले के तप्त करने के लिए अनेक प्रकार के चूल्हे बने हैं। ऐसे चूल्हों में निम्नलिखित चूल्हे अमेरिका में प्रयुक्त होते हैं।

कौपर चूल्हा (Koppers ovens)—ऐसे चूल्हे पहले-पहल १९०७ ई० में बने थे। तब से ये अच्छा काम दे रहे हैं। अनेक लोगों ने इन चूल्हों में सुधार किये हैं । एक दूसरा चूल्हा विलपुट्टे चूल्हा (Wilputte oven) है । एक तीसरा चूल्हा ओटो चूल्हा (Otto oven), और चौथा चूल्हा सेमेट-सोलवे चूल्हा (Semet-Solvay oven) चूल्हा है। अन्तिम चूल्हे में गैस-निकास नली क्षैतिज होती है।

इन चूल्हों के बैठाने में ईंटों की आवश्यकता होती है। ये ईंटें विशेष प्रकार की बनी होती हैं। सामान्य ईंटों का व्यवहार इन चूल्हों में नहीं हो सकता क्योंकि चूल्हे का ताप ऊँचे से ऊँचा होना चाहिए। ये ईंटें अग्नि-मिट्टी की बनी होती हैं। सिलिका की ईंटें भी इस्तेमाल होती हैं। सिलिका ईंटों में ९६ प्रतिशत सिलिका, २ प्रतिशत चूना और २ प्रतिशत अपद्रव्य रहते हैं। ३ से २ प्रतिशत में एक प्रतिशत अलूमिना रहना चाहिए। ये ईंटें स्फटिक चट्टानों को चूने से मिलाकर बनती हैं। सिलिका कई रूपों में पाया जाता है। इन विभिन्न रूपों के गुणों में कुछ विभिन्नता रहती है। अग्नि-मिट्टी से सिलिका की ईंटें अच्छी होती हैं क्योंकि सिलिका-ईंटें ऊँचे ताप को अधिक सहन कर सकती हैं। सिलिका की ऊष्मा चालकता, विशेषतः ऊँचे ताप पर, ऊँची होती है। सिलिका-ईंटें बोझ भी अधिक सह सकती हैं। प्रायः १३००° से० पर सिलिका की ऊष्मा-चालकता १३·३ ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक होती है जब कि इसी ताप पर अग्नि-मिट्टी की चालकता केवल १०·१ ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक होती है। सिलिका-ईंटें प्रायः १७००° से० के ऊपर ही द्रवित होती हैं। पर सिलिका-ईंट के आयतन में परिवर्तन बहुत कुछ होता है। इस कारण सिलिका-ईंटों को बहुत धीरे-धीरे और एक-सा गरम करना चाहिए।

अग्नि-मिट्टी में अलूमिना प्रायः ४० प्रतिशत, सिलिका ५४ प्रतिशत, क्षार १ से ३ प्रतिशत, लोहे का आक्साइड ०·५ से २·० प्रतिशत, टाइटेनिया १ से २ प्रतिशत और चूना और मैगनीशिया आधा-आधा प्रतिशत रहते हैं। यद्यपि अच्छी अग्नि-मिट्टी १७००° से० से ऊपर पिघलती है पर बोझ से यह निम्नतर ताप पर भी कोमल हो जाती है।

कोक का शमन—कोक बन जाने पर कोक के बुझाने की आवश्यकता पड़ती है। यह बुझाना ईंटों की बनावट में रखे शमन-यान में होता है। बुझाने के समय भाप बनती है। यह भाप ऊपर से निकल जाती है। जल-टंकी से पानी आकर कोक पर गिरता है। साधारणतया कोक का ताप १०००° से० रहता है। प्रति टन कोक के बुझाने में जो भाप बनती है उसमें दस लाख ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक ऊष्मा नष्ट हो जाती है। इस ऊष्मा की पुनःप्राप्ति की चेष्टाएँ हुई हैं। एक ऐसे प्रयत्न में शमन-यान से कोक को एक बन्द कक्ष में ले जाते हैं। उसका द्वार बन्द कर उसमें वायु को प्रविष्ट कराकर बायलर की नली में ले जाकर फिर उसे शमन-यान में बार बार ले जाते हैं। वायु का आक्सीजन कार्बन डाइ-आक्साइड और कार्बन मनॉक्साइड में परिणत है। अपेक्षया निष्क्रिय गैस बन जाता है। ऐसी वायु को तब तक यान में ले जाते हैं जब तक उसका ताप ठंढा होकर २५०° से० नहीं पहुँच जाता। ऐसे कोक में

जल की मात्रा कम रहती है। अतः यह कोक वात-भट्ठियों के लिए अच्छा होता है। ऐसे शुष्क-शमन में प्रारम्भ में खर्च कुछ अधिक पड़ता है।

चूल्हे को पहले-पहल जलाने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। चूल्हे को बहुत धीरे-धीरे गरम करना चाहिए। कई दिनों में धीरे-धीरे गरम कर ताप १००° से० पहुँचाना चाहिए। इस समय में ईंटें सूख जाती हैं। चूल्हे का ताप प्रति दिन १० से १५° से० बढ़ाना चाहिए। इससे अधिक बढ़ाने से चूल्हे की क्षति हो सकती है।

चौबीसवाँ अध्याय

कोयला-गैस

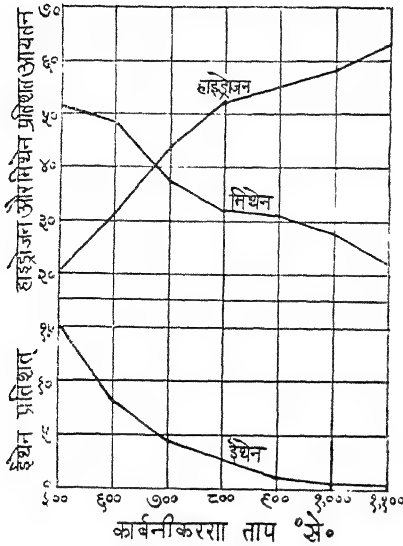
कोक के निर्माण में गैसें बनती हैं। इन्हें कोयला-गैस कहते हैं। कोयला-गैस का संघटन एक सा नहीं होता। विभिन्न कोयलों, विभिन्न तापों और विभिन्न परिस्थितियों के कारण गैस का संघटन बदलता है। पर साधारणतया कोयला-गैस में निम्नलिखित अवयव रहते हैं। उनकी आपेक्षिक मात्रा में परिवर्तन हो सकता है। किसी नमूने में कम और किसी में अधिक पर निम्नलिखित पदार्थ कोयला-गैस में अवश्य रहते हैं।

नाम	प्रतिशत मात्रा (आयतन में)
हाइड्रोजन	५७·२
मिथेन	२९·२
कार्बन मनॉक्साइड	५·८
ईथेन	१·३५
एथिलीन	२·५०
कार्बन डाइ-आक्साइड	१·५
नाइट्रोजन	१·०
प्रोपेन	०·११
प्रोपिलीन	०·२९
हाइड्रोजन सल्फाइड	०·७
ब्युटेन	०·०४
ब्युटिलीन	०·१८
एसिटिलीन	०·०५
हलका तेल	०·१५
आक्सिजन	०·००
जोड़	१००·०७

ऊँच ताप कार्बनीकरण से प्रति टन कोयले से अधिकतम गैस, १०००० से १२५०० घनफुट, और निम्न ताप कार्बनीकरण से न्यूनतम गैस, ३००० से ४०००

घनफुट प्राप्त होती है। मध्य ताप कार्बनीकरण से ६००० से १०००० घनफुट गैस प्राप्त होती है।

कार्बनीकरण के ताप से गैस के संघटन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। मिथेन, ईथेन, हाइड्रोजन, कार्बन मनॉक्साइड और कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा ताप की विभिन्नता से कैसे बदलती है इसका ज्ञान यहाँ दिये वक्रों से होता है। कोक बनाने के विभिन्न समयों, आदि, मध्य और अन्त, में जो गैसें बनती हैं उनके संघटन भी एक जैसे नहीं होते। उनके विभिन्न अवयवों की मात्रा में जो परिवर्तन होता है उसका पता भी इस वक्र से होता है। पहले जो गैस निकलती है उसमें हाइड्रोकार्बन की मात्रा अधिक और हाइड्रोजन की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। जैसे-जैसे समय बढ़ता जाता है हाइड्रोजन की मात्रा बढ़ती जाती और हाइड्रोकार्बन की मात्रा कम होती जाती है।



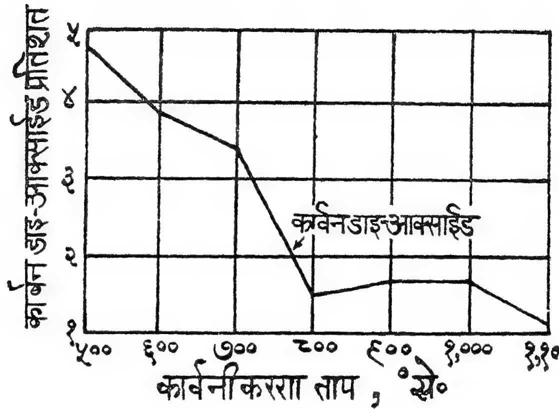
चित्र ४२—ताप की वृद्धि से मिथेन, ईथेन और हाइड्रोजन की मात्रा में परिवर्तन

कोक चूल्हे से जो गैस निकलती है उसका ताप ऊँचा होता है। उसमें पर्याप्त मात्रा में अलकतरा, भाप, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, नैफ्थलीन और गोंद बनने वाले पदार्थ और गन्धक के कार्बनिक यौगिक वाष्प के रूप में रहते हैं। इन अपद्रव्यों को गैस से निकालना बड़ा जरूरी है, विशेषतः उस दशा में जब गैस का उपयोग घरेलू ईंधन के रूप में होता है। कोयला-गैस निर्माण के प्रत्येक कारखाने में इन अपद्रव्यों को पूर्णरूप से निकालने अथवा उनकी मात्रा को इतना कम करने का, ताकि उनसे कोई क्षति न हो, प्रबन्ध रहता है और इसका रहना बड़ा आवश्यक है।

गैस को ठंडा करना और अलकतरा निकालना

प्रत्येक चूल्हे में गैस के निकास का एक नल रहता है जिससे गैस निकलकर प्रधान

नल में जाती है। किसी-किसी चूल्हे में दो किनारों पर दो नल रहते हैं जो प्रधान नल से जुटे रहते हैं। किसी-किसी कारखाने में एक प्रधान नल के स्थान में दो प्रधान नल



चित्र ४३—ताप की वृद्धि से कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा में परिवर्तन

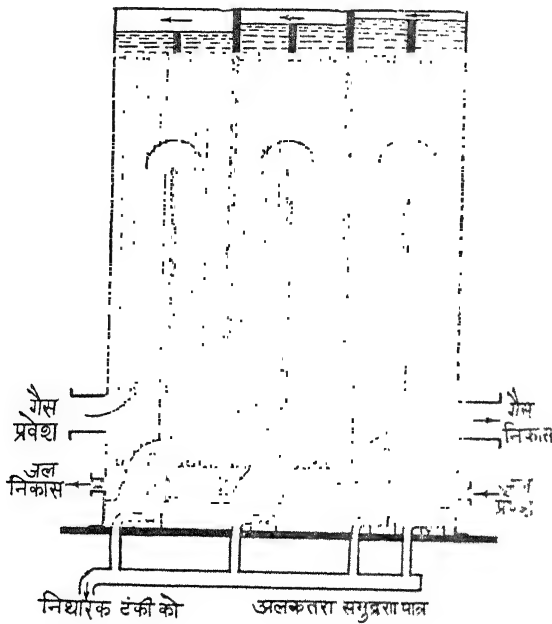
रहते हैं। दोनों नलों से समान रूप से गैसें निकलती हैं। हंस-ग्रीवा द्वारा चूल्हे का नल प्रधान-नल से जुटा रहता है।

चूल्हे से जब गैसें निकलती हैं तब उसका ताप ६००–७००° से० रहता है। हंस-ग्रीवा में उष्ण हलके अमोनिया-द्रव के फुहारे से गैस ठंढी की जाती है। द्रव के उद्वाष्पन से भी गैस का ताप गिरता है। प्रधान-नल से जब गैस निकलती है तब वह भाप से संतृप्त रहती है। उस समय उसका ताप ७५° से ९५° से० रहता है।

प्रधान-नल में ही अधिकांश अलकतरा संघनित हो जाता है। अमोनिया द्रव से गैस का अलकतरा-तुषार (fog) भी निकल जाता है। प्रधान-नल से निकल कर गैस प्राथमिक शीतक में जाती है। अलकतरा और अमोनिया द्रव संघनित हो बैठ जाते और निथारक (decanter) में निकाल लिये जाते हैं। निथारक इस्पात की एक आयताकार टंकी होती है। जिस कोक-चूल्हे में प्रति दिन १२०० टन कोयला इस्तेमाल होता है उसके लिए ३० फुट लम्बी ८ फुट चौड़ी और ९½ फुट गहरी टंकी होनी चाहिए। ऐसी टंकी की धारिता प्रायः १७,००० गैलन की होती है।

निथारक में द्रव दो स्तरों में बँट जाता है। ऊपरी स्तर अमोनिया-द्रव का होता

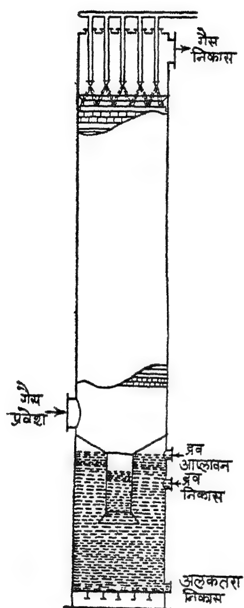
है और निचला स्तर अलकतरे का होता है। ये दोनों स्तर अलग-अलग निकाल लिये जाते हैं। निथारक के पेंदे में धीरे-धीरे पिच इकट्ठा होता है। जब निथारक भर जाता है तब अलकतरा निकाल कर पिच को बाहर कर लेते हैं। पिच को अपोद्-घर्षक (srapers) द्वारा छीलकर निकालने का भी कहीं-कहीं प्रबन्ध रहता है। निथारक के पेंदे में अपोद्घर्षक धीरे-धीरे घूमता है। उससे पिच छीलकर निकल जाता है। ऊपरी अमोनिया-द्रव वही द्रव है जो गैस में छिड़कने के लिए प्रयुक्त होता है। प्रयुक्त होने के पहले इसे छानने की ज़रूरत पड़ती है ताकि पिच के या मल के छोटे-छोटे टुकड़े उससे निकल जायँ। ऐसे छोटे टुकड़े नल के छेद को बन्द कर कठिनता उत्पन्न कर सकते हैं। इस द्रव के कुछ अंश से अमोनिया भी प्राप्त कर सकते हैं। इस द्रव की पूर्ति ताज़ा पानी या शीतक द्रव डालकर करते हैं।



चित्र ४४—प्राथमिक परोक्ष शीतक

प्रधान-नल में गैस अल्प दबाव में रहती है। यह दबाव जल के ४ से १० मि मी० के बीच रहता है। दबाव का नियंत्रण चूषक पम्प द्वारा होता है।

प्राथमिक शीतक में तप्त गैस ठंढी होकर २५ और ३५° से० के बीच आ जाती है। भाप और हलका अलकतरा यहाँ ही संघनित होता है। शीतक दो प्रकार के होते हैं, एक प्रत्यक्ष शीतक और दूसरा परोक्ष शीतक।



चित्र ४५—प्रत्यक्ष शीतक

परोक्ष शीतक में इस्पात का एक बक्स होता है जिसमें नलियाँ लगी रहती हैं। इन नलियों द्वारा गैस और जल विपरीत दिशा में बहते हैं। शीतक में अनेक कक्ष होते हैं। ऐसे एक कक्ष का चित्र यहाँ दिया हुआ है। इन कक्षों में जल और अलकतरा संघनित हो नीचे बैठ जाते और अलग-अलग मार्ग से निकाल लिये जाते हैं।

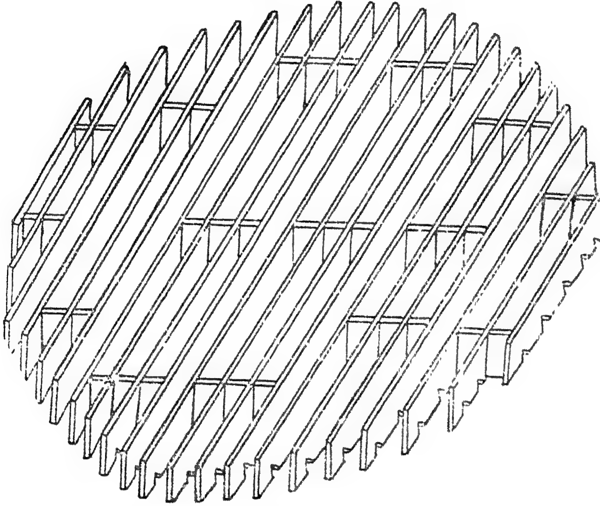
प्रत्यक्ष शीतक में गैसें द्रव के संसर्ग में आती हैं। गैसें नीचे से प्रविष्ट होतीं और द्रव फुहारे के रूप में ऊपर से गिरता है। ऊपर के निकास-मार्ग से गैस निकल जाती और अलकतरा और द्रव संघनित हो लकड़ी की जाली द्वारा नीचे गिरकर पेंदे में बैठ जाता है। निचला स्तर अलकतरे का होता है और संमुद्रित निकास-मार्ग से निकाल लिया जाता है। अमोनिया द्रव को शीतक कुण्डली में ले जाकर पानी से ठंढा करते हैं। ठंढा हो जाने पर इसी द्रव को ऊपर से गिराकर शीतक की गैस को ठंढा करते हैं। साधारणतया ऐसे शीतक में दो कक्ष रहते हैं। दोनों में ही गैस ठंढी की जाती है। इससे अमोनिया महत्तम मात्रा में प्राप्त होता है।

शीतक में लकड़ी की जाली चित्र में दिये रूप की होती है। ऐसी अनेक जालियाँ एक के ऊपर दूसरी रखी रह सकती हैं। जाली के छेद जितने छोटे हों उतना ही घनिष्ट सम्पर्क द्रव और गैस के बीच होता है पर छेद बहुत छोटा भी न रहना चाहिए, नहीं तो जाली पर ठोस निक्षेप बनकर छेद को बन्द कर सकता है और इससे गैस और द्रव का बहाव रुक सकता है। साधारणतया दो छेदों के बीच की दूरी आधा इंच रहती है। दो जालियों के बीच में एक इंच का अन्तर रहना चाहिए। प्राथमिक शीतक में लगभग २० प्रतिशत अलकतरा संघनित हो जाता है।

रेचक पम्प

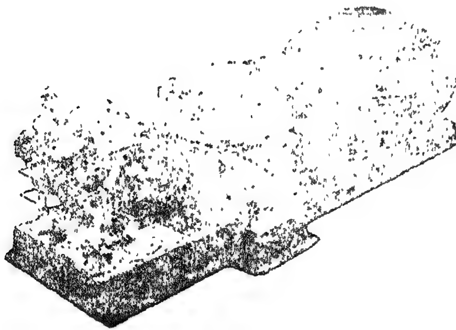
चूल्हे से गैस को प्राथमिक शीतक में लाने के लिए रेचक पम्प का उपयोग होता

है। ऐसे पम्प दो किस्म के होते हैं। एक किस्म के पम्प को कौनर्सविले एक्ज़ौस्टर और दूसरे किस्म के पम्प को सेन्ट्रिफ़्युगल एक्ज़ौस्टर कहते हैं। ये दोनों किस्म के



चित्र ४६—लकड़ी की जाली

पम्प आज उपयोग में आते हैं और अच्छे समझे जाते हैं। अलकतरा के निकालने में सेन्ट्रिफ्युगल एक्ज़ौस्टर श्रेष्ठ समझा जाता है।



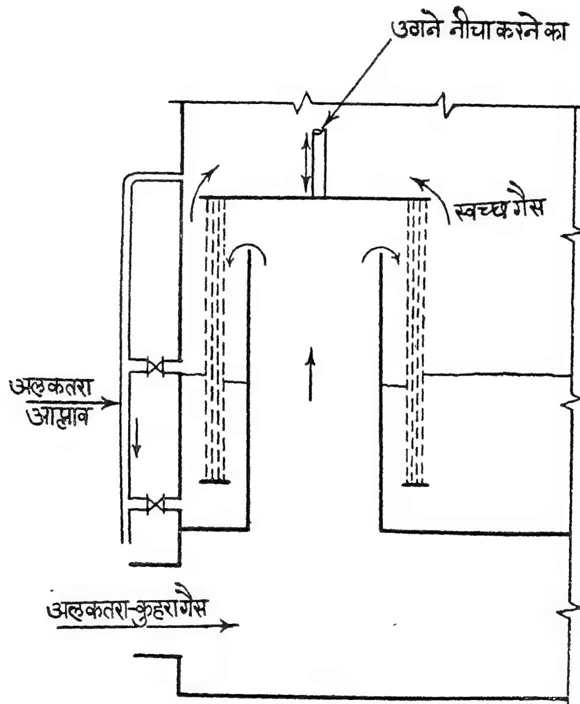
चित्र ४७—कौन्सेविले एक्जौस्टर

अलकतरा निष्कर्षक

रेचक पम्प से गैस के खींचने पर गैस में तुषार के रूप में पर्याप्त अलकतरा रह

जाता है। यह अलकतरा धीरे-धीरे बैठकर गैस के मार्ग को अवरुद्ध कर सकता है। इस कारण अलकतरे को निकाल देना आवश्यक होता है। यह काम निष्कर्षक द्वारा होता है।

निष्कर्षक दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के निष्कर्षक में गैस को एक पट्ट के सूक्ष्म विवरों (Orfices) द्वारा पारित कर पहले पट्ट के ठीक आमने-सामने रखे दूसरे पट्ट के ठोस तल पर टकराते हैं। इस टक्कर से गैस में उपस्थित अलकतरा का तुषार (fog) पर्याप्त मात्रा में पृथक् हो जाता है। पट्ट में अनेक सूक्ष्म विवर रहते हैं। ऐसे निष्कर्षक से सारा अलकतरा नहीं निकलता। अब भी १००० घनफुट गैस में ५ से ३० ग्राम अलकतरा शेष रह जाता है।

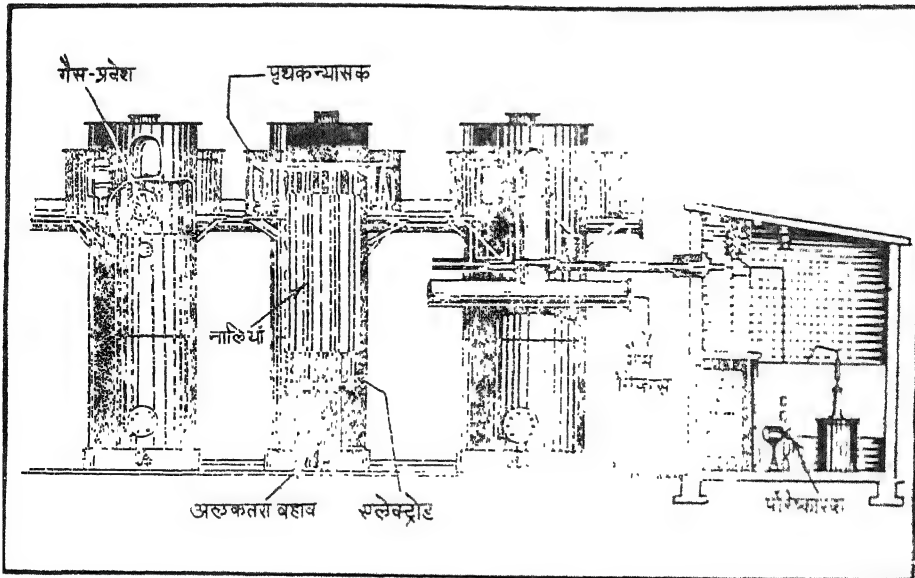


चित्र ४८—अलकतरा निष्कर्षक

एक दूसरा निष्कर्षक बिजली का अवक्षेपक है। इसे कौट्ट रेल (cottrell) का अवक्षेपक कहते हैं। यह अधिक सुदक्ष होता है। इसी निष्कर्षक का उपयोग आज

अमेरिका में हो रहा है। यहाँ दो विद्युत्-द्वारों के बीच प्रबल वैद्युत-क्षेत्र उत्पन्न किया जाता है। ऐसे क्षेत्र का विभव अन्तर बहुत ऊँचा होता है। ऐसे क्षेत्र में गैस के प्रवेश से गैस आयनीकृत हो जाती है। कणों में विद्युत्-आवेश आ जाता है। ये आविष्ट कण विद्युदग्र से प्रतिकर्षित हो घन विद्युदग्र पर अवक्षिप्त हो जाते हैं। इस क्षेत्र से बाहर निकलने पर गैस बिलकुल स्वच्छ हो जाती है।

ऐसा अवक्षेपक ऊर्ध्वाधार बेलनाकार इस्पात का कक्ष होता है जिसमें अनेक घन विद्युदग्र नल लगे रहते हैं। ऐसे नल ६ से ८ इंच व्यास के प्रायः ९ फुट लम्बे होते हैं। इन नलों के केन्द्र में ऋण विद्युदग्र तार या जंजीर के रूप में लटके रहते हैं।



चित्र ४९—अलकतरे का वैद्युत अवक्षेपक

ऐसे अवक्षेपक से गैस का ९५ से ९९ प्रतिशत अलकतरा निकल जाता है। इसमें निकली गैस के १००० घनफुट में १·६ से ३ ग्राम अलकतरा रहता है। इसके १० लाख घन फुट गैस में ५ से ८ किलोवाट प्रति घण्टा बिजली लगती है।

गैस से फिर अमोनिया निकाला जाता है। अमोनिया निकालने की रीति का वर्णन आगे होगा।

अन्तिम शीतक

निष्कर्षक में संपीडन से गैस का ताप ५ से १५° से० बढ़ जाता है। अमोनिया निकालने के लिए गैस को संतृप्तक (saturator) में ले जाया जाता है। इसके लिए गैस को ५५ से ६०° से० तक गरम करना पड़ता है। संतृप्तक में भी सलफ्युरिक अम्ल की अमोनिया पर की प्रतिक्रिया से ताप २ से ३° से० बढ़ जाता है। संतृप्तक से निकलने पर गैस भाप से प्रायः संतृप्त रहती है। इस गैस के आगे उपचार करने के पहले उसे फिर ठंढा कर लेना आवश्यक होता है।

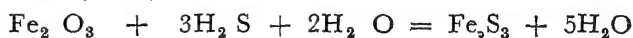
अन्तिम शीतक में अब गैस को ठंढा किया जाता है। यह शीतक एक मीनार होता है जिसमें लकड़ी का टट्टर भरा रहता है। इसमें नीचे से गैस प्रविष्ट करती और ऊपर उठती है। ऊपर से जल की धारा गिरती है। टट्टर लकड़ी की पतली पट्टियों की बनी होती है। ये पट्टियाँ चार-चार इंच की दूरी पर रहती हैं ताकि उस पर नैफ्थलीन इकट्ठा होकर मार्ग को अवरुद्ध न करे। नैफ्थलीन के साथ उष्ण जल मीनार के पेंदे में इकट्ठा होता और संमुद्रण से निथारक-हौज में निकल जाता है। अधिकांश नैफ्थलीन ऊपर तल पर इकट्ठा होता है। समय-समय पर यह छानकर निकाल लिया जाता है। इस मीनार में पानी के अतापभेदी (adiabatic) उद्वाष्पन से अथवा पानी के फुहारे से गैस ठंढी होती है। इसी शीतक में गैस का ताप २०–३०° से० हो जाना चाहिए। यह वस्तुतः पानी के ताप पर निर्भर करता है। पानी का ताप वायुमण्डल के ताप और आपेक्षिक आर्द्रता पर निर्भर करता है। गरमी के दिनों में गैस का ताप ऊँचा रहता है और जाड़े के दिनों में नीचा।

यदि गैस से हलके तेलों को भी प्राप्त करना हो तो शीतक के बाद ही मार्जक रखते हैं। इसका वर्णन आगे होगा।

यदि गैस को घरेलू ईंधन के लिए प्रयुक्त करना हो तो गैस में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड, नैफ्थलीन, गोंद बननेवाला पदार्थ और भाप नहीं रहना चाहिए।

हाइड्रोजन सल्फाइड का निष्कासन

हाइड्रोजन सल्फ़ाइड के निकालने की सबसे पुरानी रीति गैस को ऐसे बक्स में ले जाना है जिसमें लोहे के सक्रिय जलीयित आक्साइड रखा हुआ है। यहाँ हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और लोहे के बीच प्रतिक्रिया होकर हाइड्रोजन सल्फ़ाइड लोहे के सल्फ़ाइड में परिणत होकर बक्स में ही रह जाता और गैस निकल जाती है। यहाँ प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है—



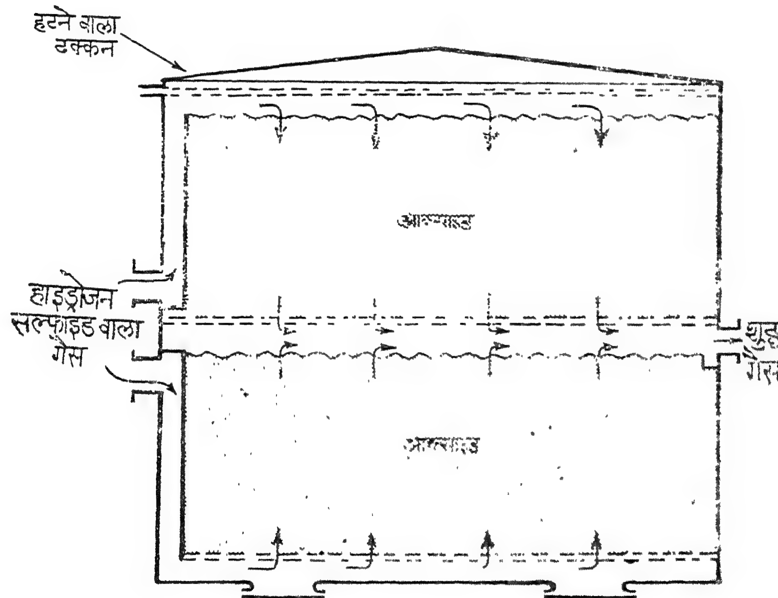
$$Fe_2O_3 + 3H_2S + 2H_2O = Fe_2S_3 + 5H_2O$$

यदि लोहे का सारा आक्साइड सल्फ़ाइड में परिणत हो जाय तो हाइड्रोजन सल्फ़ाइड का अवशोषण बन्द हो जाता है। ऐसी दशा में लोहे के सल्फ़ाइड को कुछ काल वायु में खुला रखने से उसका पुनर्जीवितकरण हो जाता है और वह फिर इस काम के लिए प्रयुक्त हो सकता है।



$$2Fe_2S_3 + 3O_2 + H_2O = 2Fe_2O_3, H_2O + 6S$$

इस प्रकार कई बार प्रयुक्त करने के बाद लोहे के आक्साइड की सक्रियता इतनी घट जाती है कि उसे फिर प्रयुक्त करना ठीक नहीं होता। सक्रियता नष्ट होने के कई कारण होते हैं। लोहे के आक्साइड पर अलकतरे का आवरण चढ़ जाने से गैस उसमें प्रवेश नहीं कर सकती जिससे उसकी सक्रियता नष्ट हो सकती है। पुनर्जीवितकरण के समय गन्धक मुक्त होता है। धीरे-धीरे गन्धक की मात्रा इतनी अधिक हो सकती



चित्र ५०—लोहे के आक्साइड का बक्स

है कि उससे आक्साइड की मात्रा कम हो जाती है। गैस के हाइड्रोजन सायनाइड से मिलकर आक्साइड फेरोसायनाइड में परिणत हो जाता है। फेरोसायनाइड का पुनर्जीवितकरण नहीं होता। उससे आक्साइड की कमी हो जाती है। फेरोसायना-

इड पर हाइड्रोजन सल्फ़ाइड की कोई क्रिया नहीं होती। ऐसे आक्साइड को प्रयुक्त (spent) या क्षयित आक्साइड कहते हैं। यह इसी रूप में बेच दिया जाता है। इसे लोग खरीदकर उससे गन्धक और फेरोसायनाइड प्राप्त करते हैं।

आक्साइड का बक्स छिछला इस्पात या कांक्रीट का बना होता है। वह कदाचित् ही १० से १५ फुट ऊँचा होता है। साधारणतया १० फुट से नीचा ही होता है। बक्स में अन्दर का तल अधिक से अधिक हो तो अच्छा होता है। बक्स में गैसें बहुत धीरे-धीरे बहायी जाती हैं। गैसों के बहाव की गति प्रतिघंटा १०० घनफुट होती है। आक्साइड एक ही स्तर में नहीं रखा जाता। दो या तीन स्तरों में प्रजाल (lattice) पर रखना अच्छा होता है। प्रत्येक स्तर ३ से ६ फुट मोटा होता है।

जब केवल आक्साइड के बक्स ही गैस के शोधन में प्रयुक्त हुए हैं तब तीन या चार बक्सों को एक श्रेणी में रखा जाता है। पहले बक्स में ऐसा आक्साइड रहता है जिसका उपयोग अनेक बार हो चुका है। दूसरे तीसरे बक्स में उससे कम प्रयुक्त होनेवाले आक्साइड क्रमशः रखे जाते हैं। अन्तिम बक्स में बिलकुल ताज़ा आक्साइड रहता है। यदि गैस का शोधन तरल शोधन विधि से हुआ हो तो ऐसी गैस के लिए एक से दो बक्स पर्याप्त हैं। प्रत्येक बक्स में एक नर-छिद्र और एक कपाट रहता है। इससे गैस को इच्छानुसार किसी दूसरे बक्स से जोड़ सकते अथवा गैस की दिशा बदल सकते हैं। गैस की दिशा के बदलने से आक्साइड का पूरा उपयोग हो जाता है। बक्स का ढक्कन खुलनेवाला होता है। इस ढक्कन से जब चाहें तब बक्स को खाली कर सकते अथवा आक्साइड से भर सकते हैं। बक्स के पार्श्व में द्वारी भी रहती है जिससे आक्साइड को निकाल सकते हैं।

बक्स में लोहे का जलीयित आक्साइड रखा जाता है। यह आक्साइड प्राकृत हो सकता है अथवा कृत्रिम। प्राकृत आक्साइड खानों से निकलता है। भिन्न-भिन्न खानों से निकला आक्साइड विभिन्न सक्रियता का हो सकता है। सक्रियता बहुत कुछ जलीयन पर निर्भर करती है। कृत्रिम आक्साइड आक्साइड के जलीयन से अथवा लोहे के खरादन के नियंत्रित आक्सीकरण से प्राप्त होता है। अच्छे आक्साइड में प्रति घनफुट में लोहे के आक्साइड का २० से २५ पाउण्ड रहना चाहिए। उसमें लोहा या इस्पात का न रहना अच्छा है। आक्साइड ऐसे रूप में रहना चाहिए कि गैस उसमें सरलता से प्रतिवेधित हो सके।

एक घनफुट आक्साइड में प्रायः २१·५ पाउण्ड फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3) रहता है। इतना आक्साइड लगभग १५ पाउण्ड हाइड्रोजन सल्फ़ाइड का अवशोषण कर सकता है। पर इतना अवशोषण साधारणतया नहीं होता। अवशोषण बहुत

कुछ बक्स की बनावट, गैस के बहाव, आक्साइड की सक्रियता, आक्साइड के बाह्यतल और संस्पर्श समय पर निर्भर करता है।

पहले चक्र में सम्भवतः ७ पाउण्ड तक का अवशोषण हो सकता है। पर अन्य चक्रों में अवशोषण क्रमशः कम होता जाता है। आक्साइड की सक्रियता जल की मात्रा, क्षारीयता, बाह्यतल और ताप पर निर्भर करती है। सूखा आक्साइड अवशोषण नहीं करता। आक्साइड में कुछ जल का रहना बड़ा आवश्यक है। पर यदि जल की मात्रा इतनी अधिक हो कि आक्साइड उससे पूर्णतया संतृप्त हो जाय तो भी सक्रियता घट जाती है। अनुभव से पता लगता है कि ३८° से० पर ६५ प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता का होना अच्छा है।

आक्साइड का पी० एच० ७·० रहना सर्वश्रेष्ठ है। इतना पी० एच० रखने के लिए आक्साइड में कुछ चूना अथवा कुछ अमोनिया मिला देते हैं। बक्स का ताप न ऊँचा रहना चाहिए, न नीचा ही। महत्तम अवशोषण के लिए बक्स का ताप ३८ से ४३° से० के बीच रहना अच्छा है।

लोहे के आक्साइड को हलका बनाने के लिए उसमें कुछ हलकी चीजें मिला देते हैं। ऐसी हलकी चीजों में लकड़ी का छीलन (shavings), लोहे की भट्ठी का धातु-मल, मकई की खुंखड़ी या लकड़ी का बुरादा रहता है। इससे गैस के प्रवेश में सरलता होती है और गैस आक्साइड के सब भागों में सरलता से प्रविष्ट हो जाती है। २५ पाउण्ड आक्साइड में एक मन तक छीलन डाला जा सकता है।

प्रयुक्त आक्साइड को वायु में खुला रखने से उसका पुनर्जीवितकरण हो जाता है। यदि आक्साइड को बाहर निकालने में कुछ कठिनता हो तो बक्स में ही वायु के प्रवेश से पुनर्जीवितकरण हो सकता है। गैस का प्रवेश बन्द कर वायु को उसमें प्रवाहित कर सकते हैं। इसमें यह देखना पड़ता है कि बक्स का ताप ताप-क्षेपक क्रियाओं के कारण विशेष ऊँचा न हो। बक्स में ही पुनर्जीवितकरण में आक्साइड को बाहर निकालकर देख लेना आवश्यक होता है कि आक्साइड बड़ा लोष्ट तो नहीं बना है। यदि बड़ा लोष्ट बना हो तो उसे तोड़ लेना चाहिए। तोड़ने से तल पर बना फिल्म भी आप ही आप टूट जाता है।

यदि आक्साइड को बाहर निकालकर पुनर्जीवित करना पड़े तो उसे कई बार उलट-पुलट कर देख लेना चाहिए कि सारा आक्साइड ठीक प्रकार से आक्सीकृत हो गया है अथवा नहीं। आक्साइड को बार-बार उटकेरने और छिछले पात्र में रखने से पुनर्जीवितकरण जल्दी हो जाता है। आर्द्रता के अतिरेक से पुनर्जीवितकरण की गति में वृद्धि होती है।

साधारणतया वायु में खुला रखने से १० से १२ घंटे में पुनर्जीवितकरण हो जाता है। पर अधिक समय तक खुला रखना अच्छा है। पुनर्जीवितकरण आक्साइड पाँच छः बार प्रयुक्त हो सकता है। आक्साइड को उस समय फेंक देना चाहिए जब गन्धक की मात्रा लगभग ६० प्रतिशत हो जाय।

हाइड्रोसल्फ़ाइड के अतिरिक्त हाइड्रोजन सायनाइड और गोंद बननेवाले पदार्थ भी लोहे के आक्साइड से निकल जाते हैं। सायनाइड फेरोसायनेट में परिणत हो जाता है। प्रति १००० घन फुट गैस के लिए आक्साइड का लगभग ०·७५ घनफुट तल आवश्यक होता है।

सीबोर्ड विधि

एक दूसरी विधि से भी हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को निकाल सकते हैं। इस विधि को सीबोर्ड विधि कहते हैं। इस विधि में गैस को ३·५ प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट घुले जल से धोते हैं। सोडियम कार्बोनेट की प्रतिक्रिया हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और कार्बन डाइ-आक्साइड पर इस प्रकार होती है—



$$Na_2CO_3 + H_2S = NaHS + NaHCO_3$$

सोडियम हाइड्रोजन सल्फाइड



$$Na_2CO_3 + CO_2 + H_2O = 2NaHCO_3$$

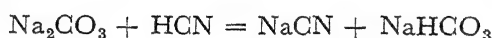
सोडियम बाई-कार्बोनेट

यहाँ सोडियम हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और सोडियम बाई-कार्बोनेट बनते हैं। इससे गैस इनसे मुक्त हो जाती है। सोडियम हाइड्रोजन सल्फ़ाइड में वायु के प्रवाह से हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकल जाता और उससे सोडियम हाइड्राक्साइड बनकर विलयन का पुनर्जीवितकरण हो जाता है।

इस विधि में वस्तुतः दो मीनार होते हैं। एक अवशोषक और दूसरा परिशोधक (actifier)। अवशोषक में गैस का शोधन होता है और परिशोधक में पुनर्जीवितकरण। दोनों में लकड़ी का टट्टर भरा रहता है। ऊपर से विलयन प्रविष्ट करता है। अवशोषक में सोडियम कार्बोनेट का विलयन गिरकर पेंदे में आता और वहाँ से जाकर ऊपर से परिशोधक में गिरता है। अवशोषक में नीचे से गैस प्रविष्ट होती है और परिशोधक में पंखे द्वारा नीचे से वायु प्रवेश करती है। जितनी गैस का शोधन होता है उसका तिगुना आयतन वायु का प्रविष्ट कराया जाता है। साधारणतया १००० घन फुट गैस के शोधन के लिए ६० और १५० गैलन के लगभग विलयन लगता है। इसकी वास्तविक मात्रा हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और कार्बन डाइ-आक्साइड

की मात्रा पर निर्भर करती है। इस रीति में ८५ से ९५ प्रतिशत हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकल जाता है। यदि गैस को एक बार और मीनार में प्रवाहित करें तो ९८ से ९९ प्रतिशत हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकल सकता है।

सीबोर्ड विधि सरल है। इसमें ज्यादा देखभाल की आवश्यकता नहीं पड़ती। समय-समय पर और सोडियम कार्बोनेट विलयन में डाला जाता है। इसकी इसलिए आवश्यकता पड़ती है कि कुछ सोडियम कार्बोनेट सोडियम थायोसायनेट और सोडियम थायोसल्फ़ेट के रूप में निकल जाता है। यहाँ हाइड्रोजन सल्फ़ाइड भी प्रायः पूर्ण रूप से निकल जाता है। हाइड्रोजन सायनाइड के साथ क्रिया इस प्रकार होती है—



$$Na_2CO_3 + HCN = NaCN + NaHCO_3$$



$$NaCN + H_2S + O = NaCNS + H_2O$$

सोडियम थायोसायनेट

हाइड्रोजन सल्फ़ाइड का प्रायः १० प्रतिशत सोडियम थायोसल्फ़ेट बनता है।



$$2NaHS + 2O_2 = Na_2S_2O_3 + H_2O$$

सोडियम थायोसल्फ़ेट

सीफोर्ड परिशोधक से निकले विलयन में निम्नलिखित पदार्थ पाये गये हैं—

	प्रति लिटर विलयन में ग्राम
सोडियम कार्बोनेट	१४·७
सोडियम बाई-कार्बोनेट	२१·३
सोडियम हाइड्रोजन सल्फ़ाइड	०·३
सोडियम थायोसल्फ़ेट	१४२·०
सोडियम थायोसायनेट	१४५·०

यदि विलयन में स्थायी लवण की मात्रा अधिक हो जाय तो ताजा विलयन समय-समय पर डालने की आवश्यकता पड़ती है। इन प्रतिक्रियाओं में जो हाइड्रोजन सल्फ़ाइड बनता है उसे वायुमण्डल में छोड़ देते हैं। दुर्गन्ध से यदि वायु के दूषित हो जाने का भय हो तो हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को जलाकर सल्फ़र डाइ-आक्साइड बना लेते हैं।

हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को इकट्ठा कर उपयोग में लाने की भी चेष्टाएँ हुई हैं। इसके लिए हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को सान्द्र रूप में प्राप्त करना पड़ता है। जिस विधि से सान्द्र हाइड्रोजन सल्फ़ाइड प्राप्त होता है उसे उष्ण कर्मण्यन (hot actification) विधि कहते हैं। यह विधि सीबोर्ड विधि से बहुत मिलती जुलती है। इसमें सोडियम

कार्बोनेट और सोडियम बाई-कार्बोनेट का विलयन प्रयुक्त होता है। इन लवणों की मात्रा १० प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट के बराबर रहती है।

हाइड्रोजन सल्फ़ाइड से जब विलयन दूषित हो जाता है तब उसका पुनर्जीवितकरण भी हो सकता है। दूषित विलयन का ताप प्रायः ६०° से० और दबाव ५ इंच पारद का रहता है। विलयन के पुनर्जीवितकरण के लिए उसमें भाप ले जाते हैं। प्रति १००० घनफुट गैस के लिए न्यून दबाव पर ७ पाउण्ड भाप की ज़रूरत पड़ती है। कर्मण्यन यदि वायुमण्डल के दबाव पर होता हो तो १००० घनफुट गैस के लिए लगभग २७ पाउण्ड भाप लगेगी। शिखर से निकले भाप और हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को ठंडा कर लेते हैं।

हाइड्रोजन सल्फ़ाइड में अमोनिया का अल्प अंश, हाइड्रोजन सायनाइड का अधिक भाग, कार्बन डाइ-आक्साइड का कुछ भाग रहता है। उसका संघटन इस प्रकार का होता है--

	प्रतिशत
हाइड्रोजन सल्फ़ाइड	७०
कार्बन डाइ-आक्साइड	१६
कार्बन सायनाइड	१३

यदि इस हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को संस्पर्श विधि द्वारा सलफ्यूरिक अम्ल के निर्माण में प्रयुक्त करना है तो उससे संयन्त्र का संक्षारण होता पाया गया है। सम्भवतः यह संक्षारण अमोनिया और सायनाइड के दहन-उत्पाद के कारण होता है। यदि हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को अल्प जल से एक छोटे मार्जक में धो डालें तो यह कठिनता दूर हो जाती है। यहाँ अल्प मात्रा में स्थायी लवण सोडियम थायोसल्फ़ेट और सोडियम थायोसायनेट बनते हैं।

थाइलौक्स गन्धक-प्रत्यादान विधि
(Thylox Sulphur-Recovery Process)

थाइलौक्स विधि वस्तुतः तरल-शोधन विधि है। इसमें सोडियम थायोआर्सेनेट (थाइलौक्स प्रतिकारक) का विलयन प्रयुक्त होता है। ऐसे विलयन में आर्सेनिक ट्राइ-आक्साइड (As_2O_3) की मात्रा एक प्रतिशत से कम रहती है। विलयन का पी एच ७·५ से ८·० सोडियम कार्बोनेट डालकर रखा जाता है। ऐसे विलयन में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड अवशोषित हो जाता है। अवशोषण की प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार होती हैं।



$$Na_4As_2S_2O_2 + H_2S = Na_4AsS_6O + H_2O$$

सोडियम थायोआर्सेनेट



$$Na_4AsS_6O + H_2S = Na_4As_2S_7 + H_2O$$

वायु के आक्सिजन से विलयन की सक्रियता बढ़ जाती है



$$Na_4As_2S_7 + O = Na_4As_2S_6O + S$$



$$Na_4As_2S_6O + O = Na_4As_2S_5O_2 + S$$

थाइलौक्स विधि के लिए अमेरिकी कौपर्स कम्पनी ने एक संयन्त्र बनाया है जो अमेरिका के अनेक कारखानों में प्रयुक्त होता है। इस संयन्त्र में गैस पहले अवशोपण में पेंदे से प्रविष्ट होती है। अवशोषक में टट्टर भरा रहता है। ऊपर से विलयन गिरता है। विलयन फिर कर्मण्यक (actifier) में पम्प किया जाता है। यह अवशोषक के पास ही स्थित होता है। कर्मण्यक पतला लम्बा सा मीनार होता है। पेंदे से एक सछिद्र नल द्वारा संपीडित वायु प्रविष्ट होकर ऊपर उठती है और ऊपर से विलयन गिरकर उसके घनिष्ठ सम्पर्क में आता है। विलयन में सूक्ष्म गन्धक अवक्षिप्त होता है। वायु के बुलबुले से फेन बनकर उठता ओर शिखर पर इकट्ठा हो बहकर बाहर निकल जाता है। इसे गन्धक टंकी में इकट्ठा करते हैं। गैस के आयतन की ३ या ४ प्रतिशत वायु की यहाँ आवश्यकता पड़ती है। कर्मण्यक से विलयन फिर गुरुता द्वारा अवशोषक में आकर इस्तेमाल होता है। गन्धक को छान और धोकर लवणों से मुक्त करते है। उत्कृष्ट परिणाम के लिए थाइरौक्स विलयन का ताप ३८ से ४०° से० रहना चाहिए।

थाइरौक्स विलयन को सोडा ऐश और आर्सेनिक ट्राइ-आक्साइड के जल में घुलाने से तैयार करते हैं। पहले-पहल जब संयन्त्र को चलाना होता है तब ताजा विलयन इस्तेमाल करते हैं। ऐसे विलयन पर कार्बन डाइ-आक्साइड की कोई क्रिया नहीं होती, क्योंकि विलयन की क्षारीयता क्रिया के लिए पर्याप्त नहीं होती। इस विलयन से हाइड्रोजन सायनाइड भी निकल जाता है। वह सोडियम थायोसायनेट बनता है। सम्भवत: नवजात गन्धक और सोडियम लवणों की प्रतिक्रिया से वह बनता है। स्थायी लवणों के बनने के कारण विलयन में समय-समय पर सोडा के विलयन डालने की आवश्यकता पड़ती है। कुछ अन्य रीतियों से, गन्धक के अवशोषण आदि से, भी सोडा का कुछ ह्रास होता है। सोडा के स्थान में अमोनिया भी प्रयुक्त हो सकता है क्योंकि अमोनिया भी अमोनियम थायोआर्सेनेट बनता है।

थाइलौक्स संयन्त्र में गैस का ९८ प्रतिशत हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकल जाता है।

यदि सारा हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकालना हो तो संयन्त्र के साथ लोहे के आक्साइड का एक धारण (Catch) रख देने से ऐसा होता है।

समस्त हाइड्रोजन सल्फ़ाइड का प्रायः ७० प्रतिशत गन्धक के रूप में प्राप्त हो सकता है। ऐसा गन्धक बहुत सूक्ष्म रूप में रहने से कवकनाशक और कृमिनाशक के रूप में खेतों में छिड़कने के लिए बहुत अच्छा होता है। गन्धक को पिघला कर बत्ती अथवा पिण्ड के रूप में भी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा गन्धक उन सभी कामों में लग सकता है जहाँ अल्प आर्सेनिक से कोई हानि न हो।

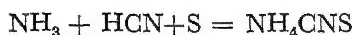
फेरौक्स गन्धक-प्रत्यादान विधि

(Ferroux Sulphur Recovery Process)

इस विधि में आर्सेनिक के स्थान में लोहे का आक्साइड प्रयुक्त होता है। सोडियम कार्बोनेट के ०·५ से २ प्रतिशत विलयन में ०·५ प्रतिशत सक्रिय आयरन आक्साइड (Fe_2O_3) के रहने से विलयन उसी प्रकार इस्तेमाल हो सकता है जैसा थाइलौक्स विलयन प्रयुक्त होता है। संयन्त्र में कुछ अन्तर होता है, इस विधि का उपयोग कदाचित् ही कहीं होता है।

अमोनियम थायोसायनेट प्रत्यादान

तरल-शोधन विधि में गैस का हाइड्रोजन सायनाइड सोडा और हाइड्रोजन सल्फ़ाइड की प्रतिक्रिया से सोडियम थायोसायनेट बनता है। यह यौगिक स्थायी होता है। इसका सोडियम अब शोधन के लिए प्राप्य नहीं है। इस कारण समय-समय पर विलयन में सोडा डालने की जरूरत पड़ती है। कुछ कारखानों में सोडा के स्थान में अमोनिया इस्तेमाल होता है। अमोनिया से अमोनिया थायोसायनेट बनता है। इसके लिए गन्धक का रहना बड़ा आवश्यक है। मार्जक में गन्धक रखकर ऐसा किया जाता है। प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है—



$$NH_3 + HCN + S = NH_4CNS$$

गैस का ९५ प्रतिशत हाइड्रोजन सायनाइड इस रीति से निकल जाता है। जब विलयन थायोसायनेट से पर्याप्त संतृप्त हो जाय तब विलयन को छानकर गाढ़ा करते हैं। पर्याप्त गाढ़ा हो जाने पर ठंडे होने पर अमोनियम थायोसायनेट के मणिभ निकल आते हैं। ऐसे मणिभों में अमोनियम थायोसायनेट लगभग ९५ प्रतिशत, जल ४ प्रतिशत और राख एक प्रतिशत रहती है। यदि इसका शोधन किया जाय और लोहे का अंश निकाल दिया जाय तो वर्णरहित मणिभ प्राप्त होते हैं।

अमोनियम थायोसायनेट के अनेक उपयोग हैं। घास-पातों के हनन, वस्त्रों के निर्माण और अनेक कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों के निर्माण में यह प्रयुक्त होता है। इससे थायोयूरिया भी बन सकता है। थायो-यूरिया प्लास्टिक के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

कार्बनिक गन्धक यौगिक

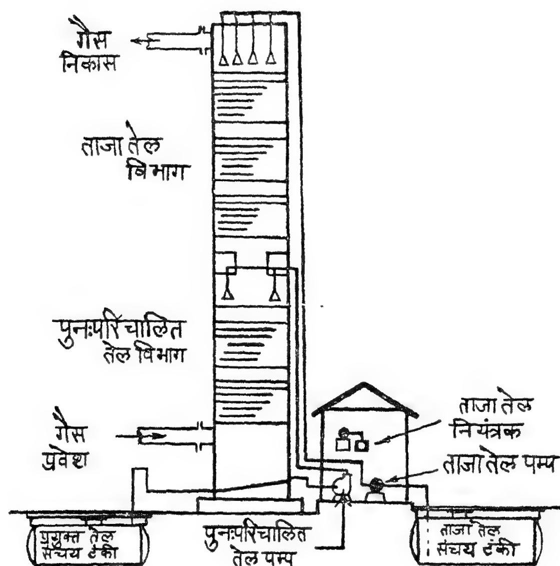
हाइड्रोजन सल्फ़ाइड के अतिरिक्त गैस में कुछ कार्बन-गन्धक यौगिक, कार्बन डाइ-सल्फ़ाइड, मरकैप्टन, थायोफीन और कार्बन आक्सी सल्फ़ाइड रहते हैं। कार्बन-गन्धक यौगिक की मात्रा १००० घनफुट गैस में १½ से २ ग्राम रहती है। मार्जक में हलके तेल के मार्जन से यौगिक निकल जाता है। यदि ऐसे यौगिक की मात्रा बड़ी अल्प हो तो उन्हें निकालने की ज़रूरत नहीं पड़ती पर यदि अधिक हो तो निकालना ज़रूरी हो जाता है।

नैफ्थलीन

गैस में नैफ्थलीन रहता है। साधारणतः इसकी मात्रा प्रति १०० घनफुट में १ से २ ग्राम रहती है। यदि इसे निकाल न दिया जाय तो गैस की नली में इसके मणिभ बनकर गैस के मार्ग को अवरुद्ध कर सकते हैं। यदि नैफ्थलीन की मात्रा प्रति १०० घनफुट में ४ से ४ ग्रेन रहे तो इस अल्प मात्रा से कोई कठिनता नहीं होती, यद्यपि शीतकाल में इतनी मात्रा से भी कठिनता उत्पन्न हो सकती है। किस ताप पर कितनी मात्रा नैफ्थलीन की गैस वहन कर सकती है उसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित आँकड़ों से होता है।

ताप से०	१०० घनफुट गैस में नैफ्थलीन की मात्रा ग्रेन
०	१·८५
५	३·२६
१०	५·५९
१५	९·३९
२०	१५·५
२५	२५·२
३०	४०·३
४०	९८·५
५०	२२७
६०	४९७

पेट्रोलियम के एक प्रभाग के मार्जन से नैफ्थलीन निकल जाता है। इस काम के लिए जो मार्जक उपकरण प्रयुक्त होता है उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है। यहाँ एक मीनार होता है जिसके दो खंड एक के ऊपर दूसरे स्थित होते हैं। दोनों लकड़ी के टट्टर अथवा इस्पात के खरादन से भरे रहते हैं। निचले खंड के पेंदे से गैस प्रविष्ट होकर ऊपर उठती है। ऊपर से अवशोषक तेल प्रविष्ट होता है। ऊपर के खंड में अवशोषक-तेल ताजा रहता है। वहाँ से टपककर वह निचले खंड में आता है। एक के ऊपर दूसरे खंड के रहने के स्थान में दो खंड पास-पास भी रह सकते हैं। एक खंड से गैस निकल कर दूसरे खंड में जाती है।



चित्र ५१—नैफ्थलीन मार्जक

अवशोषण के लिए जो तेल प्रयुक्त होता है वह पेट्रोलियम का कम श्यानवाला प्रभाग होता है। उसकी मात्रा इतनी होनी चाहिए कि वह समस्त नैफ्थलीन को निकाल सके। यदि गैस का ताप नीचा है तो कम तेल लगता है। यदि ताप २१ से २५° से० है तो (एक ग्रेन नैफ्थलीनवाले १०० घनफुट गैस में) १० लाख घनफुट गैस से नैफ्थलीन निकालने के लिए एक गैलन तेल आवश्यक होता है। इतने तेल से बेंज़ीन और टोल्वीन भी निकल जाते हैं। इनके निकल जाने से गैस का तापन-

मान कम हो जाता है। इस कारण ताजे तेल की अल्पमात्रा ही प्रयुक्त करना अच्छा होता है। तेल से गोंद बननेवाले पदार्थ भी बहुत कुछ निकल जाते हैं।

गोंद बननेवाले पदार्थ

गैस में गोंद बननेवाले पदार्थों के कारण कठिनता उत्पन्न हो सकती है। गोंद बननेवाले पदार्थ बर्नर के छेद को बन्द कर सकते हैं। पहले समझा जाता था कि धूल के कारण अथवा मोरचे के कारण छेद बन्द होता है, पर अनुसन्धान से पीछे पता लगा कि छेद का बन्द होना गोंद बननेवाले पदार्थों के कारण होता है। बर्नर के छेद बड़े छोटे होते हैं। कुछ छेदों के व्यास ०·०००३ इंच के होते है। ऐसे छेदों को बन्द करने के लिए ०·००००१ ग्राम का कण पर्याप्त है।

गोंद बननेवाले पदार्थ असंतृप्त हाइड्रोकार्बन होते हैं। ऐसे हाइड्रोकार्बनों में ब्युटाडीन, साइक्लोपेन्टाडीन या क्युमेरोन हैं। गोंद बनने में सहायक होनेवाला पदार्थ नाइट्रिक आक्साइड है जो आक्सिजन के साथ मिलकर नाइट्रोजन पेरॉक्साइड बनता है। यही पेरॉक्साइड असंतृप्त हाइड्रोकार्बनों से मिलकर गोंद का सूक्ष्म कण बनता है जो गैस में लटका रहता है, पर समय पाकर निक्षिप्त हो जाता है। गैस में नाइट्रिक आक्साइड की मात्रा बड़ी अल्प रहती है। १० लाख आयतन में १ से दो भाग ही।

दो रीतियों से गोंद का बनना रोका जा सकता है। एक नाइट्रिक आक्साइड के निकाल डालने से और दूसरा कोरोना विसर्जन से। लोहे के आक्साइड द्वारा कुछ सीमा तक नाइट्रिक आक्साइड निकाला जा सकता है। हाइड्रोजन सल्फाइड के निकालने के लिए जितने बक्स की जरूरत पड़ती है उससे कुछ अधिक बक्स के रखने से नाइट्रिक आक्साइड भी निकल सकता है। नाइट्रिक आक्साइड के निकालने में आक्सिजन की कमी से भी सहायता मिलती है। कम आक्सिजन के रहने से नाइट्रिक आक्साइड जल्द निकल जाता है।

कोरोना विधि

कोरोना विधि को वैद्युत विधि भी कहते हैं। कोरोना विसर्जन से नाइट्रिक आक्साइड तत्काल नाइट्रोजन पेरॉक्साइड में आक्सीकृत हो असंतृप्त यौगिकों के साथ मिलकर गोंद बनकर मार्जक में निकल जाता है। कोरोना विसर्जन के बाद गैस को मार्जक में जाना बड़ा आवश्यक है।

गैस का जल निकालना

संयन्त्र से निकलने पर गैस भाप से संतृप्त रहती है। गैस में भाप अधिक नहीं रहनी चाहिए। भाप संघनित हो नल में इकट्ठी हो गैस के मार्ग को अवरुद्ध कर सकती है। जल जमकर बर्फ बनकर मार्ग अवरुद्ध कर सकता है। जल से नल में मोर्चा भी जल्द लग सकता है। नल और मीटर आदि का संक्षारण भी जल की उपस्थिति से हो सकता है।

गैस बिलकुल सूखी भी नहीं रहनी चाहिए। सूखी गैस से मीटर के चमड़े का पट (डायफ़राम) और बांधने की डोरी का पानी खींचा जाकर चमड़ा कड़ा हो सकता और उससे मीटर की चाल मन्द हो सकती है। बांधने की डोरी से गैस का च्यावन भी हो सकता है। साधारणतया गैस में इतना पानी रहना चाहिए कि जिस ताप पर गैस को इस्तेमाल करना है उस ताप से ५ डिगरी नीचे का ताप गैस का ओसांक हो।

गैस के जल को अंशतः निकालने के लिए तीन रीतियाँ प्रयुक्त होती हैं, (१) किसी आर्द्रताग्राही विलयन से मार्जन, (२) प्रशीतन और (३) संपीडन और शीतन।

आर्द्रताग्राही विलयन रीति

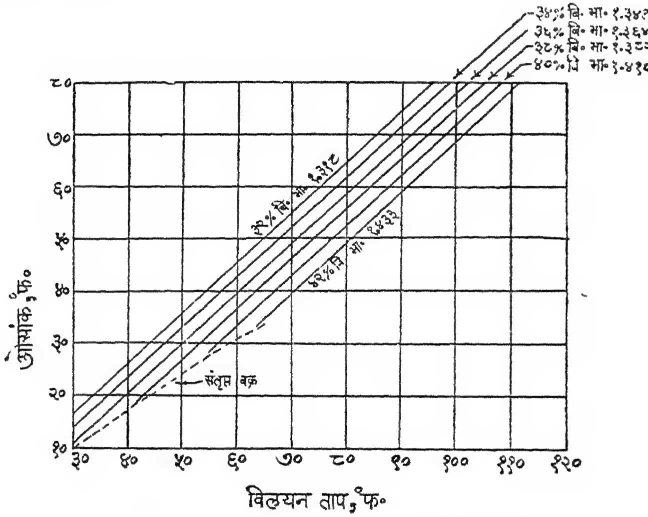
जब कोई लवण पानी में घुलता है तब पानी के वाष्प का दबाव विलयन में कम हो जाता है। दबाव के कम होने की मात्रा लवण की मात्रा पर निर्भर करती है। विलयन के जल-वाष्प का दबाव जितना ही कम होगा उतना ही अधिक जल को वह सोखेगा। इसके लिए आवश्यक है कि घुला हुआ पदार्थ अवाष्पशील हो ताकि उद्वाष्पन से उसका ह्रास न हो।

साधारणतया इस काम के लिए कैलसियम क्लोराइड नामक लवण प्रयुक्त होता है। यह लवण सस्ता होता है और आसानी से किसी भी तायदाद में मिल जाता है।

विभिन्न बल के कैलसियम क्लोराइड विलयन और विभिन्न ताप और गैस के ओसांक के सम्बन्ध का वक्र तैयार हुआ है। उस वक्र से हमें मालूम हो जाता है कि किस ताप के लिए कैसा विलयन प्रयुक्त करना चाहिए।

गैस को जल से मक्त करना मार्जक में होता है। मार्जक के दो खंड होते हैं। वे लकड़ी के टट्टर से भरे रहते हैं। पेंदे से गैस प्रविष्ट होती और ऊपर उठती है। निचले खंड में कैलसियम क्लोराइड के विलयन से गैस की धुलाई होती है। ऊपरी खंड में गैस की धुलाई तेल से होती है जो विलयन की छोटी-छोटी बूंदों को निकाल लेता है।

तेल के मार्जन से दो लाभ हैं। यह गैस से नैफ्थलीन को निकाल लेता और तेल के तुषार को गैस में उत्पन्न करता है। यह तुषार गैस-नल का आच्छादन कर नल को मोरचे और संरक्षण से सुरक्षित रखता है। इससे गैस की धूल भी पकड़ रखी जाती है। गांठों से यदि च्यावन होता हो तो वह भी इससे बन्द हो जाता है। मीटर का चमड़ा भी मुलायम रहता है।



चित्र ५२—ताप और ओसांक का सम्बन्ध

विलयन जब पतला हो जाता है तब उद्वाष्पन से उसे फिर गाढ़ा कर लेते हैं।

प्रशीतन

प्रशीतन विधि में गैस को ठंढे जल से जिस ताप पर नल में रहता है उससे कुछ नीचे ताप तक ठंढा करते हैं। अधिक भाप संघनित हो जल बनकर निकल जाती और वहाँ से निकाल ली जाती है। ठंढे जल के लिए प्रशीतन मशीन की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के अनेक संयन्त्र, अमोनिया-संपीडन, अमोनिया अवशोषण, शून्य शीतन आदि बने हैं।

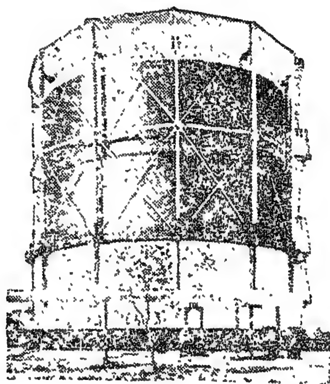
संपीडन

इस रीति में गैस का संपीडन करते हैं। संपीडन से ऊष्मा बहिर्गत होती है। ऊष्मा को ठंढे पानी से निकाल लेते हैं। दवाव और ताप का नियंत्रण ऐसा करते हैं

कि आवश्यक ओसांक प्राप्त हो सके। यह निर्भर करता है कि किस ताप की गैस नल में रहेगी। इस रीति में खर्च अधिक पड़ता है। प्रशीतन और संपीडन दोनों में गैस में तेल का तुषार होना आवश्यक है। तुषार से ही गैस में जल की मात्रा ठीक-ठीक रखी जा सकती है।

गैस का संग्रह

वितरण के पूर्व गैस का संग्रह आवश्यक है। गैस के संग्रह में साधारणतया तीन रीतियाँ प्रयुक्त होती हैं। (१) जल-संमुद्रित टंकियाँ, (२) जल-रहित टंकियाँ और (३) गैस के सिलिंडर।

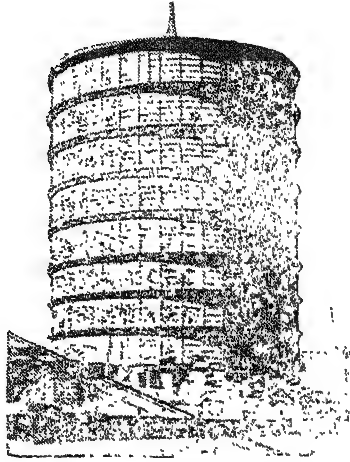


चित्र ५३—जल-संमुद्रित गैस-टंकी

जल-संमुद्रित टंकियों का उपयोग बहुत पुराना है। आज भी यह रीति अधिकता से प्रयुक्त होती है। यहाँ एक बड़ी टंकी जल से भरी रहती है। जल पर इस्पात का एक ढाँचा (shell) तैरता रहता है। इसी ढांचे में गैस का संग्रह होता है। एक नल पेंदे से शिखर तक नीचे से ऊपर जाता है। इसी नल द्वारा गैस प्रविष्ट होती अथवा निकलती है। जब गैस प्रविष्ट होती तब ढाँचा धीरे-धीरे ऊपर उठता और जब गैस निकलती तब ढाँचा धीरे-धीरे नीचे गिरता है। ढाँचा दीवार पर स्थित झर्झरी द्वारा ऊपर नीचे जाता है।

छोटी-छोटी टंकियों के ढाँचे इस्पात के एक टुकड़े से बने होते हैं। बड़ी-बड़ी टंकियों के ढाँचे दो से चार भागों में बनकर जोड़े जाते हैं। जब टंकी में गैस नहीं रहती तब ढाँचा टंकी के पेंदे में स्थित रहता है। जैसे-जैसे गैस प्रविष्ट होती, ढाँचा ऊपर उठता

जाता है। जब गैस से टंकी भर जाती तब वह जल-संमुद्रित हो जाती है। संमुद्रण के जल को ठंढे देशों में बर्फ़ बनने से बचाने के लिए भाप से गरम रखते हैं। भारत में शायद ही ऐसा अवसर आता हो। भारत की रसायनशालाओं में जो गैस प्रयुक्त होती है वह इसी प्रकार की टंकी में संगृहीत रहती है। प्रत्येक रसायनशाला में ऐसी टंकी देखी जा सकती है।



चित्र ५४—जल-विहीन गैस-टंकी

जल-रहित टंकी देखने में वैसी ही लगती है जैसे जलवाली टंकी, पर इसमें एक पिस्टन (मूसल) होता है जो गैस के आयतन के अनुसार ऊपर-नीचे जाता-आता रहता है। टंकी में छप्पर होता है जो पिस्टन को पानी से सुरक्षित रखता है। यह टंकी वृत्ताकार होती अथवा बहुभुजाकार। इसकी भुजाएँ १० से २८ तक रह सकती हैं।

गैस-सिलिंडर इस्पात के बने होते हैं। इनमें प्रतिवर्ग इंच पर कई सौ पाउण्ड दबाव में गैस रखी जा सकती है। ऐसे मजबूत बने सिलिंडर का मूल्य अधिक होता है, पर इसे बार-बार प्रयुक्त कर सकते हैं। वहां के लिए ये सिलिंडर बड़े आवश्यक हैं जहाँ दबाव में गैस की ज़रूरत पड़ती है।

गैस-मीटर

गैस नापने के लिए मीटर चाहिए। नाप कर ही गैस का मूल्य आँका जाता है। कई प्रकार के गैस-मीटर बने हैं। एक प्रकार के मीटर को 'वेट-मीटर' कहते हैं क्योंकि

इसमें पानी के सहयोग से गैस नापी जाती है। एक दूसरे प्रकार का मीटर 'रोटरी डिस्प्लेसमेंट मीटर' है। गैस से यह मीटर घूमता है। परिभ्रमण की संख्या से गैस नापी जाती है। इस मीटर से प्राप्त अंक अधिक यथार्थ होते हैं। एक तीसरे प्रकार का मीटर 'डिफरेन्सियल प्रेशर मीटर' है। इसमें दबाव के अन्तर से गैस मापी जाती है। एक चौथा मीटर 'टौमस थर्मल मीटर' है।

घरेलू ईंधन के लिए गैस इस प्रकार की होनी चाहिए।

(१) गैस का तापन-मान स्थायी रहना चाहिए।

(२) गैस का दबाव स्थायी रहना चाहिए। अधिक दबाव से गैस अधिक खर्च होती है और कम दबाव से बर्नर बुझ जाता है।

(३) गैस का विशिष्टभार परिवर्तनशील न रहना चाहिए। विशिष्टभार पर ही गैस का बहाव निर्भर करता है। विशिष्टभार के न्यूनाधिक होने से बर्नर के जलने में अन्तर आ जाता है।

(४) गैस का संघटन स्थायी रहना चाहिए। संघटन की विभिन्नता से तापन-मान और विशिष्टभार में अन्तर हो जाता है।

(५) गैस में कोई ऐसा पदार्थ नहीं रहना चाहिए जो मीटर के चमड़े अथवा नल को आक्रान्त करे। जल की मात्रा अधिक नहीं रहनी चाहिए। जल से अनेक पदार्थों की संक्षारण क्रिया शीघ्रता से होती है। कार्बन डाइ-आक्साइड और अमोनिया से संक्षारण होता है।

(६) गैस में गन्धक की मात्रा अल्पतम रहनी चाहिए। गन्धक जलकर सल्फर डाइ-आक्साइड बनता है। स्वास्थ्य और घरेलू सामानों के लिए यह गैस हानि-कारक है।

(७) गैस सूखी होनी चाहिए। गैस का ओसांक इतना नीचा होना चाहिए कि नल और मीटर में पानी इकट्ठा होने का भय नहीं रहे।

(८) गैस में कोई अलकतरा, नैफ्थलीन और गोंद नहीं रहना चाहिए। इनसे गैस का मार्ग अवरुद्ध हो सकता है। उससे गैस के बहाव में कमी या रुकावट हो सकती है।

(९) गैस में कोई विषैला पदार्थ नहीं रहना चाहिए। कार्बन मनॉक्साइड और कार्बन डाइ-आक्साइड दोनों नहीं रहने चाहिए। कार्बन मनॉक्साइड विषैला होता है और कार्बन डाइ-आक्साइड अदाह्य। कार्बन डाइ-आक्साइड से गैस का तापन-मान भी कम हो जाता है, इसके रहने से कोई लाभ नहीं होता। पम्प करने का खर्च बढ़ जाता है।

पचीसवाँ अध्याय

उत्पादक गैस और जल-गैस

उत्पादक गैस का व्यवहार आज अनेक उद्योग-धन्धों में हो रहा है। इस गैस से ऊँचे और मध्यम दोनों प्रकार के ताप प्राप्त हो सकते हैं। इस्पात के निर्माण में खुली चूल्ही भ्राष्ट्र (Open-hearth furnace) में इसका व्यवहार होता है। मृदुकरण भ्राष्ट्र में, अनेक किस्म के भट्ठों और भट्ठियों में उत्पादक गैस प्रयुक्त होती है। कोयला-गैस के निर्माण में भी भभके के गरम करने में उत्पादक गैस लगती है। शक्ति पैदा करने के लिए गैस-ईजनों में भी यह गैस प्रयुक्त होती ह।

कोयले के उत्ताप दीप्त तल पर भाप और वायु के मिश्रण के प्रवाह से उत्पादक गैस बनती है। उत्पादक गैस में कार्बन मनॉक्साइड (CO), हाइड्रोजन (H_2), नाइट्रोजन (N_2), कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2) और मिथेन रहते हैं। उत्पादक गैस के एक सामान्य नमूने का विश्लेषण यह है—

उत्पादक गैस का विश्लेषण

ईंधन	अंथ्रेसाइट	कोक न बननेवाला बिटुमिनी कोयला		कोक
गैस	प्रतिशत	अयांत्रिक या अर्ध यांत्रिक जनित्र	यांत्रिक जनित्र	
कार्बन मनॉक्साइड (CO)	२६	२३	२७	२८
हाइड्रोजन (H_2)	१६	१३	१५	१०
नाइट्रोजन (N_2)	५२	५२	५०	५६
कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2)	५	९	५	५
मिथेन (CH_4)	१	३	३	०·५
प्रति घनफुट कलरी-मान बि० टि० यू०	१५०	१४५	१६५	१३०

उत्पादक गैस में अल्प हाइड्रोजन सल्फाइड भी रहता है। आयतन में प्रतिशत ०·१० से ०·१५ रहता है। नाइट्रोजन और कार्बन डाइ-आक्साइड के रहने से गैस का कलरी-मान अपेक्षया कम हो जाता है।

प्रति टन कोक या कोयले से कितनी गैस प्राप्त होती है यह कोयले की राख और जल पर बहुत कुछ निर्भर करता है। अंथ्रेसाइट में जल और राख दोनों ही कम होते हैं। इससे अंथ्रेसाइट से अधिक गैस प्राप्त होती है। पर ऐसी गैस का कलरीमान कम होता है।

उत्पादक गैस के निर्माण में जो जनित्र प्रयुक्त होता है वह इस्पात का ऊर्ध्वाधार ढांचा होता है। कोयले के ठहराव के लिए झर्झरी रहती है और पेंदे में भाप और वायु के प्रवेश-मार्ग होते हैं। उत्पन्न गैस के निकास के लिए शिखर पर निकास-मार्ग होता है। चूल्हे में ईंटों का आस्तर रहता है अथवा पूर्णतया जल निचोलित अथवा अंशतः जल निचोलित और अंशतः आस्तरित रह सकता है। उत्पादक गैस के जनित्र अनेक किस्म के बने हैं। उन्हें हम निम्नलिखित वर्गों में बांट सकते हैं—

(१) अचल जनित्र—इनमें कोयला हाथों से झोंका जाता, हाथों से ठेला जाता और हाथों से ही राख निकाली जाती है।

(२) अचल अथवा अर्ध-यांत्रिक जनित्र—यहाँ यंत्रों से कोयला डाला जाता, यंत्रों से उठकारा और समतल किया जाता पर राख हाथों से निकाली जाती है।

(३) यांत्रिक जनित्र—इनमें यंत्रों से ही कोयला डाला जाता, उठकारा और समतल किया जाता और राख निकाली जाती है।

भाप बनाने की विधियाँ विभिन्न होती हैं—

(१) कहीं भाप स्वतन्त्र रूप से तैयार होती है।

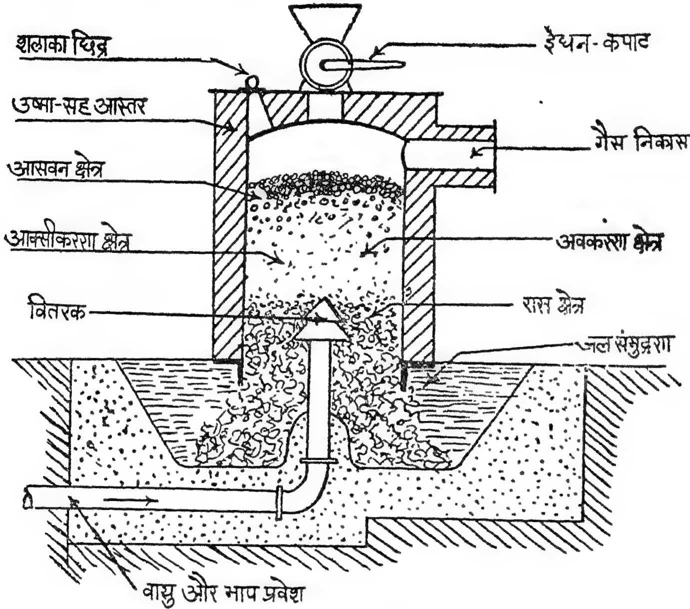
(२) कहीं उत्पादक-पात्र के घेरे हुए जल-निचोल में भाप तैयार होती है।

(३) कहीं वाष्पायक (vapouriser) में भाप बनती है। वाष्पायक जनित्र से निकले उत्पादक गैस से तप्त किया जाता है।

राख निकालने की रीति पर भी जनित्र को अचल अथवा यांत्रिक कहते हैं। जिन जनित्रों में हाथों से कार्य किया जाता है उनसे अच्छी गैस प्राप्त हो सकती है यदि कोयला अच्छा हो। पर यांत्रिक गैसीकरण से अच्छी मात्रा में गैस तैयार होती है।

अच्छी गैस का बनना, ऐसी गैस जिसमें दहनशील गैस अधिक हो और संघटन स्थायी हो, जनित्र में कोयले के भरने, वायु और भाप के एक भाव से वितरण पर निर्भर करता है। एक ऐसे उत्पादक गैस के जनित्र का चित्र यहाँ दिया हुआ है। इसमें ईंधन का तल चार मण्डलों में बँटा रहता है। निचला तल राख-मण्डल, बिचला तल

आक्सीकरण-मण्डल, उसके ऊपर का तल अवकरण-मण्डल और ऊपरी तल आसवन-मण्डल होता है। ये मण्डल बदलते रहते, इनकी गहराई बदलती रहती, एक दूसरे में मिलते रहते हैं। मण्डलों की गहराई बहुत कुछ गैसीकरण की गति, कोयले की प्रकृति और राख की मात्रा पर निर्भर करती है।



चित्र ५५—गैस-जनित्र

वायु-भाप मिश्रण वितरक (distributor) के ऊपर तक राख-मण्डल रहता है। राख के रहने से वितरक की आक्सीकरण से रक्षा होती है। वितरक से भाप और वायु प्रविष्ट होती है। राख ठंढी हो जाती, पर भाप और वायु गरम हो जाती है। यह आवश्यक है कि राख महीन न रहे ताकि वायु और भाप उसमें प्रविष्ट हो सके। उसमें प्रझाम भी नहीं रहना चाहिए। राख का छोटा-छोटा टुकड़ा रहना अच्छा है।

आक्सीकरण मण्डल में पहले कोयले का कार्बन जलकर कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है। यह फिर अवकृत हो कार्बन मनॉक्साइड बनता है। भाप तापदीप्त कार्बन से विच्छेदित हो कार्बन डाइ-आक्साइड, कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन बनता है।

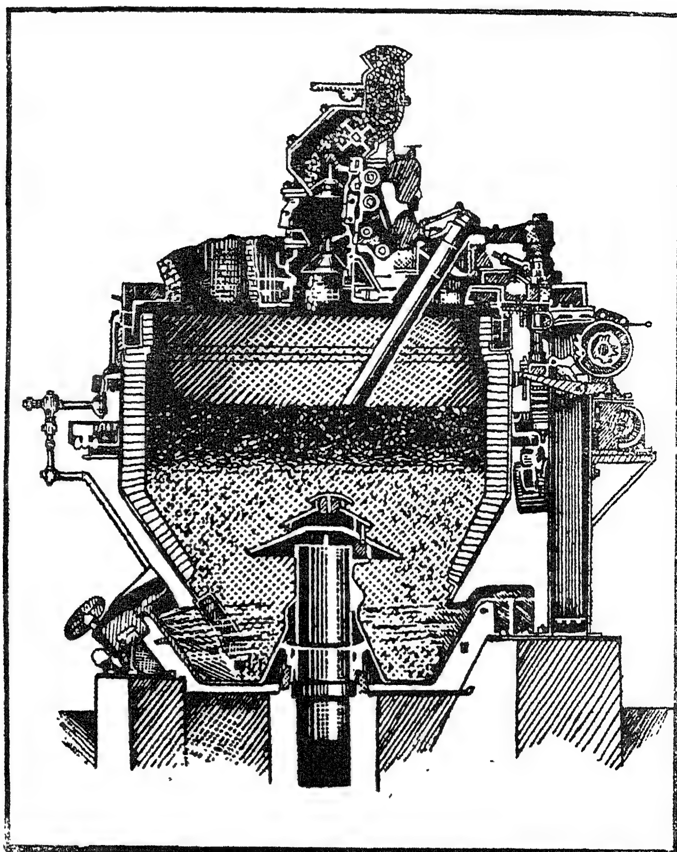


$$C + H_2O = CO + H_2$$



$$C + 2H_2O = CO_2 + 2H_2$$

कार्बन और भाप के बीच जब क्रिया होती है तब ऊष्मा का अवशोषण होता है। इस प्रतिक्रिया के सम्पादन के लिए ईंधन का ताप कम से कम १०००° से० रहना चाहिए। तभी अच्छी गैस प्राप्त हो सकती है।



चित्र ५६—गैस-प्रोड्यूसर

अवकरण-मण्डल से तप्त गैस कच्चे कोयले के संस्पर्श में आती है। इससे कोयले का ताप बढ़ जाता, वाष्पशील अंश निकल जाता और नीचे के मण्डल में बनी उत्पादक

गैस से मिल जाता है। यहाँ से निकली गैस में अलकतरा और भाप रहते हैं। ऐसी गैस का किसी-किसी काम में सीधे उपयोग हो जाता है। अलकतरावाली गैस का कलरी-मान प्रति घनफुट लगभग १५ बि० टि० यू० अधिक होता है।

कोयला

उत्पादक गैस के निर्माण में कच्चा कोयला सबसे अधिक प्रयुक्त होता है। कठोर कोक और इष्टका भी कहीं-कहीं प्रयुक्त होती है। सब प्रकार के कोयले इस्तेमाल हो सकते हैं। यदि पिंड बननेवाले कोयले, जल्दी टूटनेवाले कोयले और अधिक राखवाले कोयले प्रयुक्त हों तो उनके लिए विशेष सावधानी और प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ सकती है। पर उत्पादक गैस के लिए सबसे अच्छे कोयले दुर्बलता से कोक बनने-वाले कोयले हैं।

कोयले का विस्तार

उत्पादक गैस के लिए कोयले का आकार (साइज) एक सा होना चाहिए। साधारणतया १¾ इंच से २½ इंच के टुकड़े अच्छे होते हैं। ¾ इंच से १½ इंच के कोयले भी इस्तेमाल हो सकते हैं। इससे छोटे टुकड़े भी विशेष जनित्रों में प्रयुक्त हो सकते हैं। पर गैस उनसे अपेक्षया कम बनती है। ⅛ इंच के अथवा इससे छोटे टुकड़े भी अल्प मात्रा में रह सकते हैं। अधिक मात्रा में ऐसे कोयले के रहने से कुछ कठिनताएं हो सकती हैं।

जल

कोयले में जल की मात्रा अधिक नहीं रहनी चाहिए। जल से वास्तविक उत्पादन में कोई त्रुटि नहीं होती, पर जल के निकलने में अधिक जलावन खर्च होता है। गैस में जल-वाष्प की उपस्थिति से गैस की ज्वाला का ताप कम हो जाता है।

वाष्पशील अंश

वाष्पशील अंश के अधिक रहने से अलकतरा और जल की मात्रा बढ़ जाती है। यदि स्वच्छ गैस चाहते हैं तो उसके लिए अंथ्रेसाइट कोयला श्रेष्ठ है। जिस कोयले में वाष्पशील अंश ४० प्रतिशत के लगभग हो वह उत्पादक गैस के लिए अच्छा होता है।

राख

कुछ कोयले की राख निम्नताप प्रायः ११००° से० पर पिघलती है और कुछ की राख ऊँचा ताप, प्रायः १४००° से० या इससे ऊपर, पिघलती है। अवकरण वाता-

वरण का द्रवणताप नीचा होता है और आक्सीकरण-मण्डल का ताप ऊँचा। दोनों के तापों में २००° से० का अन्तर रहता है। राख के द्रवण से प्रझाम बनता है। कई कारणों से प्रझाम बनता है। राख का द्रवण एक कारण है। अतः कोयले में निम्न-ताप पर द्रवण होनेवाली राख नहीं रहनी चाहिए।

प्रझाम से कई कठिनताएँ होती हैं। कोयला उसमें फंस जाता है। प्रझाम से ईंधन की एकरूपता नष्ट हो जाती है। चूल्हे के ईंट-आस्तर को भी क्षति पहुँचती है। वही कोयला उत्पादक गैस के लिए श्रेष्ठ होता है जिसमें राख की मात्रा १० प्रतिशत से कम हो और राख का द्रवणांक ऊँचा, १४००° से० या इससे ऊपर हो।

गन्धक

कोयले में गन्धक १ से २ प्रतिशत रहता है। अधिकांश गन्धक हाइड्रोजन सल्फाइड और कुछ कार्बन-यौगिकों के रूप में निकल जाता है। उत्पादक गैस में प्रति १०० घन फुट गैस में तीन से पाँच ग्राम गन्धक रहता है। हाइड्रोजन सल्फाइड को लोहे के आक्साइड के बक्स द्वारा निकाल सकते हैं।

उत्पादक गैस के निर्माण के अनेक संयन्त्र बने हैं। एक ऐसा संयन्त्र वेलमैन मिकेनिकल गैस-प्रोडयूसर (Wellman Mechanical Gas-Producer) और दूसरा मरिशका प्रोड्युसर (Marishka Producer) है। पहले में उत्पादक ८ से ११ फुट अभ्यन्तर व्यास का होता है जिसमें प्रति दिन ५५ टन कोयला प्रयुक्त हो सकता है। ऐसे संयन्त्र में लगभग ८० लाख घनफुट गैस प्रति दिन बन सकती है। ऐसे उत्पादक में ३/१६ इंच से १½ इंच के टुकड़े इस्तेमाल हो सकते हैं।

मरिशका उत्पादक में केवल अंथ्रेसाइट या कोक इस्तेमाल होता है। इसमें १¼ इंच से २¼ इंच के कोयले प्रयुक्त हो सकते हैं।

जल-गैस

जल-गैस के उपयोग अनेक उद्योग-धन्धों में हैं। कोयला-गैस के साथ मिलाने के लिए भी जल-गैस का उपयोग होता है। जल-गैस से आज मेथिल अल्कोहल बनता है। एक समय केवल काष्ठासुत अम्ल से ही मेथिल अलकोहल प्राप्त होता था। जल-गैस शुद्ध निकेल के निर्माण में भी प्रयुक्त होती है।

सबसे सस्ता हाइड्रोजन आज जल-गैस से तैयार होता है। ऐसा ही हाइड्रोजन अमोनिया के निर्माण में प्रयुक्त होता है। सिन्दरी के रासायनिक खाद के कारखाने में जल-गैस के हाइड्रोजन से ही अमोनिया तैयार होता है। कोयले से पेट्रोलियम के निर्माण में जल-गैस से हाइड्रोजन प्राप्त होता है। अलकतरे के हाइड्रोजनीकरण से

भी पेट्रोल प्राप्त हो सकता है। यह हाइड्रोजन भी जल-गैस से प्राप्त होता है। जर्मनी में प्रतिदिन १०० लाख घन फुट जल-गैस फिशर-ट्रौप्श विधि से पेट्रोलियम के निर्माण में एक समय लगती थी।

जल-गैस तैयार करने के संयन्त्र प्रायः वैसे ही होते हैं जैसे उत्पादक गैस के निर्माण में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ भी तप्त कोयले पर वायु और भाप पारित होते हैं। पर ये दोनों साथ-साथ पारित नहीं होते जैसे उत्पादक गैस के निर्माण में होता है। वरन् बारी-बारी से पारित होते हैं। तप्त कोयले पर पहले वायु पारित होती है। इससे तप्त कोयले का ताप और ऊँचा उठता है। जब ताप पर्याप्त ऊँचा उठ जाता तब वायु का प्रवेश बन्द कर भाप को पारित किया जाता है। भाप के प्रवेश से ताप तत्काल गिर जाता, पर पुनः ऊपर उठता है। कोयले पर भाप की क्रिया से जल-गैस बनती है। जल-गैस में प्रधानतया कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन रहते हैं। अल्प मात्रा में नाइट्रोजन और कार्बन डाइ-आक्साइड भी रहते हैं।

जिस समय तप्त कोयले पर वायु पारित होती है उसे 'बहाव काल' (flow period) कहते हैं। यह बहाव काल १ से २ मिनट रहता है। फिर जब भाप पारित होती है तब उसे 'कार्य काल' (run period) कहते हैं। कार्य-काल तीन से पाँच मिनट रहता है। यह क्रिया एक के बाद दूसरी बारी-बारी से होती रहती है। बहाव के बाद कार्य और कार्य के बाद बहाव चलता रहता है। जनित्र में समय-समय पर कोक डाला जाता है और फिर वही उपक्रम चलता रहता है।

इस प्रकार से प्राप्त जल-गैस का कलरी-मान उत्पादक गैस के कलरी-मान से ऊँचा होता है। इसमें नाइट्रोजन और कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा बड़ी अल्प रहती है।

साधारणतया जल-गैस के निर्माण में कोक प्रयुक्त होता है। बिटुमिनी कोयले का कहीं-कहीं उपयोग हुआ है। ग्रेट बिटेन में अंथ्रेसाइट का भी उपयोग हुआ है।

जल-गैस का निर्माण उत्पादक गैस के निर्माण के समान ही एक संयन्त्र में होता है। यहाँ जनित्र इस्पात का बेलनाकार ढाँचा होता है। इस पर अग्नि मिट्टी का आस्तर लगा रहता है। पेंदे में जाली होती है। शिखर से कोक डाला जाता है। शिखर से ही गैस के निकास का नल रहता है। वायु और भाप नीचे से प्रवेश करते हैं। राख निकालने का मार्ग भी पेंदे में ही होता है। जाली के ऊपर प्रझाम (clinker) निकालने की द्वारी होती है। जनित्र का व्यास लगभग ३½ फुट से लेकर १५ फुट तक का हो सकता है। प्रतिदिन १० लाख घनफुट गैस के निर्माण में १६ से १८ टन कोयला लगता है।

ईंधन तल को पहले १५००° से १५६०° से० तक गरम करते हैं। वायु-वात से तल को गरम करते हैं। जब आवश्यक ताप पहुँच जाता तब वायु का प्रवेश रोककर भाप को प्रविष्ट कराते हैं। इससे ताप गिर जाता है। गैस में कार्बन डाइ-आक्साइड का अनुपात बढ़ जाता है। अब भाप को रोककर फिर वायु को पारित करते हैं। चार से पाँच मिनट भाप पारित होता है और एक से दो मिनट वायु।

कोक में राख की मात्रा १० प्रतिशत से कम रहनी चाहिए। यदि मात्रा अधिक हो तो प्रझाम बन कर कठिनताएँ उपस्थित हो सकती हैं।

कोक एक ही विस्तार का रहना चाहिए। २ से २½ इंच का टुकड़ा साधारणतया अच्छा होता है। कोक में गन्धक की मात्रा कम रहनी चाहिए।

कारब्युरेटेड जल-गैस

जल-गैस के साथ यदि हाइड्रोकार्बन गैस मिली हो तो ऐसी गैस को कारब्युरेटेड जल-गैस कहते हैं। हाइड्रोकार्बन गैस पेट्रोलियम तेल के भंजन से प्राप्त होती है। जल-गैस के संयन्त्र के साथ पेट्रोलियम तेल के भंजन का भी संयन्त्र लगा रहता है।

हाइड्रोकार्बन-गैस की विभिन्न मात्रा से गैस का कलरी-मान बदल जाता है। इच्छानुसार ऊँचे कलरी-मान की मिश्रित गैस तैयार की जा सकती है।

कोयला-गैस में मिलाने के लिए जल-गैस के स्थान में अब कारब्युरेटेड जल-गैस का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। सन् १९४५ ई० में प्रायः १०२३ लाख गैलन पेट्रोलियम केवल कारब्युरेटेड जल-गैस तैयार करने में खर्च हुआ था।

कारब्युरेटेड जल-गैस के जो संयन्त्र बने हैं, उनमें प्रतिदिन १० लाख से ४० लाख घनफुट गैस तैयार हो सकती है। ऐसे संयन्त्र में एक जनित्र होता है और उसके साथ कारब्युरेटर अथवा तेल-भंजक कक्ष लगा होता है। यह कारब्युरेटर भी जनित्र-सा ही बेलनाकार ढाँचा होता है जो ईंटों में जड़ा होता है।

छब्बीसवाँ अध्याय

हलका तेल

कोक के निर्माण में जो गैसें प्राप्त होती हैं उनमें लगभग एक प्रतिशत हलका (लघु) तेल रहता है। इस तेल का तापन-मान गैसों के तापन-मान से बहुत ऊँचा, लगभग पाँच गुना, अधिक होता है। यदि गैसों को घरेलू-तापन और प्रकाश के लिए प्रयुक्त करना है तो लघु तेल को निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती और अनेक कारखानों में यह तेल निकाला नहीं जाता। पर यदि इस्पात के निर्माण के लिए कोक तैयार करना हो तो वहाँ लघु-तेल जरूर निकाला जाता है।

लघु-तेल हलका पीले रंग का चलिष्णु तेल है जो २००° से० के नीचे ताप पर ही पूर्णतया आसुत होता है। ऐसे तेल का विशिष्टभार ०·८५५ और ०·८८० के बीच होता है।

इस तेल में प्रधानतया बेंज़ीन, टोल्विन और ज़ाइलिन रहते हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य कार्बनिक यौगिक रहते हैं और कुछ की मात्रा तो बड़ी अल्प रहती है। कुछ हाइड्रोकार्बन तो ऐसे हैं जिनकी पहचान अभी तक नहीं हो सकी है। हाइड्रोकार्बनों में संतृप्त, असंतृप्त और सौरभिक तीनों प्रकार के हाइड्रोकार्बन रहते हैं। गन्धक और नाइट्रोजन के कुछ यौगिक भी इस तेल में रहते हैं। हाइड्रोकार्बनों में निम्नलिखित हाइड्रोकार्बन निश्चित रूप से पाये गये हैं—

नार्मल पेण्टेन	बेंज़ीन
साइक्लो-पेण्टेन	टोल्विन
नार्मल हेक्सेन	एथिल-बेंज़ीन
२—मेथिल हेक्सेन	ट्राइ मेथिल बेंज़ीन
साइक्लो हेक्सेन	टेट्रा मेथिल बेंज़ीन
नार्मल डीकेन	अर्थो-जाइलिन
१—ब्युटीन	मिटा-जाइलिन
ब्युटाडीन	पारा-जाइलिन

एमिलीन
साइक्लो-पेण्टीन
१—हेक्सीन
२—हेक्सीन
हेक्साडीन
हेप्टीन
नार्मल प्रोपील-बेंजीन
एथिलटोल्विन
साइमीन
स्टाइरीन
इण्डीन

गन्धक यौगिकों में निम्नलिखित यौगिक पाये गये हैं—

हाइड्रोजन सल्फ़ाइड
कार्बोनील सल्फ़ाइड
मेथिल मरकैप्टन
डाइमेथिल सल्फ़ाइड
कार्बन डाइ-सल्फ़ाइड
थायो-फीनोल
डाइमेथिल-थायोफीन
ट्राइमेथिल-थायोफीन
टेट्रामेथिल-थायोफीन

नाइट्रोजन यौगिकों में हाइड्रोजन सायनाइड, मेथिलपिरिडीन पाये गये हैं। आक्सिजन यौगिकों में फीनोल और क्रीसोल पाये गये हैं।

लघु तेल की मात्रा और संघटन बहुत कुछ कार्बनीकरण की परिस्थिति, कोयले के किस्म और लघु तेल के प्राप्त करने की रीति पर निर्भर है।

लघु तेल का प्रत्यादान

गैस से लघु तेल निकालने की तीन रीतियाँ हैं—

(१) ऊँचे क्वथनांकवाले तेल द्वारा अवशोषण से
(२) सरन्ध्र ठोस द्वारा अवशोषण से
(३) संपीडन और शीतन से

पहली रीति का व्यवहार अधिक व्यापक है। इसके लिए मार्जक प्रयुक्त होता है। मार्जक बेलनाकार इस्पात का मीनार होता है जिसमें लकड़ी अथवा इस्पात का टट्टर भरा रहता है। नीचे से गैस प्रविष्ट होती और ऊपर से 'धावन तेल' गिरता है।

साधारणतया तीन मार्जक रहते हैं। मार्जक की ऊँचाई ७० से १०० फुट होती है। मार्जक द्वारा ८७ से ९५ प्रतिशत लघुतेल निकलता है। मार्जक का ताप साधारणतया १५ और ३०° से० के बीच रहने से अवशोषण महत्तम होता है। गैस के ताप से 'धावन तेल' का ताप २° ऊँचा रहना अच्छा होता है।

धावन तेल

धावन तेल में निम्नलिखित गुण होना चाहिए—

धावन तेल

(१) की अवशोषण क्षमता उत्कृष्ट रहनी चाहिए;

(२) का वाष्प दबाव कम रहना चाहिए;

(३) की श्यानता कम रहनी चाहिए;

(४) का विशिष्टभार जल के विशिष्टभार से भिन्न रहना चाहिए ताकि उन्हें सरलता से पृथक् किया जा सके;

(५) का मूल्य कम रहना चाहिए;

(६) सरलता से प्राप्य होना चाहिए;

(७) का जल के साथ पायस न बनना चाहिए;

(८) में नैफ्थलीन सदृश ठोस पदार्थ नहीं रहना चाहिए;

(९) में कोई अन्य पदार्थ रहे तो वह स्थायी होना चाहिए।

'धावन तेल' के रूप में पेट्रोलियम और क्रिग्रोसोट तेल के प्रभाग प्रयुक्त होते हैं। क्रिग्रोसोट तेल की अवशोषण-क्षमता पेट्रोलियम तेल से बहुत अधिक होती है। पर क्रिग्रोसोट तेल महंगा पड़ता है। अंथ्रेसीन तेल, क्रीसोल, और अलकतरे के तेल आदि अन्य विलायकों का भी सुझाव दिया गया है।

पेट्रोलियम धावन तेल के गुण इस प्रकार होते हैं—

विशिष्टभार (१५·५° से० पर)	०·८५५ और ०·८८० के बीच
दमकांक	१३८° से० या ऊपर
श्यानता (से बोल्टरीति)	३८° से० पर ६५ सेकंड से अधिक नहीं
मेघपरीक्षण	१° से० से ऊपर नहीं
जल के साथ पायस (इमलशन)	२५° से० पर १०० सी० सी० जल को १०० सी० सी० तेल के साथ ३० सेकंड तक मिलाकर रखने से १० मिनट में ९५ सी० सी० पृथक् हो जाना चाहिए।
आसवन सीमा	२५०° से० के नीचे ५ प्रतिशत से अधिक नहीं और ३००° के नीचे कम से कम ९० प्रतिशत आसुत हो जाना चाहिए।

ओलिफिन	१५ प्रतिशत से अधिक नहीं।

क्रिग्रोसोट तेल के लक्षण ये हैं—

विशिष्टभार (१५·५° से०)	१·०३५
आसवन प्रारम्भ होता है	२००–२२०° से०
५० प्रतिशत से ऊपर	२५०° से०
८० प्रतिशत से ऊपर	३००° से०
जल	लेशमात्र
नैफ्थलीन	३००° से० पर जो आसुत प्राप्त होता है उससे ७ प्रतिशत से अधिक ठोस नहीं पृथक् होना चाहिए।

मार्जक से निकलने पर 'धावन तेल' में लगभग ३ प्रतिशत हलका तेल रहता है। इसे 'बेंजीनधारी' धावन तेल कहते हैं। इस तेल को १०० से १४०° से० तक पूर्व-तापन कर फिर भाप से आसुत करते हैं। यह आसवन 'धावन तेल' भभके में होता है। ऐसे भभके में इस्पात के पट्ट होते हैं। शिखर के निकट से पट्ट में तेल प्रविष्ट होता और पेंदे से भाप प्रविष्ट होती है। भाप हलके तेल को लेकर ऊपर उठती है और धावन तेल नीचे गिरता है। प्रति गैलन धावन तेल के लिए लगभग ०·६ से ०·७ पाउण्ड भाप खर्च होती है। धावन तेल में लगभग ०·२ प्रतिशत हलका तेल रह जाता है। हलके तेल को पूर्णतया निकाल डालने में भाप की मात्रा बहुत अधिक लगती है।

हलके तेल के निकल जाने पर धावन तेल को ठंढा कर और यदि कुछ पानी इकट्ठा हो तो उसे निकाल कर उसे फिर मार्जक में इस्तेमाल करते हैं। पानी निकालने के लिए धावन तेल को निथारक में इकट्ठा करते हैं। निथारक लम्बे-लम्बे आयताकार टंकियाँ होती हैं जिनमें एक छोर से तेल प्रविष्ट होता और दूसरे छोर से ऊपर के तल से तेल और नीचे के तल से पानी अलग-अलग निकलता है। नये किस्म के निथारक छिछली गोल टंकियाँ होती हैं जिनके केन्द्र में तेल प्रविष्ट होता और धारण के ऊपर परिणाह से तेल निकलता है। केन्द्र के पेंदे से पानी निकलता है। पानी और तेल के बीच कर्कट का एक स्तर बनता है जिसे समय-समय पर निकालने की ज़रूरत पड़ती है। बेंजीन मुक्त 'धावन तेल' के ठंढा करने के लिए नल लगे रहते हैं जिस पर पानी टपकता रहता है।

भाप और हलके तेल का वाष्प भभके के शिखर से निकल कर संघनित्र में जाता है जहाँ संघनित हो दो स्तरों में निथारक में इकट्ठा होता है।

धावन तेल

धावन तेल में हलके तेल के सिवाय कुछ अलकतरेवाले पदार्थ, असंतृप्त कार्बन-यौगिकों, हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और अन्य गन्धक यौगिकों और फीनोल का भी अवशोषण होता है। इससे धावन तेल में गोंद सदृश पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती, विशिष्ट भार, अणुभार और श्यानता बढ़ जाती है। धावन तेल की अवशोषण क्षमता इससे घट जाती है। धावन तेल जब संतृप्त हो जाता तब अवक्षेप निकलना शुरू होता है। यह अवक्षेप धूलों के साथ मिलकर कर्कट बनता है। यह टंकियों और निथारकों में इकट्ठा हो जाता है। ऐसा तेल पायस भी बड़ी सरलता से बनता है। यह पायस कठिनता से टूटता है। कर्कट में गोंद, तेल, धूल और जल रहते हैं।

कर्कट को नष्ट करने के लिए इसे एक टंकी में इकट्ठा करते हैं। उसे फिर भाप से उबालते हैं। पायस टूट कर तेल, धूल और अलकतरे में अलग होकर निथार से निकाल लेते हैं। जल और मल फेंक दिया जाता है।

निथरे हुए तेल को आसवन से पुनर्जीवित करते हैं। तेल आसुत हो निकल जाता और अन्य पदार्थ पात्र में रह जाते हैं। इसके लिए विशेष प्रकार के भभके बने हुए हैं। अमेरिकी कौपर्स कम्पनी ऐसा भभका बनाती है।

धावन तेल का पुनर्जीवितकरण अग्नि-आसवन और शून्य आसवन दोनों से हो सकता है। कभी-कभी शून्य-आसवन इसलिए अच्छा होता है कि इसमें रेज़िन का विच्छेदन कम होता है। इन दोनों में एक ही प्रकार के भभके प्रयुक्त होते हैं।

रेज़िन वाले पदार्थों का बनना कोई प्रति-आक्सीकारक डालकर बहुत कुछ रोका जा सकता है। कठोर काष्ठ के अलकतरे का आसुत क्रियोसोट प्रति-आक्सीकारक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। समय-समय पर इसे डालते हैं ताकि धावन तेल में इसकी मात्रा ०·५ प्रतिशत बनी रहे। तेल से निकले कर्कट को केन्द्रापसारक से निकाल लेते हैं।

ठोस द्वारा अवशोषण

सक्रियित कार्बन अथवा सिलिका-जेल द्वारा गैस के हलके तेल को अवशोषित कर निकाल सकते हैं। इन अवशोषकों को टंकियों में रखते हैं। टंकियों की संख्या तीन से पाँच रहती है। इन टंकियों में गैस पारित होती है। जब पहली टंकी तेल से संतृप्त हो जाती हैं तब उसे निकाल कर उसके स्थान में दूसरी टंकी रख दी जाती है, सक्रियित कार्बन से हलके तेल का १५ से ३० प्रतिशत निकल जाता है। ३० से ४० मिनट तक गरम करने और भाप देने से हलका तेल निकल जाता है।

धीरे-धीरे कार्बन की अवशोषण क्षमता कम होती जाती है और उसके रन्ध्र रेज़िन से बन्द हो जाते हैं। १२०० से १५०० बार उपयोग करने के बाद उसकी अव-शोषण-क्षमता इतनी कम हो जाती है कि उसे फेंक देना पड़ता है। सिलिका-जेलों को जलाकर उसका पुनर्जीवितकरण बार-बार कर सकते हैं।

अवशोषक से जो हलके तेल का वाष्प और भाप निकलती है उसे संघनित कर निथारने से पृथक् कर लेते हैं। इससे ९० प्रतिशत तेल निकल सकता है। ७० प्रतिशत कार्बनिक गन्धक भी इससे निकल जाता है।

संपीडन और शीतन

गैस के संपीडन और शीतन से हलके तेल का संघनन हो सकता है। सामान्य ताप (२०° से०) पर लगभग ११ वायुमण्डल के दबाव से बेंज़ीन संघनित होता है। यदि दबाव की वृद्धि और ताप का गिरना साथ-साथ चलता रहे तो संघनन अधिक दक्षता के साथ होता है और हलका तेल संघनित हो शीघ्र निकल जाता और निकाल कर संगृहीत कर लिया जाता है। इस रीति का उपयोग अनेक कारखानों में हुआ है। संपीडन के उपकरण कुछ महंगे होते हैं।

हलके तेल का परिष्कार

हलके तेल में प्रधानतया बेंज़ोल, टोलुओल और ज़ाइलोल होते हैं। इनके रासा-यनिक नाम क्रमशः बेंज़ीन, टोल्विन और ज़ाइलीन हैं। हलके तेल से मोटर बेंज़ोल और विलायक नैफ्था भी प्राप्त होता है।

हलके तेल के परिष्कार के लिए तेल का आसवन करते हैं। भिन्न-भिन्न तापों पर भिन्न-भिन्न प्रभाजकों को इकट्ठा करते हैं। इन प्रभाजकों से फिर सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल से उपचारित कर अपद्रव्यों, विशेषतः असंतृप्त हाइड्रोकार्बनों और गन्धक यौगिकों को निकाल लेते हैं।

बेंज़ीन का क्वथनांक		८०° से०
टोल्विन	,,	११०° से०
ज़ाइलीन	,,	१३८–१३९° से०

क्वथनांकों में प्रायः ३०° से० का अन्तर है। इससे प्रभाजक आसवन से उनका पृथक् होना सम्भव है और ऐसा करते हैं। यदि क्वथनांक का अन्तर कम होता तो पृथक् करना सम्भव नहीं होता। मोटर बेंज़ोल में इन यौगिकों के मिश्रण रहते हैं। अधिक ऊँचे ताप पर उबलनेवाला अंश विलायक नैफ्था होता है।

हलके तेल का आसवन प्रभाजक स्तम्भ लगाकर करते हैं। यदि स्तम्भ अधिक दक्ष है तो विभिन्न अवयवों का पृथक्करण सरलता से हो जाता है। हलके तेल के परिष्कार के वस्तुतः तीन क्रम होते हैं। पहले क्रम में हलके तेल का आसवन कर तीन प्रभाजकों में प्राप्त करते हैं। भभके में कुछ अवशेष बच जाता है। दूसरे क्रम में प्रभाजकों को सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल के साथ उपचारित कर फिर चूने के साथ उपचारित करते हैं। इससे क्रियाफल उदासीन हो जाता है। उसे फिर जल से धोकर अवशिष्ट चूने को निकाल लेते हैं। तीसरे क्रम में धोये तेल का फिर प्रभाजक आसवन या प्रभाजन करते हैं।

मोटर बेंज़ोल

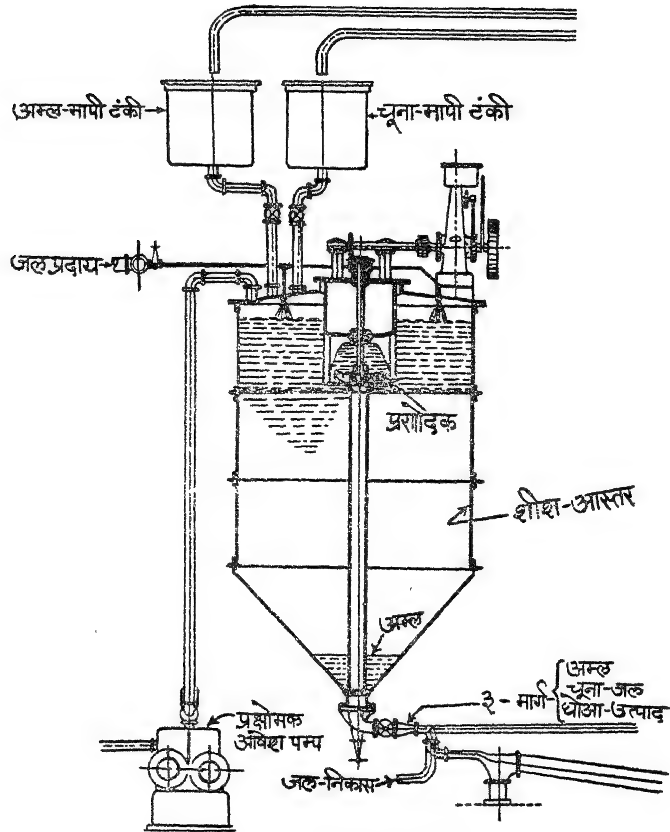
मोटर बेंज़ोल में बेंज़ीन के सिवाय कुछ टोल्विन रहता है। अल्प मात्रा में असंतृप्त हाइड्रोकार्बन भी रहते हैं। असंतृप्त हाइड्रोकार्बन आक्सिजन के संसर्ग से धीरे-धीरे पुरुभाजित हो गोंद और रेज़िन बनते हैं। मोटर बेंज़ोल में गोंद और रेज़िन का रहना ठीक नहीं है। इससे रंग आ जाता है। कारब्युरेटर के रन्ध्रों को ये बन्द कर दे सकते हैं। एक समय सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा असंतृप्त हाइड्रोकार्बन निकाले जाते थे, पर आज कल यह रीति प्रयुक्त नहीं होती। इसमें खर्च बढ़ जाता और मोटर बेंज़ोल की मात्रा कम हो जाती है। गोंद बनना रोकने के लिए आजकल मोटर बेंजोल में अल्पमात्रा में किसी निरोधक को डाल देते हैं। निरोधक ऐसा होता है जो आक्सिजन को निकालकर गोंद और रेज़िन का बनना रोकता है। निरोधक के रूप में पाराफेमिलीन डाइ ऐमिन, अल्फ़ानैफ्थोल, पाइरोगैलोल, मोनोबेंज़ील, पारा-अमिनो फीनोल (बी० ए० पी०) इस्तेमाल होते हैं। बी० ए० पी० हलका कपिल (भूरे) वर्ण का चूर्ण होता है। यह ८४ और ९०° से० के बीच पिघलता है। यह मेथिल अल्कोहल में घुलता है। इसका मेथिल अल्कोहलीय विलयन इस्तेमाल हो सकता है। इसकी बड़ी अल्पमात्रा, ०·००१ से ०·००५ प्रतिशत, पर्याप्त होती है।

मोटर बेंज़ोल का प्रति-आघात मान ऊँचा होता है। पेट्रोल में इसके डालने से पेट्रोल की औक्टेन संख्या ऊँची हो जाती है। १५ से २० प्रतिशत यह पेट्रोल में डाला जाता है।

अम्ल-धावन

हलके तेल के परिष्कार के लिए उसे अम्ल के साथ उपचारित करते हैं। इसे अम्ल-धावन कहते हैं। अम्लों में साधारणतया सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल का व्यवहार होता है। जिस उपकरण में यह परिष्कार होता है उसे क्षोभक (agitator)

कहते हैं। क्षोभक ऊर्ध्वाधार बेलनाकार पात्र होता है। इसका पेंदा शंक्वाकार होता है। शंकु के अन्तिम छोर में एक कपाट (valve) होता है जिससे पात्र का द्रव निकाला जाता है। पात्र में ढक्कन होता है। ढक्कन में प्रक्षुब्ध करने का साधन लगा रहता है। प्रक्षुब्ध करने के लिए नोदक (propeller) लगे रहते हैं। क्षोभक



चित्र ५७—हलके तेल का क्षोभक

के पेंदे से अम्ल को उठाकर डालने के लिए पम्प रहता है। क्षोभक इस्पात और ढालवाँ लोहे का बना होता है। यदि अम्ल तनु हो तो क्षोभक में सीस धातु का आस्तर लगा रहता है ताकि लोहा उससे आक्रान्त न हो। क्षोभक साधारणतया इतना बड़ा होता है कि उसमें एक बार ३००० से १०,००० गैलन हलका तेल अँट सके।

परिष्कार के लिए जो सलफ्यूरिक अम्ल प्रयुक्त होता है उसका सान्द्रण ९३ प्रतिशत रहता है। कुछ यन्त्रों में सधूम सलफ्यूरिक अम्ल भी प्रयुक्त होते हैं। सधूम सलफ्यूरिक अम्ल का उपयोग तभी होता है जब थायोफीन को पूर्णतया निकालने की आवश्यकता पड़ती है। प्रति गैलन तेल के लिए ०·४ से० ०·८ पाउण्ड ऐसा अम्ल खर्च होता है। अम्ल को एक बार में न डालकर दो या दो से अधिक बार में डालना अच्छा होता है। पहली बार थोड़ा अम्ल डालकर पानी को निकाल लेते हैं। ऐसा करने से दुबारा डाला अम्ल तनु नहीं होता और तब अम्ल अपद्रव्यों को पूर्णतया निकाल देने में अधिक समर्थ होता है। अम्ल के थोड़ा भी तनु हो जाने से अपद्रव्यों के निकालने की क्षमता बहुत कुछ घट जाती है। पहली बार में कुछ गन्धक के और असंतृप्त यौगिक ही आक्रान्त होते हैं। अधिकांश अपद्रव्य बाद के धावन से ही निकलते हैं।

सलफ्यूरिक अम्ल की अपद्रव्यों पर की क्रिया बड़ी पेचीली होती है। कुछ असंतृप्त यौगिक सलफ्यूरिक अम्ल के साथ मिलकर सल्फ़ेट या सल्फोनिक अम्ल बनकर निकल जाते हैं। कुछ अपद्रव्य आक्सीकृत हो निकल जाते हैं। सलफ्यूरिक अम्ल यहाँ स्वयं अवकृत हो सलफर डाइ-आक्साइड बनता है जो गैस के रूप में निकल जाता है। कुछ यौगिकों का सलफ्यूरिक अम्ल की उपस्थिति में पुरुभाजन होता है। इससे गोंद और रेजिन बनते हैं। कुछ यौगिक बेंज़ीन, टॉल्विन और ज़ाइलीन के साथ मिलकर अलकिलित यौगिक बनते हैं। गन्धक यौगिकों के साथ भी क्रिया पेचीली होती है। रेज़िनवाले पदार्थ हलके तेल में कुछ घुलकर तेल को रंगीन बना देते हैं। अधिकांश रंगवाले पदार्थ अवपंक के रूप में निकल जाते हैं। अवपंक में कुछ अम्ल और कुछ तेल भी बंधा रहता है। सान्द्र अम्ल से बेंज़ीन, टॉल्विन और ज़ाइलीन बड़ी अल्प-मात्रा में और बहुत धीरे-धीरे आक्रान्त होते हैं। ताप और संस्पर्श काल की वृद्धि से प्रतिक्रिया की गति बढ़ती है। ऐसे परिष्कार में साधारणतया हल्के तेल की ४ से ६ प्रतिशत कमी हो जाती है। यदि असंतृप्त यौगिकों की मात्रा अधिक हो तो कमी और अधिक हो सकती है।

धोने का काम सामान्य ताप पर होता है। जाड़े में अथवा शीत देशों में उष्ण करने की आवश्यकता पड़ती है। अम्ल और जल के बीच की क्रिया से ऊष्मा का निष्कासन होता है और उससे क्षोभक का ताप १० से ३०° से० तक उठ सकता है। ताप के ऊँचे होने से प्रतिक्रिया की गति बढ़ जाती है और धावन भी अच्छा होता है। सलफ्यूरिक अम्ल और बेंज़ीन, टॉल्विन और ज़ाइलीन के बीच प्रतिक्रिया भी बढ़ जाती है। इससे हलके तेल की प्राप्ति में कमी भी हो जाती है।

धोने का काम साधारणतया इस प्रकार करते हैं। हलके तेल में जितना सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल प्रयुक्त करना है उसका २५ प्रतिशत डालकर मिश्रण को ३० से ६० मिनटों तक प्रक्षुब्ध कर निथरने के लिए ३० मिनट तक छोड़ देते हैं। पेंदे में अवपंक बैठ जाता है। उसे निकाल कर तब शेष अम्ल को डालकर एक घण्टा तक प्रक्षुब्ध करते हैं। फिर एक घण्टा निथरने के लिए छोड़ देते हैं। फिर अवपंक को निकाल लेते हैं। पर सब तेल के साथ अम्ल डालकर उपचारित करने के पूर्व तेल के थोड़े नमूने को लेकर प्रयोगशाला में प्रारम्भिक परीक्षण कर देख लेते हैं।

प्रारम्भिक परीक्षण के लिए तेल का १०० सी० सी० लेकर आसवन करते हैं। प्रथम ५ सी० सी० आसुत को छोड़ देते, दूसरे ६० सी० सी० आसुत को लेकर उसमें ९३ प्रतिशत सलफ्यूरिक की निश्चित मात्रा डालकर उसे धोते हैं। पेंदे में अम्ल का जो स्तर बैठ जाता उसके रंग का परीक्षण करते हैं। यदि रंग बहुत गाढ़ा है तो अपद्रव्य पर्याप्त मात्रा में नहीं निकले हैं। ऐसी दशा में और अम्ल डालकर धोना तब तक जारी रखते हैं जब तक धोये तेल का रंग हलका आवश्यक रंग का नहीं हो जाता।

जब तेल धो लिया जाता है तब उसमें अम्लों की कुछ छोटी-छोटी बूँदें, कुछ घुला हुआ सल्फर डाइ-आक्साइड और कुछ अन्य पदार्थ रहते हैं। इसे तब कास्टिक सोडा के ५ से १० प्रतिशत विलयन अथवा चूने के दूध (एक लिटर में ४० ग्राम चूना, CaO) से उदासीन बनाते हैं और क्षयित क्षार को निकालकर फिर तेल का आसवन करते हैं। प्रति गैलन तेल के धोने में ०.०६ से ०.१२ पाउण्ड कास्टिक सोडा लगता है।

इस रीति में अनेक सुधार हुए हैं। एक सुधार को उफर (Ufer) विधि कहते हैं। इसमें हलका तेल सलफ्यूरिक अम्ल से वैसा ही धोया जाता है जैसा ऊपर वर्णित है। दूसरे धावन के बाद, पर अवपंक के बैठ जाने के पूर्व, उसमें एक निश्चित मात्रा में पानी डालते हैं। पानी की मात्रा साधारणतया सलफ्यूरिक अम्ल की मात्रा (आयतन में) की दुगुनी होती है। पानी डालकर प्रक्षुब्ध कर बैठ जाने के लिए लगभग एक घंटा छोड़ देते हैं। मिश्रण तीन स्तरों में बँट जाता है। सब से ऊपर का स्तर तेल का होता है। उसके नीचे का स्तर लाल रंग का पतले हलके अम्ल का अल्प अवपंक के साथ मिला हुआ होता है। पेंदे का तीसरा स्तर अवपंक का होता है। इस विधि में लाभ यह है कि अवपंक और अम्ल दो स्तरों में बँट जाते हैं। इससे अम्ल का फिर उपयोग हो सकता है। यहाँ अवपंक में बड़ा अल्प तेल भी बंधा रहता है। तेल में भी कुछ अवपंक घुलकर रह सकता है, पर आसवन पर आसवन पात्र में अवपंक रह जाता है। इससे आसवन-पात्र में जो अवशेष रह जाता है उसमें अम्ल के न रहने से फेंक देने में कोई हानि नहीं है।

यदि हलके तेल को पूर्व-आसवन के पहले अम्ल से उपचारित करते हैं तो तेल के असंतृप्त और गन्धक यौगिक भी आक्रान्त होते हैं। इससे अम्ल अधिक खर्च होता है और तेल की मात्रा घट जाती है।

धोये तेल का प्रभाजन

अब धोये तेल का प्रभाजन करते हैं। प्रभाजन से तेल शुद्ध प्रभाजकों में विभक्त होता है। जो अंश शुद्ध नहीं होता उसे दूसरे तेल में डालकर उसका फिर आसवन करते हैं।

आसवन या तो अलग-अलग थोक में करते हैं अथवा अविराम उपकरण में। थोक में आसवन के लिए केटली (Kettle) का उपयोग होता है। केटली में भाप पकी कुंडली, बुलबुला-पट्ट, प्रभाजक स्तम्भ, संघनित्र, निथारक और तीन संग्राही लगे रहते हैं। संग्राही में जो तेल इकट्ठा होता है उसका परीक्षण समय-समय पर करते हैं।

धोये तेल के आसवन के समय गन्धक यौगिकों से कभी-कभी सल्फर डाइ-आक्सा-इड गैस निकलती है। आसवन के धातु के पात्र इस गैस से आक्रान्त होते हैं। इसका परीक्षण ताँबे के स्वच्छ तल से करते हैं। यदि तेल में गन्धक का यौगिक है तो ताँबे का स्वच्छ तल धुँधला हो जाता है। यदि ऐसा हो तो कास्टिक सोडा का तनु विलयन डालकर गन्धक के यौगिकों को निकाल लेते हैं। यदि हलके तेल की मात्रा अल्प हो तो यह रीति सुविधाजनक होती है, पर यदि तेल की मात्रा अधिक हो तो अविराम आसवन अधिक सुविधाजनक होता है।

अविराम आसवन के भभके में दो श्रेणियों के बुलबुला पट्टवाले स्तम्भ रहते हैं। पहली श्रेणी में बिना धोये हलके तेल का आसवन होता है। इससे मोटर बेंज़ोल, अशुद्ध विलायक नैफ्था और अवशेष प्राप्त होते हैं। दूसरी श्रेणी में मोटर बेंज़ोल का आसवन होकर व्यापार का बेंज़ोल, टोलुओल और ज़ाइलोल प्राप्त होते हैं। दोनों श्रेणियों के स्तम्भों में संघनित्र, पम्प और संग्राही रहते हैं। प्रत्येक स्तम्भ के पेंदे में भाप-कुण्डली लगी रहती है।

आजकल ऐसे संयन्त्र बने हैं जिनमें दोनों प्रकार के, थोक में अथवा अविराम, आसवन हो सकते हैं।

साधारणतया कोक के निर्माण में जो तेल प्राप्त होता है उसका ८० से ९० प्रतिशत हलका तेल होता है। इस हलके तेल में प्रायः २३ प्रतिशत मोटर बेंज़ोल, ४५

प्रतिशत अशुद्ध बेंज़ोल, १५ प्रतिशत टोलुओल, ४ प्रतिशत ज़ाइलोल, २ प्रतिशत विलायक नैफ्था और ५ प्रतिशत अवशेष रहते हैं।

यदि रसायनतः शुद्ध बेंज़ीन प्राप्त करना है तो बेंज़ीन से अन्य पदार्थों को निकाल डालना ज़रूरी है। अन्य पदार्थों में पैरेफ़िन और थायोफीन हैं। पैरेफ़िनों में साधारणतया साइक्लो-हेक्सेन (क्वथनांक ८१° से०) और मेथिल साइक्लो-हेक्सेन (क्वथनांक १००° से०) रहते हैं। इन हाइड्रोकार्बनों से बेंज़ीन का हिमांक गिर जाता है। शुद्ध बेंज़ीन का हिमांक ५·५° से० है। यदि इसमें प्रायः एक प्रतिशत पैरेफिन रहे तो इसका हिमांक ५° से० हो जाता है। बेंज़ीन में पैरेफिन का रहना अच्छा नहीं है। सुप्रसिद्ध विस्फोटक पदार्थ टी० एन० टी० के निर्माण में जो टोल्विन प्रयुक्त होता है उसमें अधिक से अधिक एक प्रतिशत पैरेफिन सह्य है। इससे अधिक कदापि नहीं रहना चाहिए। पैरेफिन के रहने से आवश्यक उत्पाद में कमी और प्रतिकारक के खर्च में वृद्धि होती है। सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल से पैरेफिन नहीं निकलता। प्रभाजक आसवन से भी पृथक् नहीं होता, पर हिमांक विधि से पैरेफिन को निकाल सकते हैं। बेंज़ीन के ठंडा करने पर वह जम जाता और तब पैरेफिन सरलता से निकल जा सकता है। पात्र की दीवार के पार्श्व में बेंज़ीन जम जाता और पैरेफिन केन्द्र में तरल रह जाता है। बेंज़ीन के ठंडा कर जमाने के समय उसमें वायु के बुलबुले प्रवाहित करते हैं। जब जमना प्रायः पूर्ण हो जाता तब पात्र को खाली कर बेंज़ीन के पिण्ड को निकाल लेते हैं। तरल बेंज़ीनवाले अंश को बहाकर अथवा केन्द्रापसारक में निकाल लेते हैं। कई बार मणिभीकरण से बिलकुल शुद्ध बेंज़ीन प्राप्त होता है।

टोल्विन से पैरेफ़िन निकालने के लिए उसमें मेथिल अल्कोहल डालते हैं। मेथिल अल्कोहल कई पैरिफिनों के साथ समक्वाथी मिश्रण बनता है। ऐसे मिश्रण का क्वथनांक टोल्विन के क्वथनांक से बहुत नीचा होता है। २ : ५–डाइमेथिल हेक्सेन का क्वथनांक १०९° से० है। ६० प्रतिशत मेथिल अल्कोहल के साथ यह जो समक्वाथी मिश्रण बनता है उसका क्वथनांक ६१° से० होता है। टोल्विन मेथिल अल्कोहल के साथ समक्वाथी मिश्रण बनता है। ऐसे मिश्रण में ३१ प्रतिशत टोल्विन रहता है और वह ६४° से० पर उबलता है।

टोल्विन को पृथक् करने के लिए टोल्विन में मेथिल अल्कोहल डालकर प्रभाजक भभके में आसवन करते हैं। पहले आसुत में प्रायः ३० प्रतिशत (आयतन में) पैरेफिन और प्रायः ७० प्रतिशत मेथिल अल्कोहल रहता है। इसमें अल्पमात्रा में टोल्विन रहता है। पानी डालकर मेथिल अल्कोहल और पैरेफिन को पृथक् कर लेते हैं। आसवन से फिर मेथिल अल्कोहल अलग किया जा सकता है।

बाद में फिर टोल्विन और मेथिल अल्कोहल प्राप्त होते हैं। इसमें भी पानी डालकर मेथिल अल्कोहल को टोल्विन से अलग करते हैं।

मेथिल अल्कोहल के स्थान में मेथिल-एथिल कीटोन का भी उपयोग होता है। कीटोन टोल्विन को लेकर नीचे बैठ जाता और फिर आसवन से उन्हें अलग-अलग कर सकते हैं।

थायोफीन का निकालना

थायोफीन गन्धक का एक यौगिक है। सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया इस पर बड़ी अल्प होती है। अतः सलफ्यूरिक अम्ल के उपचार से यह अंशतः ही निकलता है। इसका क्वथनांक ८४° से० है जो बेंज़ीन के क्वथनांक (८०° से०) के बड़ा सन्निकट होने से प्रभाजन द्वारा पूर्णतया पृथक् नहीं किया जा सकता। यदि सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल का आधिक्य हो अथवा ऐसा सलफ्यूरिक अम्ल हो जिसमें सल्फर ट्राइ-आक्साइड इतना पड़ा हो कि अम्ल की मात्रा १०४ प्रतिशत हो जाय तो ऐसे अम्लों से थायोफीन निकाला जा सकता है।

बेंज़ोल के स्टार्च और सलफ्यूरिक अम्ल के उपचार से थायोफ़ीन निकालने की सफल चेष्टाएँ हुई हैं। यदि ५५०० गैलन मोटर बेंज़ोल में १४० पाउण्ड स्टार्च और ६६° बौमे का सलफ्यूरिक अम्ल ७२० पाउण्ड डालकर १½ घंटे तक प्रक्षुब्ध कर छोड़ दिया जाय तो जो अवपंक बैठे उसे निकालकर सोडियम हाइड्राक्साइड के २० प्रतिशत विलयन से उदासीन बनाकर आसुत किया जाय तो समस्त थायोफ़ीन, यदि उसकी मात्रा ०·००१ से ०·००२ प्रतिशत भी हो तो, निकल जाता है।

अम्ल-अवपंक

अम्ल-अवपंक का क्या किया जाय यह एक विकट समस्या है। अम्ल के अतिरिक्त इसमें कुछ हलका तेल भी रहता है। कार्बनिक पदार्थों को सरलता से जलाया जा सकता है पर अम्ल के कारण जलाना कठिन ही नहीं वरन् ठीक भी नहीं है। उसे गड्ढे में गाड़ दिया जा सकता है। पर इसमें भी हलके तेल के कारण आग लगने का भय हो सकता है।

भाप के उपचार से अम्ल की पुनःप्राप्ति की चेष्टाएँ हुई हैं। भाप के साथ उबालने से कार्बनिक-मल ऊपर उठता और अम्ल-विलयन नीचे बैठ जाता है। हलका तेल और सल्फर डाइ-आक्साइड भाप बनकर निकल जाते हैं। हलके तेल को संघनन से प्राप्त कर सकते हैं। यदि अम्ल की सांद्रता ५० प्रतिशत हो जाय तो उसे अमोनियम

सल्फेट तैयार करने में प्रयुक्त कर सकते हैं। ऐसा अम्ल रंगीन (कपिल वर्ण का) होता है और उसमें कुछ कार्बनिक पदार्थ रहते हैं।

आग का भय

हलका तेल और उसके प्रभाग बड़े ज्वलनशील होते हैं। उनमें आग लगने का बड़ा भय रहता है। अतः आग लगने से बचाने के लिए विशेष यत्नशील होना बड़ा आवश्यक है। जहाँ हलके तेल का आसवन होता है वहाँ किसी प्रकार की आग या चिनगारी नहीं रहनी चाहिए।

बेंज़ीन का वाष्प बहुत भारी होता है। वायु से यह अढ़ाई गुना भारी होता है। अतः वायु धीरे-धीरे विसारित होता रहता है। इसका वाष्प पर्याप्त दूरी तक जा सकता है। अतः हलके तेल के आसवन का जहाँ संयन्त्र हो उसके आस-पास कुछ दूर तक आग या चिनगारी नहीं रहनी चाहिए, संयन्त्र के चारों ओर महीन तार की जाली लगा देनी चाहिए ताकि आग लगने का भय जाता रहे।

बिजली की चिनगारी से भी आग लग सकती है। बिजली की चिनगारी न बने इसकी विशेष सावधानी रखना आवश्यक है।

कभी-कभी फेरस सल्फाइड से भी आग लग सकती है। लोहे की टंकी पर हाइड्रोजन सल्फाइड की क्रिया से फेरस सल्फाइड बन सकता है। फेरस सल्फाइड वायु से आक्सिजन लेकर आक्सीकृत होता है और उससे गन्धक मुक्त होता है। इस क्रिया में इतनी ऊष्मा बन सकती है कि वह तेल के वाष्प को जला सके। अतः लोहे की टंकी को वायु में खोलने से पूर्व उसके सारे ज्वलनशील पदार्थों को पूर्ण रूप से निकाल डालना आवश्यक होता है।

यदि हलके तेल में आग लग जाय तो उसे बुझाने के लिए पानी नहीं इस्तेमाल करना चाहिए। पानी से आग फैल सकती है। हलका तेल पानी से हलका होता है। अतः हलका तेल पानी के ऊपर अधिक स्थान में फैलकर जलता रह सकता है। हलके तेल की आग बुझाने के लिए फोयमाइट (Foamite) अच्छा समझा जाता है। फोयमाइट में कार्बन डाइ-आक्साइड का फेन बनता है। यह फेन सोडियम बाइ-कार्बोनेट और अलुमिनियम सल्फेट के विलयनों की क्रिया से बनता है और हलके तेल पर तैरता है। ऐसे फोयोमाइट के नल-पात्र स्थान-स्थान पर रखे रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इस्तेमाल होते हैं। आग बुझाने के लिए सिलिंडर में रखे कार्बन डाइ-आक्साइड का भी इस्तेमाल हो सकता है।

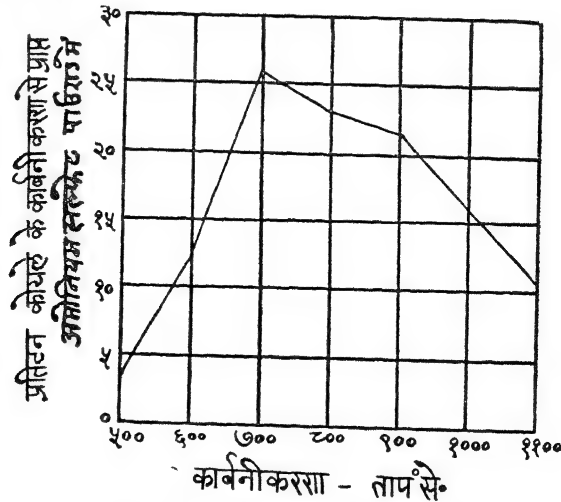
बेंज़ीन विषैला होता है। वायु के एक लाख भाग में बेंज़ीन-वाष्प की मात्रा आठ भाग से अधिक नहीं रहनी चाहिए। इस कारण जहाँ बेंज़ीन का वाष्प हो वहां वायु का आवागमन पूर्ण रूप से रहना चाहिए। इसके लिए विशेष उपकरणों का प्रबन्ध करना पड़ता है। वायु के निष्कासन पम्प से वायु निकालने और सामान्य पम्प से अथवा खुले मार्ग से वायु के प्रवेश का प्रबन्ध रहना आवश्यक है।

यदि टंकियों को साफ करना पड़े तो भाप द्वारा हलके तेल को बाहर निकालकर तब उसमें प्रवेश करना चाहिए।

सत्ताईसवाँ अध्याय

अमोनियम लवण

कोयले के कार्बनीकरण से अमोनिया प्राप्त होता है। निम्न ताप कार्बनीकरण से अल्प अमोनिया प्राप्त होता है। उच्च ताप कार्बनीकरण से भी अमोनिया की मात्रा कम प्राप्त होती है। प्रायः मध्य ताप कार्बनीकरण –७००° से० के लगभग के ताप पर अमोनिया की मात्रा महत्तम प्राप्त होती है। एक टन कोयले से ५ से ६ पाउण्ड अमोनिया प्राप्त होता है। ताप से अमोनिया की मात्रा में अन्तर कैसे पड़ता है वह यहाँ दिये वक्र से स्पष्ट होता है। इस वक्र से मालूम होता है कि ७००° से० ताप महत्तम अमोनिया प्राप्त होता है और इससे नीचे और ऊपर के ताप पर मात्रा क्रमशः कम होती जाती है।



चित्र ५८—अमोनियम मात्रा का वक्र

कार्बनीकरण में जो अमोनिया बनता है उसे प्राप्त करने की प्रधानतया तीन रीतियाँ हैं। एक प्रत्यक्ष रीति, दूसरी अर्ध-प्रत्यक्ष रीति और तीसरी परोक्ष रीति।

प्रत्यक्ष और अर्ध-प्रत्यक्ष रीतियों में अमोनिया अमोनियम सल्फ़ेट के रूप में प्राप्त होता है। परोक्ष रीति में अमोनिया 'अमोनिया द्रव' के रूप में प्राप्त होता है। पीछे वह भी अमोनियम सल्फ़ेट के रूप में परिणत किया जा सकता है।

इन रीतियों में अर्ध-प्रत्यक्ष रीति सबसे अधिक महत्त्व की है। अमेरिका में प्रायः इस रीति का उपयोग होता है। अल्प मात्रा में परोक्ष रीति से अमोनिया प्राप्त हो सकता है। परोक्ष रीति का उपयोग आज नहीं के बराबर है।

अर्ध-प्रत्यक्ष रीति

इस रीति में कार्बनीकरण से जो गैस निकलती है उसे सीधे हलके सलफ्यूरिक अम्ल में ले जाकर अमोनियम सल्फेट तैयार करते हैं। इसके लिए सबसे पहले शीतक से निकली गैस को गरम करते हैं ताकि उसका ताप ५० से ६०° से० हो जाय। यह काम पूर्व-तापक नामक साधन में भाप से सम्पन्न होता है। पूर्व-तापक इस्पात का एक ढाँचा होता है जिसमें ऊर्ध्वाधार नलियाँ रहती हैं। इन नलियों से गैस नीचे प्रविष्ट होकर ऊपर उठती है। नलियों के बाहर चारों ओर भाप रहती है। इसी भाप से गैस गरम होती है। गैस स्वयं भाप के संसर्ग में नहीं आती। इससे गैस की आर्द्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ताप का अधिक ऊँचा होना यहाँ अच्छा नहीं है क्योंकि इससे अमोनियम लवण के मणिभ बड़े-बड़े नहीं बनते और भाप का खर्च भी अधिक होता है।

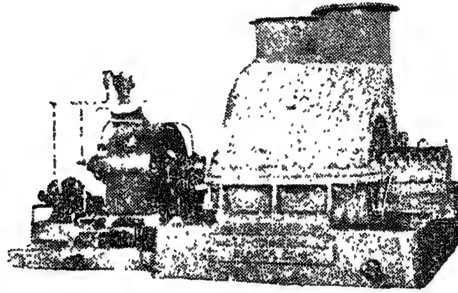
अमोनियम सल्फ़ेट का यह विलयन संतृप्तक में आता है। संतृप्तक इस्पात और ढालवें लोहे का बना पात्र होता है। इसमें सीस का आस्तर लगा रहता है। आजकल अकलुष इस्पात के पात्र भी प्रयुक्त होते हैं। एक बड़े वितरक-नल द्वारा, जिसे "क्रैकरपाइप" कहते हैं, गैस संतृप्तक में प्रविष्ट होती है।

संतृप्तक में अमोनियम सल्फ़ेट का संतृप्त विलयन अंशतः भरा रहता है। उसमें चार से पाँच प्रतिशत मुक्त सलफ्यूरिक अम्ल भी मिला रहता है। जब अमोनिया उसमें प्रविष्ट होता, सलफ्युरिक अम्ल के साथ मिलकर अमोनियम सल्फ़ेट बनाता और उसके छोटे-छोटे मणिभ अवक्षिप्त होते रहते हैं। संतृप्तक के पेंदे में शंकु रहता है। उसी में मणिभ बैठ जाता और निकाल लिया जाता है। संतृप्तक में विलोडक भी रहता है जिसके चलते रहने से बड़े-बड़े मणिभ के बनने में सहायता मिलती है।

संतृप्तक से निकली गैस में अम्ल के कण रहते हैं। यदि अम्ल के कणों को निकाल न लिया जाय तो नल का संक्षारण हो सकता है। इन कणों को निकालने के लिए अम्ल पृथक्कारक (separator) होते हैं जो संतृप्तक के बाद ही रखे होते और

जिन पर सीस का आस्तर लगा रहता है। पृथक्कारक में जो अम्ल एकत्र होता वह संतृप्तक में भेज दिया जाता है। पूर्व-तापक, संतृप्तक और अम्ल पृथक्कारक सब एक संयन्त्र के अंग होते हैं। संतृप्तक की धारिता ऐसी होती है कि प्रतिदिन १५० लाख घन फुट गैस का उपचार हो सके। बड़े संतृप्तकों में २००० गैलन तक मातृ-द्रव अँट सकता है। समय-समय पर संतृप्तक को साफ़ करने की ज़रूरत पड़ती है।

अमोनियम सल्फ़ेट के मणिभ को निकालकर विलयन के छन जाने के लिए एक मेज पर रख देते हैं। विलयन निकल जाता और मणिभ उस पर रह जाता है। उसे तब केन्द्रापसारक में रखकर सुखाते हैं। केन्द्रापसारक सीस का आस्तर लगा हुआ ढालवे लोहे का एक पिटक होता है जो बड़ी तीव्र चाल से बिजली से अथवा भाप-इंजन से घूमता है। पिटक के छेदों से द्रव निकल जाता और मणिभ का पिंड पिटक में रह जाता है। एक बार या दो बार उसे पानी से धोकर चिपके हुए मातृ-द्रव को निकाल लेते हैं। धोने के लिए कभी-कभी अमोनिया-द्रव का भी व्यवहार करते हैं। इससे मुक्त अम्ल का निराकरण हो जाता है। जब मणिभ पर्याप्त सूख जाते तब उन्हें निकालकर भण्डार में रख देते हैं।



चित्र ५९—शार्पल्स केन्द्रापसारक

पहले जो केन्द्रापसारक होते थे उनमें मणिभ हाथों से डाले और निकाले जाते थे, पर अब ऐसे केन्द्रापसारक बने हैं जिनमें हाथों से डालने और निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे आत्मचालित होते हैं। डालने और निकालने का काम स्वतः होता रहता है। अतः यहाँ कम श्रमिकों से काम चल जाता है। एक ऐसा केन्द्रापसारक बेकर पर्किन्स टर-मियर कांटेन्यूयस सेन्ट्रीफ्युज़ (Baker Penkins Ter Meer Continous Centrifuge) है जिसका एक चित्र यहाँ दिया हुआ है। एक दूसरी किस्म का केन्द्रापसारक शार्पल्स (Sharples) केन्द्रापसारक है। इसमें एक पिटक

होता है जो क्षैतिज ईषा (shaft) पर घूमता है। ऐसा केन्द्रापसारक दी शार्पल्स कारपोरेशन नामक अमेरिकी कम्पनी बनाती है।

संतृप्तक में अम्ल का सांद्रण

संतृप्तक में मुक्त अम्ल का सांद्रण ऐसा रहना चाहिए कि गैस का अमोनिया पूर्णतया अवशोषित हो निकल जाय। अधिक सांद्रण से मणिभ छोटे-छोटे बनते हैं। दोनों के बीच साम्य रहना चाहिए अर्थात् अम्ल का सांद्रण ऐसा होना चाहिए कि अमोनिया पूर्णतया अवशोषित हो जाय और साथ ही छोटे-छोटे मणिभ न बनें। इसके लिए मुक्त अम्ल का पाँच प्रतिशत रहना अच्छा है। बीच-बीच में अम्ल डालकर साम्य को स्थापित रखते हैं। सांद्र अम्ल ६०° बौमे का रहना चाहिए। ऐसे अम्ल में ७७ प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल रहता है, प्रति पाउण्ड अमोनियम सल्फ़ेट बनने में लगभग एक पाउण्ड अम्ल खर्च होता है।

विलयन को यदि सावधानी से अम्लीय न रखा जाय तो वह शीघ्र ही क्षारीय हो जाता है। ऐसे क्षारीय विलयन से रंगीन नीला-हरा अमोनियम सल्फ़ेट प्राप्त होता है। इसे व्यापार में 'नीला लवण' कहते हैं। अल्प मात्रा में लोहे के फेरोसायनाइड के बनने के कारण रंग नीला होता है।

यदि संतृप्तक में कोई ठोस लवण बन गया हो तो समय-समय पर सलफ्यूरिक अम्ल अथवा जल और सलफ्यूरिक अम्ल डालकर ठोस लवण के बनने को रोकते हैं। ऐसी दशा में मुक्त अम्ल की मात्रा १० से १५ प्रतिशत तक उठ सकती है। कभी-कभी विलयन के गरम करने से ठोस लवण का बनना रोका जा सकता है।

संतृप्तक में विलयन का तल नियंत्रित रखते हैं। संतृप्तक में समय-समय पर पानी डालते रहते हैं। अम्ल के साथ, मणिभ के धोने में, लवण के हटाने, पिटक के धोने आदि में पानी लगता है। इससे पानी की मात्रा बढ़ जा सकती है। उद्वाष्पन द्वारा ऐसी दशा में पानी को निकालना पड़ सकता है।

अमोनिया और सलफ्यूरिक अम्ल के बीच जब क्रिया होती है तब ऊष्मा का क्षेपण होता है। प्रति पाउण्ड अमोनियम सल्फ़ेट के बनने में प्रायः ८०० बि० टि० यू० निकलता है। इस ऊष्मा का अधिक अंश जल के उद्वाष्पन में खर्च हो जाता है। उद्वाष्पन इतना हो सकता है कि विलयन को फिर गाढ़ा करने की आवश्यकता न पड़े। यदि संतृप्तक में उद्वाष्पन से विलयन का तल नीचा हो जाय तो पानी डालकर कमी की पूर्ति कर लेते हैं।

अमोनियम सल्फेट

शुद्ध अमोनियम सल्फ़ेट में २५·८ प्रतिशत के लगभग अमोनिया रहता है। व्यापार के सल्फ़ेट में अमोनिया २५ से २५·५ प्रतिशत रहता है। अमोनियम सल्फेट में रंग नहीं रहना चाहिए। जल की मात्रा भी बड़ी अल्प और अम्ल तथा कार्बनिक पदार्थों से लवण सर्वथा मुक्त रहना चाहिए। अमोनियम लवण ऐसा होना चाहिए कि रखने पर पिंड न बने। जल की अधिक मात्रा के कारण ही पिंड बनता है। अम्ल की उपस्थिति से भी पिंड बनता है। पिरिडीन की उपस्थिति से भी पिंड बन सकता है। यदि अमोनियम सल्फेट को शुष्ककारक में सुखा लें तो जल की मात्रा ०·१५ प्रतिशत के लगभग रहती है। इतने जल से पिंड नहीं बनता। पिंड बनना रोकने के लिए उसमें जिप्सम भी मिलाते हैं।

अमोनियम सल्फ़ेट में मुक्त अम्ल का रहना अच्छा नहीं है। अम्ल से पिंड ही नहीं बनता वरन् पात्र भी आक्रान्त होता है। अम्लता को अल्प अमोनिया-द्रव डालकर दूर कर सकते हैं।

अमोनियम सल्फ़ेट के मणिभ का छोटा-छोटा रहना अच्छा होता है। इसे सरलता से अन्य खादों में मिला सकते हैं। ड्रिल द्वारा इस खाद को खेतों में भी सरलता से डाल सकते हैं। कुछ विशेष कामों के लिए बड़े-बड़े मणिभ अच्छे हो सकते हैं। संतृप्तक में अल्प काष्ठ-निष्कर्ष, पेक्टिन अथवा यूरिया डालने से बड़े-बड़े मणिभ प्राप्त हो सकते हैं। फेरस, मैंगनीज़ और कोबाल्ट लवणों की उपस्थिति में भी बड़े-बड़े मणिभ बनते हैं। फेरिक, क्रोमियम और अलूमिनियम लवणों की उपस्थिति में मणिभ छोटे-छोटे होते हैं।

गैस के पारित करने के स्थान में मार्जक द्वारा भी अमोनिया को निकाल सकते हैं। मार्जक बड़े-बड़े लगभग ३६ फुट ऊँचे १०½ फुट व्यास तक के होते हैं। ऊपर से अमोनियम सल्फ़ेट का विलयन जिसमें प्रायः ५ प्रतिशत मुक्त सलफ्यूरिक अम्ल रहता है गिराया जाता है। नीचे से गैस प्रवेश कर ऊपर उठती है। विलयन पेंदे से निकाल कर मणिभीकरण टंकी में रखा जाता है। टंकी में सूक्ष्म मणिभ बनते हैं। ऊपर से प्रतिदिन प्रायः ५० टन तक सल्फ़ेट गिराया जा सकता है। मणिभीकारक में रबर का आस्तर लगा रहता है। ऐसे एक संतृप्तक को विलपुटे (Wilputte) संतृप्तक कहते हैं। एक दूसरे संतृप्तक को कौपर्स (Koppers) संतृप्तक कहते हैं।

प्रत्यक्ष रीति

इस रीति में गैस के अमोनिया को अलकतरे में घुलाकर निकालते हैं। इससे

गैस का ताप इतना नीचा नहीं होता कि ओसांक तक पहुँच जाय। इससे भाप का संघनन नहीं होता पर गैस का बहुत कुछ अलकतरा संघनित हो जाता है। अब तप्त गैस को संतृप्तक में ले जाते हैं जहाँ सलफ्यूरिक अम्ल के साथ अमोनिया अमोनियम सल्फ़ेट बनता है। इसके बाद उपचार वही है जो अर्ध-प्रत्यक्ष रीति में होता है। संतृप्तक से निकलने पर गैस को अन्तिम शीतक में ठंडा करते हैं।

इस रीति में कुछ त्रुटियाँ हैं जिनसे इसका व्यवहार बहुत सीमित है। यहाँ संतृप्तक में अलकतरा भी निक्षिप्त होता है। सलफ्यूरिक अम्ल के कारण अलकतरे में कुछ दोष भी आ जाता है। अलकतरे में सल्फ़ेट भी रहता है। अमोनियम क्लोराइड पर सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मुक्त होकर संतृप्तक के सीस को आक्रान्त करता है।

एक नयी रीति

आजकल एक नयी रीति से अमोनियम सल्फ़ेट बनता है। इस रीति में सलफ्यूरिक अम्ल के स्थान में कैलसियम सल्फ़ेट से सल्फेट आता है। कैलसियम सल्फ़ेट के चूर्ण को पानी में आलम्बित कर गैस के संसर्ग में लाते हैं। यहाँ कैलसियम सल्फ़ेट, अमोनिया गैस, कार्बन डाइ-आक्साइड और जल के बीच क्रिया होकर अमोनियम सल्फेट और कैलसियम कार्बोनेट बनते हैं।



$$2NH_3 \text{ (गैस) } + CaSO_4 + H_2O = (NH_4)_2 SO_4 + Ca CO_3$$

समय-समय पर कैलसियम कार्बोनेट को छानकर निकाल लेते हैं। स्वच्छ विलयन को गाढ़ा कर ठंडा करने से अमोनियम सल्फ़ेट के मणिभ प्राप्त होते हैं। प्रायः इसी विधि से आज अमोनियम सल्फ़ेट सिन्दरी के रासायनिक खाद के कारखाने में तैयार हो रहा है। इस विधि की विशेषता यह है कि इसके लिए गन्धक की आवश्यकता नहीं होती, कैलसियम सल्फ़ेट से ही गन्धक प्राप्त होता है। भारत में गन्धक का अभाव है और कैलसियम सल्फ़ेट का बाहुल्य है। इस विधि में सिन्दरी में कुछ सुधार हुआ है। अमोनिया गैस के स्थान में वहाँ अमोनियम कार्बोनेट का उपयोग होता है।

परोक्ष रीति

परोक्ष रीति में अमोनिया का हलका द्रव प्राप्त होता है। इसके आसवन से सान्द्र द्रव अथवा सलफ्यूरिक अम्ल की क्रिया से अमोनियम सल्फेट प्राप्त हो सकता है।

अमोनिया-द्रव

अमोनिया-द्रव में अमोनिया और अमोनियम लवण रहते हैं। अमोनियम लवण दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के लवण ऐसे हैं कि उनके उबालने से अमोनिया निकलता है। ऐसे लवणों को 'मुक्त लवण' कहते हैं। अमोनियम सल्फ़ाइड मुक्त लवण है।



$$(NH_4)_2S \text{ (भाप)} = 2NH_3 + H_2S$$

दूसरे प्रकार के लवणों को 'स्थायी लवण' कहते हैं। ऐसे लवणों में अमोनियम सल्फ़ेट और अमोनियम क्लोराइड हैं। इनके उबालने से अमोनिया नहीं निकलता। चने या अन्य किसी क्षार के साथ उबालने से अमोनिया निकलता है।

मुक्त लवण	स्थायी लवण
अमोनियम सल्फ़ाइड	अमोनियम क्लोराइड
अमोनियम बाइ-सल्फ़ाइड	अमोनियम सल्फ़ेट
अमोनियम कार्बोनेट	अमोनियम थायोसल्फ़ेट
अमोनियम बाइ-कार्बोनेट	अमोनियम थायोसायनेट
अमोनियम सायनाइड	अमोनियम फेरोसायनाइड
अमोनियम कार्बोनेट	

इनके सिवाय अमोनिया-द्रव में कुछ घुला और कुछ आलम्बित अलकतरा भी रहता है। बड़ी अल्प मात्रा में कुछ फीनोल, कुछ पिरिडीन क्षार, कुछ अम्ल और कुछ तेल रहते हैं।

अमोनिया भभका

भभके में अमोनिया-द्रव को आसुत करते हैं। आसुत होने के पूर्व द्रव को भाप के साथ उपचारित करते हैं। इससे मुक्त लवण विच्छेदित हो जाता है। फिर आसवन करते हैं। भभका ऐसा होता है कि प्रतिघंटा १०,००० गैलन द्रव का उपचार हो सके। यदि द्रव की मात्रा अधिक हो तो एक से अधिक भभका रह सकता है। कम से कम दो भभकों का रहना अच्छा है। जब एक भभका सफाई में रहे, तब दूसरा भभका काम करता रहे। भभके में नर-छिद्र होता है जिससे इकट्ठा हुआ लवण या अलकतरा जब चाहें तब निकाल सकें।

भभके से जो अमोनिया निकलता है उसमें भाप और कुछ अन्य यौगिक मिले रहते हैं। उसका ताप ९५ और १००° से० के बीच रहता है। ठंडा कर ताप ८५°

से० कर लेते हैं। इससे भाप बहुत कुछ संघनित हो निकल जाती है। अमोनिया के सिवाय द्रव में कुछ घुला और कुछ आलम्बित अलकतरा भी रहता है। अल्प मात्रा में फीनोल, पिरिडीन क्षार, अम्ल और उदासीन तेल रहते हैं।

अमोनिया

अमोनिया-द्रव से भभके में आसवन से अमोनिया प्राप्त करते हैं। द्रव का उपचार पहले भाप से करते हैं। इससे मुक्त लवण से अमोनिया मुक्त होता है। फिर चूने के दूध के साथ उपचार से स्थायी लवणों से अमोनिया मुक्त करते हैं। आसवन से फिर अमोनिया प्राप्त करते हैं।

अमोनिया-भभका ऐसा होता है कि उसमें प्रति घंटा १०,००० गैलन द्रव का आसवन हो सके। यदि इससे अधिक द्रव का आसवन करना हो तो एक से अधिक भभके रखते हैं। कम से कम दो भभकों का रहना तो ज़रूरी होता है ताकि यदि एक की सफ़ाई हो तो दूसरा काम कर सके।

भभके से निकलने पर अमोनिया-गैस का ताप ९५ से १००° से० रहता है। इसे ठंडा कर ताप को नीचा कर ८५° से० पर लाने की आवश्यकता होती है। इससे भाप का अधिक अंश संघनित हो निकल जाता है।

चूने का दूध ऐसा होता है कि एक लिटर में चूने (CaO) की मात्रा ४० ग्राम रहती है। चूने के दूध को हाथ से अथवा यंत्रों से तैयार कर सकते हैं।

कहीं-कहीं आसवन के बाद अमोनिया-गैस को सीधे अम्ल में ले जाकर अमोनियम सल्फ़ेट प्राप्त करते हैं। यह काम संतृप्तक (saturator) नामक उपकरण में होता है। यहाँ सल्फ़ेट के छोटे-छोटे मणिभ बनते हैं। अमोनिया-गैस से सांद्र अमोनिया-द्रव भी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे द्रव में अपद्रव्य कम रहते हैं। बिलकुल शुद्ध अमोनिया भी प्राप्त हो सकता है।

अमोनिया गैस जब पानी में घुलती है तब उससे पर्याप्त मात्रा में ऊष्मा निकलती है। विलयन को इस कारण ठंढा करना पड़ता है। ऐसे विलयन में अमोनिया १५ से २५ प्रतिशत रहता है। अपद्रव्यों के कारण इसका रंग पीला या कपिल होता है।

शुद्ध और सांद्र अमोनिया-द्रव की प्राप्ति के लिए गैस को ठंडे जल में घुलाते हैं। संघनन और शीतन से, कार्बनिक विलायकों द्वारा धावन से और ठोस अवशोषकों के उपयोग से अपद्रव्य निकल जाता और शुद्ध अमोनिया द्रव प्राप्त होता है। अमोनिया गैस को इस्पात के अवशोषकों की पंक्तियों में ठंढा कर शुद्ध करते हैं।

अमोनिया निकाल लेने पर जो द्रव बच जाता है उसे नाली में फेंक देते हैं। पर नाली में फेंकने से बहकर वह नदी के जल में मिल सकता है। यह अच्छा नहीं है। यदि नदी का पानी पीने के लिए इस्तेमाल होता हो तो ऐसे पानी को विशेष सावधानी से क्लोरीन द्वारा सफ़ाई की आवश्यकता पड़ेगी। पर यहाँ क्लोरीन फीनोल के साथ मिलकर क्लोरोफीनोल बन सकता है जिसमें तीव्र गंध और अरुचिकर स्वाद होता है। इस कारण ऐसे पानी को नदी में बहाने की निषेधाज्ञा है। ऐसे पानी को समुद्र में बहाना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसे पानी से समुद्र की मछलियों का स्वाद बदल जाता है।

इस द्रव में कैलसियम क्लोराइड भी रह सकता है, जिससे जल की कठोरता बढ़ जाती है। ऐसा पानी धोने और बायलर के लिए अच्छा नहीं है। धोने में साबुन अधिक खर्च होगा और बायलर में लवण बैठ जायगा। ऐसे पानी से इस्पात का संक्षारण भी होता है। इससे जहाज़ का पेंदा क्षतिग्रस्त हो सकता है।

ऐसे पानी को तापदीप्त कोक के बुझाने में इस्तेमाल कर सकते हैं। बुझाने पर भाप बनकर जल नष्ट हो सकता है, पर इसमें कुछ दोष है। कोक में कैलसियम क्लोराइड आ जाता है। बुझाने के यान का भी संक्षारण हो सकता है। यदि ऐसे जल के अलकतरे को निकाल सकें तो द्रव से क्षति बहुत कुछ कम की जा सकती है।

अमोनिया-द्रव से फीनोल निकालना

अमोनिया-द्रव में कुछ फीनोल रहता है। फीनोल का रहना अच्छा नहीं है। अमोनिया-गैस से भी फीनोल का निकालना ज़रूरी है। फीनोल के निकालने की तीन प्रमुख रीतियाँ हैं—

(१) भाप द्वारा उद्वाष्पन से
(२) कार्बनिक विलायक द्वारा निष्कर्ष से
(३) किसी ठोस पदार्थ द्वारा अवशोषण से

साधारणतया पहली दो रीतियाँ ही प्रयुक्त होती हैं।

भाप को उष्ण अमोनिया-द्रव में पहले ले जाते हैं। फीनोल को लेकर भाप वहाँ से निकलती है। भाप को फिर कास्टिक सोडा के विलयन में ले जाते हैं। कास्टिक सोडा फीनोल का अवशोषण कर लेता है।

फीनोल निकालने का काम एक मीनार में होता है। मीनार में लकड़ी का टट्टर भरा रहता है। टट्टर पर द्रव ऊपर से गिरता है। नीचे से भाप प्रवेश करती है। द्रव से फीनोल को लेकर भाप निकलकर दूसरे मीनार में जाती है। पहले मीनार का ताप लगभग १००° से० रहता है। मीनार से फीनोल वाली भाप ऊपर से निकलकर

दूसरे मीनार के पेंदे में प्रवेश करती है। इस मीनार में इस्पात का खरादन भरा रहता है। उस पर कास्टिक सोडा का १० प्रतिशत विलयन समय-समय पर ऊपर से गिराया जाता है। यह सावधानी रखनी चाहिए कि कास्टिक सोडा का विलयन पर्याप्त मात्रा में रहे ताकि फीनोल का अवशोषण पूर्णतया होता रहे।

इस रीति से अमोनिया-द्रव का ९० से ९५ प्रतिशत फीनोल निकाला जा सकता है। यहाँ कास्टिक सोडा का ३० से ५० प्रतिशत सोडियम फीनेट बनता है। विशेष परिस्थितियों में ७० प्रतिशत तक सोडा फीनेट में परिणत हो सकता है। हलके तेल के धोने में इस सोडियम फीनेट का व्यवहार हो सकता है।

निष्कर्ष द्वारा निकालना

इस रीति में एक विलायक की ज़रूरत पड़ती है। विलायक ऐसा होना चाहिए जो सस्ता हो, फीनोल को आसानी से घुला सके, अमोनिया-द्रव में स्वयं घुले नहीं, उसका घनत्व अमोनिया-द्रव के घनत्व से भिन्न हो ताकि विभिन्न गुरुता के कारण उसे सरलता से पृथक् किया जा सके, फीनोल को विलायक से सरलता से निकाला जा सके। अच्छे विलायक के सब गुण बेंज़ीन या हलके तेल में विद्यमान हैं। इस कारण ये ही विलायक के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

बेंज़ीन-फीनोल विलयन से फीनोल निकालने के जो संयन्त्र बने हैं उनके दो भाग होते हैं। एक भाग में फीनोल सोडियम फीनेट बनता है। दूसरे भाग में सोडियम फीनेट से फीनोल निकाला जाता है।

बेंज़ीन-फीनोल विलयन का कास्टिक सोडा के उपचार से सोडियम फीनेट बनता है।



$$C_6H_5OH + NaOH = C_6H_5ONa + H_2O$$

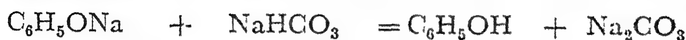
सोडियम फीनेट पर सलफ्यूरिक अम्ल अथवा कार्बन डाइ-आक्साइड अथवा सोडियम बाइ-कार्बोनेट की क्रिया से फीनोल मुक्त होकर तेल के रूप में ऊपर इकट्ठा होता है और निकाल लिया जाता है।



$$2C_6H_5ONa + H_2SO_4 = 2C_6H_5OH + Na_2SO_4$$



$$C_6H_5ONa + CO_2 + H_2O = C_6H_5OH + NaHCO_3$$



$$C_6H_5ONa + NaHCO_3 = C_6H_5OH + Na_2CO_3$$

कार्बन डाइ-आक्साइड के लिए वातभट्ठी से निकली गैस का उपयोग हो सकता है, क्योंकि इस गैस में पर्याप्त मात्रा में कार्बन डाइ-आक्साइड रहता है।

अमोनिया-गैस से निकले फीनोल का विशिष्ट भार १·०५ रहता है। इसमें ५० से ६० प्रतिशत फीनोल रहता है। फीनोल के अतिरिक्त अर्थो-क्रीसोल १० से १३ प्रतिशत, मीटा-क्रीसोल ७ से ९ प्रतिशत, पारा-क्रीसोल ९ से ११ प्रतिशत और पानी २ से १२ प्रतिशत रहता है।

कहीं-कहीं बेंज़ीन का आसवन कर फीनोल को पृथक् करते हैं। ऐसा फीनोल बहुत अशुद्ध होता है। उसमें अलकतरा मिला रहता है।

जर्मनी में एक दूसरे द्रव का उपयोग होता है। इस द्रव को "ट्राइक्रेसील फ़ास्फेट" या केवल "ट्राइफौस" कहते हैं। इस द्रव का विशिष्टभार १·१८ है और १० मि० मी० दबाव पर २८० से २८५° से० पर उबलता है। इस द्रव की अवशोषण-क्षमता बेंज़ीन से ऊँची है। अतः छोटे मीनार से भी यहाँ काम चल जाता है। अमोनिया-द्रव के ८ से १० प्रतिशत फ़ास्फ़ेट से काम चल जाता है। फ़ास्फ़ेट के विशिष्टभार के ऊँचा होने से अमोनिया-द्रव नीचे से प्रविष्ट होता और फ़ास्फेट ऊपर से गिरता है।

ट्राइक्रेसील फ़ास्फ़ेट के विलयन के शून्य में आसवन से फीनोल प्राप्त होता है। वायुमण्डल के दबाव पर केवल ७७ प्रतिशत फीनोल प्राप्त होता है। फीनोल के प्राप्त करने में यहाँ कास्टिक सोडा का उपयोग नहीं हो सकता क्योंकि कास्टिक सोडा से पायस (इमलशन) बनता है। इस रीति से प्राप्त अलकतरा-अम्ल उत्कृष्ट कोटि का होता है।

अनेक बार के उपयोग के बाद ट्राइक्रेसील फ़ास्फ़ेट की सक्रियता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। उसके पुनर्जीवित करने की जरूरत पड़ती है। सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल और भाप के उपचार और पीछे चूना से निराकरण करने के बाद केन्द्रापसारण से ट्राइ-क्रेसील फ़ास्फ़ेट पुनर्जीवित हो जाता है। इस क्रिया में ट्राइ-क्रेसील फ़ास्फ़ेट की क्षति बड़ी अल्प होती है। प्रति लिटर केवल ०·०५ से ०·०८ ग्राम होती है। ट्राइ-क्रेसील फ़ास्फ़ेट बेंज़ीन से महंगा बिकता है पर यह कम वाष्पशील और कम दाह्य होता है।

सक्रियित कार्बन से फीनोल निकालना

सक्रियित कार्बन से भी फीनोल निकाला जा सकता है। इसके लिए अमोनिया-द्रव से पहले आलम्बित अलकतरा वाले पदार्थों को निकालते हैं। फिर फीनोल को सक्रियित कार्बन से अवशोषित कराते हैं। अवशोषित कार्बन से फिर बेंज़ीन द्वारा फीनोल का निष्कर्ष निकालते हैं। फिर बेंज़ीन के विलयन से आसवन द्वारा फीनोल प्राप्त करते हैं।

इस काम के लिए ३ से ४ अवशोषक रखे जाते हैं। इनमें सक्रियित कार्बन भरे रहते हैं। एक अवशोषक में कार्बन द्वारा फीनोल का अवशोषण होता है। दूसरे अवशोषक में कार्बन से बेंज़ीन द्वारा फीनोल निकाल लेते हैं। तीसरे अवशोषक में बेंज़ीन पर भाप देकर बेंज़ीन को निकाल लेते हैं। चौथा अवशोषक सक्रियित कार्बन से तैयार रखते हैं और ज्यों ही पहला अवशोषक फीनोल से संतृप्त हो जाता है, उसे निकालकर चौथा उसके स्थान पर रख देते हैं ताकि अवशोषण-चक्र बराबर चलता रहे।

सक्रियित कार्बन से अवशोषण के पूर्व अमोनिया-द्रव से आलम्बित अपद्रव्यों को निकाल डालना इसलिए आवश्यक होता है कि यदि ऐसा न किया जाय तो कार्बन के छेद अपद्रव्यों से भरकर उसे निष्क्रिय बना सकते हैं। इसके लिए द्रव को छानना पड़ता है। छानने के लिए छनने में कोक, इस्पात का खरादन, अथवा अन्य कोई छेदवाला पदार्थ रख सकते हैं। द्रव को यदि एक बार और अलकतरे द्वारा पारित करें तो उसका सारा अलकतरा निकल जाता है। कार्बन को सक्रियित रखने के लिए समय-समय पर उसे बेंज़ीन से धोने की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ समय के बाद कार्बन निकम्मा हो जाता है। तब उसके स्थान में दूसरा कार्बन इस्तेमाल करना चाहिये। प्रति टन फीनोल के लिए ३० से ४० पाउण्ड कार्बन लगता है।

अमोनिया को अमोनियम सल्फ़ेट के स्थान में अमोनियम क्लोराइड और अमोनियम बाइ-कार्बोनेट के रूप में भी प्राप्त कर सकते हैं। इससे लाभ यह है कि गन्धक की बचत होती है। जहाँ तक खाद का सम्बन्ध है इन विभिन्न लवणों के प्रभाव में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अमोनियम बाइ-कार्बोनेट वाष्पशील होता है। इसके उड़ जाने की संभावना रहती है। विशेष यत्न से कुछ सीमा तक यह रोका जा सकता है।

पिरिडीन

अमोनिया-द्रव में कुछ पिरिडीन-क्षार रहते हैं। ये पिरिडीन-क्षार पिरिडीन और अनेक मेथिल पिरिडीन यौगिक हैं। पिरिडीन के सिवाय कुछ एनिलीन भी रहता है। पिरिडीन के अनेक उपयोग हैं। सबसे अधिक उपयोग इसका मेथिलेटेड स्पिरिट के तैयार करने में होता है। इसके डालने से अल्कोहल अपेय हो जाता है।

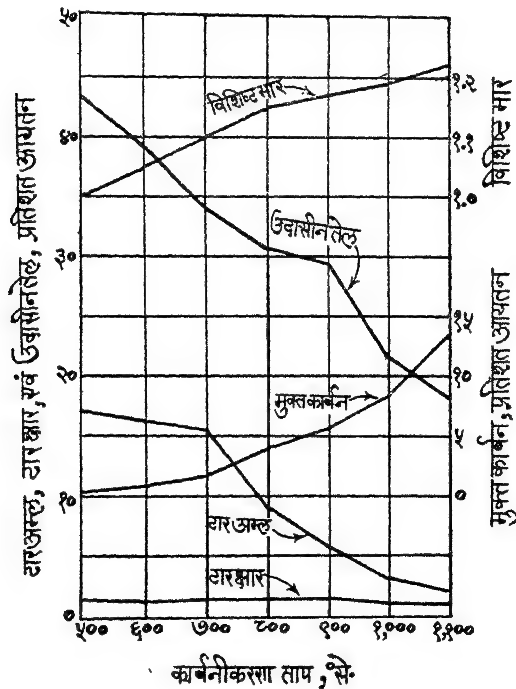
पिरिडीन-क्षार दुर्बल क्षार है। अमोनिया से भी दुर्बल। अम्लों, विशेषतः सल्फ्यूरिक अम्ल, से पिरिडीन लवण, पिरिडीन सल्फ़ेट बनता है।

अमोनिया-द्रव से पिरिडीन निकालने के अनेक संयन्त्र बने हैं। इन्हीं संयन्त्रों में व्यापार का पिरिडीन तैयार होता है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अलकतरा

अलकतरे की परिभाषा देना सरल नहीं है। भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। रौजर की परिभाषा यह है—"अलकतरा उस पदार्थ को कहते हैं जो काला दुर्गन्ध वाला तैल सा मिश्रण है। कोयले के भंजक आसवन में जो गैस बनती



चित्र ६०—कार्बनीकरण ताप और अलकतरा

है उससे यह पृथक् होता है।" मार्टिन की परिभाषा यह है—"**अलकतरा** गाढ़ा काला दुर्गन्ध वाला द्रव है जिसका विशिष्टभार १·१ से १·२ होता है **और** जो गैस निर्माण

में द्रवचालित प्रणाल, संघनित्र और मार्जक में इकट्ठा होता है। कठोर कोक के निर्माण में कोक के चूल्हे से भी यह प्राप्त होता है।"

अलकतरे का रंग एक सा नहीं होता। कोई कपिल वर्ण का, कोई हलका काला और कोई गाढ़ा काला होता है। सामान्य ताप पर अलकतरा कुछ श्यान होता है। विशिष्टभार साधारणतया पानी से ऊँचा होता है। विभिन्न ताप पर बने अलकतरे का विशिष्टभार विभिन्न होता है। विशिष्टभार का परिवर्तन पिछले वक्र से स्पष्ट हो जाता है।

अलकतरा कार्बनिक यौगिकों का बहुत पेचीला मिश्रण है। इसमें हलके तेल से लेकर पेचीले पिच तक रहते हैं। अलकतरे में कुछ ठोस पदार्थ भी विक्षिप्त (dispersed) रहते हैं। ऐसे विक्षिप्त पदार्थों में अधिकांश कलिल (Colloid) रहते हैं पर कुछ स्थूल कण भी रहते हैं। ये स्थूल कण सम्भवतः गैसों के द्वारा भभके में ले जाये जाते हैं। कलिल पदार्थों में पेचीले उच्च अणुभारवाले हाइड्रोकार्बन होते हैं। अलकतरे में कुछ ऐसा पदार्थ भी रहता है जो बेंज़ोल में घुलता नहीं है। इसे साधारणतया 'मुक्त कार्बन' कहते ह। अलकतरे में अल्प मात्रा में जल और उससे भी अल्प मात्रा में खनिज पदार्थ रहते हैं।

अलकतरे का संघटन दो बातों पर निर्भर करता है। एक कोयले के कार्बनीकरण के ताप पर और दूसरा कोयले की प्रकृति पर। विभिन्न कोयलों से प्राप्त अलकतरा एक-सा नहीं होता, यद्यपि देखने में भले ही वह एक-सा देख पड़ता हो। अलकतरे के संघटन पर सबसे अधिक प्रभाव कार्बनीकरण के ताप का पड़ता है।

नीचे ताप (४५०° और ७००° से० के बीच) के कार्बनीकरण से जो अलकतरा प्राप्त होता है वह उतने महत्त्व का नहीं होता। यदि कोयला उत्कृष्ट कोटि का हो तो प्रति टन कोयले से १५ से ३० गैलन अलकतरा प्राप्त हो सकता है। बिटुमिनी कोयले से प्राप्त अलकतरे का रंग धुँधला, कपिल वर्ण का होता है। यदि इसे पतले स्तर में देखा जाय तो रंग लाल या नारंगी भी देख पड़ता है। सामान्य ताप पर यह अलकतरा सरलता से बहनेवाला और कम श्यान होता है। इसका विशिष्ट भार भी नीचा होता है। ऐसे अलकतरे के अन्य गुण इस प्रकार के होते हैं—

घनत्व १५·५° से० पर		०·९५–१·१२
श्यानता (एङ्गलर), १०० सी०सी० के लिए सेकंड		२५–५०
बेंजीन में विलेयता	प्रतिशत	०–७
स्थायी कार्बन	,,	५–१५
राख	,,	०–१·५
अलकतरा-अम्ल	,,	१०–३०

अलकतरे के आसवन से विभिन्न ताप पर प्रभाजक इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

अलकतरे का घनत्व १५·५° से० पर	१·०३
प्रतिशत शुष्क अलकतरे का	
आसुत २००° से० तक	९ प्रतिशत
,, २००–२३०° से० तक	१६ ,,
,, २३०–२७०° से० तक	१३९ ,,
,, २७०–३००° से० तक	९ ,,
,, ३००°–मध्यम पिच	१८ ,,
मध्यम पिच	३५ ,,

अपरिष्कृत अलकतरा-अम्ल (२००–२७०° प्रभाग) ८–१० (शुष्क अलकतरे का)

नैफ्थलीन	२००–२७०° प्रभाग	शून्य
मुक्त कार्बन		१ प्रतिशत

निम्न ताप कार्बनीकरण के अलकतरे में पैरेफिन, नैफ्थलीन, एल्कीलेटेड सौरभिक यौगिक, क्रीसोल, ज़ीलेनोल और उच्चतर फीनोल रहते हैं। अलकतरा-अम्लों की मात्रा इसमें सबसे अधिक रहती है, जैसे वक्र से मालूम होता है; यद्यपि फीनोल की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। हलके तेल में पैरेफिन और नैफ्थलीन की मात्रा अधिक रहती है। सौरभिक यौगिकों की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। इस अलकतरे का भी आसवन होता है। इससे विभिन्न प्रभाग और पिच प्राप्त होते हैं। इसके अम्लों से प्लास्टिक तैयार हो सकता है। इसका व्यवहार कृमिनाशक के लिए भी होता है। क्रिओसोट, अलकतरा (सड़क निर्माण के लिए) और पिच (छत के निर्माण के लिए) भी इससे प्राप्त होते हैं। यह अलकतरा अभी अधिक मात्रा में प्राप्य नहीं है क्योंकि निम्न ताप कार्बनीकरण उतना प्रचलित नहीं है। कुछ इने गिने देशों में ही कुछ कारखाने ऐसा अलकतरा प्राप्त करते हैं। भारत में भी एक समय इसकी चेष्टाएँ हुई थीं पर उस समय उनमें सफलता नहीं मिली।

उच्च ताप कार्बनीकरण से जो अलकतरा प्राप्त होता है उससे विभिन्न अंश इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

हलका तेल	२०० से० तक	शुष्क अलकतरे का ५·० प्रतिशत
मध्य तेल	२००-२५०° से० तक	,, १७·० ,,
भारी तेल	२५०-३००° से० तक	,, ७·० ,,
अंथ्रसीन तेल	३०० ३५०° से० तक	,, ९·० ,,
पिच	—	,, ६२ ,,
		,, १०० ,,

हलके तेल में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

बेंज़ीन	शुष्क अलकतरे का	०·१ प्रतिशत
टोल्विन	,,	०·२ ,,
ज़ाइलीन	,,	१·० ,,
भारी विलायक नफ्था	,,	१·५ ,,

मध्य तेल में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

अलकतरा-अम्ल (फीनोल, क्रीसोल, ज़ीलेनोल, उच्चतर अम्ल	शुष्क अलकतरे का	२·५	प्रतिशत
अलकतरा-क्षार (पिरिडीन, भारी क्षार)		२·०	,,
नैफ्थलीन	१०·९		,,
अन्य पदार्थ	१·०		,,

भारी तेल में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

मेथिल नैफ्थलीन	शुष्क अलकतरे का	२·५	प्रतिशत
डाइमेथिल नैफ्थलीन	,,	३·४	,,
एसीनैफथीन	,,	१·४	,,
अन्य पदार्थ	,,	१·०	,,

अंथ्रेसीन तेल में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

फ्लोरीन	शुष्क अलकतरे का	१·६	प्रतिशत
फिनान्थ्रीन	,,	४·०	,,
अंथ्रेसीन	,,	१.१	,,
कार्बेज़ोल	,,	१.१	,,
अन्य पदार्थ	,,	१.२	,,

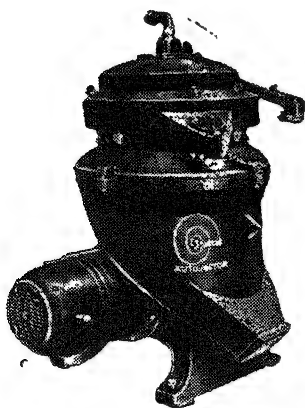
पिच में निम्नलिखित पदार्थ रहते हैं।

गैस	शुष्क अलकतरे का	२.०	प्रतिशत
भारी तेल	"	२१.८	"
लाल मोम	"	७.०	"
कार्बन	"	३२.०	"

अलकतरे से पानी निकालना

अलकतरे में पानी न रहना चाहिए। पानी के रहने से अलकतरे के परिवहन में पानी के परिवहन का अनावश्यक ही खर्च पड़ता है। ऐसे अलकतरे के आसवन पर झाग बहुत बनकर कठिनता उत्पन्न कर सकता है। आसवन के समय पानी उबालने में अनावश्यक खर्च भी पड़ता है। अलकतरे के पानी में अमोनियम क्लोराइड घुला रह सकता है। अमोनियम क्लोराइड आसवन-पात्र और संघनित्र को क्षति पहुँचा सकता है। दो प्रतिशत तक पानी सह्य है। इससे अधिक पानी का रहना ठीक नहीं है।

पानी का पर्याप्त अंश अलकतरे को निथारक या टंकी में कुछ समय तक रखने से नीचे बैठकर निकल जाता है। ऐसी टंकी को भाप से गरम करने का भी प्रबन्ध रहता है। पर साधारणतया भाप के प्रवाह से ही अलकतरे से पानी निकाला जाता है।

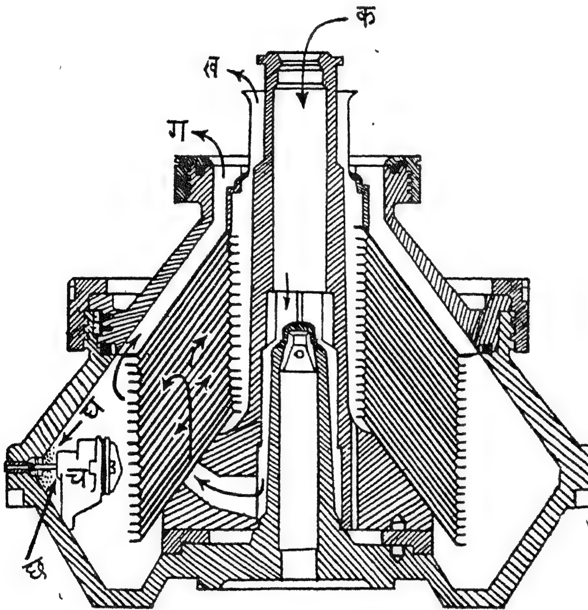


चित्र ६१—शार्पल्स औटोजेक्टर

अलकतरे से पानी निकालने के अनेक संयन्त्र बने हैं। ऐसे संयन्त्रों में टंकियाँ रहती हैं जिनमें भाप की कुंडलियाँ लगी रहती हैं। द्विनलीवाली कुंडलियों से भी पानी निकाला जा सकता है। एक नली में अलकतरा पम्प किया जाता है और दोनों नलियों के बीच के वलयाकार स्थान में भाप का प्रवाह चलता है। केन्द्रापसारण क्रिया से भी पानी निकाला जा सकता है।

पानी निकालने का एक छोटा सा संयन्त्र शार्प्ल्स औटोजेक्टर (Sharples Autojector) है। ऐसे संयन्त्र द्वारा १० प्रतिशत पानीवाले और १६ प्रतिशत

मुक्त कार्बनवाले अलकतरे से पानी निकाला जा सकता है। इसमें प्रति घंटा ८०० गैलन तक अलकतरे से पानी निकाला जा सकता है। संयन्त्र का ताप ९० से ९५° से० रहता है। इस प्रकार पानी निकले अलकतरे में दो प्रतिशत से अधिक पानी नहीं रहता। ऐसे औटोजेक्टर के अनुप्रस्थ काट (cross section) का चित्र यहाँ दिया हुआ है। यहाँ 'क' मार्ग से अलकतरा अविराम प्रविष्ट होता है। 'ख' मार्ग



चित्र ६२—शार्पल्स औटोजेक्टर का अनुप्रस्थ काट

से जल बराबर निकलता रहता है। बिना जलवाला अलकतरा 'ग' मार्ग से बराबर निकलता रहता है। 'घ' स्थान पर तलछट (sediment) बैठता है। जब तलछट की मात्रा पर्याप्त हो जाती है, ताकि उत्प्लावन वाल्व का प्रवेश 'छ' पूर्णतया ढक जाय, तब वाल्व 'च' आप से आप खुल जाता और तलछट निकल जाता है।

अलकतरे का आसवन

अलकतरे के आसवन से अनेक उत्पाद प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ तो शुद्ध होते हैं और कुछ मिश्रण। शुद्ध पदार्थों में बेंज़ीन, टोल्विन और नैफ्थलीन होते हैं और मिश्रणों में क्रिओसोट और विभिन्न प्रकार के पिच।

पिच

आसवन के उत्पादों में पिच की मात्रा सबसे अधिक रहती है। पिच के उपयोग अनेक हैं। कठोर पिच को पीसकर चूर्ण बनाकर जलावन में प्रयुक्त करते हैं। कोमल पिच से सड़कें बनती हैं। छत के निर्माण में भी पिच का उपयोग होता है। काले रंग की वार्निश में पिच लगता है। कोयले की धूलों को पिच से बाँधकर इष्टका तैयार करते हैं। पत्थरों और डोलोमाइट के बनाने में भी पिच लगता है।

अलकतरे के आसवन पर आसवन पात्र में जो अंश बच जाता है उसे पिच कहते हैं। अलकतरे का प्रायः ५० से ५५ प्रतिशत अंश पिच के रूप में प्राप्त होता है। पिच कोमल हो सकता है अथवा कठोर। कम समय तक आसवन से कोमल पिच प्राप्त होता है और अधिक काल तक आसवन से कठोर पिच। कोमल पिच में कार्बन ९१·८ प्रतिशत और हाइड्रोजन ४·६ प्रतिशत रहता है जब कि कठोर पिच में कार्बन ९३·२ प्रतिशत और हाइड्रोजन ४·४ प्रतिशत रहता है।

पिच में प्रधानतया महीन कोयला या कोक रहता है पर २० से ३० प्रतिशत असंतृप्त हाइड्रोकार्बन भी रहते हैं। इन हाइड्रोकार्बनों के कारण ही पिच की विभिन्न उपयोगिताएँ हैं। पिच के भंजक आसवन से पिच कोक प्राप्त होता है। पिच कोक के प्राप्त करने में उसी प्रकार के चूल्हे इस्तेमाल होते हैं जैसे चूल्हे कोयले से कोक बनाने में प्रयुक्त होते हैं।

पिच किसी निश्चित ताप पर नहीं पिघलता। यह २७° से० के ऊपर कोमल होता है। धीरे-धीरे कोमल होकर यह द्रव हो जाता है। पिच पर पानी और मौसम का बहुत अल्प प्रभाव पड़ता है। इसी से पानी के प्रभाव को यह रोक सकता है। पानी इसमें प्रवेश नहीं करता। पिच के आसवन में पर्याप्त गैसें बनती हैं। ऐसी गैसों में प्रधानतया हाइड्रोकार्बन रहते हैं। कुछ भारी तेल भी इससे प्राप्त होता है। पिच कोक में लगभग ९८ प्रतिशत स्थायी कार्बन, ०·५ प्रतिशत राख, ०·२५ प्रतिशत गन्धक और एक प्रतिशत वाष्पशील अंश रहते हैं। प्रायः शुद्ध कार्बन के कारण एलेक्ट्रोड और उच्च कोटि की ढलाई के लिए सांचे के बनाने में यह इस्तेमाल होता है।

अति कोमल पिच २७° से० के लगभग कोमल होता है। पेण्ट और संरक्षक लेपन में यह प्रयुक्त होता है। सामान्य कोमल पिच २७ से ४९° से० के बीच पिघलता है। सड़कों के निर्माण में, पत्थरों के बाँधने में और जलाभेद्य (water proof) वस्त्रों के निर्माण में यह प्रयुक्त होता है। मध्य पिच ४९ से ७१° से० पर पिघलता है। यह

गचों के निर्माण, बाँधने के काम में और पेण्ट में प्रयुक्त होता है। कठोर पिच ७१ से १००° से० पर पिघलता है। इष्टका और ईंधन में यह इस्तेमाल होता है। अति कठोर पिच १००° से० के ऊपर पिघलता है। लोहे और इस्पात की ढलाई में किनारों के बांधने, सांचों के लेपन, एलेक्ट्रोड आदि में यह इस्तेमाल होता है।

क्रिओसोट तेल

अलकतरे से जो तेल २३०-२७०° से० पर आसुत होता है उसे 'क्रिओसोट तेल' अथवा 'मृत तेल' (dead oil) कहते हैं। अलकतरे का प्रायः १० प्रतिशत यह तेल रहता है। इस तेल में कई यौगिक मिश्रित रहते हैं। ऐसे यौगिकों में नैफ्थलीन, डाइनैफ्थलीन, मेथिल नैफ्थलीन, ज़ीलेनोल, नैफ्थोल और पैरेफिन हैं। इन सब यौगिकों की संयुक्त क्रिया पर क्रिओसोट की विष-सम्बन्धी क्रिया निर्भर करती है।

क्रिओसोट का प्रमुख उपयोग काष्ठ के संरक्षण में है। रेल की काठ की पटरियाँ और तार तथा टेलिफोन के काठ के खम्भे इसी के लेपन से संरक्षित रहते हैं।

क्रिओसोट के उपयोग में निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) काठ के विनाश करनेवाले कीड़ों और कवकों के लिए यह बहुत विषैला होता है।

(२) जल में यह अपेक्षया अविलेय होता है।

(३) काठों पर इसे सरलता से लेप सकते हैं।

(४) काठ के बहुत निचले तल तक यह प्रविष्ट होता और उसका ज्ञान सरलता से हो जाता है।

(५) धातुओं का यह संक्षरण नहीं करता।

(६) मनुष्यों के लिए यह विषैला नहीं होता।

(७) यह सस्ता होता है और सरलता से प्राप्य है।

काठ के संरक्षण के लिए जो क्रिओसोट तेल इस्तेमाल होता है उसका विशिष्ट गुण इस प्रकार का रहना चाहिए—

(१) क्रिओसोट तेल कोयला-गैस अथवा कोक-चूल्हे से प्राप्त अलकतरे का होना चाहिए;

(२) क्रिओसोट तेल में जल की मात्रा तीन प्रतिशत से अधिक नहीं रहनी चाहिए;

(३) बेंज़ीन में अविलेय अंश ०·५ प्रतिशत से अधिक नहीं रहना चाहिए;

(४) ३८° से० पर क्रिओसोट तेल का विशिष्ट भार १·०३ से कम नहीं रहना चाहिए;

(५) क्रिओसोट तेल २१०° से० तक ५ प्रतिशत से अधिक नहीं और २३५° से० तक २५ प्रतिशत से अधिक आसुत नहीं होना चाहिए;

(६) क्रिओसोट तेल से २ प्रतिशत से अधिक कोक नहीं प्राप्त होना चाहिए;

उपर्युक्त गुणों का निर्धारण उन्हीं रीतियों से होना चाहिए जिन रीतियों से अमेरिकी काष्ठ-संरक्षण संघ ने किया है। उपर्युक्त गुणों के कारण क्रिओसोट इतना पतला होता है कि वह सरलता से काठ में प्रवेश कर सके। इतना अधिक वाष्पशील नहीं होता कि शीघ्रता से उड़ जाय। उसमें ऐसा कोई पदार्थ न रहना चाहिए कि वह काष्ठ में प्रवेश न करे। क्रिओसोट तेल वस्तुतः एक-से गुण का रहना चाहिए।

अंथ्रेसीन तेल

अलकतरे का जो अंश ३०० से ३६०° से० पर आसुत होता है उसे 'अंथ्रेसीन तेल' कहते हैं। अंथ्रेसीन तेल का क्वथनांक २७०-४००° से० होता है। इसका विशिष्ट भार १·१० होता है। अंथ्रेसीन तेल की मात्रा अलकतरे में १२ से १७ प्रतिशत रहती है। अंथ्रेसीन के अतिरिक्त तेल में फिनान्थ्रीन और कार्बेज़ोल भी रहते हैं।

इस प्रभाग के ठंढा करने से अंथ्रेसीन के मणिभ पिंड के रूप में निकल आते हैं। केन्द्रापसरण, प्रेस में छानने अथवा अन्य रीतियों से पिंड को मातृ-द्रव से अलग करते हैं। ऐसे अपरिष्कृत पिंड में अंथ्रेसीन की मात्रा ५ से ३५ प्रतिशत रह सकती है। कार्बेज़ोल की मात्रा २ से २० प्रतिशत रहती है।

किसी उपयुक्त विलायक द्वारा निष्कर्षण और मणिभीकरण से अंथ्रेसीन की मात्रा बढ़ायी जा सकती है। विलायक के लिए पिरिडीन या अन्य पिरिडीन क्षार और विलायक नफ्था का उपयोग हुआ है। पिरिडीन द्वारा मणिभीकरण से ८० से ९० प्रतिशत शुद्धता का अंथ्रेसीन प्राप्त हो सकता है। पिरिडीन की मात्रा बढ़ाने के लिए बारी-बारी से पिरिडीन और विलायक नफ्था दोनों का उपयोग हुआ है। विलायक नफ्था से धोने पर अंथ्रेसीन के अपद्रव्य बहुत कुछ निकल जाते हैं।

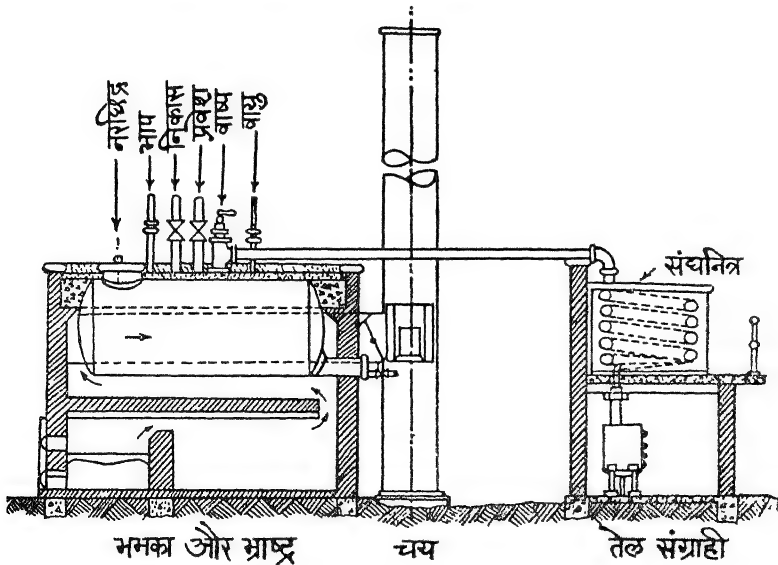
विलायक नफ्था द्वारा अंथ्रेसीन के निकाल लेने पर जो मातृ-द्रव प्राप्त होता है वह पोटैसियम हाइड्रॉक्साइड अथवा पोटैसियम कार्बोनेट के विलयन के उपचार से कार्बेज़ोल अविलेय पोटैसियम लवण बनकर केन्द्रापसरण से पृथक् हो जाता है। पोटैसियम लवण के जल के साथ उबालने से लवण विघटित होकर कार्बेज़ोल प्रदान करता है।

अंथ्रेसीन और कार्बेज़ोल के निकाल लेने पर जो मातृ-द्रव बच जाता है उससे फिनान्थ्रीन निकाला जाता है। फिनान्थ्रीन की मात्रा अपेक्षया कम रहती है। बड़ी अल्प मात्रा में इसमें मेथिल-अंथ्रासीन, डाइफेनील, नैफ्थलीन, पाइरीन, रीटीन भी रहते हैं। इनका पृथक् करना कुछ कठिन होता है। जलचालित प्रेस में २००-३०० वायुमण्डल के दबाव पर भाप से गरम करने पर फिनान्थ्रीन और नैफ्थलीन पिघलकर निकल जाते हैं।

इन यौगिकों में अंथ्रेसीन सबसे अधिक महत्त्व का है। यह २१३° से० पर पिघलता है। अंथ्रेसीन को अंथ्रोक्विनोन में परिणत करते हैं। अंथ्राक्विनोन का उपयोग अनेक रंगों के निर्माण, विशेषतः एलिज़रीन के निर्माण में होता है। कार्बेज़ोल से भी रंग बनते हैं। हाइड्रोन ब्लू (hydron blue) कार्बेज़ोल से बनता है।

अलकतरे का आसवन

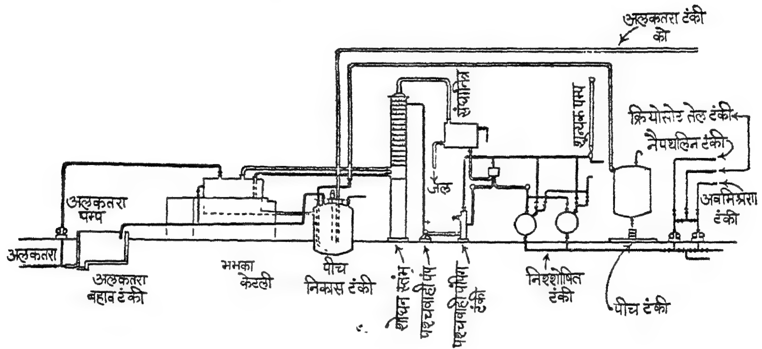
अलकतरे का आसवन थोक में हो सकता है अथवा अविराम भभके में। पहले-पहल जो भभके इसके लिए इस्तेमाल होते थे वे ऊर्ध्वाधार बेलनाकार पात्र होते थे।



चित्र ६३—बैच अलकतरा-भभका

उनके पेंदे अवतल होते थे ताकि तापन-तल का क्षेत्र अधिक से अधिक रहे। ऐसे भभके अब भी ग्रेट ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय देशों में प्रयुक्त होते हैं। ये भभके कोयले अथवा

उत्पादक गैस जलाकर गरम किये जाते थे। पर अमेरिका में जो भभके आज प्रयुक्त होते हैं वे भिन्न किस्म के क्षैतिज होते हैं। भभके कोयले, तेल या गैस को जलाकर गरम किये जाते हैं। भभके के मध्य भाग के ऊपरी हिस्से में वाष्प निकलकर संघनित्र में ठंढे जल से ठंढा होता है। संघनित्र के साथ संग्राही भी जुड़ा रहता है। संग्राही से निकलकर आसुत टंकी में इकट्ठा होता है। जब आवश्यक गुण का पिच प्राप्त हो जाता है तब आसवन बन्द कर पिच को बहाकर पम्प द्वारा निकालकर पिच-शीतक में निकाल दिया जाता है। पिच-शीतक एक क्षैतिज टंकी होता है। पिच का ताप जब १२० से १५०° से० के बीच गिर जाता है तब उसे पीपे (barrel) में अथवा खत्ते (bin) में इकट्ठा करते हैं।

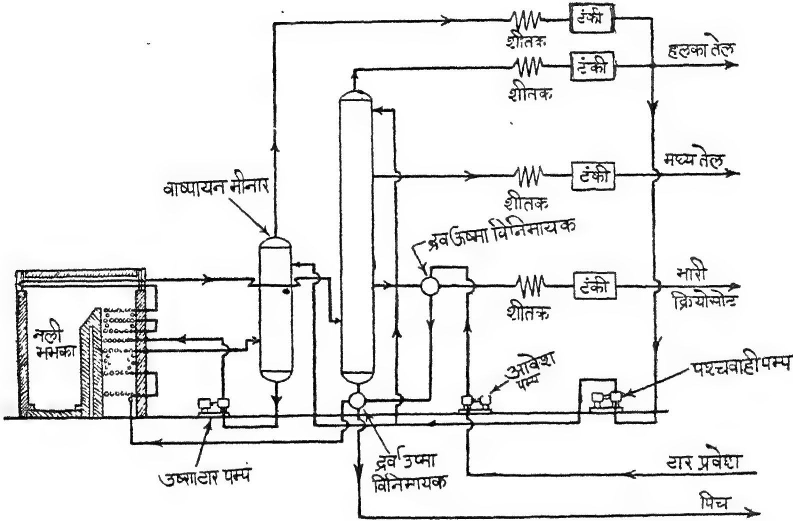


चित्र ६४—बैच अलकतरा-भभका का बहाव रेखाचित्र

भभका साधारणतया प्रायः २० फुट लम्बा और ९ फुट व्यास का होता है। ऐसे भभके में १०,००० गैलन अलकतरा अँट सकता है, पर केवल ८५०० गैलन प्रति बार डाला जाता है। भभके का आधा भाग प्रायः ५०० वर्गफुट तापन-तल होता है। ईंधन जलाकर तप्त गैसों से भभके के तापन-तल को गरम करते हैं। साधारणतया आसवन में १० से २० घंटे लगते हैं। कितना समय लगता है यह पिच की प्रकृति पर निर्भर करता है। कोमल पिच में कम समय लगता और कठोर पिच में अधिक समय लगता है। ऐसे एक भभके का चित्र और बहाव रेखा-चित्र यहाँ दिये हुए हैं।

अलकतरे के आसवन के समय कुछ भंजन भी होता है। यदि गरम करने का ताप ऊँचा और समय अधिक हो तो भंजन अधिक होता है। भंजन से मुक्त कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है और पिच का गुण कुछ निकृष्ट हो जाता है। इसे रोकने के लिए आसवन का ताप जहाँ तक हो सके उठने नहीं देना चाहिए और आसवन जल्द से जल्द

कर लेना चाहिए। जल्द आसवन के लिए भभके के अन्दर कुछ वाहिनी (flues) होती हैं जिनसे तापन-तल बढ़कर आसवन में शीघ्रता होती है। आसवन में और भी शीघ्रता हो सकती है यदि अलकतरे को भाप, वायु अथवा गैस से प्रक्षुब्ध किया जाय। प्रति मिनट प्रति गैलन में लगभग ०·११ घनफुट भाप पारित करते हैं। इतनी कम



चित्र ६५—फास्टर-वीलर अविराम अलकतरा-भभका

भाप से वाष्प-आसवन नहीं होता। यदि भाप को पारित करना है तो उसके लिए संघनित्र का बड़ा होना आवश्यक है। भभके के ताप को नीचा रखने के लिए निर्वात का भी उपयोग हो सकता है। निर्वात से पिच की प्रकृति में कुछ अन्तर हो जाता है।

अलग-अलग थोक में आसवन से आवश्यकतानुसार कोमल अथवा कठोर पिच सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। इससे छत बनानेवाला पिच, गत्ता बनानेवाला पिच, सड़क बनानेवाला पिच, इष्टका बनानेवाला पिच, बांधनेवाला पिच, विद्युद्ग्र बनानेवाला पिच जैसा चाहें वैसा प्राप्त कर सकते हैं। भिन्न-भिन्न थोक से भिन्न-भिन्न किस्म का पिच प्राप्त कर सकते हैं।

अविराम भभका

बड़े-बड़े कारखानों में जो भभके आज प्रयुक्त होते हैं वे अविराम किस्म के होते हैं। उनमें भभके तो दक्ष होते ही हैं पर उनके संघनित्र भी ऐसे होते हैं कि विभिन्न

आसुत अलग-अलग किन्तु एक साथ ही इकट्ठे किये जा सकें। ऐसे अनेक किस्म के भभके बने हैं। अमेरिका में प्रधानतया दो किस्म के भभके प्रयुक्त होते हैं। एक फौस्टर-वीलर भभके और दूसरे विल्टन भभके।

फौस्टर-वीलर भभका

फौस्टर-वीलर भभके में कुण्डलियों के दो कुलक होते हैं। ये ऐसे भ्राष्ट्र में रखे होते हैं जो सीधे तप्त हो सकें। पहली कुण्डली का ताप प्रायः २००° से० रहता है। आसुत वहाँ से निकलकर एक छोटे निर्जलित स्तम्भ में जाता है जहाँ तीन बुलबुले पट्ट रखे रहते हैं। इस स्तम्भ के शिखर से पानी और कुछ हलका तेल निकलता है। स्तम्भ के पेंदे से प्रायः १८०° से० पर सूखा अलकतरा निकलता है। इस अलकतरे को फिर दूसरी कुंडली में ले जाते हैं जिसका ताप प्रायः ४००° से० रहता है। भ्राष्ट्र के तप्ततम भाग में यह कुण्डली रहती है। कुंडली से वाष्प प्रभाजक स्तम्भ में जाता है। इस स्तम्भ में १२ बुलबुले पट्ट रहते हैं। वाष्प का संघनन होकर वह तीन भागों में बँट जाता है। एक में हलका तेल, दूसरे में मध्य तेल और तीसरे में क्रिओ-सोट तेल इकट्ठा होता है। ये तीनों भाग नलाकार संघनित्र में अलग-अलग संघनित होते हैं।

हलके तेल को 'अपरिष्कृत नफ्था' कहते हैं। इसे 'कार्बोलिक तेल नं० १' भी कहते हैं। इसका क्वथनांक ८५ और २१०° से० के बीच होता है।

मध्य तेल को 'कार्बोलिक तेल' अथवा 'कार्बोलिक तेल नं० २' कहते हैं। इसका क्वथनांक २०० से २५०° से० रहता है।

क्रिओसोट तेल को 'भारी तेल' भी कहते हैं। इसका क्वथनांक २३५ से ४२०° से० रहता है।

विभिन्न अंशों के संघनन के नियंत्रण के लिए विशेष प्रबन्ध रहता है। विभिन्न संघनित अंशों के समय समय पर निकालने का भी प्रबन्ध रहता है। पिच को पात्र से पम्प कर स्तम्भ के पेंदे में ले जाकर उसकी ऊष्मा को अलकतरे के पूर्व-तापन में प्रयुक्त करते हैं। पिच को ऊष्मा-विनिमायक (Exchanger) में रखकर तब कोठार (Storage) में रखते हैं।

विल्टन भभका

विल्टन भभके में अलकतरे को पहले प्रभाजक स्तम्भ के शिखर से निकली भाप और हलके तेल के वाष्प से गरम करते हैं। इसे फिर क्षेप्य ऊष्मा कुंडली में गरम करते हैं। यह कुंडली भभके के प्रधान नल और चिमनी के बीच स्थित रहती है। जिस

मार्ग से पिच निकलता है उसी मार्ग से अलकतरा प्रतिकूल दिशा में बहकर अलकतरे को और गरम करता है। इस प्रकार से गरम किया अलकतरा अब दमक कक्ष (flash chamber) में प्रविष्ट होता है। यहाँ जल और कुछ हलके तेल निकल जाते हैं। प्राथमिक दमक कक्ष से सूखा अलकतरा आसवन स्तम्भ में जाता है। पिच की ऊष्मा से और हलका तेल निकल जाता है। वहाँ से अलकतरा फिर दूसरे दमक कक्ष में प्रविष्ट होता है। यहाँ पिच से तेल का वाष्प निकलता है। इस काम में भाप से सहायता मिलती है। वहां से फिर ऊष्मा-विनिमायक में लाकर तब कोठार में भेज दिया जाता है। कक्ष से निकले पिच का ताप ३००° से० से ऊपर रहता है। ऊष्मा-विनिमायक से निकले पिच का ताप २००° से० से ऊपर रहता है। पिच का केवल ५ से ७ प्रतिशत कोठार में भेजा जाता है। शेष प्रायः ९५ प्रतिशत आसवन स्तम्भ के शिखर पर दूसरे दमक कक्ष में प्रथम दमक कक्ष से निकले निर्जलित अलकतरे से मिलाकर ऊष्मा-विनिमायक द्वारा अलकतरे के पूर्व-तापन में प्रयुक्त होता है। पिच-अलकतरे का तल स्थायी-तल-युक्ति द्वारा स्थायी रखा जाता है। दूसरे दमक कक्ष में जो थाल रहता है उससे वाष्पन-क्षेत्र प्राप्त होता है जिससे आसवन में सुविधा होती है और झाग का बनना रोका जा सकता है।

प्रथम और द्वितीय कक्षों से जो वाष्प निकलता है वह प्रभाजक स्तम्भ के बुलबुला पट्ट में तीन स्थलों पर प्रविष्ट होता है। भारी तेल का वाष्प पेंदे में प्रविष्ट होता, आसवन स्तम्भ से वाष्प उससे कुछ ऊँचे स्थल पर प्रविष्ट होता और प्रथम कक्ष का वाष्प शिखर पर प्रविष्ट होता है। इस युक्ति से प्रभाजन में सुविधा होती है।

शिखर से जो वाष्प प्रविष्ट होता है उसमें भाप और हलका तेल रहता है। उससे नीचे जो वाष्प प्रविष्ट होता है उसमें क्रिओसोट, नैफ्थलीन और भारी नैफ्था रहता है और पेंदे से जो तेल निकलता है वह अंथ्रेसीन तेल होता है।

कोक-चूल्हा भभका

कोक-चूल्हे से निकली तप्त गैस की संवेद्य (Sensible) ऊष्मा का उपयोग भी अलकतरे के आसवन में हुआ है। इस काम के लिए बार्रेट कम्पनी (Barret-company) ने एक संयन्त्र बनाया है जिसका पेटेंट उन्होंने लिया है। चूल्हे से निकली तप्त गैस एक प्रधान प्रणाल में जाती है जहाँ अलकतरे के संसर्ग में आकर अलकतरे का आसवन करती है। अलकतरे का वाष्पशील अंश आसुत हो जाता और पिच बच जाता है जो निकाल लिया जाता है। गैस और वाष्प को संघनित कर उससे विभिन्न तेल प्राप्त किये जाते हैं।

अलकतरा और उष्ण गैस के बीच संस्पर्श बड़े अल्प काल के लिए होता है। इससे आवश्यक है कि आसवन इस गति से हो कि उसी काल में अलकतरे का वाष्पशील अंश निकल जाय। इसके लिए प्रणाल में अलकतरे के फुहारे डाले जाते हैं। ऐसे भभके में आसुत की मात्रा ७० प्रतिशत तक प्राप्त होती है, जहाँ इसके विपरीत अन्य भभकों में केवल ४५ प्रतिशत तक ही प्राप्त होती है। पिच के गुण प्रायः एक से होते हैं। अनेक कारखानों में ऐसे ही आसवन का प्रबन्ध रहता है।

भभके और संघनित्र के संक्षारण की सम्भावना रहती है। संक्षारण का कारण अमोनियम क्लोराइड और अलकतरा-अम्लों की उपस्थिति बतलायी जाती है। उच्च ताप पर अमोनियम क्लोराइड अमोनिया और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में विघटित हो जाता है। यह अम्ल पात्रों का संक्षारण तीव्रता से करता है। यदि अलकतरे में जल की मात्रा कम की जा सके तो पात्रों का संक्षारण बहुत कुछ रोका जा सकता है।

अलकतरा-अम्लों की संक्षारण क्रिया उच्च ताप पर ही होती है। निम्न ताप पर संक्षारण प्रायः नहीं होता। कोक के कणों की तीव्र गति से भी नलियाँ घिस-घिस कर कटती हैं। भभके के संक्षारण का कारण गन्धक के यौगिक भी हो सकते हैं। संक्षारण के ठीक कारण का ज्ञान वस्तुतः हमें नहीं है। यदि पात्र ढालवें लोहे अथवा अकलुष इस्पात के बने हों तो संक्षारण बहुत कुछ रोका जा सकता है। भभके और संघनित्र ऐसे होने चाहिए कि समय-समय पर उनका निरीक्षण सरलता से किया जा सके।

हलका तेल

अलकतरे से हलका तेल प्राप्त होता है। हलके तेल की मात्रा अपेक्षया अल्प रहती है। अल्प मात्रा के कारण ही इसे विभिन्न प्रभाजकों में विभाजित नहीं करते। गैस से प्राप्त हलके तेल में मिलाकर ही इसका प्रभाजक आसवन करते हैं। हलके तेल में अधिक हाइड्रोकार्बन रहते हैं, प्रधानतः बेंज़ीन, टोल्विन और ज़ाइलीन, अल्प मात्रा में अलकतरा-अम्ल और अलकतरा-क्षार भी रहते हैं। अम्लों और क्षारों के निकाल लेने पर जो बच जाता है उसे विलायक के लिए प्रयुक्त करते हैं। सड़कों पर अलकतरे के लेप देने में यह विलायक प्रयुक्त हो सकता है।

मध्य तेल से अलकतरा-अम्ल, नैफ्थलीन और कभी-कभी अलकतरा-क्षार निकाले जाते हैं। इन्हें निकाल लेने पर अवशिष्ट अंश को क्रिओसोट तेल में मिला देते हैं।

अलकतरा-अम्ल

अलकतरा-अम्ल वस्तुतः अम्ल नहीं है। इसमें फीनोल रहते हैं। ये फीनोल अम्लीय क्रिया देते हैं, इसी से इन्हें अम्ल कहते हैं। फीनोल में सामान्य फीनोल, क्रीसोल, ज़ीलेनोल और अन्य फीनोलीय यौगिक रहते हैं।

फीनोल को पृथक् करने के लिए आसुत को सोडियम हाइड्राक्साइड के साथ उपचारित करते हैं। इससे फीनोल सोडियम फीनेट या सोडियम कार्बोलेट या सोडियम क्रेसीलेट में परिणत हो जाते हैं। सोडियम फीनेट जल में विलेय होते हैं। इस कारण हाइड्रोकार्बनों से सरलता से अलग किये जा सकते हैं।



$$C_6H_5OH + NaOH = C_6H_5ONa + H_2O$$

सोडियम फीनेट पर सलफ्यूरिक अम्ल अथवा कार्बोनिक अम्ल गैस की क्रिया से फीनोल मुक्त होकर अलग स्तर में पृथक् हो जाता है और सोडियम लवण विलयन में रह जाता है।



$$2C_6H_5ONa + H_2SO_4 = 2C_6H_5OH + Na_2SO_4$$



$$2C_6H_5ONa + CO_2 + H_2O = 2C_6H_5OH + Na_2CO_3$$

उत्पाद को निथारकर अलग-अलग कर लेते हैं। आसवन से विभिन्न फीनोलों को शुद्ध रूप में प्राप्त करते हैं।

अलकतरा-अम्ल के निकाल लेने पर यदि तेल में नैफ्थलीन की मात्रा अधिक है तो धावक में ही नैफ्थलीन के मणिभ निकल सकते हैं। मणिभ का निकलना रोकने के लिए तेल को गरम रखते हैं। धावक का ताप कम से कम ७५° से० रहना चाहिए।

सोडियम फीनेट में अल्प मात्रा में उदासीन तेल और पिरिडीन क्षार भी रह सकते हैं। इन्हें भाप द्वारा निर्वात शोधन से निकाल सकते हैं। फीनोल के जल-विच्छेदन से कुछ अलकतरा-अम्ल भी भाप के साथ निकल सकते हैं। इससे अम्ल का अधिक ह्रास न हो, इसके लिए आवश्यक है कि मुक्त दाहक सोडा २५ से ३० प्रतिशत रहे।

इस प्रकार से शोधित सोडियम फीनेट को तब एक ऊर्ध्वाधार बेलनाकार पात्र में ले जाते हैं। इसमें गैस के वितरण के लिए पेंदे में एक वितरक (distributor) लगा रहता है। पात्र के शिखर पर निकास मार्ग (vent) रहता है।

वात-भट्ठी अथवा चूने-पत्थर की भट्ठी से निकली गैस वितरक में प्रविष्ट होती है। ऐसी गैस में कार्बन डाइ-आक्साइड २० प्रतिशत या इससे अधिक रहनी चाहिये। पर १० प्रतिशत तक कार्बन डाइ-आक्साइड के रहने से काम चल सकता है। ऐसी

गैस भी उपयुक्त हो सकती है। गैस का प्रवाह तब तक चलता रहता है जब तक सारा फीनोल मुक्त न हो जाय और सारा दाहक सोडा सोडियम कार्बोनेट में परिणत न हो जाय और कुछ सोडियम बाई-कार्बोनेट भी बन जाय। इस क्रिया में समय की बचत के लिए ताप कुछ ऊँचा, ७० से ८०° से० रखते हैं। मिश्रण के निथरने के लिए रख देने पर फीनोल ऊपरी स्तर में और कार्बोनेट विलयन निचले स्तर में पृथक् हो जाता है।

कुछ संयन्त्र ऐसे बने हैं जिनमें यह कार्य अविराम रूप से होता रहता है। इनमें कई मीनारें होती हैं जिनमें टट्टर भरे रहते हैं। इन मीनारों के पेंदे से सोडियम फीनेट प्रविष्ट होता और शिखर से निकलकर दूसरी मीनार में जाता है।

यहां जो सोडियम कार्बोनेट बनता है उसको चूने के उपचार से फिर दाहक सोडा में परिणत कर लेते हैं। यहां जो कैलसियम कार्बोनेट (चूना-पत्थर) बनता है उससे भट्ठी में जलाकर चूना और कार्बन डाइ-आक्साइड प्राप्त करते हैं।



$$Na_2CO_3 + CaO + H_2O = 2NaOH + CaCO_3$$

चूने की भट्ठी समीप में ही स्थित होती है। उत्पाद के छानने से अथवा निथारने से कैलसियम कार्बोनेट निकल जाता है। दाहक सोडा का जो विलयन यहां प्राप्त होता है वही सोडियम फीनेट के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

अलकतरा-अम्ल के प्रभाजक आसवन से फीनोल और क्रीसोल कुछ सीमा तक पृथक् किये जा सकते हैं। फीनोल १८८° से० पर उबलता है। मिटा-क्रीसोल २०२·८° और पारा-क्रीसोल २०२·५° से० पर उबलता है। आसवन से फीनोल तो अलग हो जाता पर मिटा-क्रीसोल पारा-क्रीसोल से अलग नहीं होता, क्योंकि दोनों के क्वथनांक बड़े सन्निकट हैं। इन दोनों को एक दूसरे से पृथक् करने में किसी रासायनिक रीति का उपयोग करना पड़ता है।

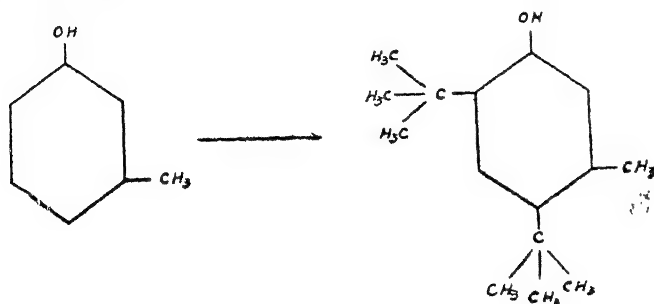
साधारणतया निम्नलिखित दो रीतियां प्रयुक्त होती हैं।

एक रीति में क्रीसोलों के मिश्रण को ४०° से० पर ९६ प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल से प्रायः ६ घंटे तक साधते हैं। इससे मिटा-क्रीसोल पूर्णतया मिटा-क्रीसोल सल्फोनिक अम्ल में और अल्प पारा-क्रीसोल भी सल्फोनिक अम्ल बनता है। अक्रियित पारा-क्रीसोल बेंजीन द्वारा निकाल लिया जाता है।

अब क्रीसोल सल्फोनिक अम्लों को अमोनिया से उदासीन बनाकर अमोनियम सल्फोनेट में परिणत करते हैं। मिटा-क्रीसोल अमोनियम सल्फोनेट और पारा-क्रीसोल अमोनियम सल्फोनेट की विलेयता विभिन्न रहने से प्रभाजक मणिभीकरण से उन्हें अलग-अलग कर सकते हैं।

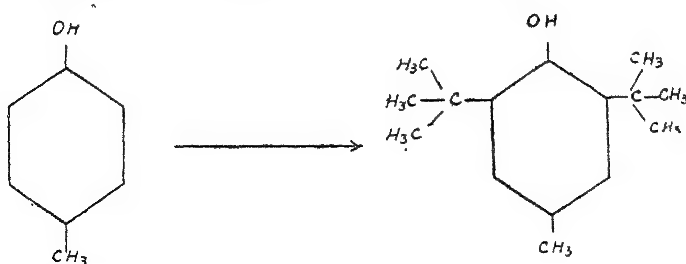
मिटा-क्रीसोल सल्फोनेट में सलफ्यूरिक अम्ल के १०° से २०° प्रतिशत बल के सलफ्यूरिक अम्ल डालने से मिटा-क्रीसोल निकल आता और भाप से पृथक् किया जा सकता है।

मिटा-क्रीसोल को पारा-क्रीसोल से पृथक् करने की दूसरी रीति उनको एल्कील यौगिकों में परिणत करने की है। यदि क्रीसोलों को ७०° से० से निम्न ताप पर लगभग ५ प्रतिशतवाले सलफ्यूरिक अम्ल की उपस्थिति में आइसो-ब्युटिलीन के साथ गरम करें तो आइसो-ब्युटिलीन क्रीसोल बनते हैं। मिटा-क्रीसोल से बने यौगिक का सूत्र यह है—



यह २० मि० मी० पारद के दबाव पर १६७° से० पर उबलता है।

पारा-क्रीसोल से बने एल्कील यौगिक का सूत्र यह है—



यह २० मि० मी० पारद के दबाव पर १४७° से० पर उबलता है।

निर्वात में प्रभाजक आसवन से इन्हें पृथक् करते हैं। इन एल्कील यौगिकों के अल्प सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल के साथ पश्चवहन से क्रीसोल प्राप्त होते हैं। आइसो-ब्युटिलीन निकलता है जिसे इकट्ठा कर फिर प्रयुक्त कर सकते हैं। क्रीसोल के आसवन से शुद्ध क्रीसोल प्राप्त होता है।

पिरिडीन क्षार

हलके तेल में कुछ पिरिडीन क्षार भी रहते हैं। अम्ल के निकाल लेने पर जो तेल बच जाता है उसको १५ से ३० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल से प्रक्षालित करते हैं। इससे पिरिडीन क्षार सल्फेट बनकर घुल जाते हैं। यह कार्य सीस-आस्तर लगे पात्र में किया जाता है ताकि पात्र अम्ल से आक्रान्त न हो। इसका ताप पर्याप्त ऊंचा रहता है ताकि नैफ्थलीन उससे निकल न आये।

दो क्रमों में प्रक्षालन होता है। पहले क्रम में पुराना अम्ल का विलयन प्रयुक्त होता है—ऐसा विलयन जिसका उपयोग एक बार हो चुका है। दूसरे क्रम में ताजा सलफ्यूरिक अम्ल प्रयुक्त होता है। प्रत्येक बार धावक से अम्ल को निकाल लेते हैं। पहले प्रक्षालन के अम्ल से पिरिडीन क्षार निकाल लेते हैं। दूसरे प्रक्षालन के अम्ल को एक बार फिर प्रयुक्त करते हैं।

अम्ल-धावन को निथरने के लिए फिर रख देते हैं। जब वह निथर जाता तब उसे अमोनिया अथवा सोडियम हाइड्राक्साइड के साथ साधते हैं। यदि उसे अमोनिया साधा है तो अमोनिया अमोनियम सल्फेट बनता और क्षार मुक्त होता है। अमोनियम सल्फेट को खाद में प्रयुक्त करते हैं। पिरिडीन क्षार तेल के रूप में तल पर इकट्ठा होता है। इसे सुखाकर तब प्रभाजक आसवन से क्षार प्राप्त करते हैं।

नैफ्थलीन

कुछ कारखानों में अम्ल और क्षार के निकाल लेने पर तब नैफ्थलीन को पृथक् करते हैं। कुछ कारखानों में हलके तेल से ही अम्ल और क्षार के निकालने के पूर्व ही नैफ्थलीन निकालते हैं। कुछ कारखानों में तो केवल नैफ्थलीन को निकालते हैं। अम्ल और क्षार को तेल में ही छोड़ देते हैं। यह तेल सड़क के निर्माण में पिच के साथ व्यवहृत होता है।

जिस कारखाने में अम्ल, क्षार और नैफ्थलीन सब निकाले जाते हैं वहां अम्ल और क्षारों के निकाल लेने पर अवशिष्ट तेल को कड़ाहों में ठंडा करते हैं। कड़ाह कई किस्म के होते हैं। कुछ कड़ाह सामान्य क्षैतिज आयताकार और ऊपर से खुले रहते हैं। ये इस्पात के बक्स-से बने होते हैं। इनकी गहराई प्रायः ३ फुट होती है और इनमें १० से १२ टन तेल अँट सकता है।

इन कड़ाहों में तेल को रख देते हैं। नैफ्थलीन का मणिभीकरण शुरू होता है। २ से ४ दिनों में मणिभीकरण पूरा हो जाता है। मणिभों से तेल को बहा लेते हैं।

तेल को फिर क्रिओसोट तेल में डाल देते हैं। इस तेल को अलग से बेचते भी हैं। कृमि-नाशक के लिए इसका उपयोग होता है। इस तेल से कजली भी बनती है।

मणिभों को फिर केन्द्रापसारक में रखकर उष्ण जल से धोकर उसमें चिपके तेल को निकालते हैं। ऐसा नैफ्थलीन ७० से ७८° से० पर पिघलता है। इसमें कुछ रंग भी रहता है। शुद्ध नैफ्थलीन ८०° से० पर पिघलता है। अपद्रव्यों के कारण नैफ्थलीन का द्रवणांक नीचा होता और उसमें रंग भी होता है। अपद्रव्यों में कुछ तेल होता और कुछ अन्य कार्बनिक यौगिक मेथिल नैफ्थलीन, बेंजोथायोफीन इत्यादि रहते हैं।

यदि तेल को जल्दी ठंढा कर मणिभ प्राप्त किये जायं तो ऐसे मणिभ छोटे-छोटे और अधिक अशुद्ध होते हैं। धीरे-धीरे ठंढा करने से बड़े-बड़े और अधिक शुद्ध मणिभ प्राप्त होते हैं। शुद्ध नैफ्थलीन प्राप्त करना हो तो शोधन की आवश्यकता पड़ती है। शोधन के लिए उन्हें पिघलाकर पुनर्मणिभीकरण कर सकते हैं अथवा वायुमण्डल के दबाव या निर्वात में आसवन कर सकते हैं। मणिभों को प्रेस में दबाकर उनके चिपके तेल को निकालकर भी शोधन कर सकते हैं। ऐसे प्रेसों में ६०० से ९०० पाउण्ड मणिभ अँट सकते और प्रतिवर्ग इंच डेढ़ से दो टन दबाव में दबा सकते हैं। प्रेस को ७० से ७५° से० तक गरम रखते हैं ताकि निम्न ताप पर पिघलनेवाला अंश ही पिघलकर निकल जाय। इस प्रकार दबाने से ७९° से० पर पिघलने वाला नैफ्थ-लीन प्राप्त हो सकता है।

शत-प्रतिशत शुद्ध नैफ्थलीन की प्राप्ति के लिए मणिभों को पिघलाकर प्रक्षोभक (agitator) में रखकर ९६ प्रतिशतवाला सलफ्यूरिक अम्ल का २ से ३ प्रतिशत डालकर धोते हैं। सलफ्यूरिक अम्ल के आस्तर को निकालकर फिर पानी से धोकर सोडियम हाइड्राक्साइड के विलयन से उदासीन बनाकर तब उसका आसवन करते हैं। पहले उससे पानी निकलता है। यह २१०° से० तक होता है। उसके बाद २२०–२२२° से० पर शुद्ध नैफ्थलीन वाष्प बनकर निकलता है। इसका द्रवणांक ८०° से० के सन्निकट होता है।

नैफ्थलीन कई रूपों में बाजारों में बिकता है। इसके मणिभ बिकते हैं। इसके चूर्ण बिकते हैं। इसके शल्क होते हैं। इसके कतरन बिकते हैं। इसकी गोलियां बिकती हैं जो कीड़ों से वस्त्रों के संरक्षण में प्रयुक्त होती हैं। नैफ्थलीन के दलने से चूर्ण प्राप्त होता है। भाप के साथ आसवन से और भाप को बड़े-बड़े कक्षों में संघनित करने से शल्क प्राप्त होता है। घूमते हुए इस्पात के बेलन पर ठंढा करने से कतरन प्राप्त होती है। नैफ्थलीन के चूर्ण या कतरन के प्रेस में दबाने से गोलियां बनती हैं।

उनतीसवाँ अध्याय

कोयले से पेट्रोलियम

बीसवीं शताब्दी के प्रथम विश्वयुद्ध सन् १९१४–१९१९ में जब जर्मनी को पेट्रोल प्राप्त होना कठिन हो गया तब वहां के वैज्ञानिकों ने कोयले से पेट्रोलियम तैयार करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न के फल-स्वरूप दो विधियों का आविष्कार हुआ जिनसे आज हम कोयले से पेट्रोलियम तैयार कर सकते हैं। जिन देशों के पास पेट्रो-लियम नहीं है और कोयला प्राप्य है उनको तो कोयले से पेट्रोलियम अवश्य तैयार करना चाहिए। आज अनेक ऐसे देश भी हैं जिनके पास बहुत अधिक पेट्रोलियम है, फिर भी उन्होंने कृत्रिम रीति से कोयले से पेट्रोलियम तैयार करने के संयन्त्र बैठाये हैं और विधियों के सुधार में संलग्न हैं ताकि कृत्रिम पेट्रोलियम का उत्पादन-व्यय कम किया जा सके। इस समय कृत्रिम पेट्रोलियम उतना सस्ता नहीं पड़ता जितना प्राकृतिक पेट्रोलियम पड़ता है, पर विशेषज्ञों का सुझाव है कि विधि के सुधार से कृत्रिम पेट्रोलियम सस्ता तैयार किया जा सकता है। महंगा होने का एक विशेष कारण कारखाने के मूल-धन की अधिकता है। कृत्रिम पेट्रोलियम तैयार करने के यन्त्र महंगे होते हैं।

कोयले से तैयार पेट्रोलियम के नाम विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न दिये गये हैं। अमेरिका में ऐसे पेट्रोल को सिन्थाइन (synthine) कहते हैं। यह सिन्थाइन शब्द सिन्थेटिक और गैसोलिन से सिन्थेटिक का 'सिन्थ' और गैसोलिन का 'इन' (ine) लेकर बना है। जर्मनी में इसे सिन्थिन कहते हैं। सिन्थिन शब्द जर्मनी के सिन्थेटिशे और बेंज़ीन से बना है। एक कम्पनी ने इसका नाम 'सिन्थोल' भी रखा है। जर्मनी में इसे 'कोगैसिन' भी कहते हैं। कोगैसिन 'कोहले-गैस-बेंजीन' से बनाया गया है। इसके विभिन्न अंशों को कोगैसिन १, कोगैसिन २, इत्यादि नामों से पुकारते हैं। इसका सार्थक नाम हिन्दी में संश्लिष्ट पेट्रोल या 'कृत्रिम पेट्रोल' या इसका संक्षिप्त रूप 'संश्लिट्रोल' या 'कृत्रिट्रोल' दिया जा सकता है, पर ये नाम कुछ क्लिष्ट मालूम होते हैं।

कृत्रिम पेट्रोलियम तैयार करने की एक विधि को फिशर-ट्रौप्श विधि कहते हैं। फिशर और ट्रौप्श ने सन् १९२५ में यह निश्चित रूप से सिद्ध किया कि कार्बन मनॉ-क्साइड और हाइड्रोजन से किसी उत्प्रेरक की उपस्थिति में १८० से २००° सें० के बीच हाइड्रोकार्बन बनते हैं। इस विधि को व्यावसायिक दृष्टि से प्रयुक्त कर पहला

कारखाना सन् १९३५ में खुला। उसके बाद ऐसे कारखाने के खुलने में बहुत वृद्धि हुई और केवल जर्मनी में नौ ऐसे संयन्त्र सन् १९३९ तक लग गये जिनमें प्रतिवर्ष ७००,००० टन से अधिक पेट्रोलियम तैयार हो सकता था। जर्मनी के कारखानों से



चित्र ६६—कृत्रिम पेट्रोलियम का कारखाना जर्मनी में

सन् १९३९ में वास्तविक उत्पादन ३३५,००० टन था जो सन् १९४३ में बढ़कर ५७०,००० टन हो गया था।

जर्मनी के नौ कारखानों से सन् १९४४ के प्रथम अर्ध-वर्ष में फिशर-ट्रौप्श विधि से ५८०,००० टन पेट्रोलियम तैयार हुआ था जिसमें २७०,००० टन मोटर-स्पिरिट और १३५,००० टन डीजेल तेल था। इसमें १८०,००० टन ऐसा उत्पाद था जिससे स्नेहक और कुछ सीमा तक साबुन और मारगैरिन तैयार हो सकता था और वास्तव में हुआ था।

इस विधि से जो उत्पाद प्राप्त होते हैं वे दूसरी विधि से प्राप्त उत्पाद से भिन्न होते हैं। दूसरी विधि से प्राप्त उत्पाद हवाई जहाज और मोटर गाड़ियों के लिए श्रेष्ठतर होते हैं। फिशर-ट्रौप्श विधि से प्राप्त उत्पाद स्नेहक के लिए उत्कृष्ट होता पर मोटर गाड़ियों के लिए इतना अच्छा नहीं होता है।

दूसरी विधि को बर्गियस विधि कहते हैं। इसका अध्ययन बर्गियस ने सन् १९१०–१९२७ के बीच किया था। इस विधि में हाइड्रोजन द्वारा कोयले का तरलीकरण ऊँचे ताप और ऊँचे दबाव पर होता है। इसका सबसे पहला कारखाना सन् १९३९ में खुला और एक वर्ष में ही उत्पादन ४००,००० टन हो गया। यहां भूरे कोयले का उपयोग हो सकता है। दबाव १५० से २५० वायुमण्डल का (प्रतिवर्ग इंच पर लगभग १$\frac{१}{२}$ टन का) और ताप ४००–५००° से० का रहना चाहिए। सन् १९३९ में जर्मनी

में इसके सात कारखाने खुल गये जिनमें १४ लाख टन तेल और तरलीकृत गैस प्राप्त हो सकती थी। वास्तविक उत्पादन ११·५ लाख टन था। यहां कच्चे माल के रूप में भूरा कोयला, भूरा कोयला-अलकतरा, बिटुमिनी कोयला, बिटुमिनी कोयला-अलकतरा प्रयुक्त होते थे। दूसरे विश्व-युद्ध तक इसके अनेक कारखाने खुल गये और सन् १९४४ तक ऐसे कारखानों की संख्या १८ तक पहुँच गयी थी। पीछे ऐसे संयन्त्र बने जिनमें ७०० वायुमण्डल (प्रतिवर्ग इंच प्रायः ४½ टन) का दबाव प्रयुक्त हो सकता था। सन् १९४४ तक इतने कारखाने खुले जिनमें ४० लाख टन प्रतिवर्ष पेट्रोलियम तैयार हो सकता था। वास्तव में उस वर्ष ३५ लाख टन पेट्रोलियम तैयार हुआ था जिससे लगभग २० लाख टन हवाई-जहाज-पेट्रोल, ३५०,००० टन मोटर-स्पिरिट और ७००,००० टन डीजेल-तेल प्राप्त हुआ था। उस वर्ष जर्मनी में जितना पेट्रोल हवाई जहाज में प्रयुक्त हुआ था वह सब इसी विधि से प्राप्त पेट्रोल था।

ग्रेट ब्रिटेन में प्राकृतिक पेट्रोलियम नहीं प्राप्त होता। अतः कोयले से पेट्रोल प्राप्त करने के प्रयोग सन् १९२६ में शुरू हुए। सन् १९२६ में अग्रिम संयन्त्र बैठाया गया। इस संयन्त्र में कोयले के स्थान में अलकतरे के हाइड्रोजनीकरण पर भी प्रयोग हुए। उच्च और निम्न ताप पर ४०० वायुमण्डल के दबाव तक प्रयोग करके देखा गया कि पेट्रोलियम प्राप्त हो सकता है और प्रतिदिन ४०० गैलन अलकतरे का हाइड्रोजनीकरण भी हुआ।

बड़े पैमाने पर कोयले के हाइड्रोजनीकरण से पेट्रोलियम तैयार करने का श्रेय इंगलैण्ड में इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रिज लिमिटेड को है जिन्होंने सन् १९३५ में बिलिङ्घम में एक बड़ा कारखाना खोला। इस कारखाने में सन् १९३८ में कोयले के हाइड्रोजनीकरण से ५२,००० टन पेट्रोल और क्रियोसोट के हाइड्रोजनीकरण से ९१,००० टन पेट्रोल तैयार हुआ था। क्रियोसोट से उपचार अधिक सरल हो जाता है। आजकल क्रियोसोट से ही इस कारखाने में उच्च कोटि का मोटर स्पिरिट प्रतिवर्ष ७५,००० से १५०,००० टन तैयार होता है।

बिलिङ्घम कारखाने में कोयले से तीन क्रमों में पेट्रोलियम तैयार होता है। क्रिया का ताप ४००–५००° से० और दबाव २५० वायुमण्डल के आस-पास रहता है। पहले क्रम में कोयले को सावधानी से साफ करते हैं। जितना राख, कंकड़-पत्थर निकल सके निकाल डालते हैं। फिर इसे पेट्रोलियम-तेल के साथ मिलाकर पिष्टि बनाते हैं। अब ऐसे तेल-मिश्रित कोयले पर हाइड्रोजन पारित कर हलका, भारी या मध्यम तेल प्राप्त करते हैं।

दूसरे क्रम में भारी तेल का हाइड्रोजनीकरण होता है जिससे अधिक भाग मध्यम तेल का और कुछ भाग हलके तेल का प्राप्त होता है। तीसरे क्रम में मध्यम तेल का पृथक्करण होता है। वाष्पीभूत तेल को हाइड्रोजन के साथ-साथ उत्प्रेरक पर ले जाते हैं जिससे प्रधानतया पेट्रोल प्राप्त होता है। ताप और दबाव के परिवर्तन और उत्प्रेरक की प्रकृति से विधि में ऐसा सुधार हो सकता है कि अन्तिम उत्पाद या तो प्रधानतया सौरभिक या प्रधानतया पैराफिनीय अथवा प्रधानतया नैफ्थनीय हो सकता है। इससे हवाई जहाज का उच्च कोटि का पेट्रोल सरलता से प्राप्त होता है। बिटुमिनी कोयले से प्राप्त डीज़ेल-तेल प्रभाग अलकतरे से प्राप्त डीज़ेल-तेल से श्रेष्ठतर होता है। बिटुमिनी कोयले से इस विधि से उत्कृष्ट कोटि का उपस्नेहन-तेल नहीं प्राप्त हो सका है। इस विधि से वस्तुतः उच्च-औक्टेन का पेट्रोल प्रधान रूप से प्राप्त होता है।

कोयले के ६० प्रतिशत के समतुल्य पेट्रोल इस विधि से हाइड्रोजन की क्रिया से प्राप्त हो सकता है, पर अन्य कार्यों में हाइड्रोजन, शक्ति आदि के उत्पादन में जो कोयला खर्च होता है उन सबका विचार कर यह कहा जा सकता है कि एक टन पेट्रोलियम प्राप्त करने में ५ या ६ टन कोयला खर्च होता है अथवा एक टन कोयले से ४० गैलन मोटर स्पिरिट, ५० गैलन डीज़ेल-तेल, ३५ गैलन फ्यूज़ेल तेल और १०,-००० घन फुट गैस प्राप्त होती है।

इस विधि में पेट्रोलियम के साथ-साथ कुछ उप-उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। कोयले का गन्धक हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और नाइट्रोजन अमोनिया में परिणत हो जाता है। जितना कोयला लगता है उसके चतुर्थांश कोयले के समतुल्य मिथेन, ईथेन, प्रोपेन और ब्युटेन हाइड्रोकार्बन गैसें बनती हैं। इन्हें रासायनिक संश्लेषण में अथवा हाइड्रोजन में परिणत कर सकते हैं। ब्युटेन को ब्युटिलीन में परिणत कर उसे फिर आइसो-औक्टेन में परिणत कर मोटर-स्पिरिट में डालकर मोटर-स्पिरिट की औक्टेन संख्या बढ़ा सकते हैं। प्रोपेन और ब्युटेन को सिलिंडर में भरकर जलावन के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। कोयले के हाइड्रोजनीकरण से फिनोल, क्रिसोल और अन्य उच्च अणुभार वाले फिनोल भी प्रारम्भिक उत्पाद से पृथक् किये जा सकते हैं।

गैसों का निर्माण

कृत्रिम रीति से पेट्रोलियम तैयार करने के लिए हमें हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड गैसें चाहिए। इनका अनुपात २ : १ से लेकर १ : १ रहना चाहिए। यदि कोवाल्ट उत्प्रेरक का व्यवहार हो, तो २ से १ अनुपात आवश्यक है। जिंक आक्साइड,

अलूमिनियम ट्रायक्साइड और थोरिया उत्प्रेरकों के व्यवहार से १ से १.२ अनुपात से काम चल सकता है। ऐसी गैसें कोयले के हाइड्रोजनीकरण से प्राप्त हो सकती हैं। पर कोयले के हाइड्रोजनीकरण के लिए ऐसा हाइड्रोजन आवश्यक है, जिसकी शुद्धता कम से कम ९२ प्रतिशत हो। अन्य रीतियों में ऐसे हाइड्रोजन से भी काम चल सकता है जिसमें १० से १२ प्रतिशत कार्बन डाइ-आक्साइड और नाइट्रोजन सदृश निष्क्रिय गैसें हों।

ऐसी गैस की प्राप्ति के लिए कोई भी कार्बनवाला पदार्थ इस्तेमाल हो सकता है, पर साधारणतया दो ही पदार्थ, कोयला और प्राकृतिक गैस, प्रयुक्त होते हैं। प्राकृतिक गैस से प्राप्त गैस-मिश्रण कोयले से प्राप्त गैस-मिश्रण से सस्ता पड़ता है।

कोयले से गैस-मिश्रण प्राप्त करने में निम्नलिखित रीतियां प्रयुक्त हो सकती हैं–

(१) कोक से जल-गैस तैयार करना।

(२) निम्न कोटि के वाष्पशील कोयले से जल-गैस तैयार करना।

(३) कोयले या कोक से भाप में आक्सिजन की सहायता से जल-गैस तैयार करना। विकलर और लुर्गी विधियाँ।

(४) उत्प्रेरकों की सहायता से अथवा उत्प्रेरकों के अभाव में कोक-चूल्हे-गैस की भाप से गैस-मिश्रण प्राप्त करना।

विविध विधियों से जो गैस-मिश्रण प्राप्त होता है उसका संगठन एक सा नहीं होता। उन गैसों में कुछ विभिन्नता रहती है। यह विभिन्नता निम्नलिखित सारिणी से स्पष्ट हो जाती है—

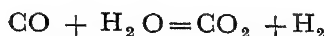
संघटन	कोक जल-गैस %	निम्न वाष्पशील कोयला जल-गैस %	कोक जल-गैस विकल (आक्सिजन जलवाष्प) %	कोयला-जल गैस लुर्गी आक्सिजन जलवाष्प %	कोक चूल्हा गैस %
कार्बन डाइ-आक्साइड	५	३·८	१३—२०	३०	३·०
कार्बन मनॉक्साइड	४१	३९·७	४७—३६	२०—१५	७·०
हाइड्रोजन	५०	५४·१	३९—४१	३०—३५	५५·०
मिथेन	०·५	०·७	०·६—०·४	१५—२०	२७·०
नाइट्रोजन	३·५	१·५	०·४—०·५	२·०	६·०
असंतृप्त हाइड्रोकार्बन	—	०·२	—	—	२·०

कार्बन पर जब भाप प्रवाहित होती है तब निम्नलिखित समीकरण के अनुसार कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन का मिश्रण प्राप्त होता है। इस समीकरण के अनुसार कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन के सम आयतन मिश्रण में रहते हैं।



$$C + H_2O = CO + H_2$$

इस मिश्रण को ऐसे गैस-मिश्रण में परिणत करने के लिए जिसमें हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात २ : १ रहे, मिश्रण को भाप के संसर्ग में लाया जाता है जिससे कार्बन मनॉक्साइड और भाप के बीच निम्नलिखित प्रतिक्रिया होती है—



$$CO + H_2O = CO_2 + H_2$$

साधारणतया यह प्रतिक्रिया उत्प्रेरक की उपस्थिति में होती है। फेरिक आक्साइड यहां उत्प्रेरक प्रयुक्त होता है। फेरिक आक्साइड के साथ कुछ क्रोमियम आक्साइड, कैलसियम आक्साइड और मैगनीशियम आक्साइड मिला हो तो लोहे की सक्रियता बढ़ जाती है। इनके अतिरिक्त अंशतः अवकृत कोबाल्ट आक्साइड और अन्य उत्प्रेरक, जैसे ताँबे के साथ कोबाल्ट, पोटैसियम आक्साइड के साथ मैगनीशिया और जिंक आक्साइड, मैगनीशिया के साथ निकेल इत्यादि प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रतिक्रिया में जो कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है, उसे सम्पीडन द्वारा अथवा जल में घुलाकर अथवा अन्य रासायनिक द्रव्यों द्वारा निकाल लेते हैं।

कोक-चूल्हे गैस में हाइड्रोजन पर्याप्त मात्रा में रहता है, पर कार्बन मनॉक्साइड की मात्रा अल्प रहती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में मिथेन और कुछ एथिलीन रहते हैं। इन हाइड्रो कार्बनों को भाप की प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड में परिणत करते हैं। इस प्रतिक्रिया का सम्पादन उत्प्रेरकों की उपस्थिति अथवा उनके अभाव में भी होता है। इसके लिए जो उत्प्रेरक प्रयुक्त हो सकते हैं उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। कोक-चूल्हे गैस के १०० आयतन से निम्नलिखित संगठन के १७० आयतन गैस-मिश्रण प्राप्त हो सकते हैं—

	प्रतिशत
कार्बन डाइ-आक्साइड	४·२
कार्बन मनॉक्साइड	१६·३
हाइड्रोजन	७५·३
मिथेन	१·०
नाइट्रोजन	३·२

इस गैस-मिश्रण में हाइड्रोजन का आयतन बहुत अधिक है। यदि इस मिश्रण

के १७० आयतन में कोक से प्रस्तुत जल-गैस का २५० आयतन मिला दिया जाय, तो इस नये गैस-मिश्रण का संगठन इस प्रकार होगा—

	प्रतिशत
कार्बन डाइ-आक्साइड	४·६
कार्बन मनॉक्साइड	३०·४
हाइड्रोजन	६०·९
मिथेन	०·७
नाइट्रोजन	३·४

इस गैस-मिश्रण में हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात जैसा चाहिए वैसा ही २ : १ है।

एक दूसरी रीति से भी प्रयुक्त गैस-मिश्रण प्राप्त हो सकता है। इस रीति में प्रति पाउण्ड भाप के साथ १० घनफुट कोक-चूल्हे-गैस को जल-गैस जनित्र (Generator) में ले जाते हैं, जहां उपयुक्त गैस-मिश्रण बनता है। कुछ लोगों ने भाप के साथ आक्सिजन के प्रवेश का भी सुझाव रखा है।

जर्मन रीति

जर्मन रीति में कोयले अथवा कोक से गैस-मिश्रण प्राप्त होता है। जर्मनी के अनेक कारखानों में कोक इस्तेमाल होता है। कोक से जल-गैस प्राप्त होती है। इस जल-गैस में हाइड्रोजन का अनुपात बढ़ाने के लिए जो उत्प्रेरक प्रयुक्त होता है, उसमें फेरिक आक्साइड ३८·५ प्रतिशत, कैलसियम आक्साइड १८·२ प्रतिशत, क्रोमिक आक्साइड ५·४ प्रतिशत, मैगनीशियम आक्साइड ५·२ प्रतिशत और अन्य कुछ पदार्थ अल्प मात्रा में तथा जल १८·० प्रतिशत पाये गये हैं।

कोक-चूल्हे गैस के भंजन से भी जर्मनी में कुछ कारखानों में गैस-मिश्रण प्राप्त होता है। जर्मनी के हैम्बर्ग के निकट एक कारखाने में प्रतिदिन ४१,०००,००० घनफुट जल-गैस तैयार होती है। इस गैस के १८ प्रतिशत, प्रायः ७,४००,००० घनफुट में उत्प्रेरक की उपस्थिति में हाइड्रोजन की मात्रा को बढ़ाया जाता है। इसके लिए २२००° फ० पर लगभग ३५३,००० घनफुट प्रति घण्टा गैस का भंजन किया जाता है। इस भंजन से हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात २ : १ हो जाता है, जो हाइड्रोकार्बन के निर्माण के लिए आवश्यक है।

निम्न ताप पर प्रस्तुत कोक से भी एक कारखानें में गैस-मिश्रण तैयार होता है। ऐसे गैस-मिश्रण में हाइड्रोजन कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात १·३५ : १ होता है,

जो सामान्य कोक से प्रस्तुत जल-गैस के हाइड्रोजन के अनुपात से अधिक है। ऐसा मिश्रण बिना किसी दूसरे उपचार के प्रयुक्त हो सकता है।

निकृष्ट कोटि के कोयले, ब्राउन कोयले से भी गैस-मिश्रण तैयार हुआ है। ऐसे गैस-मिश्रण में ७६ प्रतिशत हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड रहता है। एक कारखाने के लिए ४,०००,००० घनफुट गैस प्रति घण्टा बननी चाहिए। इतनी गैस से ८२,५०० छोटा टन पेट्रोलियम प्रतिवर्ष तैयार हो सकता है। इतनी गैस तैयार करने के लिए कम-से-कम ४ जनित्र आवश्यक हैं। लगभग ४३२५००० घनफुट प्रति घण्टा उत्पादक गैसें गरम करने में लगेंगी। जनित्र में डालने के लिए ४९, ५०० घनफुट प्रति घण्टा आक्सिजन चाहिए। इस रीति से १००० घनफुट गैस-मिश्रण की प्राप्ति के लिए लगभग ५० पाउण्ड सूखा ब्राउन कोयला लगता है।

इस काम के लिए अनेक प्रकार के जनित्र बने हैं। कई कम्पनियां ऐसा जनित्र तैयार कर सकती हैं। कौपर्स कम्पनी ने जो जनित्र बनाया है वह अच्छा समझा जाता है। ऐसे जनित्र में प्रायः ९८१ टन कोक प्रतिदिन इस्तेमाल हो सकता है। ऐसे कोक में कार्बन और वाष्पशील पदार्थ ८२˙६ प्रतिशत, जल ८˙२ प्रतिशत और राख ९˙२ प्रतिशत रहते हैं। इतने कोयले से प्रतिदिन १,१४६,०७० घनफुट जल गैस प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में लगभग ५३˙५ पाउण्ड कोक से १००० घनफुट जल-गैस प्राप्त होती है।

एक दूसरे प्रकार का जनित्र विंकलर जनित्र है। इसमें कोयले, लिगनाइट, अर्ध कोक के चौथाई इंच के छोटे-छोटे टुकड़े इस्तेमाल होते हैं। इसमें भाप और आक्सिजन अथवा भाप, वायु और आक्सिजन ऐसे डाले जाते हैं कि ईंधन प्रक्षुब्ध होता रहे। इस प्रकार से प्राप्त गैस का संघटन ऊपर दिया हुआ है, १००० घनफुट गैस की प्राप्ति के लिए ४०˙९ पाउण्ड कोक, ९८ प्रतिशत ऑक्सिजन २८४ घनफुट और जल-भाप १९ पाउण्ड लगते हैं। विंकलर रीति से पेट्रोलियम प्राप्त करने के कारखाने आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

कोयले का गैसीकरण

खानों से कोयला निकाल कर उससे गैस तैयार करने में कृत्रिम पेट्रोलियम का मूल्य बढ़ जाता है। ऐसे पेट्रोलियम का मूल्य कम करने के लिए यदि खानों में ही कोयले को गैस में परिणत कर दें, तो अच्छा होगा। खानों से कोयला निकालने का खर्च बच जायगा।

खानों से कोयले को गैस में परिणत करने का सुझाव पहले-पहल साइमन्स ने

सन् १८६८ में और पीछे मेण्डेलिफ ने सन् १८८८ में दिया था। इसका पहला पेटेण्ट १९०९ ई० में बेट्स द्वारा लिया गया था। इँगलैंड में सर विलियम रैमजे ने इसे व्यवहार में लाने की कोशिश की, पर उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। रूस में इस सम्बन्ध में सन् १९३३ ई० में कुछ प्रारम्भिक प्रयोग हुए। सन् १९३७ में काम शुरू हुआ और १९४० ई० में काम शुरू करने के सब साधन तैयार हो गये। ऐसा समझा जाता है कि ऐसे तीन कारखाने आज रूस में काम कर रहे हैं।

जिन रीतियों से खानों में कोयले का गैसीकरण होता है, उनमें निम्नलिखित रीतियां महत्त्व की हैं—

(१) कक्ष-रीति
(२) धारा-रीति
(३) पारच्याव-रीति
(४) विदर-रीति

रूस में इस सम्बन्ध में १ से १६ फुट मोटाई, ६५ से २०० फुट गहराई और ०° से ७५° नति के कोयले के स्तर पर प्रयोग हुए हैं।

कक्ष-रीति

पहले-पहल कक्ष-रीति से ही कोयले का गैसीकरण हुआ था। इस रीति में कोयले को ईट की दीवार देकर अन्य कोयले से अलग कर एक ओर से वायु प्रविष्ट कराते हैं और दूसरी ओर से गैस निकालते हैं। वायु को प्रविष्ट कराने के लिए कोयले का रन्ध्र और प्राकृतिक दरारें काम में लायी गयी थीं। पीछे कोयले को तोड़कर वायु-प्रवेश के लिए मार्ग बनाये गये थे। इस रीति से गैसीकरण सरलता से हो जाता है। पर इसमें कमरे इत्यादि बनाने का झंझट रहता है। इस कारण अब इसका उपयोग नहीं होता।

धारा-रीति

धारा-रीति में कोयले के स्तर में एक लम्बी सुरंग बनाते हैं। बाह्यतल से सुरंग-तल तक दो कूपक खोदते हैं। एक ओर से वायु प्रवेश करती है और दूसरी ओर से निकलती है। वायु प्रवेशक-कूपक के आधार पर आग जलायी जाती है। वायु के झोंके के प्रवेश से दूसरे कूपक से गैसें निकलती हैं। आग धीरे-धीरे जलती हुई स्तर की छत की ओर बढ़ती है और राख और बिना जला कोयला गिर कर नीचे इकट्ठा होता है। सुरंग में प्रतिक्रिया के तीन मण्डल होते हैं। इसके एक मण्डल को 'दहन मण्डल' कहते हैं। यह मण्डल प्रायः ढाई मीटर लम्बा होता है। इसमें जलकर कोयला

प्रधानतया कार्बन मनॉक्साइड बनता है। दूसरा मण्डल 'प्रत्यादान-मण्डल' होता है। यह प्रायः ३ मीटर लम्बा होता है। इस मण्डल में कार्बन डाइ-आक्साइड अवकृत हो कार्बन मनॉक्साइड बनता है और प्रचुर मात्रा में हाइड्रोजन बनता है। तीसरा मण्डल 'आसवन मण्डल' होता है। यह करीब ३ मीटर लम्बा होता है। इसमें कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा स्थिर रहती है।

इन तीनों मण्डलों में कोयले की खपत एक-सी नहीं होती। 'दहन-मण्डल' में सबसे अधिक कोयला जलता है। इस कारण बीच-बीच में वायु की गति बदल देते हैं, ताकि कोयले का जलना सब मण्डलों में एक-सा होता है। यदि वायु के साथ भाप नहीं प्रविष्ट करायी जाय तो गैस-मिश्रण में हाइड्रोजन की मात्रा आवश्यकता से कम रहती है।

इस रीति में यदि भाप और वायु की दिशा २० से ३० मिनट की अवधि में एक ओर से दूसरी विपरीत दिशा की ओर बदलती रहे, तो इससे निम्नांकित संघटन का गैस-मिश्रण प्राप्त होता है।

	प्रतिशत
कार्बन डाइ-आक्साइड	१५
कार्बन मनॉक्साइड	२६
हाइड्रोजन	५३
मिथेन	०·७
आक्सिजन	०·५
नाइट्रोजन	४·८

इस रीति में दोष यह है कि इसमें खानों के अन्दर काम करने के लिए अनेक आदमी लगते हैं। यह रीति ऐसे कोयला-स्तर के लिए अधिक उपयुक्त है, जिसका स्तर विशेष रूप से नत है। यदि स्तर कम नत हो, तो राख और बिना जले कोयले के गिरने से मार्ग अवरुद्ध हो जा सकता है। कहीं-कहीं V– आकार की भी सुरंग बनती हैं। एक मार्ग से वायु प्रवेश करती है और दूसरे मार्ग से गैसें निकलती हैं और दोनों कूपकों के मिलन-स्थान पर आग जलती है।

पारच्याव-रीति

कोयले के गरम करने से सिकुड़न से उसमें छेद और दरारें पड़ती हैं। इससे गैसें उसमें शीघ्रता से प्रवेश कर सकती हैं। यह रीति क्षैतिज स्तरों के लिए अधिक उपयुक्त है और इसमें अन्दर खोदने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बड़े पैमाने पर कोयले

के स्तर में ऊर्ध्वाधार सूराख २० से ४० गज की दूरी पर खोदे जाते हैं। कूपक के पेंदे में आग लगायी जाती है। मध्य के नल से वायु को प्रविष्ट कराया जाता है और जो गैसें बनती हैं उन्हें इकट्ठा करते हैं। खानों के अन्दर आग के जलने से कोयले में छेद और दरारें बन जाती हैं, जिससे गैसें एक छेद से दूसरे छेद में चली जाती हैं। ज्यों ही ऐसी स्थिति हो जाती है, एक वायु-प्रवेश-मार्ग और दूसरे एक गैस-निकास-मार्ग को बन्द कर देते हैं। अब इससे दोनों मार्गों के बीच के पट्ट का गैसीकरण शुरू होता है। जब गैसीकरण समाप्त हो जाता है तब दूसरे छेद को इसी प्रकार काम में लाते हैं। इस प्रकार एक के बाद दूसरे सब छेदों के बीच गैसीकरण किया जाता है। पारच्याव और धार दोनों रीतियों के साथ-साथ उपयोग का सुझाव भी रखा गया है। यह रीति उस कोयले के स्तर के लिए अच्छी समझी जाती है जहाँ छत के गिर जाने से धारा-रीति का उपयोग नहीं हो सकता। इस रीति में कोयले के स्तर को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त करते हैं। यह विभाजन ऊर्ध्वाधार कूपक के द्वारा होता है। इन कूपकों को नीचे क्षैतिज छिद्रण (boring) द्वारा जोड़ते हैं। क्षैतिज छिद्रण जब तक गिरकर मार्ग अवरुद्ध न करे, तब तक धारा-रीति का उपयोग करते हैं। जब मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब पारच्याव-रीति से गैसीकरण करते हैं। ऐसा समझा जाता है कि तब तक कोयले का स्तर पर्याप्त सछिद्र हो जाता है।

विदर-रीति

इस रीति में कोयले के स्तर के तल में लगभग दो फुट व्यास के तीन समानान्तर कूपक बनाते हैं। बीच के कूपक से वायु प्रविष्ट होती और शेष दोनों कूपकों से गैसें निकलती हैं। अब कूपकों को अनेक सूराखों से जोड़ते हैं। ये सूराख पाँच-पाँच गज की दूरी पर और लगभग चार इंच व्यास के होते हैं और ऐसे बने होते हैं कि वे एक दूसरे के समानान्तर रहकर कूपकों को समकोण पर काटते हैं।

इस प्रकार के सूराख काटने की अनेक विधियाँ आज प्रयुक्त होती हैं। कहीं यह सूराख काटना बिजली द्वारा होता है और कहीं उच्च दबाव पर पानी द्वारा होता है। आक्सिजन द्वारा भी यह सम्पादित होता है। इसके अतिरिक्त छेद करने के अन्य यन्त्रों का भी आविष्कार हुआ है।

इन सूराखों के कोयले में आग लगायी जाती है और वायु प्रविष्ट करायी जाती है। विदर का दहन होकर आग मध्य कूपक के दोनों ओर जाती है। अन्य सूराख बन्द कर दिये जाते हैं। एक के बाद दूसरे विदरों को जलाकर गैसों को नियमित रूप से निकाल लिया जाता है।

यह रीति उस कोयले के स्तरों के लिए अधिक उपयुक्त है, जहाँ धारा-रीति और पारच्याव रीति का उपयोग नहीं हो सकता। इस रीति से स्तर के ८० से ९० प्रतिशत कोयले का गैसीकरण हो जाता है।

खानों के गैसीकरण से कम मूल्य में गैसें प्राप्त होती हैं। जहाँ एक श्रमिक प्रति मास केवल ३० टन कोयला निकाल सकता है वहाँ गैसीकरण से एक श्रमिक १०० से २०० टन प्रति मास कोयले का उपयोग कर सकता है। गैसीकरण में मूल-धन भी कम लगता है। खानों से बाहर गैसीकरण में जितना खर्च पड़ता है उसके ६० से ७० प्रतिशत खर्च में ही खानों में गैसीकरण होता है।

अमेरिका में भी खानों में कोयले के गैसीकरण का प्रयत्न हुआ है। कुछ कम्पनियाँ इस काम के लिए बनी और कार्य कर रही हैं।

प्राकृतिक गैस से पेट्रोलियम

पेट्रोलियम कूपों से निकली गैसों में मिथेन रहता है। कोयले की खानों से निकली गैसों और निम्न ताप कार्बनीकरण से निकली गैसों में भी मिथेन रहता है। मिथेन से भी हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड के मिश्रण प्राप्त हुए हैं। ये मिश्रण निम्नलिखित तीन रीतियों से प्राप्त हो सकते हैं।

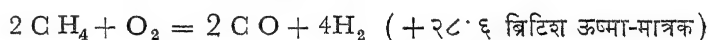
(१) मिथेन पर भाप की प्रतिक्रिया से


$CH_4 + H_2O = CO + 3H_2$ (−२०१ ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक)

(२) मिथेन पर कार्बन डाइ-आक्साइड की प्रतिक्रिया से


$CH_4 + CO_2 = 2\,CO + 2H_2$ (−२३८ ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक)

(३) मिथेन के नियंत्रित आक्सीकरण से। यहाँ वायु अथवा आक्सिजन आक्सीकरण के लिए प्रयुक्त हो सकता है।


$2\,CH_4 + O_2 = 2\,CO + 4H_2$ (+२८·६ ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक)

पहली प्रतिक्रिया में कार्बन मनॉक्साइड की मात्रा कम रहती है। इस प्रतिक्रिया से प्राप्त गैस-मिश्रण में दूसरी प्रतिक्रिया से प्राप्त गैस-मिश्रण के मिलाने से ऐसा गैस-मिश्रण प्राप्त हो सकता है, जिसमें हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात ठीक-ठीक हो। ये दोनों प्रतिक्रियाएँ साथ-साथ सम्पन्न की जा सकती हैं। इसके लिए ताप १३५०° फ० और उत्प्रेरक निकेल होना चाहिए। ऐसी दशा में प्रतिक्रिया निम्नलिखित समीकरण के अनुसार सम्पन्न होती है।


$$3CH_4 + 2H_2O + CO_2 = 4CO + 8H_2$$

इस सम्बन्ध में अनेक अन्वेषकों द्वारा जो अनुसन्धान हुए हैं उनसे मालूम होता है कि मिथेन पर भाप की प्रतिक्रिया से १५००° फ० से ऊपर यदि भाप का बाहुल्य न हो तो केवल हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड प्राप्त होते हैं। पर यदि भाप का बाहुल्य हो और ताप १२००° फ० हो, तो उससे निम्नलिखित समीकरण के अनुसार कार्बन डाइ-आक्साइड और हाइड्रोजन प्राप्त होते हैं—



$$CH_4 + 2H_2O = CO_2 + 4H_2$$

उत्प्रेरकों की अनुपस्थिति में प्रतिक्रिया बड़ी मन्द होती है, पर २३७०° फ० के ऊपर प्रतिक्रिया तीव्रतर हो जाती है। उत्प्रेरकों के अभाव में २७३०° फ० पर ०·२१ से ३·६ सेकंड के संस्पर्श से केवल १ से ३·२ प्रतिशत प्राकृतिक गैस अविच्छेदित रह गयी थी। इन प्रयोगों में कार्बन का कुछ निक्षेप भी पाया गया था।

इन प्रतिक्रियाओं के सम्पादन के लिए अनेक उत्प्रेरकों का अध्ययन हुआ है। इनमें निम्नलिखित उत्प्रेरक उल्लेखनीय हैं—

(१) १२००° फ० ताप पर सक्रिय कार्बन पर निकेल-अलूमिना-मैगनीशिया;

(२) १४७०° फ० ताप पर निकेल-थोरिया, मैगनीशिया और निकेल-लोह;

(३) १५४०°–१७००° फ० ताप पर निकेल-मैगनीशिया;

(४) १५००°–१७००° फ० ताप पर २५ प्रतिशत निकेल, ७४ प्रतिशत मैगनीशिया और १ प्रतिशत बोरिक अम्ल;

(५) मिट्टी पर निकेल-अलूमिना; और

(६) मिट्टी पर अलूमिना और मैगनीशिया।

कोबाल्ट उत्प्रेरक निकृष्ट कोटि का पाया गया है। सबसे उत्कृष्ट उत्प्रेरक अलूमिना और मिट्टी पर निक्षिप्त निकेल पाया गया है। इससे प्रायः शत-प्रतिशत परिवर्तन होने की सूचना मिली है।

अर्ध-व्यापारिक पैमाने पर जो प्रयोग हुए हैं, उनसे निकेल उत्प्रेरक से १५८०–१६५०° फ० औसत ताप पर १० मिनट परिवर्तन-काल में जो गैस प्राप्त हुई थी उसका संघटन इस प्रकार का था। जो प्राकृतिक गैस प्रयुक्त हुई थी, उसमें लगभग ८७·५ प्रतिशत मिथेन था।

	प्रतिशत
कार्बन डाइ-आक्साइड	९
कार्बन मनॉक्साइड	२२
हाइड्रोजन	६४
मिथेन	०·८
नाइट्रोजन	४·२

इसके निर्माण में प्राकृतिक गैस का ०·४६ अंश प्रयुक्त हुआ था। इसमें ०·३० अंश गैस बनाने में और ०·१६ अंश जलकर ऊष्मा उत्पन्न करने में लगा था।

स्टौर्च और फील्डनर[1] ने, जो एक अग्रिम संयन्त्र में प्रयोग किया था, देखा कि १५६०-१७२०° फ० पर $\frac{१}{४}+\frac{१}{८}$ इंच निकेल चूर्ण से जो गैस-मिश्रण प्राप्त किया था उसमें हाइड्रोजन ७५ प्रतिशत, कार्बन मनॉक्साइड २१ प्रतिशत, कार्बन डाइ-आक्साइड १ प्रतिशत और नाइट्रोजन और मिथेन १ प्रतिशत था।

नियंत्रित आक्सीकरण

इस आक्सीकरण में ऊष्मा निकलती है और बाहर से ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती, इस कारण यह काम कम खर्च में हो सकता है। फिशर और पिचलर ने दो भाग मिथेन और एक भाग आक्सिजन से २५५०° सें० पर और लगभग ०·०१ सेकंड संस्पर्शकाल से जो गैस-मिश्रण प्राप्त किया था, उसमें हाइड्रोजन लगभग ५४ प्रतिशत, कार्बन मनॉक्साइड २६ प्रतिशत, एसिटिलीन ९·४ प्रतिशत, मिथेन ४·८ प्रतिशत और कार्बन डाइ-आक्साइड ३·० प्रतिशत था। इससे एसिटिलीन और गन्धक निकालकर सीधे कृत्रिम पेट्रोल के निर्माण में उपयोग किया जा सकता है। इसमें १८३०° फ० तक निकेल, १५५०° फ० तक निकेल-मैगनीशिया आक्साइड और १६५०° फ० तक थोरिया या सिलिका पर निकेल उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त हो सकता है।

गैस-मिश्रण का शोधन

कृत्रिम पेट्रोलियम तैयार करने में जो गैस-मिश्रण प्रयुक्त होता है उसमें गन्धक और गन्धक के यौगिकों को न रहना चाहिए। १००० घनफुट गैस-मिश्रण में केवल ०·१ ग्रेन गन्धक सह्य है। कुछ लोगों का दावा है कि उन्हें ऐसे उत्प्रेरक मालूम हैं, जिन पर गन्धक और गन्धक के यौगिकों का कोई असर नहीं पड़ता, पर साधारण उत्प्रेरकों की सक्रियता गन्धक और गन्धक के यौगिकों के कारण नष्ट हो जाती है। गैस-मिश्रण से गन्धक निकालने के सम्बन्ध में बहुत लोगों के अनुसन्धान हुए हैं और लोगों ने अनेक रीतियों का पेटेण्ट कराया है।

साधारणतया गैस-मिश्रण से दो क्रमों में गन्धक निकाला जाता है। एक क्रम में हाइड्रोजन सल्फाइड निकाला जाता है और दूसरे क्रम में कार्बनिक गन्धक निकाला जाता है।

[1] Storch and Fieldner

जर्मनी के कारखानों में गन्धक निकालने की सुपरिचित रीति लोहे के आक्साइड के द्वारा प्रचलित है। एक दूसरी रीति में 'एल्केज़िड' का व्यवहार होता है। एल्केज़िड एक क्षारीय कार्बनिक यौगिक है, जो हाइड्रोजन सल्फाइड को अवशोषित कर लेता है। एल्केज़िड पर भाप के प्रवाह से हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकल जाता और एल्केज़िड फिर इस्तेमाल हो सकता है। उत्प्रेरकीय आक्सीकरण से गन्धक के कार्बनिक यौगिक निकलते हैं। इसके लिए ३५०° फ० पर ताजा फेरिक आक्साइड और सोडियम कार्बोनेट का मिश्रण और ५३५° फ० पर पुराना मिश्रण उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। ताजे मिश्रण में फेरिक आक्साइड ३४·४ प्रतिशत और सोडियम कार्बोनेट २३·८ प्रतिशत रहता है। पुराने उत्प्रेरकीय मिश्रण में ३३ प्रतिशत सोडियम सल्फेट, ०·३ प्रतिशत सोडियम सल्फाइट और ४ प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट रहते हैं। कार्बनिक गन्धक के हटाने में अल्प मात्रा में आक्सिजन का रहना आवश्यक होता है।

हाइड्रोजन सल्फाइड निकालने का तरीका वही है जो सिन्दरी के खाद के कारखाने में प्रयुक्त होता है। एक मीनार में आयर्न आक्साइड रखा रहता है। प्रायः ४० इंच की दूरी पर कई थाल रखे रहते हैं। साधारणतया १० से २० थाल रखे रहते हैं। इन थालों में १२ इंच की गहराई में आयर्न आक्साइड बिछा रहता है। प्रति सेकंड प्रायः ३·३ फुट के वेग से गैस-मिश्रण प्रवाहित होता है, यह उत्प्रेरक लगभग १२ सप्ताह काम देता है। उसके बाद फेंक दिया जाता है। गैस-मिश्रण में कुछ वायु भी प्रविष्ट करायी जाती है, ताकि वह कार्बनिक गन्धक के निकालने में सहायता करे। ऐसे शोधित गैस-मिश्रण में १००० घनफुट गैस में करीब दो ग्रेन गन्धक रहता है। जितना गन्धक सह्य है, उससे यह मात्रा कुछ अधिक है।

गैस-मिश्रण में यदि आक्सिजन ०·०१२ आयतन प्रतिशत हो, तो हाइड्रोजन सल्फाइड कम निकलता है, ०·१७७–०·२०५ आयतन प्रतिशत होने से हाइड्रोजन सल्फाइड अधिक निकलता और ०·८०२–०·९०३ प्रतिशत होने से हाइड्रोजन सल्फाइड का निकलना फिर बहुत कम हो जाता है, आक्सिजन के ०·१७७–०·४४३ प्रतिशत रहने से कार्बनिक गन्धक यौगिक सन्तोषजनक रीति से निकल जाते हैं।

गन्धक निकालने की अन्य रीतियाँ हैं। एक रीति में गैस-मिश्रण को पहले भींगे लोहे के आक्साइड पर, फिर लोहे और अल्कली कार्बोनेट पर ५७०–८४०° फ० पर और फिर अन्त में ३००-५७०° फ० पर लोहे के आक्साइड और अल्कली धातुओं के कार्बोनेटों पर प्रवाहित करते हैं।

केवल लोहे के आक्साइड के स्थान पर लोहे के आक्साइड और लकड़ी के बुरादे का उपयोग हुआ है। लकड़ी के बुरादे से आक्साइड सरन्ध्र हो जाता है और तब गैसें सरलता से प्रविष्ट करती हैं। लोहे के आक्साइड को गेंद के रूप में देने से भी गैसें सरलता से प्रवेश करती हैं।

यदि गन्धक की मात्रा बहुत अधिक हो, तो पहले अधिकांश गन्धक को अमोनिया-थाइलौक्स विधि से निकाल लेते हैं और तब लोहे के आक्साइड पर ले जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि १००० घनफुट गैस में २५०० ग्रेन गन्धक से गन्धक की मात्रा १००० घनफुट गैस में ८० ग्रेन से नीचे गिर जाती है।

कुछ लोगों ने लोहे के आक्साइड में अन्य पदार्थों के मिलने से उसकी सक्रियता बहुत बढ़ी हुई पायी है। १० प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड अथवा १० प्रतिशत थोरिया के डालने से सक्रियता बहुत बढ़ जाती है। फुलर मिट्टी में लोहे के आक्साइड और ३० प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड से गन्धक की मात्रा १००० घनफुट में ०·३५ ग्रेन हो गयी है। इसी प्रकार ताँबे और निकेल के हाइड्राक्साइड के डालने से भी उत्प्रेरक की दक्षता बढ़ी हुई पायी गयी है।

कार्बनिक गन्धक-यौगिकों के निकालने के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग हुए हैं। चीनी मिट्टी पर निकेल हाइड्राक्साइड के उपयोग से गन्धक यौगिकों की मात्रा बहुत घटी हुई पायी गयी है। अनेक कार्बनिक गन्धक यौगिक अवकरण से हाइड्रोजन सल्फाइड में परिणत हो जाते हैं।

तांबे पर निक्षिप्त यूरेनियम और सीरियम ४:१ के अनुपात में ६६०° फ० पर प्रति घण्टा ५००० आयतन वेग से अच्छा उत्प्रेरक प्रमाणित हुआ है। इससे कार्बन डाइ-सल्फाइड निकल जाता, पर थायोफीन नहीं निकलता है। कार्बनिक गन्धक यौगिकों को अवकृत कर हाइड्रोजन सल्फाइड में परिणत करने के लिए अनेक उत्प्रेरकों के उपयोग हुए हैं। ऐसे उत्प्रेरकों में अकार्बनिक अम्लों या अम्ल निरुदकों के साथ सीस, वङ्ग और ताँबा इत्यादि धातुएँ, लेड क्रोमेट, कैलसियम प्लम्बेट, क्युप्रिक आक्साइड और लेड एसिटेट तथा बहुमूल्य धातुएँ, रजत और स्वर्ण हैं।

प्रतिक्रिया

कार्बन मनॉक्साइड पर हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया से निम्नलिखित समीकरण के अनुसार क्रियाएँ सम्पन्न हो सकती हैं—


(1) $nCO + 2nH_2 = C_nH_{2n} + nH_2O$


(2) $nCO + (2n+1)H_2 = C_nH_{2n+2} + nH_2O$


(3) $2nCO + nH_2 = C_nH_{2n} + nCO_2$

यदि हाइड्रोजन की मात्रा कम हो और उत्प्रेरक की हाइड्रोजनीकरण-क्षमता प्रबल न हो, तो पहली प्रतिक्रिया होती है। यदि हाइड्रोजन की मात्रा अधिक हो और उत्प्रेरक की हाइड्रोजन-क्षमता प्रबल हो तो दूसरी प्रतिक्रिया होती है। निकेल अथवा कोबाल्ट के स्थान पर यदि लोहा उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त हो तो तीसरी प्रतिक्रिया होती है।

हाइड्रोकार्बन के निर्माण की प्रतिक्रियाएँ ऊष्मा-क्षेपक होती हैं और इसमें आयतन की कमी होती है, इस कारण निम्न ताप और ऊँचे दबाव से प्रतिक्रिया का वेग बढ़ता है। यह प्रतिक्रिया निकेल अथवा कोबाल्ट उत्प्रेरक से ३०५° फ० पर और लोह-उत्प्रेरक से ४६५° फ० पर सम्पन्न होती है। साधारणतया ये प्रयोग शून्य और प्रति वर्ग इंच पर १५० पाउण्ड दबाव पर होते हैं। गैस-मिश्रण को अनेक कक्षों में ले जाते हैं। वहाँ प्रतिक्रियाएँ सम्पन्न होती हैं और उत्पादक संघनित्र में संघनित होता है और आसवन से उसे विभिन्न अंशों में विभाजित करते हैं।

इस प्रतिक्रिया में उत्प्रेरकों का कार्य क्या होता है, इस सम्बन्ध में बहुत अन्वेषण हुए हैं। अनेक वैज्ञानिकों का मत है कि धातुओं के कारबाइड बनते हैं। ये कारबाइड अस्थायी होते हैं। ये शीघ्र ही विच्छेदित हो जाते हैं। ६६०° फ० से नीचे ताप पर ये कारबाइड हाइड्रोजन से विच्छेदित होकर मिथेन और अल्प मात्रा में ईथेन बनते हैं। ताप के ६६०° फ० ऊँचा होने पर कारबाइड से कार्बन मुक्त होता है। इस कारण इस प्रतिक्रिया का ताप ६६०° फ० से ऊपर नहीं रहना चाहिए।

फिशर का मत है कि कारबाइड पर हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया से मेथिलीन मूलक ($=CH_2$) बनते हैं। इन मूलकों के जोड़ने से विभिन्न लम्बाई और विभिन्न संतृप्ति की शृंखलाएँ बनती हैं। मेथिलीन मूलक के निर्माण का स्पष्टीकरण इस समीकरण से सरलता से हो जाता है—



$CO + 2H_2 = (CH_2) + H_2O$ (+१७५ ब्रिटिश-ऊष्मा-मात्रक)

अथवा लोह उत्प्रेरक से प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है—

$2CO + H_2 = (CH_2) + CO_2$ (+ १७४ ब्रिटिश-ऊष्मा-मात्रक)

उत्प्रेरकों से केवल मेथिलीन मूलक ही नहीं बनता, बल्कि उससे पुरुभाजन और हाइड्रोजनीकरण भी होता है। शुद्ध निकेल सदृश कुछ उत्प्रेरक हैं जिनसे केवल कारबाइड बनते हैं। उनसे पुरुभाजन नहीं होता। कुछ उत्प्रेरकों से कारबाइड बनते और पुरुभाजन तथा हाइड्रोजनीकरण भी होते हैं। इसी कारण एक उत्प्रेरक के स्थान में उत्प्रेरकों के मिश्रण अच्छे समझे जाते हैं।

स्टौर्च (Storch) का मत है कि हाइड्रोजन पहले धातुओं का हाइड्राइड बनता, जो कारबाइड के बनने में सहायक होता है।

मेथिलीन से या तो बहुत बड़े अणुवाले हाइड्रोकार्बन बनते हैं, जिनके फिर भंजन से अपेक्षया कम अणुवाले हाइड्रोकार्बन बनते हैं जो कृत्रिम पेट्रोल में पाये जाते हैं, अथवा छोटे-छोटे मेथिलीन के पुरुभाजन से बड़े अणुवाले हाइड्रोकार्बन बनते हैं। कुछ लोग पहले मत के समर्थक हैं और कुछ लोग दूसरे मत के।

क्रैक्सफोर्ड (Craxford) का मत है कि मेथिलीन के पुरुभाजन से और हाइड्रोजन-भंजन से हाइड्रोकार्बन बनते हैं। इस मत की पुष्टि में उन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं। इनके अन्वेषणों से पता लगता है कि धातुओं के कारबाइड पहले बनते और फिर वे मेथिलीन बनते और मेथिलीन के पुरुभाजन से पेट्रोलियम बनता है। कुछ जापानी रसायनज्ञों का भी यही मत है। उनके विचार से उत्प्रेरक हाइड्रोजन का अधिशोषण करता है और तब कारबाइड पर की क्रिया से मेथिलीन बनता है। यह मेथिलीन फिर पुरुभाजित, और अवकृत होकर हाइड्रोकार्बन में परिणत हो जाता है। तीन क्रमों से पुरुभाजन, अवकरण और अवशोषण साथ-साथ चलकर हाइड्रोकार्बन प्राप्त होता है।

कोबाल्ट उत्प्रेरकों से ३२०° फ० से ऊपर पेट्रोल के हाइड्रोकार्बन बनते हैं, क्योंकि इस ताप के ऊपर ही हाइड्रोजन का अधिशोषण होता है। लोह-उत्प्रेरकों का काम उच्चतर ताप पर इस कारण होता है कि उच्चतर ताप पर ही लोहा कारबाइड बनता है।

धातु के आक्साइड का आक्सिजन हाइड्रोजन के साथ मिलकर जल बनता है जो उत्प्रेरक द्वारा शोषित हो जाता है। कुछ लोगों का मत है कि हाइड्रोकार्बन बनने में आक्सिजनवाले यौगिक सहायक होते हैं।

कुछ लोगों का मत है कि बिना कारबाइड बने भी मेथिलीन बन सकता है। इसके लिए कीटीन का बनना आवश्यक बतलाया जाता है। कीटीन बड़ा सक्रिय कार्बनिक यौगिक है और इससे हाइड्रोकार्बन का बनना सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

प्रतिक्रिया प्रतिवर्ती

संश्लिष्ट पेट्रोलियम के निर्माण में गैस-मिश्रण पर जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं, उन पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। इनमें निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

ताप का प्रभाव—प्रतिक्रिया पर ताप का प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। भिन्न-भिन्न उत्प्रेरकों से प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न ताप पर महत्तम होती है। यदि निकेल

अथवा कोबाल्ट उत्प्रेरक प्रयुक्त हो तो ३५०° फ० से निम्न ताप पर क्रिया बड़ी मन्द होती है। ४४०° फ० से ऊपर ताप पर भी द्रव पेट्रोलियम की मात्रा शीघ्रता से घटती है और उसी अनुपात में मिथेन की मात्रा बढ़ती है। ४४०° फ० से ऊपर ताप पर मिथेन की मात्रा अधिक रहती है और आक्सिजन जल के स्थान में कार्बन डाइ-आक्साइड के रूप में प्राप्त होता है।

लोहे के उत्प्रेरक से लगभग ४६५° फ० पर महत्तम उत्पाद प्राप्त होता है। उत्पाद की प्रकृति बहुत कुछ ताप और दबाव पर निर्भर करती है। कार्बन मनॉ-क्साइड के हाइड्रोजनीकरण से निम्न ताप पर ऋजु-शृंखला हाइड्रोकार्बन बनते, ५७५–७५०° फ० पर एल्कोहल बनते और ७५०–८८५° फ० पर आइसो-पैराफिन बनते और ८८५–९३०° फ० पर सौरभिक बनते हैं।

दबाव का प्रभाव—बहुत ऊँचे दबाव पर उच्च अणुभार के हाइड्रोकार्बन और आक्सिजन यौगिक बनते हैं। पर मध्यम दबाव ७५ से २२० पाउण्ड प्रति वर्ग इंच दबाव अच्छा होता है। फिशर और पिचलर ने देखा था कि प्रति वर्ग इंच लगभग ७५ पाउण्ड दबाव तक दबाव की वृद्धि से उत्पाद की क्रमशः वृद्धि होती है। प्रति वर्ग इंच लगभग २२० पाउण्ड दबाव तक पैराफिन मोम की मात्रा बढ़ती है। मध्यम दबाव से उत्प्रेरक का जीवन दीर्घतम होता है। दबाव से उत्पाद की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह निम्नलिखित आंकड़ो से स्पष्ट हो जाता है—

१००० घनफुट गैस-मिश्रण से उत्पाद की प्राप्ति पाउण्ड में

प्रति वर्ग इंच दबाव पाउण्ड में	समस्त ठोस और द्रव	पैराफिन मोम	पेट्रोल ३९०° फ० से नीचे	द्रव ३९०° फ० से ऊपर	एक स चार कार्बनवाली हाइड्रोकार्बन गैसें
०	७·२८	०·६२	४·३०	२·३६	२·३७
२२	८·१६	०·९३	४·५५	२·६८	३·१२
७३·५	९·३५	३·७४	२·४३	३·१८	२·०६
२२०	९·०३	४·३६	२·४३	२·२४	२·०६
७३५	८·५९	३·३६	२·९३	२·३०	१·३१
२२००	६·४८	१·६८	२·१२	२·१२	१·९३

ताजे उत्प्रेरकों से उत्पाद की उपलब्धि अधिक होती है और पुराने उत्प्रेरकों से कम हो जाती है। यदि दबाव मध्यम हो तो उससे संयन्त्र के विस्तार में कमी हो जाती है।

गैस-मिश्रण के बहाव के वेग का प्रभाव

किस वेग से गैस-मिश्रण का बहाव होना चाहिए यह महत्त्व का है। उत्पाद की प्रकृति पर बहाव के वेग का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। फिशर और पिचलर ने इस सम्बन्ध में बहुत काम किया है। उन्होंने प्रति पाउण्ड कोबाल्ट उत्प्रेरक पर प्रति घण्टा ३·२ घनफुट बहाव से १००० घनफुट गैस-मिश्रण से ११·८ पाउण्ड उत्पाद प्राप्त किया था। ऐसे उत्पाद में ठोस पैराफिन ४८ प्रतिशत, द्रव हाइड्रोकार्बन ४४ प्रतिशत और तीन से चार कार्बनवाला हाइड्रोकार्बन ८ प्रतिशत प्राप्त किया था। जब बहाव का वेग प्रति घण्टा ३२ घनफुट था, तब ९·० पाउण्ड प्राप्त किया था, जिसमें ठोस पैराफिन १४ प्रतिशत, द्रव हाइड्रोकार्बन ७३ प्रतिशत और निम्न हाइड्रोकार्बन १३ प्रतिशत थे।

कोबाल्ट उत्प्रेरक से २२० पाउण्ड प्रति वर्ग इंच दबाव और ३९०° फ० पर निम्नलिखित मात्रा में उत्पाद प्राप्त हुए थे—

बहाव घनफुट घण्टा प्रति पाउण्ड कोबाल्ट	१८·४	३७·०	५७·६	१६०
समस्त उत्पाद १००० घनफुट गैस से	६·३०	५·३०	३·७४	१·०३

बहाव के वेग की वृद्धि से ओलिफिन की मात्रा की वृद्धि होती है।

हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड के अनुपात का प्रभाव

गैस-मिश्रण में यदि कार्बन मनॉक्साइड की मात्रा अधिक हो तो उससे अधिक ओलिफिन और अधिक कार्बन डाइ-आक्साइड बनते हैं। यदि हाइड्रोजन का अनुपात अधिक हो तो संतृप्त हाइड्रोकार्बन और मिथेन की मात्रा अधिक बनती है। महत्तम हाइड्रोकार्बन प्राप्त करने के लिए हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात आयतन में २ : १ होना चाहिए।

उत्प्रेरक

कोयले अथवा प्राकृतिक गैस से पेट्रोलियम प्राप्ति के लिए किसी उत्प्रेरक का होना अत्यावश्यक है। फिशर और ट्रौप्श ने पहले-पहल लोहे और कोबाल्ट का उपयोग किया था। इनकी सक्रियता बढ़ाने के लिए उन्होंने उसमें ताँबा, क्षार और जिंक आक्साइड डाला था। निकेल के उपयोग में उन्हें पहले सफलता नहीं मिली। पीछे

उन्होंने देखा कि निकेल के साथ अन्य पदार्थों के रहने से निकेल भी प्रयुक्त हो सकता है।

केवल निकेल के साथ ही अन्य पदार्थों के डालने की आवश्यकता नहीं है, पर अन्य उत्प्रेरकों के साथ भी दूसरे पदार्थ डाले जा सकते हैं। इन पदार्थों के डालने के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं।

(१) ये पदार्थ उत्प्रेरक की सक्रियता को बढ़ाते हैं।
(२) ये पदार्थ उत्प्रेरक में उत्प्रेरणा का गुण ला देते हैं।
(३) ये उत्प्रेरकों को विषाक्त होने से बचाते हैं।
(४) ये उत्प्रेरकों की भौतिक परिस्थिति को उन्नत कर देते हैं।
(५) ये उत्प्रेरकों के लिए आधार बनते हैं।

इनके चुनाव में यह ख्याल रखना आवश्यक है कि उसमें ऐसे पदार्थ हों जिनका विशिप्ट प्रभाव प्रतिक्रिया पर पड़े और जिनमें विभिन्न अवयवों का अनुपात हो कि उससे अच्छा फल प्राप्त हो सके।

कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन के १ : २ अनुपात से १००० घनफुट गैस से प्रायः १३ पाउण्ड हाइड्रोकार्बन बन सकता है,पर गैस-मिश्रण में कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन के अतिरिक्त कार्बन डाइ-आक्साइड, नाइट्रोजन, मिथेन सदृश कुछ निष्क्रिय गैसें भी रहती हैं। इससे साधारणतया १००० घनफुट गैस से ११·२ पाउण्ड से अधिक हाइड्रोकार्बन नहीं बनता। निष्क्रिय गैसों के अधिक रहने से उनका उत्पादन कम करनेवाला प्रभाव पड़ता है। १० प्रतिशत से कम अमोनिया और आक्सिजन से पेट्रोल की मात्रा कम होती है। ताप के परिवर्तन से भी उत्पाद की मात्रा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। किसी उत्प्रेरक से निम्न ताप पर ही अच्छी मात्रा में और किसी उत्प्रेरक से ऊँचे ताप पर अच्छी मात्रा में उत्पाद प्राप्त होते है।

निकेल उत्प्रेरक

निकेल के उत्प्रेरक बनाने में किसल गुहर पर निकेल नाइट्रेट का विलयन डालकर अल्कली कार्बोनेट का विलयन डालने से किसल गुहर पर निकेल अवक्षिप्त हो जाता है। अब किसल गुहर को छानकर अलग कर धोते, सुखाते और हाइड्रोजन से अवकृत करते हैं। इसी प्रकार अमोनिया की उपस्थिति में निकेल-मैंगनीज़-अलूमिना उत्प्रेरक करते हैं। ऐसे उत्प्रेरक का अवकरण निम्न ताप पर ही ५७०–६६०° सें० पर हो जाता है।

एक दूसरा उत्प्रेरक १२५ ग्राम किसल गुहर पर १०० भाग निकेल, २० भाग मैंगनीज आक्साइड, ४ से ८ भाग थोरिया, अलूमिना, टंगस्टिक आक्साइड अथवा यूरेनियम आक्साइड से प्राप्त होता है। ऐसे उत्प्रेरक से ३६५–४१०° फ० ताप पर प्रति घण्टा प्रति आयतन उत्प्रेरक पर लगभग १५० आयतन गैस-मिश्रण के वेग से प्रति १००० घनफुट गैस से ०·७५–१·२ गैलन द्रव हाइड्रोकार्बन प्राप्त होता है।

एक दूसरा उत्प्रेरक तैयार हुआ है, जिसका जीवन बड़ा होता है। यह उत्प्रेरक किसेलगुर पर निकेल-मैंगनीज-अलूमिना के अवक्षेप से प्राप्त होता है। थोरियम, अलूमिनियम और सीरियम यौगिकों से उत्प्रेरक की सक्रियता बढ़ जाती है।

कोबाल्ट उत्प्रेरक

जर्मनी में जो उत्प्रेरक प्रयुक्त होता था, वह किसेलगुर पर आधारित कोबाल्ट और थोरियम आक्साइड था। ऐसे उत्प्रेरक से १००० घनफुट गैस-मिश्रण से १०·५ पाउण्ड द्रव हाइड्रोकार्बन प्राप्त हुआ था। सन् १९३५ ई० तक कोबाल्ट-थोरियम-किसेलगुर उत्प्रेरक सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। यदि इसमें २ प्रतिशत ताँबा रहे, तो उत्प्रेरक का अवकरण सरलता से होता है। जापान में भी एक उत्प्रेरक तैयार हुआ है, जिसमें ताँबा ५–१० प्रतिशत, मैंगनीज आक्साइड ४–१२ प्रतिशत, थोरिया, अलूमिना अथवा यूरेनियम आक्साइड ४–१२ प्रतिशत था। ऐसे उत्प्रेरक से अच्छी मात्रा में पेट्रोलियम बना था। १८०–२२० भाग किसेलगुर पर १०० भाग कोबाल्ट आक्साइड, ८·८ भाग थोरियम आक्साइड, ४–४ भाग मैगनीसियम आक्साइड से भी अच्छा उत्प्रेरक प्राप्त होता है।

मैगनीशिया की उपस्थिति से उत्प्रेरक की कठोरता बढ़ जाती है। पर मैग-नीशिया से पैराफिन की मात्रा कम बनती और थोरिया से अधिक बनती है। थोरिया और मैगनीशिया के अनुपात में ऐसा साम्य होना चाहिए कि उससे उत्प्रेरक बहुत कोमल न हो जाय, और साथ ही पैराफिन के निर्माण में कमी न हो।

किसेलगुर में १ प्रतिशत से अधिक लोहा नहीं रहना चाहिए, नहीं तो उससे मिथेन की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। अलूमिनियम ट्रायक्साइड की मात्रा भी ०·४ प्रतिशत या इससे कम ही रहनी चाहिए, नहीं तो उत्प्रेरक 'जेल' में परिणत हो जाता है। किसेलगुर को ११००–१३००° फ० पर जला लेने से इसमें वाष्पशील पदार्थों की मात्रा १ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। अम्ल के उपचार से लोहे की मात्रा कम हो जाती है पर अम्ल के उपचार से किसेलगुर की भौतिक दशा अच्छी नहीं रहती। इसलिए अम्ल से उपचार ठीक नहीं है।

मिश्र-धातु पंजर उत्प्रेरक

जिन उत्प्रेरकों का ऊपर वर्णन हुआ है, वे ताप के कुचालक होते हैं, प्रतिक्रिया में जो ऊष्मा उत्पन्न होती, वह शीघ्र ही फैल नहीं जाती। इस कारण जिनसे प्रतिक्रिया में उत्पन्न ऊष्मा का वितरण ठीक होता रहे, ऐसे उत्प्रेरकों की खोज हुई। इस दृष्टि से कुछ मिश्र-धातुओं के पंजर बने हैं। ये पंजर बहुत सरन्ध्र होते हैं। ये पंजर निकेल के अथवा कोबाल्ट के अथवा इन दोनों की मिश्र-धातु के बने होते हैं। ऐसे कोबाल्ट-निकेल पंजर में ये धातुएँ सम अनुपात में होती हैं। कुछ पंजर में निकेल और कोबाल्ट के साथ अल्प अलूमिनियम अथवा सिलिकन भी मिले रहते हैं। सिलिकन से बने उत्प्रेरक अलूमिनियम से बने उत्प्रेरक से अधिक सक्रिय होते हैं। इसमें अल्प मात्रा में भी ताँबा अथवा मैंगनीज नहीं रहना चाहिए। केवल निकेल से बने उत्प्रेरक के स्थान में निकेल-कोबाल्ट के बने उत्प्रेरक उत्कृष्ट होते हैं। ऐसे उत्प्रेरक से १००० घनफुट गैस-मिश्रण से ५·८ पाउण्ड पेट्रोलियम प्राप्त हो सकता है। इन उत्प्रेरकों का ह्रास शीघ्रता से होता है। ऐसे उत्प्रेरकों की गोलियाँ भी बनती हैं जिसका उल्लेख एक अमेरिकी पेटेण्ट नं० २,१३६,५०९ में हुआ है।

आलम्बित उत्प्रेरक

कुछ उत्प्रेरक ऐसे होते हैं जो किसी द्रव में आलम्बित रहते हैं। जब उत्प्रेरक का ताप बढ़ जाता है तब उससे द्रव का उद्वाष्पन होकर वह निकल जाता और उत्प्रेरक अधिक गरम नहीं होता। ऐसा एक उत्प्रेरक लोहा, मैंगनीसियम आक्साइड और जिंक आक्साइड से बना होता है। यह अन्थ्रेसीन तेल में आलम्बित रहता है। इस उत्प्रेरक से ७००° फ० और प्रति वर्ग इंच ३०० पाउण्ड पर स्नेहन-तेल और मोम अधिक मात्रा में बनता है। निकेल-अलूमिनियम किसेलगुर उत्प्रेरक भारी गन्धक-मुक्त तेल में आलम्बित रहता है। इससे मिथेन की मात्रा अधिक बनती है।

ऐसे उत्प्रेरक ऊर्ध्वाधार नलियों में रखे होते हैं जिन पर पश्चवाही संघनित्र लगा रहता है। द्रव का वाष्प संघनित्र में संघनित होकर लौट आता है।

ऐसे उत्प्रेरकों के उपयोग में दो त्रुटियाँ हैं। इनमें (१) प्रतिक्रिया उत्पाद का निकलना कुछ कठिन होता है और (२) अधिक स्थान की आवश्यकता होती है।

किसेलगुर पर कोबाल्ट नाइट्रेट का विलयन डालकर २१२° फ० पर सोडियम कार्बोनेट डालने से कोबाल्ट अवक्षिप्त हो जाता है। इसे धो और सुखाकर चलनी में चाल लेते हैं। इसका कण ०·०४ से ०·१२ इंच का होना चाहिए। ऐसे चूर्ण के एक लिटर में ३२०—३५० ग्राम रहता है। इसका तब अवकरण करते हैं। अवकरण

के लिए ७५ प्रतिशत हाइड्रोजन और २५ प्रतिशत नाइट्रोजन उपयुक्त माना जाता है। इस गैस को ४०-६० मिनटों तक ८६०° फ० पर गरम कर लेते हैं। इस गैस का वेग ८८०० रहता है। अवकरण ताप जितना ही कम हो, उतना ही अच्छा होता है, पर कम ताप से समय अधिक लगता है।

यदि उत्प्रेरक में किसेलगुर १०० भाग, कोबाल्ट १०० भाग और थोरिया १८ भाग हो तो ऐसा उत्प्रेरक उत्कृष्ट कोटि का समझा जाता है। पर थोरिया का क्या कार्य है, यह ज्ञात नहीं है। क्रैक्सफोर्ड ने एथिलीन के हाइड्रोजनीकरण से ईथेन में ६८° फ० पर निम्नलिखित उत्प्रेरकों की उपस्थिति में परिणत किया है—

(१) केवल कोबाल्ट
(२) कोबाल्ट और थोरिया १०० : १८
(३) कोबाल्ट और किसेलगुर १ : १
(४) कोबाल्ट-थोरिया-किसेलगुर १०० : १८ : १००
(५) कोबाल्ट-थोरिया-किसेलगुर १०० : २१ : १००

सभी उत्प्रेरक एक से क्रियाशील पाये गये हैं। इससे वे परिणाम पर पहुंचे कि थोरिया और किसेलगुर से कोबाल्ट की सक्रियता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। कारबाइड के बनने में देखा गया है कि थोरिया और किसेलगुर दोनों ही कोबाल्ट की सक्रियता को बढ़ाते हैं। सबसे अधिक वृद्धि १८ प्रतिशत थोरिया से होती है। २१ प्रतिशत थोरिया से सक्रियता कम हो जाती है।

क्रैक्सफोर्ड इस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं कि थोरिया और किसेलगुर केवल उत्प्रेरक के तल की वृद्धि ही नहीं करते वरन् वे कोबाल्ट कारबाइड के निर्माण और अवकरण में सहायता करते हैं। अच्छा उत्प्रेरक वही होता है जिसमें कारबाइड बनने की क्षमता अधिक, पर कारबाइड अवकरण की क्षमता कम हो।

कोबाल्ट-निकेल उत्प्रेरक

कोबाल्ट-उत्प्रेरक से मिथेन की मात्रा कम और ओलिफिन की मात्रा अधिक बनती है। निकेल में ठीक इसके प्रतिकूल होता है। अतः यदि उत्प्रेरक में कोबाल्ट और निकेल की मात्रा सम भाग में हो, तो इससे एक का दोष दूसरे से दूर हो जाता है। पर किसी प्रवर्तक (promotor) से इनकी सक्रियता बढ़ती नहीं है। इस प्रकार की एक उत्कृष्ट कोटि के उत्प्रेरक में किसेलगुर १२० भाग, मैंगनीज आक्साइड २० भाग, यूरेनियम आक्साइड २० भाग और कोबाल्ट-निकेल १०० भाग रहते हैं।

द्रव-उत्प्रेरक

अमेरिकी पेटेण्ट नं० २,३४७,६८२ में ऐसे एक द्रव उत्प्रेरक का वर्णन है। इसमें प्रतिक्रिया का ताप २२५–४२५° फ० के बीच स्थायी रखा जा सकता है। यहाँ उत्प्रेरक बहुत महीन कणों में विभक्त रहता है। कण इतना महीन विभाजित होता है कि गैस-मिश्रण के प्रवाह में वह आलम्बित रहता है। ऐसे द्रव उत्प्रेरक से लाभ यह होता है कि प्रतिक्रिया की ऊष्मा बहती हुई गैसों के कारण पात्रों की दीवारों से निकल जाती है। पात्रों के बाह्य तल पर शीतल द्रव बहता रहता है, जो ऊष्मा को ग्रहण कर लेता है।

लोहा-उत्प्रेरक

लोहा-उत्प्रेरकों पर बहुत अनुसन्धान हुए हैं, क्योंकि लोहा सस्ता होता है और जल्दी मिल जाता है। लोहा-उत्प्रेरकों से असंतृप्त हाइड्रोकार्बन अधिक मात्रा में बनते हैं, जिससे पेट्रोल की औक्टेन संख्या ऊँची होती है। लोहे के उत्प्रेरक से यह आवश्यक नहीं कि हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड का अनुपात २ : १ हो। इसके साथ जल-गैस भी प्रयुक्त हो सकती है और इसके लिए यह अच्छी होती है।

उत्प्रेरण गुण इसमें निकेल और कोबाल्ट की अपेक्षा कम होता है पर इससे ठोस मोम अधिक बनता है। इसमें ताँबा भी मिलाया जा सकता है। इसमें ०·५ प्रतिशत क्षार मिलाने से इसका जीवन बढ़ जाता है। सम्भवतः क्षार मिलाने से लोह फेरिक आक्साइड (Fe_2O_3) बनता है, जिससे उसकी सक्रियता बढ़ जाती है। यह चुम्बकीय फेरिक आक्साइड (Fe_3O_4) का बनना भी रोकता है, जिसकी सक्रियता कम होती है।

यह उत्प्रेरक फेरिक लवण पर पोटेसियम कार्बोनेट अथवा हाइड्राक्साइड द्वारा लोहे के अवक्षेप से प्राप्त होता है। यदि लवण में क्लोराइड आयन है तो उत्प्रेरक निष्क्रिय होता है और यदि उसमें नाइट्रेट आयन है तो वह सक्रिय होता है। दोनों की सक्रियता में वस्तुतः बहुत भेद है।

लोहा-उत्प्रेरक द्रव रूप में, गोलियों के रूप में और जमे हुए ठोस रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। जमे हुए उत्प्रेरक से जो हाइड्रोकार्बन प्राप्त हुए हैं उनमें सशाख श्रृंखला पैराफिन की मात्रा अधिक पायी गयी है।

रूथेनियम-उत्प्रेरक

रूथेनियम-उत्प्रेरक से ३००–४५०° फ० और प्रति वर्ग इंच ४५० पाउण्ड दबाव से ऊपर दबाव पर ठोस हाइड्रोकार्बन प्राप्त होने का दावा किया गया है। इस

समूह की अन्य धातुओं की अपेक्षा रूथेनियम सबसे अधिक उत्कृष्ट पाया गया है। रूथेनियम-उत्प्रेरक दीर्घजीवी भी होता है। ३८०° फ० और प्रति वर्ग इंच १५०० पाउण्ड दबाव पर १०० घनफुट गैस-मिश्रण से लगभग ६·२ पाउण्ड पैराफिन मोम और ३·१ पाउण्ड द्रव पेट्रोलियम प्राप्त होता है।

इस उत्प्रेरक पर दबाव का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। वायुमण्डल के दबाव पर बहुत कम पेट्रोलियम बनता है। दबाव की वृद्धि से पेट्रोलियम की मात्रा शीघ्रता से बढ़ती जाती, इसमें ६० प्रतिशत द्रव और २५ प्रतिशत ठोस और गैसीय हाइड्रोकार्बन बनते हैं। रूथेनियम सरलता से प्राप्त नहीं होता। प्रचुर मात्रा में यह प्राप्य नहीं है। कोबाल्ट उत्प्रेरक से भी निम्न ताप पर मोम कम खर्च में प्राप्त हो सकता है।

प्रतिक्रिया-फल

हाइड्रोजन और कार्बन मनॉक्साइड मिश्रण के संश्लेषण से विभिन्न उत्प्रेरकों, विभिन्न तापों और विभिन्न दबावों से नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं, जिनमें वसा-हाइड्रोकार्बन, अल्कोहल, अम्ल, कीटोन, एस्टर, ईथर, विभिन्न ऋजु-शृंखला, पार्श्व-शृंखला, अशाख शृंखला और सौरभिक यौगिक प्रमुख हैं। साधारणतया यह प्रतिक्रिया या तो पेट्रोलियम-निर्माण के लिए या पेट्रोलियम और रासायनिक द्रव्यों के निर्माण के लिए या केवल रासायनिक द्रव्यों के निर्माण के लिए सम्पादित होती है। इनमें कुछ ईंधन-तेल, कुछ स्नेहन-तेल और कुछ मोम भी बनते हैं।

प्राथमिक प्रतिक्रिया-फल

सामान्य दबाव पर प्रधानतया ऋजु-शृंखला पैराफिन और मोनो-ओलिफिनीय हाइड्रोकार्बन प्राप्त होते हैं। बड़ी अल्प मात्रा में नैफ्थीन और सौरभिक प्राप्त होते हैं। परिस्थिति के अनुसार आविसजन-यौगिक शून्य से कुछ प्रतिशत तक बनते हैं।

कोबाल्ट-उत्प्रेरक द्वारा मिथेन से लेकर कठोर मोम तक प्राप्त होते हैं। कठोर मोम के अणुभार लगभग २००० तक हो सकते हैं। रूथेनियम से २३०० अणुभार तक के यौगिक प्राप्त हुए हैं।

इस प्रतिक्रिया में १० से १५ प्रतिशत तक मिथेन रहता है, सामान्य दबाव पर १४ या १५ प्रतिशत और मध्यम दबाव पर इससे कम रहता है। प्रारम्भ में यदि हाइड्रोजन की मात्रा कम हो, तो मिथेन की मात्रा और कम हो सकती है। पीछे हाइड्रोजन की मात्रा बढ़ाने से भी मिथेन की मात्रा उतनी नहीं बढ़ती। इस प्रकार मिथेन की मात्रा १० प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है। ऐसे उत्पादों में अच्छा स्नेहक नहीं पाया जाता।

वायुमण्डल के दबाव पर जो द्रव-पेट्रोलियम प्राप्त होता है, उसकी मात्रा प्राय: १३ प्रतिशत रहती है। ऐसे पेट्रोलियम में पेट्रोल ५२ प्रतिशत, डीज़ेल-तेल २६ प्रतिशत और मोम ९ प्रतिशत रहते हैं। मध्यम दबाव पर जो पेट्रोलियम प्राप्त होता है, उसकी मात्रा लगभग ७ प्रतिशत, जिसमें पेट्रोल ३८ प्रतिशत, डीज़ेल-तेल ३० प्रतिशत और मोम २५ प्रतिशत रहते हैं। मध्यम दबाव प्रति वर्ग इंच पर लगभग १५० पाउण्ड पर मोम की मात्रा अधिक रहती है।

पेट्रोलियम में ओलिफिन की मात्रा बढ़ाने की चेष्टाएँ हुई हैं। इससे दो लाभ होते हैं। एक तो पेट्रोल की औक्टेन संख्या इससे बढ़ जाती है। दूसरे ओलिफिन से आक्सिजन यौगिक, अल्कोहल इत्यादि बना सकते हैं।

लोह-उत्प्रेरक के सहयोग से २० प्रतिशत मिथेन और कुछ ईथेन, २४ प्रतिशत २ से ४ कार्बनवाले हाइड्रोकार्बन, ३८·५ प्रतिशत पेट्रोल, ११ प्रतिशत गैस-तेल, १ प्रतिशत मोम और ५·५ प्रतिशत अल्कोहल प्राप्त होते हैं। २ से ४ कार्बनवाले हाइड्रोकार्बनों में ८ प्रतिशत एथिलीन, ३ प्रतिशत प्रोपेन, ९ प्रतिशत प्रोपिलीन, २ प्रतिशत ब्युटेन और ८ प्रतिशत ब्युटिलीन रहते हैं। चार कार्बनवाले हाइड्रोकार्बनों में ७५ प्रतिशत आइसो-ब्युटेन और आइसो-ब्युटिलीन रहते हैं।

एक क्रम में वायुमण्डल के दबाव पर निम्नलिखित प्रतिक्रिया-फल प्राप्त होते हैं—

प्रतिक्रिया-फल	समस्त भार प्रतिशत	ओलिफिन आयतन प्रतिशत
३ से ४ कार्बन अंश	८	५५
५ कार्बन (३००° फ०) अंश	४६	४५
३००—३९०° फ० अंश	१४	२५
३९०—६००° फ० अंश	२२	१०
तेल में मोम	७	गलनांक १२०° फ०

दो क्रमों में विश्लेषण से प्रतिक्रिया-फल

प्रतिक्रिया-फल	क्वथनांक	विशिष्ट भार	भार में प्रतिशत		आयतन में प्रतिशत	
			पहला क्रम	दूसरा क्रम	पहला क्रम	दूसराक्रम
३ से ४ कार्बन अंश	—	—	५	२	५०	२५-३०
५ कार्बन अंश (३००° फ०°)	८५-३००° फ०	०·६६	२६	५८	३५·४०	२०
३००-५७५°फ०	२००-५७५° फ०	०·७४	२६·५	११	१२	१२
मोम	—	०·८५	—	२१	—	—

तीन क्रमों में विश्लेषण से प्रतिक्रिया-फल

प्रतिक्रिया-फल	भार में प्रतिशत	आयतन में प्रतिशत
३ से ४ कार्बनवाले अंश	१०	४०
५ कार्बनवाले अंश (३४०° फ०)	२५	२४
३४०–५३५° फ० अंश	३०	९
५३५–६४०° फ० अंश	२०	कोमल मोम
कठोर मोम	१५	गलनांक प्रायः १९५° फ०

प्रतिक्रिया-फल का पृथक्करण

प्रतिक्रिया-फल के संघनन से भारी उत्पाद संघनित हो जाते हैं। हलके उत्पादों को अवशोषण अथवा अधिशोषण द्वारा प्राप्त करते हैं। भारी उत्पाद को उद्धावन-मीनार में जल के संस्पर्श से संघनित कर गैसीय हाइड्रोकार्बनों और हलके पेट्रोल को

सक्रियित कोयले द्वारा अधिशोषित कर लेते हैं। हर कारखाने में ७ ऐसी मीनारें होती हैं। इनमें दो मीनारें अधिशोषण के लिए, एक मीनार भाप के लिए, दो मीनारें सुखाने के लिए और दो मीनारें ठंडा करने के लिए होती हैं। इनमें अधिशोषण मीनारों में ४० मिनट, भाप मीनार में २० मिनट, शोषण मीनारों में ४० मिनट और शीतक मीनारों में ४० मिनट समय लगता है।

मध्यम दबाव प्रतिक्रिया-फल को तेल में अवशोषित कर लेते हैं। इससे छोटे-छोटे हाइड्रोकार्बन पूर्ण रूप से अवशोषित नहीं होते। इससे सक्रियित कार्बन कहीं अच्छा होता है। कार्बन डाइ-आक्साइड को अल्केजिड रीति से क्षारीय कार्बनिक यौगिकों के द्वारा निकाल लेते हैं।

पेट्रोल

सामान्य संश्लेषण से जो पेट्रोल प्राप्त होता है, उसमें ऋजुश्रृंखला पैराफिन के रहने से उसकी औक्टेन-संख्या नीची होती है। फिशर रीति से सामान्य दबाव पर प्राप्त पेट्रोल की औक्टेन-संख्या भी केवल ५५ रहती है। इसमें ०·५ सी० सी० लेड टेट्रा-एथिल डालने से औक्टेन-संख्या ७२ पहुँच जाती है। दो-क्रमों से प्राप्त ८५-२८५° फ० क्वथनांकवाले पेट्रोल की औक्टेन-संख्या ६२ रहती है। ऐसा पेट्रोल बहुत वाष्पशील होता है। ऊँचे क्वथनांकवाले अंश को तापीय भंजन से पेट्रोल में परिणत कर सकते हैं। ऐसे पेट्रोल को हलके पेट्रोल के साथ मिलाकर इस्तेमाल करते हैं।

संश्लिष्ट पेट्रोलियम के ११३° फ० और ७०२° फ० के बीच आसवन से ऐसा पेट्रोल प्राप्त हुआ था, जिसकी औक्टेन-संख्या ६६ थी। यहाँ अवशिष्ट अंश और नैफ्था का भंजन और भंजित गैसों का पुरुभाजन भी हुआ था। बिना भंजन के भी केवल पेट्रोल के भंजन ताप के नीचे ताप पर उत्प्रेरक पर प्रवाहित करने से औक्टेन-संख्या ८ से २४ तक बढ़ जाती है। ऐसा समझा जाता है कि पुरुभाजन के कारण ऐसा होता है। ओलिफिन में द्विबन्ध का स्थान बदलने, अन्त से बीच में आ जाने से प्रति-आघात का गुण बढ़ जाता है। जिस पेट्रोल की औक्टेन संख्या ४४ थी और जिसमें ३५ प्रतिशत ओलिफिन था उसकी औक्टेन-संख्या इससे बढ़कर ५२ हो गयी थी। एक दूसरे नमूने में जिसकी औक्टेन-संख्या ४१ थी और जिसमें ५५ प्रतिशत ओलिफिन था, उसकी औक्टेन-संख्या ६७ हो गयी।

प्लैटिनम तार की कुण्डली में विद्युत् द्वारा गरम किये भारी तेल के प्रवाहित करने से निम्न ताप पर ही ५० प्रतिशत से अधिक तेल का भंजन हो जाता है और भंजित उत्पाद में ९० प्रतिशत असंतृप्त हाइड्रोकार्बन प्राप्त होता है। अलूमिनियम क्लोराइड की उपस्थिति में भी ऐसे पेट्रोल का भंजन हुआ है। इसके लिए १० से २० प्रतिशत अलूमिनियम क्लोराइड प्रयुक्त हुआ है। १५ प्रतिशत अलूमिनियम क्लोराइड से पेट्रोल की सबसे अधिक मात्रा प्राप्त हुई है। ऐसे पेट्रोल में आइसो-पैराफिन की मात्रा अधिकतम होती है और उसकी औक्टेन-संख्या ऊँची होती है।

३९०° फ० से ऊपर ताप पर उबलनेवाले अंश के बार-बार भंजन से पेट्रोल की मात्रा लगभग ३८ प्रतिशत और गैस की मात्रा प्रति पाउण्ड ६·४ घनफुट प्राप्त हुई थी। ऐसे पेट्रोल में ८० से ९० प्रतिशत ओलिफिन था और केवल २ प्रतिशत सौरभिक।

यदि केवल ऊष्मा से ही उच्च ताप पर १०४०° से ११७५° फ० पर भंजन किया जाय, तो उससे उत्पाद में ६० प्रतिशत ओलिफिन और ३ प्रतिशत हाइड्रोजन प्राप्त होते हैं। उच्चतर ताप से ओलिफिन की मात्रा बढ़ जाती है। निम्न ताप पर ब्युटाडीन की मात्रा कम रहती है, पर ताप की वृद्धि से बढ़ जाती है। पैराफिन गैसों से मिथेन और ईथेन और ओलिफिन गैसों में एथिलीन और प्रोपिलीन और अल्पतर मात्रा में ब्युटिडीन रहते हैं।

यदि भंजन सिलिका-अलूमिना उत्प्रेरक पर १११०° फ० पर किया जाय, तो गैस की मात्रा बढ़ जाती है और पेट्रोल की प्रकृति में भी परिवर्तन होता है। ऐसे पेट्रोल में ओलिफिन की मात्रा कम और सौरभिक और संतृप्त हाइड्रोकार्बनों की मात्रा अधिक रहती है। इससे हाइड्रोजन की मात्रा में भी वृद्धि होती, पैराफिन की मात्रा में कमी होती और ओलिफिन की मात्रा यद्यपि बदलती नहीं, पर प्रकृति बदल जाती है। एथिलीन के स्थान में प्रोपिलीन और ब्युटिडीन की मात्रा बढ़ जाती है।

यदि भंजन अलूमिना-क्रोमिया-कोबाल्ट आक्साइड अथवा क्रोमियम-कोबाल्ट आक्साइड उत्प्रेरक के सहयोग से हो, तो उसमें ५० प्रतिशत से अधिक सौरभिक हो जाते हैं, यद्यपि भंजन ५–१० प्रतिशत का ही होता है।

लोहे उत्प्रेरक की उपस्थिति में जो प्रतिक्रिया फल प्राप्त होता है उसमें ७ प्रतिशत तक अल्कोहल रहता है। ऐसे पेट्रोल की औक्टेन-संख्या ६८-७० होती है। यदि इस पेट्रोल को ७५०-८४०° फ० पर अलूमिना पर प्रवाहित किया जाय, जिससे आक्सिजन यौगिकों का हाइड्रोजनीकरण हो जाय और उसे फुलर मिट्टी पर ३५५-३९०°

फ० पर परिष्कृत किया जाय तो उसकी औक्टेन-संख्या ८४ तक बढ़ जाती है। ऐसे पेट्रोल में ७० प्रतिशत ओलिफिन रहता है।

ऐसे पेट्रोल में गन्धक नहीं रहता और डाइओलिफिन भी बहुत अल्प मात्रा में प्रायः शून्य रहता है। ऐसे पेट्रोल से गन्धक निकालने अथवा गोंद बनाने के गुण को कम करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें केवल क्षार से धोकर कार्बनिक अम्लों के निकालने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे पेट्रोल में गोंद बनने की सम्भावना रहती है क्योंकि मोनो-ओलिफिन ज्यों के त्यों रहते हैं। ऐसे पेट्रोल को १५ मास तक बन्द रखने से औक्टेन-संख्या में केवल ३ मात्रक की कमी देखी गयी थी। ऐसा कहा जाता है कि अर्थो-क्रिसोल से पैराक्साइड का बनना रुक जाता है। ऐसे पेट्रोल में पैराक्साइड नहीं बनता।

डीज़ेल तेल

संश्लिष्ट पेट्रोलियम से जो डीज़ेल तेल प्राप्त होता है उसकी सीटेन-संख्या १०० या १०० से ऊपर होती है। ऐसे आदर्श तेल का क्वथनांक ३९०—६८०° फ०, विशिष्ट भार प्रायः ०·७६९, हाइड्रोजन की मात्रा १५·२ प्रतिशत और दहन-ऊष्मा प्रति पाउण्ड १८,९०० से २०,३०० ब्रिटिश-ऊष्मा-मात्रक होती हैं।

गत विश्वयुद्ध के समय में जर्मनी में जो डीज़ेल तेल प्रयुक्त हुआ था, उसका क्वथनांक ३१०—४८५° फ०, घनत्व ०·७४३ से ०·७४९, ठोसांक —३६ से —४२° फ० और ज्वलनांक ८० से १२०° फ० था। ऐसे तेल की सीटेन-संख्या ७५-७८ थी। आजकल ऐसा तेल डीज़ेल इंजन के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता।

संश्लिष्ट पेट्रोलियम से प्राप्त डीज़ेल की सीटेन-संख्या ऊँची होने पर भी डीज़ेल इंजन के लिए वह सन्तोषप्रद नहीं समझा जाता। उसे पेट्रोलियम तेल अथवा कोयला-आसवन से प्राप्त तेल के साथ मिलाकर अच्छी कोटि का बनाया जाता है।

इस सम्बन्ध में कुछ प्रयोग निम्नताप पर उबलनेवाले तेल से हुए हैं। ऐसे तेल की सीटेन-संख्या ४० से ९० थी। पैराफिनीय और ऊँची सीटेन-संख्यावाले तेल से काले धुएँ अधिक मात्रा में बने थे। इससे दबाव वृद्धि का वेग नीचा था और दहन के समय सिलिंडर दबाव कम था। ऐसा समझा जाता है कि पैराफिनीय हाइड्रोकार्बनों के अग्न्यंशन से अधिक कार्बन बनता है, जो धुएँ में निकलकर धुएँ को काला बना देता है।

संश्लिष्ट पेट्रोल को प्राकृतिक पेट्रोल या कोयले के आसवन अंश के साथ मिलाकर संमिश्रण बनाना अच्छा होता है। ऐसे संमिश्रण में गोंद बननेवाला अस्फाल्ट रहने

से इंजन में अवरोध हो जाता है। इस कारण गोंद बननेवाले अंश को निकाल डालना बहुत आवश्यक है। यह सल्फर डाइ-आक्साइड के द्वारा होता है। इसमें खर्च कम पड़ता है। वही सल्फर डाइ-आक्साइड बार-बार इस्तेमाल हो सकता है। इसी प्रकार के कुछ अन्य संमिश्रण भी बने हैं, जिनके उत्कृष्ट कोटि के होने का दावा किया गया है। ऐसा संमिश्रण जल्दी जल उठता, कम कार्बन बनता और पूर्ण रूप से जल जाता है।

मोम

डीज़ेल तेल के निकाल लेने पर जो भाग बच जाता है, उसमें मोम रहता है। ऐसे मोम के अणुभार और गलनांक भिन्न-भिन्न होते हैं। मोम कोमल से लेकर कठोर तक होता है। मोम की मात्रा किस परिस्थिति में और किस उत्प्रेरक के सहयोग से पेट्रोलियम प्राप्त हुआ है उस पर निर्भर करतो है। अधिक दबाव से मोम की मात्रा अधिक बनतो है। रूथेनियम उत्प्रेरक से भी मोम की मात्रा अधिक बनती है।

इस प्रकार से प्राप्त मोम में नार्मल और आइसो-पैराफिन रहते हैं। ऐसे मोम का गलनांक १२०-२४०° फ० रहता है। इसके अणुभार २००० तक होते हैं। भिन्न-भिन्न उत्प्रेरकों के सहयोग से भिन्न-भिन्न मात्रा में और भिन्न-भिन्न गलनांक के मोम प्राप्त होते हैं। किसी विलायक से मोम को निकालकर उसकी मात्रा निर्धारित कर सकते हैं।

मोम के आंशिक आसवन से इन्हें कोमल और कठोर मोम में पृथक् कर सकते हैं। कोमल मोम का गलनांक ८५-९५° फ० और कठोर मोम का लगभग १९५° फ० होता है।

मोम को निकालने के लिए ऐसिटोन और पेट्रोल अच्छे विलायक समझे जाते हैं। कोमल मोम को वसा-अम्लों में भी परिणत कर सकते हैं। इन वसा-अम्लों को फिर साबुन बनाने अथवा खाने के लिए चर्बी में परिणत कर सकते हैं। इनसे स्नेहन-तेल भी बन सकता है। कठोर मोम के वैद्युत गुण उच्च कोटि के होते हैं। इसके भंजन से पेट्रोल प्राप्त हो सकता है।

स्नेहक

कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन के सीधे संश्लेषण से स्नेहक नहीं प्राप्त होता। स्नेहक प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रतिक्रिया का सम्पादन आवश्यक है—

(१) निम्नतर ओलिफिन का पुरुभाजन

(२) बड़ी-बड़ी शृंखलावाले ओलिफिन से सोरभिक का अल्कलीकरण

(३) मोम अथवा भारी तेल का क्लोरीकरण और बाद में संघनन या अल्कलीकरण

(४) भारी तेल में निःशब्द विद्युत-विसर्जन

जो उत्पाद ४२७ और ६०७° फ० पर उबलता है अथवा जो मोम ८६° फ० के नीचे पिघलता है, उसके भंजन से अच्छा स्नेहक प्राप्त होने का वर्णन हुआ है। ऐसे उत्पाद को भंजन से पहले छान लेते हैं, ताकि उससे कोबाल्ट उत्प्रेरक पूर्णतया निकल जाय, नहीं तो उसके रहने से अनावश्यक प्रतिक्रियाएँ होकर अनावश्यक पदार्थ बनते हैं। एक अच्छा स्नेहक भाप की उपस्थिति में ९३०° फ० पर भंजन से बना हुआ बताया गया है। ऐसे स्नेहन तेल का ५५ प्रतिशत प्राप्त हुआ था। इसकी श्यानता लगभग ३२५ सेब्रोल्ट सेकंड १२२° फ० ताप पर थी। एक दूसरा स्नेहक क्लोरीकरण से प्राप्त हुआ बताया जाता है। मध्य तेल में, जिसका क्वथनांक लगभग ४८२-६६२° फ० था, १६७-२१२° फ० पर क्लोरीन के प्रवाह से २०-२५ प्रतिशत भार में वृद्धि हुई। इसे फिर नैफ़थीन के साथ पाँच से दो आयतन अनुपात में १५८-२१२° फ० पर उपचार से संश्लिष्ट नैफ्था अंश के ८ आयतन की जो उपस्थिति थी और अलूमिनियम धातु या अलूमिनियम क्लोराइड के उत्प्रेरक से जो उत्पाद प्राप्त हुआ था, उसके पृथक्करण, निराकरण, निःस्यन्दन और नैफ्था के निकाल लेने पर शून्यक में आसवन से जो अंश पहले प्राप्त हुआ वह टरबाइन तेल था और जो पात्र में रह गया वह सिलिण्डर तेल था।

फ्रांस में एक कारखाने में प्रति दिन २५ टन स्नेहक बन रहा है। उसके तैयार करने की रीति इस प्रकार की है—

(१) पैराफिन गैस-तेल का पहले क्लोरीकरण होता है।

(२) १५८° फ० पर डाइक्लोरोईथेन को बेंज़ीन के साथ अलूमिनियम क्लोराइड की उपस्थिति में मिला देते हैं।

(३) २३०° फ० पर क्रिया को समाप्त करते हैं।

एक टन स्नेहक की प्राप्ति के लिए ६०० किलोग्राम पैराफिन तेल, ६०० किलोग्राम बेंज़ीन और १०० किलोग्राम डाइक्लोरो ईथेन आवश्यक होता है। सारी क्रियाएँ ६ घण्टे में सम्पन्न होती हैं। समस्त भार का १० प्रतिशत अलूमिनियम क्लोराइड लगता है।

अच्छी श्यानता के स्नेहक के लिए ओलिफिन का पुरुभाजन २८५-३८५° फ० पर अलूमिनियम क्लोराइड की उपस्थिति में सम्पन्न किया जाता है। एथिलीन के पुरुभाजन से जर्मनी में स्नेहक तैयार हुआ था। ऐसा एथिलीन उच्च कोटि का शुद्ध

होना चाहिए। इसका पुरुभाजन अलूमिनियम की उपस्थिति में लगभग २५०° फ० पर होता है। अलूमिनियम क्लोराइड में ४ प्रतिशत फेरिक क्लोराइड भी मिला रहता है। दबाव ६०-१०० वायुमण्डल रहता है। इसमें ८० प्रतिशत स्नेहक प्राप्त होना बताया जाता है। इसकी श्यानता १२० सेबोल्ट होती है और वह ताप और प्रतिक्रिया-काल पर निर्भर करती है। इस काम के लिए एथिलीन ईथेन के भंजन अथवा एसिटिलीन के हाइड्रोजनीकरण से प्राप्त होता है। इस विधि की सफलता अधिकांश एथिलीन की शुद्धता पर निर्भर करती है।

स्नेहक के हाइड्रोजनीकरण से उच्चतर श्यानता का स्नेहक प्राप्त होता है। मोम से भी स्नेहक प्राप्त होता है। स्नेहक प्राप्त करने के अनेक पेटेण्ट लिये गये हैं।

अन्य प्रतिक्रिया-फल

पेट्रोलियम के संश्लेषण में अनेक रासायनिक द्रव्य भी प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे रासायनिक द्रव्यों में निम्नलिखित महत्त्व के हैं—

वसा-अम्ल—पैराफिन मोम के आक्सीकरण से वसा-अम्ल प्राप्त होता है। पेट्रोलियम के सामान्य संश्लेषण में भी अल्प मात्रा में वसा-अम्ल बनता है। पर मोम के आक्सीकरण से केवल मोनो-कार्बोक्सिलिक अम्ल की मात्रा बहुत कुछ बढ़ायी भी जा सकती है। यह क्रिया वसा-अम्लों के मैंगनीज़ लवण की उपस्थिति में सम्पादित होती है। कुछ लोगों ने कोबाल्ट उत्प्रेरक से भी यह क्रिया सम्पादित की है। जर्मनी में कई कारखाने इसके लिए खुले हैं। एक ऐसे कारखाने में प्रति वर्ष ४०,००० टन वसा-अम्ल तैयार होता था। मोम के इस प्रकार आक्सीकरण से फौर्मिक अम्ल बनता है जो चारे के संरक्षण में, और जो ऐसिटिक अम्ल बनता है वह सैल्यूलोज़ के एस्टरीकरण में, तथा जो प्रोपियोनिक अम्ल बनता है वह पावरोटी के संरक्षण में प्रयुक्त होता है। इससे अल्कोहल भी बनते हैं जो थैलिक एन्हाइड्राइड के साथ मिलकर एल्कीड रेज़िन बनते हैं। १० से १८ कार्बनवाले अंश साबुन बनाने और खाने की चर्बी बनाने के काम में आते हैं। खाने की चर्बी के लिए ९ से १६ कार्बनवाले अंश अच्छे होते हैं। इनसे बहुत हलके सोडियम हाइड्राक्साइड विलयन द्वारा डाइकार्बोक्सिलिक अम्ल निकाल डाले जाते हैं। १८ से २४ कार्बनवाले अंश का उपयोग चमड़ा मुलायम करने के लिए और प्लास्टिक ढलाई में स्नेहक के रूप में होता है।

भक्ष्य वसा—वसा-अम्लों के ग्लीसरिन के सहयोग से जर्मनी में खाने की वसा बनती थी। ऐसी वसा का कम से कम ९० प्रतिशत तक का पाचन हो जाता है। ऐसी वसा में सम और विषम कार्बन संख्यावाले दोनों प्रकार के अम्लों के एस्टर रहते हैं।

प्राकृतिक चर्बी या घी में केवल विषम कार्बन संख्यावाले अम्लों के एस्टर रहते हैं। एक कारखाने में प्रति मास १५० टन खानेवाली चर्बी बनती थी, जो गुण में ओलियो-मारगैरिन-जैसी थी।

खानेवाली वसा के निर्माण के लिए ८ से २० कार्बनवाले अम्लों में ग्लीसरिन (३ से ४ प्रतिशत आधिक्य में) डालकर ३९२° फ० और २ मिलीमीटर दबाव पर ०·२ प्रतिशत टिन धातु की उपस्थिति में गरम करते हैं; इससे ग्लीसराइड बनता है। उसको अम्ल से धोकर टिन को निकाल लेते हैं; तब उदासीन कर सक्रियित कोयले और विरंजक मिट्टी से उपचारित कर, छान, दबा और भाप से दो मिली-मीटर दबाव पर ३९०° फ० पर गरम कर, २० प्रतिशत जल मिलाकर पायस (इमल्शन) बनाकर, ठंडा कर और पीसकर विटामिन मिलाकर बेचते हैं।

साबुन—पेट्रोलियम संश्लेषण से प्राप्त वसा-अम्लों से बड़ी मात्रा में साबुन तैयार हो सकता है। जर्मनी में ऐसा साबुन बड़ी मात्रा में बना था। इस साबुन में कुछ गन्ध रहती है। गन्ध हटाने की चेष्टा निष्फल सिद्ध हुई है। यह गन्ध ब्युटिरिक अम्ल की गन्ध-सी होती है। धोने का साबुन अच्छा प्राप्त होता है। प्रतिक्रिया में बने लम्बे शृंखलावाले अल्कोहल के सल्फोनिक एस्टर अच्छे अपक्षालक (detergent) सिद्ध हुए हैं।

स्नेहन-स्नेह—१८ से २४ कार्बनवाले अम्लों से जो सोडियम, लिथियम, कैल-सियम, मैगनीसियम और यशद के साबुन बनते हैं, वे स्नेह (grease) के रूप में इस्तेमाल हो सकते हैं।

आक्सिजन यौगिक—सामान्य संश्लेषण में कुछ अल्कोहल बनते हैं। अल्कोहल की मात्रा बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है। इसके लिए ओलिफिन का उपयोग होता है। ओलिफिन के सल्फोनीकरण और पीछे उसके जल-विश्लेषण से अल्कोहल बनता है।

अन्य रासायनिक द्रव्य—उपर्युक्त रासायनिक द्रव्यों के अतिरिक्त कुछ और द्रव्यों का भी संश्लेषण हो सकता है। इन द्रव्यों में संश्लिष्ट रबर, प्लास्टिक, मेथिल अल्कोहल, एसिटल्डीहाइड, ऐसीटोन, अन्य कीटोन, एथिल, प्रोपिला, ब्युटिल, एमिल अल्कोहल, ग्लीसरिन, सौरभिक हाइड्रोकार्बन, नैफ्थीन इत्यादि हैं।

संश्लिष्ट पेट्रोलियम का आर्थिक पहलू

संसार में प्राकृतिक पेट्रोलियम पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आज लगभग ७०० करोड़ बैरेल पेट्रोलियम-तेल संसार में विद्यमान

है और इसकी मात्रा नयी खोजों से बहुत अधिक बढ़ायी जा सकती है। नये-नये कूपों का पता लग रहा है और संचित तेल की मात्रा क्रमशः बढ़ रही है। भविष्य में ऐसा अनुमान है कि पेट्रोलियम तेल की मात्रा ४९०० करोड़ बैरेल तक पहुँच सकती है।

प्राकृतिक पेट्रोलियम पर्याप्त सस्ता होता है, पर राज्य-कर, उत्पादन-कर और अन्य करों एवं वहन के कारण इसका मूल्य बढ़ जाता है।

संश्लिष्ट पेट्रोलियम महँगा पड़ता है। सब स्थानों का कोयला एक-सा नहीं होता। खानों से कोयला निकालने का खर्च भी भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न पड़ता है। कोयला अनेक देशों में प्रचुरता से पाया जाता है। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, भारत आदि सब देशों में पर्याप्त कोयला मिलता है। कोयले का प्रायः ३० प्रतिशत भाग निकालने में नष्ट हो जाता है। केवल ७० प्रतिशत भाग काम के लिए बच जाता है, जो पेट्रोलियम के निर्माण में प्रयुक्त हो सकता है। साधारणतया ०·७ टन बिटुमिनी कोयले से जो कोक प्राप्त होता है उससे एक बैरेल पेट्रोल प्राप्त हो सकता है। इसके तैयार करने में शक्ति लगती, भाप खर्च होती और अन्य खर्च पड़ते हैं। इस प्रकार एक टन कोयले से १·४३ बैरेल पेट्रोल प्राप्त होता है। बिटुमिनी कोयले के सीधे गैसीकरण से एक टन कोयले से २·३ बैरेल पेट्रोल प्राप्त हो सकता है।

यदि कोयले से पेट्रोलियम सीधे प्राप्त किया जाय तो खान से कोयला निकालने में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ेगी। एक मनुष्य प्रायः पाँच टन कोयला निकाल सकता है। यह औसत परिमाण है। कुछ खानों में इससे बहुत अधिक कोयला निकल सकता है। एक लाख बैरेल पेट्रोल के दैनिक उत्पादन के लिए ४३५००-७०००० टन बिटुमिनी कोयला लगेगा। इतना कोयला निकालने के लिए ८००० से १४००० मनुष्यों की आवश्यकता पड़ेगी। औसत ११००० मनुष्यों का रखा जा सकता है। इतने कोयले को गैस में परिणत करने और गैस को १ लाख बैरेल पेट्रोलियम में परिणत करने के लिए और ५००० मनुष्यों की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार एक लाख बैरेल पेट्रोलियम के उत्पादन में १६००० मनुष्यों की आवश्यकता पड़ेगी। सम्भवतः श्रमिकों की यह संख्या बहुत बड़ी है। इससे कम मनुष्यों से भी काम चल सकता है। यदि हम तैल-कूपों से पेट्रोलियम निकालकर उससे पेट्रोल प्राप्त करने में श्रमिकों की संख्या निकालें, तो पता लगेगा कि एक लाख बैरेल पेट्रोल के उत्पादन के लिए लगभग १८००० मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। इससे मालूम होता है कि कोयले से पेट्रोल बनाने में लगभग उतने ही मनुष्यों की आवश्यकता होगी जितने मनुष्यों की कूपों से पेट्रोल प्राप्त करने में होती है।

यदि कोयला न निकालकर खानों में ही कोयले का गैसीकरण हो, तो मनुष्यों की संख्या बहुत कुछ कम हो सकती है और उससे पेट्रोल-उत्पादन का मूल्य कम हो सकता है।

रसेल का अनुमान है कि प्रति गैलन पेट्रोल का मूल्य प्रायः एक रुपया होगा। कुछ लोगों का अनुमान है कि प्रति गैलन पेट्रोल का मूल्य १·२५ रुपया और कुछ लोगों का अनुमान है कि वह ८८ नये पैसे होगा। स्टैण्डर्ड आयल डेवेलपमेण्ट कम्पनी के मरफ्री (Murphree) का मत है कि भविष्य में यह सम्भव है कि कोयले से प्रस्तुत पेट्रोलियम का मूल्य प्रति गैलन ३० से ३५ नये पैसे तक गिर सके। उनकी गणना इस प्रकार है। एक संयन्त्र में प्रति दिन लगभग ९००० बैरेल पेट्रोल के साथ-साथ १८०० बैरेल गैस-तेल बन सकता है। यदि द्रव उत्प्रेरक प्रयुक्त हो, तो ऐसे संयन्त्र का मूल्य करीब २० करोड़ रुपया होगा। पेट्रोल और गैस-तेल के अतिरिक्त इस संयन्त्र में प्रति दिन ४ करोड़ घनफुट गैस भी बनेगी, जिसका ब्रिटिश-ऊष्मा-मात्रक १००० के लगभग होगा। यदि इस गैस के १००० घनफुट का मूल्य सवा रुपया रखा जाय और इसका और गैस-तेल का मूल्य निकाल लिया जाय, तो यदि कोयले के प्रति टन का मूल्य १२ रु० रखा जाय तो प्रति गैलन पेट्रोल का मूल्य प्रायः ४० नये पैसे होता है। यह मूल्य प्राकृतिक पेट्रोल के मूल्य से बहुत अधिक नहीं है। केवल यहाँ अधिक मूल-धन की आवश्यकता पड़ती है। इस मूल-धन पर पेट्रोल के मूल्य का निर्धारण उपर्युक्त गणना में नहीं हुआ है। इस संयन्त्र में कुछ अल्कोहल, कीटोन और अन्य कार्बनिक द्रव्य भी बनते हैं जिनसे भी कुछ धन प्राप्त हो सकता है।

रसेल (Russell) का अनुमान है कि कोयले से एक लाख बैरेल पेट्रोल तैयार करने के लिए लगभग ३५० करोड़ रुपये का मूल-धन आवश्यक है। ऐसे कारखाने के बनाने में, जिसमें प्रति दिन एक लाख बैरेल पेट्रोल तैयार होता है, ९ लाख से १२ लाख टन इस्पात की आवश्यकता पड़ेगी। इस्पात की यह मात्रा उतनी ही है, जितनी प्राकृतिक पेट्रोल के प्राप्त करने के परिष्कारी संयन्त्र में लगती है।

तीसवाँ अध्याय

कोयले से प्राप्त कार्बनिक यौगिक और अन्य पदार्थ

मिथेन—कोयले से मिथेन गैस भी प्राप्त हो सकती है। मिथेन गैस के प्राप्त करने का सिद्धान्त वही है जिस सिद्धान्त से कोयले से पेट्रोलियम प्राप्त होता है। यहाँ कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन के मिश्रण को निकेल उत्प्रेरक पर प्रवाहित करते हैं। उत्प्रेरक का ताप २०० से ४००° से० रह सकता है। गैस मिश्रण की गति बहुत ही तीव्र रहनी चाहिए। यहाँ प्रतिक्रिया में पर्याप्त ऊष्मा उत्पन्न होती है। उस ऊष्मा को शीघ्र से शीघ्र निकालकर अवशोषित कर लेना आवश्यक है, नहीं तो उत्प्रेरक की सक्रियता बड़ी शीघ्र नष्ट हो जाती है। यह विधि बड़ी मात्रा में मिथेन प्राप्त करने में प्रयुक्त हुई है।

मिथेन अभ्यन्तर इंजन के लिए उत्कृष्ट कोटि का ईंधन है पर यदि इसे मोटर-कार में प्रयुक्त करना हो तो मिथेन को लोहे के सिलिंडर में रखकर ले जाना पड़ेगा। अल्प मात्रा में पेट्रोल के स्थान में इसका उपयोग हुआ है। इसका कलरी-मान प्रति घनफुट १००० ब्रिटिश-ऊष्मा इकाई है। कोयला-गैस का यह मान प्रायः दुगुना होता है। मिथेन से अनेक दूसरे कार्बनिक यौगिक भी बन सकते हैं।

कोयला-गैस में २५ से ३० प्रतिशत मिथेन रहता है। कोलगैस के –१६०° से० तक ठंडा करने से मिथेन द्रव रूप में प्राप्त हो सकता है।

मेथिल अल्कोहल—कार्बन मनॉक्साइड और हाइड्रोजन के किसी उत्प्रेरक की उपस्थिति में ३५०° से ४००° से० पर २०० वायुमण्डल के दबाव पर गरम करने से मेथिल अल्कोहल बनता है। इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज ने बिलिंगहम में एक कारखाना खोला है जिसमें प्रति वर्ष करीब ६० लाख गैलन मेथिल अल्कोहल तैयार हो सकता है। इतने अल्कोहल के उत्पादन के लिए प्रति वर्ष ५०,००० टन कोयला खर्च होगा। परिस्थिति और उत्प्रेरक के परिवर्तन से अन्य अल्कोहल भी प्राप्त हो सकते हैं।

मेथिल अल्कोहल का उपयोग बहुत बढ़ गया है। 'परस्पेक्स' नामक और अन्य कई प्लास्टिकों के निर्माण में फार्मल्डीहाइड बहुत बड़ी मात्रा में लगता है। फार्मल्डीहाइड मेथिल अल्कोहल से ही तैयार होता है।

एथिलीन—कोयला-गैस में एथिलीन २ से ३ प्रतिशत रहता है। इस एथिलीन के निकालने की चेष्टाएँ हुई हैं। एथिलीन के उपयोग इधर बहुत बढ़ गये हैं। एथिलीन से अनेक उपयोगी पथार्थ, कार्बनिक विलायक, प्लास्टिक और अन्य कार्बनिक रसायन-द्रव्य बनते हैं।

कारबाइड और एसिटिलीन—कोयले से बहुत बड़ी मात्रा में कारबाइड तैयार होता है। कोक या अंथ्रेसाइट को चूने के साथ विद्युत् भ्राष्ट्र में ऊँचे ताप पर गरम करने से कारबाइड प्राप्त होता है। एक टन कोयले से प्रायः एक टन कारबाइड प्राप्त होता है। इस कोयले में वह कोयला भी सम्मिलित है जो चूने के जलाने में लगता है, प्रति टन कारबाइड के निर्माण में लगभग ३,५०० किलोवाट बिजली लगती है, यदि यह बिजली कोयले से उत्पन्न की जाय तो उसमें प्रायः दो टन कोयला खर्च होगा। इस प्रकार तीन टन कोयले से एक टन कारबाइड प्राप्त होता है।

कारबाइड का निर्माण वहाँ ही सुविधाजनक है जहाँ बिजली सस्ती हो। सस्ती बिजली वहाँ ही प्राप्त हो सकती है जहाँ जल-शक्ति से बिजली उत्पन्न होती है। इंगलैंड में भी इसी कारण कारबाइड नहीं बनता कि बिजली वहाँ सस्ती नहीं है। अमेरिका और अन्य देशों में ही जहाँ जल-शक्ति से बिजली बनती है कारबाइड का निर्माण होता है। पर आज अनेक रासायनिक द्रव्य कारबाइड से बनते हैं, अतः कारबाइड का निर्माण आज एक महत्त्व का उद्योग बन गया है। साउथ वेल्स में एक कारखाना बना है जिसमें प्रति वर्ष ७५,००० टन कारबाइड बनता है। भारत में अभी कारबाइड के निर्माण का कोई कारखाना नहीं खुला है।

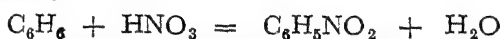
कारबाइड से एसिटिलीन प्राप्त होता है। एसिटिलीन के जलने से प्रचण्ड प्रकाश प्राप्त होता है। एसिटिलीन लम्प बने हैं जो जुलूसों और विशेष अवसरों पर जलाये जाते हैं। एसिटिलीन लम्पों के जलाने में कारबाइड खर्च होता है। धातुओं के छड़ों और चादरों के जोड़ने में भी एसिटिलीन लगता है। एसिटिलीन-आक्सिजन ज्वाला बड़ी गरम होती है, उसका ताप प्रायः ४०००° से० तक पहुँच जाता है। एसिटिलीन से आज ऐसिटिक अम्ल, ऐसिटल्डीहाइड और ऐसीटोन बनते हैं जिनका उपयोग अनेक उद्योग-धन्धों में होता है।

बेंज़ीन—हलके तेल और अलकतरे के आसवन से व्यापार का बेंज़ोल प्राप्त होता है। बेंज़ोल विलायक के रूप में और मोटर में जलाने के लिए पेट्रोल के साथ प्रयुक्त होता है। बेंज़ोल के आसवन से शुद्ध बेंज़ीन प्राप्त होता है। आसुत के हिमीकरण से बेंज़ीन प्रायः ५° से० पर जम जाता है और तब रसायनतः शुद्ध रूप में प्राप्त होता है।

शुद्ध बेंज़ीन ८०·५° से० पर उबलता और ६° से० पर पिघलता है। इसका विशिष्ट भार ०·८३९ होता है। सधूम सलफ्यूरिक अम्ल में यह पूर्णतया घुल जाता है (पेट्रोल नहीं घुलता), यह पिक्रिक अम्ल और पिच को भी घुलाता है। पेट्रोल इन्हें सरलता से नहीं घुलाता।

व्यापार के बेंज़ोल में ३०, ५० या ९० प्रतिशत बेंज़ीन रह सकता है।

नाइट्रो-बेंज़ीन—बेंज़ीन के नाइट्रोकरण से नाइट्रो-बेंज़ीन बनता है। बेंज़ीन के नाइट्रिक अम्ल और सलफ्यूरिक अम्ल के मिश्रण के साथ उपचार से विशेषतः २५° से० से नीचे ताप पर प्रारम्भ में और अन्त में ५०° से० तक गरम करने से नाइट्रो बेंज़ीन प्राप्त होता है।



$$C_6H_6 + HNO_3 = C_6H_5NO_2 + H_2O$$

नाइट्रोबेंज़ीन

यदि ताप ऊँचा हो तो डाइनाइट्रोबेंज़ीन बनता है।

एनिलीन—नाइट्रोबेंज़ीन के अवकरण से एनिलीन प्राप्त होता है। एनिलीन बड़ी मात्रा में तैयार होता है। अवकरण के बड़े-बड़े संयन्त्र बने हैं। ये ढालवें लोहे के बने होते हैं। इनमें विलोडक और संघनित्र जुड़े रहते हैं। अवकरण के लिए लोहे के बुरादे और हाइड्रोक्लोरिक प्रतिकारक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। १०० ग्राम नाइट्रो-बेंजीन से ७० ग्राम एनिलीन प्राप्त होता है।

एनिलीन १८२° से० पर उबलता है। इसका विशिष्ट भार १·०२७५ है। जल में यह अल्प विलेय है। ३२ भाग जल में केवल एक भाग विलेय है। अम्लों में यह पूर्णतया घुल जाता है।

एनिलीन का डायजोकरण होता है। डायजोकरण से डायजो-बेंज़ीन क्लोराइड बनता है। डायजोबेंज़ीन क्लोराइड बड़ा क्रियाशील पदार्थ है। अनेक कार्बनिक यौगिकों के साथ मिलकर यह रंग बनता है।

एनिलीन रंग—पहले केवल प्राकृतिक रंग हमें प्राप्य थे। ये रंग पेड़ों, पौधों, फूलों, जड़ों और कीड़ों से प्राप्त होते थे। आज सैकड़ों रंग कृत्रिम रीति से प्रयोगशालाओं में तैयार होकर बिकते हैं। कृत्रिम रंग अधिक सुन्दर, पक्के और सस्ते होते हैं। इस कारण प्राकृतिक रंगों का धीरे-धीरे अब लोप हो रहा है और उनका स्थान कृत्रिम रंग ले रहे हैं। कृत्रिम रंगों में एनिलीन रंगों का स्थान ऊँचा है। पहले-पहल यही रंग बने थे और आज भी पर्याप्त मात्रा में बनते हैं।

एनिलीन रंगों में एनिलीन रेड, एनिलीन ब्लू, सफ्रेनिन, रोज़ैनिलीन ब्लू, एनिलीन ब्लैक इत्यादि रंग बनते हैं।

नाइट्रोबेंज़ीन से बेंज़ीडीन भी प्राप्त होता है। बेंज़ीडीन से भी अनेक रंग बनते हैं। कौंगो, क्रीसेमिन इत्यादि रूई के रंग इसी से बनते हैं।

टोल्वीन—व्यापार के बेंज़ोल से टोल्वीन प्राप्त होता है। टोल्वीन १११° सें० पर उबलता है। यह २०° सें० पर जमता है। इसका विशिष्ट भार ०· ८७०८ है।

टोल्वीन के उपयोग अनेक हैं। उबलते टोल्वीन पर क्लोरीन की क्रिया से बेंज़ील क्लोराइड ($C_6 H_5 CH_2 C l$), बेंज़ल क्लोराइड ($C_6 H_5 CH Cl_2$) और बेंज़ोट्राइ क्लोराइड ($C_6 H_5 COl_3$) बनते हैं।

टोल्वीन के आक्सीकरण से बेंज़ोइक अम्ल प्राप्त होता है। यह औषधियों में प्रयुक्त होता है। सोडियम बेंज़ोएट अच्छी औषधि है।

टोल्विन के नाइट्रोकरण से ट्राइनाइट्रो-टोल्विन बनता है। फ्रांस में 'टोलाइट' (tolite), स्पेन में 'ट्राइलिट' (trilite), जर्मनी में 'ट्रोटील' (trotyl) और इंगलैंड में 'ट्रिनोल' (trinol) या 'टी० एन० टी०' के नाम से सुप्रसिद्ध है। ट्राइनाइट्रो-टोल्विन एक प्रबल विस्फोटक पदार्थ है और युद्ध के बमगोलों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

फीनोल—बेंज़ीन के सल्फोनीकरण से बेंज़ीन सल्फोनिक अम्ल बनता है। बेंज़ीन सल्फोनिक अम्ल के दाहक सोडा के साथ द्रवण से फीनोल बनता है। अलकतरे में अल्प मात्रा में फीनोल भी रहता है जो सरलता से निकाला जा सकता है।

फीनोल उत्कृष्ट कोटि का कृमिनाशक है। इसका सब से अधिक उपयोग पिक्रिक अम्ल के निर्माण में होता है। पिक्रिक अम्ल ऊन के लिए अच्छा पीला रंग समझा जाता है। यह प्रबल विस्फोटक भी होता है। बम के बनाने में यह इस्तेमाल होता है। अल्प मात्रा में औषधियों में भी पिक्रिक अम्ल का उपयोग है। जलने के फफोले पर इसका एक प्रतिशत विलयन रूई में भिगाकर लगाने से आराम मिलता है। मलहम के बनाने में भी यह काम आता है। चमड़े पर पिक्रिक अम्ल से दाग पड़ता है। पोटैसियम सल्फेट का चूर्ण छिड़ककर साबुन से धो देने से दाग मिट जाता है।

नैफ्थलीन—अलकतरे में नैफ्थलीन रहता है। नैफ्थलीन की मात्रा १० प्रतिशत तक रह सकती है। लाखों टन नैफ्थलीन प्रति वर्ष अलकतरे से प्राप्त होता है। अलकतरे से जो तेल १९० और २३० से० के बीच निकलता है उसी में अधिकांश नैफ्थलीन रहता है। केन्द्रापसारक में पारित करने से नैफ्थलीन में चिपका हुआ तेल निकाला जाता है। अनेक कामों के लिए यह नैफ्थलीन पर्याप्त शुद्ध होता है, पर इससे अधिक शुद्ध नैफ्थलीन प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ग इंच पर इसे ५ टन दबाव पर वाष्प-तप्त द्रवचालित प्रेस में दबाना पड़ता है। ऐसे नैफ्थलीन में भी २ से ४ प्रतिशत

तेल रहता है और वह ७६–७८° से० पर पिघलता है। रसायनतः शुद्ध नैफ्थलीन ८०·३° से० पर पिघलता है और २१८° से० पर उबलता है।

रसायनतः शुद्ध नैफ्थलीन के लिए कच्चे नैफ्थलीन को पिघलाकर सलफ्यूरिक अम्ल से पहले धोते हैं। अम्ल को निकालकर पहले जल से, फिर कॉस्टिक सोडा से धोकर अम्ल के लेश निकाल डालते हैं। फिर उसे आसवन द्वारा शुद्ध रूप में प्राप्त करते हैं।

नैफ्थलीन के आक्सीकरण से थैलिक एन्हीड्राइड प्राप्त होता है। थैलिक एन्हीड्राइड से कृत्रिम नील तैयार होता है। थैलिक एन्हीड्राइड से अनेक प्रकार के प्लास्टिक भी बनते हैं।

नैफ्थलीन के हाइड्रोजनीकरण से टेट्रा-हाइड्रोनैफ्थलीन (टेट्रैलीन) और डेका-हाइड्रो-नैफ्थलीन (डेकालीन) बनता है। ये दोनों यौगिक पेण्ट और वार्निश के लिए अच्छे विलायक सिद्ध हुए हैं। नैफ्थलीन का अवकरण शीघ्रता से होता है।

सुगन्धित द्रव्य

अलकतरा यद्यपि देखने में बहुत घृणास्पद और गन्ध में बहुत अप्रिय होता है पर उससे अनेक सुगन्धित द्रव्य आज तैयार होकर बाजारों में बिकते हैं। इनमें सबसे सरल पदार्थ मेथिल सैलिसीलेट है जो शिशिर-हरित (winter green) नामक पौधे में पाया जाता है। बादाम के अन्तर्बीज में एक वाष्पशील तैल होता है जिसकी गन्ध ठीक उसी प्रकार की होती है जैसी बेंज़ल्डीहाइड और नाइट्रो-बेंज़ीन की गन्ध। ये दोनों ही पदार्थ बेंज़ीन और टोल्वीन से बनते हैं। नाइट्रो-बेंज़ीन जूते की और गच की पालिश में प्रयुक्त होता है।

इन सबसे अधिक महत्त्व का सुगन्धित पदार्थ कस्तूरी (musk) है। आज कृत्रिम कस्तूरी तैयार होकर बहुत बड़ी मात्रा में प्रयुक्त होती है। कृत्रिम कस्तूरी दो प्रकार की है। एक को कस्तूरी ज़ाइलीन और दूसरी को कस्तूरी कीटोन कहते हैं। कस्तूरी ज़ाइलीन टर्शियरी-ब्युटील-ज़ाइलीन से और कस्तूरी कीटोन मेटा-क्रेसील-मेथिल ईथर से तैयार होती है।

बीटा-नैफ्थोल ईथर की गन्ध नारंगी के फूल की गन्ध-जैसी होती है। यू-डी-कोलोन और कुछ फल-स्वादों के निर्माण में यह प्रयुक्त होता है।

इनके अतिरिक्त लवेंडर, गुलाब, लिली (नलिनी), राहुरत्न (hyacinth), नर्गिस (narcissus), दालचीनी, वायलेट पुष्प आदि की गन्ध अलकतरे से प्राप्त यौगिकों से बनती है।

प्लास्टिक

आज प्लास्टिक के सैकड़ों सामान बिकते हैं। ये सामान देखने में बड़े सुन्दर और आकर्षक होते हैं। दैनिक आवश्यकताओं के सामानों से लेकर सजावट के सामानों तक इससे बनते हैं। बिजली और रेडियो के यंत्रों और बक्सों में तो इसका उपयोग बहुत ही विस्तृत है। आज प्लास्टिक की नावें और मोटरकारें भी बनती हैं। प्लास्टिकों के रंग बड़े सुहावने हो सकते हैं। अधिकांश प्लास्टिक अलकतरे से प्राप्त यौगिकों के सहयोग से बनते हैं। प्लास्टिक के चूर्ण और पट्ट दोनों बनते हैं और उनसे साँचे में और औजारों से काट-छाँटकर सब सामान तैयार होते हैं। यूरोप के स्कूलों में आज प्लास्टिक के सामान तैयार करने की रीतियाँ छात्रों को सिखलायी जाती हैं।

प्लास्टिकों को डालकर काठ बड़ा मजबूत बनाया जा सकता है। वस्त्रों को प्लास्टिक में डुबाकर उन्हें बहुत मजबूत बनाया जा सकता है। लाह और गोंद के स्थान में वार्निश बनाने में प्लास्टिक प्रयुक्त हो सकता है। प्लास्टिक से बनी वार्निश उत्कृष्ट कोटि की होती है। मोटर गाड़ियों पर जो वार्निश आज चढ़ायी जाती है वह प्लास्टिक से ही बनी होती है। ऐसे प्लास्टिकों की वार्निश के चढ़ाने में कम समय लगता है और उससे मोटर गाड़ियों का संरक्षण अधिक होता है। आज बोतल और शीशियों की ठेपी ही प्लास्टिक की नहीं बनती पर वायु-यान के चालक-चक्र भी प्लास्टिक के बनते हैं।

औषधियाँ

अलकतरे से प्राप्त यौगिकों की सहायता से आज अनेक औषधियाँ तैयार होती हैं। ऐसी औषधियों में एक औषधि ऐस्पिरिन है। यह ज्वर और पीड़ा दूर करने में विस्तृत रूप से प्रयुक्त होती है। ऐस्पिरिन सैलिसिलिक अम्ल से तैयार होता है। सैलिसिलिक अम्ल फीनोल से तैयार होता है जो अलकतरे में पाया जाता और बेंजीन से प्राप्त हो सकता है। ऐस्पिरिन के अतिरिक्त अन्य सैकड़ों औषधियाँ, अण्टीफेब्रिन, एड्रिनेलीन, बेंजोइक अम्ल, मेथिल सैलिसिलेट, सैल्वर्सन, सैलोल, फीनोलफथैलीन, प्लैज्मोक्विन, एटेब्रिन, कोकेन, एक्रिफ्लेविन, रिसोर्सिनोल, प्रोन्टोसील, एम एण्ड बी ६९३ आदि अलकतरे से प्राप्त यौगिकों से बनती हैं।

फोटोग्राफी के सामान

फोटोग्राफ़ी में अनेक रासायनिक द्रव्य प्रयुक्त होते हैं। उनमें अधिकांश आज अलकतरे से प्राप्त कार्बनिक यौगिकों से तैयार होते हैं। चित्रों के विकास के लिए

जो रासायनिक द्रव्य प्रयुक्त होते हैं उन्हें 'विकासक' (डेवेलपर) कहते हैं। पहले केवल पाइरो-यौगिक विकासक के रूप में प्रयुक्त होते थे। आज उनके स्थान में अनेक दूसरे अति सूक्ष्म विकासक, मेटोल हाइड्रो क्विनोन, एमिडोल, रोडिनल आदि प्रयुक्त होते हैं। आज अनेक ऐसे यौगिक बने हैं जिनसे चित्र-पट्ट की संग्राह्यता बहुत अधिक बढ़ गयी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ ही क्षणों में आज चित्र खिंच जाता है, जहाँ पहले चित्रों के खींचने में मिनटों का समय लगता था।

अलकतरे के रंग

रंगों का उपयोग बहुत प्राचीन है। वस्त्रों के रंगने में ही रंगों का उपयोग न होता था, वरन् काठ के सामान, मिट्टी के पात्र और पत्थर के सामान भी रंगों से रंगे जाते थे। चित्रों का निर्माण तो रंग पर ही निर्भर करता है।

१९ वीं सदी तक हमें जो रंग मालूम थे वे सब प्राकृतिक थे। पेड़-पौधों और कीड़ों से वे प्राप्त होते थे। कुछ पेड़ों के फूलों में, कुछ पेड़ों के स्तम्भ में और कुछ पेड़ों की जड़ में रंग होते थे और हम उनका उपयोग करते थे। कुसुम और केसर का रंग फूलों से प्राप्त होता है। रक्त चंदन का रंग स्तम्भ से और मँजीठ तथा हल्दी का रंग जड़ से प्राप्त होता है। किरमची और लाह के रंग कीड़ों से प्राप्त होते हैं।

पहले-पहल १८५६ ई० में अलकतरे से एक कृत्रिम रंग, मौवे बना। यह एनिलीन रंग था। उसके बाद तो एक के बाद दूसरे अनेक रंग, एक से एक सुन्दर, एक से एक स्थायी बनते गये और आज हजारों की संख्या में ऐसे रंग बने हैं और उनका उपयोग विस्तृत रूप से हो रहा है। अनेक प्राकृतिक रंगों का स्थान आज कृत्रिम रंगों ने ले लिया है।

मँजीठ का रंग आज कृत्रिम रीति से तैयार होता है। नील का रंग पहले एक पौधे से प्राप्त होता था। आज यह कृत्रिम रीति से अलकतरे से प्राप्त नैफ्थलीन से बन रहा है। मँजीठ का रंग आज अलकतरे में उपस्थित अंथ्रेसीन से तैयार होता है।

आज हमें खाद्य पदार्थों के रंगने के लिए, रेयन के रंगने के लिए, मोम, चमड़ा, कागज, रबर और प्लास्टिक के रंगने के लिए जितने रंग चाहिए वे सब अलकतरे से प्राप्त यौगिकों से प्राप्त होते हैं। इसी कारण उन्हें 'अलकतरे का रंग' कहते हैं। ऐसे रंगों के निर्माण में अलकतरे के कार्बनिक यौगिकों के साथ-साथ अन्य अनेक अकार्बनिक यौगिकों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अकार्बनिक यौगिकों में सलफ्यूरिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल, कॉस्टिक सोडा, अमोनिया, क्लोरीन, ब्रोमीन आदि महत्त्व के हैं।

कृत्रिम रंग पहले जर्मनी से आता था। पीछे इंगलैंड से आने लगा। आज इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज नामक ब्रिटिश कम्पनी भारत में भी कुछ रंग तैयार कर रही है, पर उसके सारे रासायनिक द्रव्य बाहर इंगलैंड से आते हैं। अलकतरे से रासायनिक द्रव्य प्राप्त करने का प्रयत्न भारत में होना चाहिए। अलकतरे के आसवन का कारखाना खुलना चाहिए और भिन्न-भिन्न यौगिकों के पृथक्करण का प्रयत्न होना चाहिए।

विस्फोटक

विस्फोटकों की युद्ध में ही आवश्यकता नहीं होती वरन् शान्तिकाल में भी इनकी आवश्यकता होती है। सुरंग बनाने में पत्थर काटने के लिए पर्याप्त मात्रा में विस्फोटकों का उपयोग होता है। अनेक पदार्थ विस्फोटक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनमें महत्त्व के दो विस्फोटक ट्राइनाइट्रो-फीनोल (पिक्रिक अम्ल) और टी० एन० टी० (ट्राइनाइट्रो-टोल्वीन) अलकतरे से प्राप्त कार्बनिक यौगिकों से बनते हैं।

इकतीसवाँ अध्याय

कोयले का विश्लेषण

कोयले का विश्लेषण बड़े महत्त्व का है। विश्लेषण से ही कोयले की प्रकृति का पता लगता है। हजारों-लाखों टन कोयले की प्रकृति १०० ग्राम से कम ही कोयले के नमूने की प्रकृति से जानी जाती है। अतः विश्लेषण के लिए कोयले के नमूने का चुनाव बड़े महत्त्व का है। यदि नमूना ठीक तरह से निकाला गया तो उससे कोयले की प्रकृति की जानकारी ठीक-ठीक हो सकती है, अन्यथा यदि कोयले का नमूना ठीक तरह से नहीं निकाला गया तो विश्लेषण का कोई मूल्य नहीं रह जाता और कोयले की प्रकृति का ठीक-ठीक पता नहीं लगता।

कोयले का नमूना ऐसा रहना चाहिए कि वह समस्त कोयले की प्रकृति का द्योतक हो। कोयले के छोटे-बड़े सब टुकड़ों और कोयले में उपस्थित अपद्रव्यों और बाह्य पदार्थों का सारा अंश नमूने में आ जाना आवश्यक है।

कोयले का नमूना निकालने के लिए अनुभवी आदमी की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा आदमी चाहिए जो इस काम से पूरा परिचित हो और कोयले के बड़े-बड़े ढेरों से अल्प मात्रा में नमूना ठीक-ठीक निकाल सके। सामान्य आदमी से यह काम ठीक तरह से नहीं हो सकता। आदमी अनुभवी और समझदार दोनों होना चाहिए।

कोयले से नमूना निकालकर विश्लेषण में प्रयुक्त करने के साधारणतया तीन क्रम हैं। पहले क्रम में कोयले का नमूना ऐसा चुना जाना चाहिए जो सब आकार के कोयले और सब प्रकार के अपद्रव्यों का प्रतिनिधित्व करता हो। दूसरे क्रम में कोयले को स्थूल रूप से पीसते हैं ताकि उसके टुकड़े छोटे-छोटे प्रायः $\frac{१}{४}$ इंच के हो जायँ। नमूने का ऐसा चूर्ण प्रायः १० पाउंड होना चाहिए। तीसरे क्रम में नमूने को छोटे-छोटे टुकड़ों, $\frac{१}{४}$ पाउंड को ऐसा महीन पीसते हैं कि वह ७०-अक्षि ब्रिटिश स्टैंडर्ड की चलनी में चाला जा सके। ऐसे ही नमूने के चूर्ण से विश्लेषण के लिए आवश्यक मात्रा लेकर परीक्षण करते हैं।

नमूना ऐसा निकालना चाहिए कि राख की मात्रा में एक प्रतिशत से अधिक का अन्तर नहीं पड़े। इससे अधिक यथार्थता की आवश्यकता नहीं होती। यदि वास्तव

में ऐसा नमूना निकाला गया है तो वह नमूना बिलकुल ठीक है। परिणाम में यदि इससे अधिक यथार्थता की आवश्यकता हो तो नमूने की मात्रा अधिक, दुगुनी, तिगुनी निकालनी पड़ेगी, जिसमें अधिक समय लगेगा और उससे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। विभिन्न विश्लेषणों में भी अन्तर पड़ सकता है। एक ही विश्लेषक के दो विश्लेषण-परिणाम बिलकुल एक-से नहीं होते। दो विश्लेषकों के परिणामों में भी अन्तर पड़ सकता है। साधारणतया एक विश्लेषक के दो परिणामों में ०.३ से अधिक का अन्तर नहीं पड़ना चाहिए। दो विश्लेषकों के परिणामों में ०.५ से अधिक का अन्तर नहीं रहना चाहिए।

कोयले की समांगता—एक ही खान से निकले कोयले के १०० डब्बों के कोयले में राख की मात्रा एक नहीं रहती। जिस अंक के आस-पास में यह विचलन (deviation) होता है उस अंक को 'वास्तविक राख' कहते हैं। वास्तविक राख से जो विचलन होगा उस विचलन को जोड़कर नमूने की कुल संख्या से भाग देने पर जो भागफल प्राप्त होता है, वह 'मध्यमान विचलन' कहा जाता है। १०० डब्बे कोयले के मध्यमान विचलन को 'मध्यमान त्रुटि' (error) कहते हैं। मध्यमान त्रुटि ही समांगता की माप है।

संभाव्य त्रुटि (probable error) मध्यमान त्रुटि से कुछ में कम होती है और कुछ में अधिक। यदि विश्लेषण बड़ी यथार्थता से किया गया है तो संभाव्य त्रुटि मध्यमान त्रुटि का ०.८५ गुना होती है।

यदि किसी कोयले की मध्यमान त्रुटि एक प्रतिशत है तो १०० नमूनों के ५० में मध्यमान त्रुटि ०.८५ प्रतिशत से कम होगी और ५० नमूनों में ०.८५ प्रतिशत से अधिक होगी। ग्रुमेल और डनिंगहम ने मध्मान त्रुटि निकालने के लिए एक सूत्र निकाला है। यह सूत्र कोयले की राख की मात्रा पर निर्भर करता है। यह सूत्र है मध्यमान त्रुटि = ०.१४३ × राख + ०.२१।

ब्रुशेल का मत इससे भिन्न है। उनका कथन है कि राख की मात्रा के दो कारण हैं। एक कोयले में उपस्थित अकार्बनिक पदार्थों का रहना और दूसरा कोयले में बाहर से मिले हुए कंकड़-पत्थरों का रहना। यदि दूसरा कारण नहीं होता तो उनके मत में ऊपर का सूत्र ठीक हो सकता था, अन्यथा नहीं। जो प्रयोग दक्षिण अफ्रीका और इंगलैंड के कोयले पर हुए हैं उनसे ब्रुशेल का कथन ठीक मालूम होता है।

इंगलैंड में नमूना-समिति ने नमूना निकालने के सम्बन्ध में जो नियम बनाये हैं वे इस प्रकार के हैं—

(१) यदि रेल के डब्बों में कोयला एक-सा रखा हुआ हो तो डब्बों की संख्या का कोयले की तौल से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक दूसरे से स्वतंत्र हैं।

(२) जिन डब्बों से कोयले का नमूना निकाला जाता है वह कोयले की मध्यमान त्रुटि पर निर्भर करता है।

(३) जितना नमूना निकालना है उसे छोटे-छोटे डब्बों की अधिक संख्या से निकालना अच्छा है। बड़े-बड़े डब्बों की अल्प संख्या से निकालना उतना अच्छा नहीं होता।

कोयले का नमूना कितना निकालना चाहिए, यह (१) कोयले के विस्तार, (२) कोयले की परिवर्तनशीलता (वैरिऐबिलिटी) और (३) परिणाम की यथार्थता पर निर्भर करता है। प्रत्येक डब्बे से कितना कोयला निकालना चाहिए, यह कोयले के विस्तार और मध्यमान त्रुटि पर निर्भर करता है। मध्यमान त्रुटि का घनिष्ठ सम्बन्ध मुक्त राख से है। कोयले की परिवर्तनशीलता भी राख पर ही निर्भर करती है।

रेल के डब्बों से कितना नमूना निकालना चाहिए इसका पता निम्नलिखित आँकड़ों से लगता है—

४	प्रतिशत	राखवाले कोयले से	१००	पाउण्ड	५०	डब्बों से
४ से ५	,,	,,	१४५	,,	७३	,,
५ से ६	,,	,,	२४०	,,	१२०	,,
६ से ७	,,	,,	३३०	,,	१६५	,,
७ से ८	,,	,,	४२५	,,	२१३	,,
८	,, से ऊपर		५००	,,	२५०	,,

कोयले के नमूने की मात्रा बहुत कुछ कोयले के आकार पर निर्भर करती है। छोटे आकार के कोयले से कम और बड़े आकार के कोयले से अधिक कोयला निकाला जाता है।

नमूने को बेलचा (एक प्रकार की बड़ी कड़छी) से निकालकर खत्ती (bin) में रखते हैं। खत्ती ऐसी रहती है कि उसमें बाहर से जल का शोषण न हो सके और न कोयले से ही पानी निकल सके। खत्ती का ढक्कन ऐसा रहता है कि वह आप से आप कोयले को ढँक सके।

यदि कोयले का पिंड १० पाउण्ड से बड़ा हो तो उसे काटकर उसका नमूना निकालते हैं। छोटे-छोटे पिंडों का नमूना अलग निकालते हैं। फिर इन दोनों को

मिलाकर उससे विश्लेषण के लिए निकालते हैं। नमूने को निकालकर नमूना-घर में ले जाते हैं। यह घर बन्द होता है, ऊपर छत लगी रहती है और ठंड और वायु से वह सुरक्षित रहता है। कोयले में वास्तविक जल की मात्रा के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि कोयले के नमूने को देर तक वायु में खुला न रखें और उसमें देर तक वायु का झोंका न लगने दें। यदि कोयला वायु में अंशतः अथवा पूर्णतः सूखा हो तो कोयले को ऐसे वातावरण और आर्द्रता में न रखना चाहिए कि जल की मात्रा में विशेष परिवर्तन हो सके।

कोयले में नमी निकालने के लिए नमूने का संग्रह

सामान्य रीति—यह रीति सब प्रकार के कोयलों के लिए ठीक समझी जाती है। उन कोयलों के लिए तो विशेष रूप से उपयुक्त समझी जाती है जिनके पीसने के लिए पर्याप्त यंत्र नहीं हैं। नमूने की मात्रा नमी के भार पर निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न आकार के कोयले को लेकर उन्हें मिलाकर उनसे नमूना निकालकर विश्लेषण करते हैं।

विशेष रीति—यह रीति वायु में सूखे कोयले के लिए अच्छी समझी जाती है। यहाँ कोयले के नमूने को लेकर पीसकर $\frac{१}{३}$ इंच का टुकड़ा बनाकर उससे १० पाउण्ड निकालकर उसको इकट्ठा कर उसमें से अल्प मात्रा निकालकर विश्लेषण करते हैं।

ऐसे नमूने से यदि कोयले के टुकड़े $\frac{१}{२}$ इंच से बड़े न हों तो उससे दो पाउण्ड नमूना निकालते हैं। यदि कोयला $\frac{१}{२}$ इंच से बड़े टुकड़ों में हो तो उसे यंत्रों में पीसते हैं। यदि कोयला भींगा हो तो उसे वायु में सुखाकर तब पीसते हैं। पीस जाने पर उससे दो पाउण्ड नमूना निकालते हैं। ऐसे नमूने को वायुरुद्ध टिन में रखकर उस पर नाम-पत्र, दिनांक आदि लगा देते हैं।

वायु-शुष्क कोयला—पहले ऐसी धारणा थी कि कोयले को १२० घण्टा कमरे के ताप पर रखने से वह वायु-शुष्क हो जाता है। अब पता लगा है कि यदि कोयले को पतली तह में ऐसे पात्र में रखें जिसमें वायु स्वच्छन्दता से आ जा सके तो कमरे के ताप पर ६ से १० घंटे में ही कोयला वायु-शुष्क हो जाता है। यदि कमरे का ताप कुछ ऊँचा हो पर ५०° से० से ऊँचा न हो तो १$\frac{१}{२}$ से ३ घंटे में ही कोयला वायु-शुष्क हो जाता है।

वायु-शुष्क करने पर नमी में कितनी कमी होती है उसका निर्धारण इस प्रकार होता है—

नमूने को एक सूखे थाल में रखते हैं। थाल ऐसा होता है कि न उसमें कोई अवशोषण हो और न संक्षारण। थाल अकलुष इस्पात अथवा अलूमिनियम का होता है। इसकी लम्बाई १५ इंच, चौड़ाई १० इंच और गहराई १ इंच रहती है। इसमें दो पाउण्ड कोयला ऐसे स्तर में बिछ जाता है जिस स्तर की गहराई $\frac{1}{2}$ इंच से अधिक नहीं होती। थाल में कोयले को पसारकर सूखने देते और सूख जाने पर (परिस्थिति के अनुसार सूखने में समय १$\frac{1}{2}$ से १० घंटा लग सकता है) तौलते हैं। कोयले के भार की कमी से कोयले में नमी की प्रतिशतता निकालते हैं।

रीति १—यह रीति उस कोयले के लिए उपयुक्त होती है जिसमें नमी की मात्रा ४ प्रतिशत से अधिक न हो।

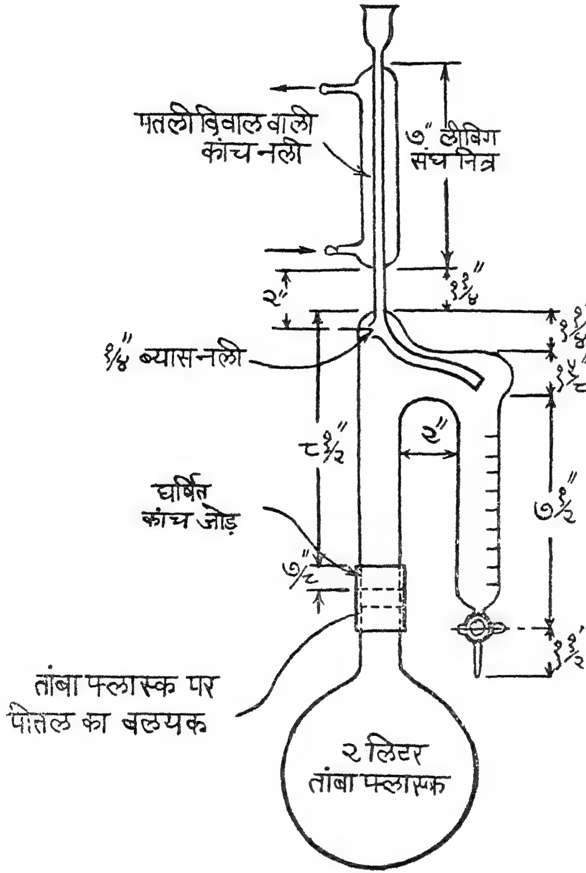
थाल में प्रायः $\frac{1}{2}$ इंच गहराई में कोयले के नमूने के दो पाउण्ड को रखकर १००-११०° से० के बीच चूल्हे में गरम करते हैं। समय-समय पर उसे तौलते हैं। जब उसका भार स्थायी हो जाता है तब तौलना बन्द कर देते हैं। इसमें ५ से ६ घंटा लगता है। चौथे, पाँचवें और छठे घंटे के अन्त में तौलकर देखते हैं कि भार स्थायी है या नहीं। कोयले को गरम अवस्था में ही तौलते हैं ताकि ठंडा होने से वह नमी को अवशोषित न कर ले। जिस चूल्हे में गरम करते हैं उसमें प्रति घंटा ३ से ५ बार गरम वायु प्रवाहित करते हैं ताकि चूल्हे का वातावरण बदलता रहे।

रीति २—सामान्य रीति—यह रीति सब प्रकार के कोयले के लिए उपयुक्त होती है। यहाँ कोयले के दो पाउण्ड नमूने को पेट्रोलियम प्रभाग के साथ गरम करते हैं। पेट्रोलियम तेल के साथ-साथ पानी भाप बनकर निकलता और पेट्रोलियम तेल के साथ संघनित्र में संघनित होता है।

जिस उपकरण में यह कार्य सम्पादित होता है वह डीन और स्टार्क के उपकरण का परिवर्तित रूप है। इस सुधारित उपकरण का चित्र यहाँ दिया हुआ है। इसमें ताँबे का एक छोटी गरदनवाला दो लिटर धारिता का फ्लास्क रहता है। फ्लास्क की गरदन में एक टोपी लगी रहती है जिसके ऊपर के भाग में घृष्ट-काँच का शंकु लगा रहता है। उपकरण के अन्य सब भाग ऊष्मा-अवरोधक बोरोसिलिकेट काँच के बने होते हैं। इसके संग्राही की धारिता १०० मिलिलिटर की होती है।

फ्लास्क को पहले तौलते हैं। फिर उसमें कोयला रखकर तौलते हैं। फिर फ्लास्क में काँच के भागों को जोड़कर पेट्रोलियम प्रभाग के २५० मिलिलिटर को पश्चवाही द्वारा ऊपर से डालते हैं। पेट्रोलियम प्रभाग का क्वथनांक १५०–१८०° से० रहना चाहिए। फ्लास्क को अब तीव्रता से छोटी ज्वाला द्वारा उबालते हैं। जब संग्राही में और जल का इकट्ठा होना बन्द हो जाय तब आसवन को बन्द कर देते हैं। साधारण-

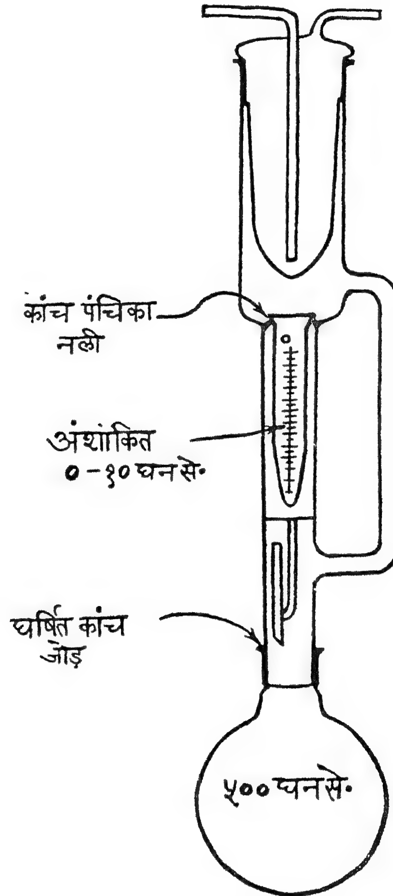
तथा ३ से ६ घंटा इसमें लगता है। जितना पानी संग्राही में इकट्ठा होता है उसका आयतन लिख लेते हैं। यदि पानी का आयतन संग्राही की धारिता से अधिक हो जाय तो अधिक पानी को निकालकर उसका आयतन अलग से नाप लेते हैं। पानी के आय-



चित्र ६७—नमी-निर्धारण का उपकरण

तन से कोयले में पानी की प्रतिशतता निकालते हैं। आसवन ज्यों ही खतम हो जाय कोयले को फ्लास्क से निकाल लेते हैं, नहीं तो कोयले के फ्लास्क में चिपक जाने का भय रहता है।

रीति ३—कोयले को पीसकर ऐसा बनाते हैं कि वह ६-अक्षि चलनी में छन जाय। यदि पीसने के समय कोयला भीगा मालूम हो और चिपके तो उसे वायु में सुखा लेते हैं। पर सुखाने के समय ध्यान रखते हैं कि नमी और ताप में विशेष परिवर्तन न हो। ऐसे पीसे हुए कोयले के चूर्ण से तीन रीतियों से जल की मात्रा निकाल सकते हैं—



चित्र ६८—नमी-निर्धारण का दूसरा उपकरण

पहली रीति में पीसे हुए कोयले के चूर्ण को लेकर १०५–११०° से० पर वायु-

ऊष्मक पर सुखाते हैं और इस प्रकार भार में जो कमी होती है उससे जल की प्रतिशतता निकालते हैं।

दूसरी रीति में शुष्क नाइट्रोजन के वातावरण में १०६–११०° से० पर कोयले के १० ग्राम चूर्ण को पोर्सीलेन की नाव में रखकर सुखाते और शुष्क नाइट्रोजन के वातावरण में ही ठंडा करके तौलते हैं।

तीसरी रीति को 'टोल्वीन रीति' भी कहते हैं। यह रीति उस कोयले के लिए अधिक उपयोगी है जिस कोयले में नमी की मात्रा अधिक रहती है और जिसका १०५° से० पर आक्सीकरण होता है। इस रीति में वायु में बिना सुखाये कुछ बड़े टुकड़ों का भी उपयोग हो सकता है।

इस रीति में २ से ५ ग्राम के टुकड़ों को नमूने से इकट्ठा कर फ्लास्क में तौलते हैं (चित्र देखिए)। फ्लास्क की धारिता ५०० मिलीलिटर की होती है। कोयले को फ्लास्क में रखकर २०० मिलीलिटर टोल्वीन डालकर गरम करते हैं। टोल्वीन ऐसा होना चाहिए जो पहले एक बार फ्लास्क में उबाल दिया गया है। सारा उपकरण सूखा और अन्दर का भाग स्वच्छ रहना चाहिए। फ्लास्क में अन्य भागों को जोड़कर पैराफिन-ऊष्मक में गरदन तक डुबाकर टोल्वीन को तीव्रता से उबालते हैं। संग्राही के पानी के तल में यदि १५ मिनट तक कोई अन्तर न देखा जाय तो उबालना बन्द कर देते हैं। संग्राही के पार्श्व में यदि कोई जल चिपका रहे तो टोल्वीन के धावन बोतल के प्रबल क्षिप्र से बहाकर संग्राही में इकट्ठा कर लेते हैं। अब पानी को मापन-नली में रखकर उसका आयतन पढ़ते हैं और उससे जल की प्रतिशतता निकालते हैं।

जब उबालना समाप्त हो जाता है तब कोयले को फ्लास्क से निकालकर उसमें दूसरा प्रयोग कर सकते हैं। संघनित्र और संग्राही को धो और स्वच्छ कर सुखाते, फिर प्रयुक्त करते हैं।

विश्लेषण के लिए कोयले का नमूना तैयार करना

कोयले को $\frac{१}{४}$ या $\frac{3}{१६}$ इंच के आकार में तोड़ते हैं। तोड़ना यंत्रों से होता है। हैमर-मिल्स (Hammer-mills) इसके लिए अच्छा समझा जाता है। नमूने को बहुत काल तक वायु में खुला नहीं रखना चाहिए, नहीं तो कोयले का कलरीमान कम हो जाता है।

कोयले का प्राथमिक विश्लेषण

प्राथमिक विश्लेषण में हम कोयले में जल की मात्रा, वाष्पशील पदार्थ और राख की मात्रा का निर्धारण करते हैं। इसके लिए कोयले को वायु के अभाव या अनुप-

स्थिति में गरम करते हैं और उससे जो परिवर्तन होता है उसका पता लगाते है। यहाँ हम जो प्रयोग करते हैं उसे एक विशिष्ट परिस्थिति में करते हैं। इन प्रयोगों से कोयले की वास्तविक प्रकृति का पता नहीं लगता पर यह अवश्य पता लगता है कि कोयला किस श्रेणी का है और उसका उपयोग किस काम में हो सकता है।

कोयले का वाष्पशील पदार्थ वास्तव में कोयले का कोई अंश या अवयव नहीं है। कोयले के गरम करने से ऊष्मा द्वारा कोयले के विच्छेदन से गैस और तरल पदार्थों के वाष्पशील मिश्रण बनते हैं जिन्हें हम 'वाष्पशील पदार्थ' कहते हैं। वाष्पशील पदार्थ की मात्रा और प्रकृति बहुत कुछ गरम करने के ताप पर निर्भर करती है। अत: वाष्पशील पदार्थ का निर्धारण किसी एक विशिष्ट ताप पर होना चाहिए। वाष्पशील पदार्थ के लिए कोई-कोई 'वाष्पशील हाइड्रोकार्बन' और 'वाष्पशील दाहय पदार्थ' भी प्रयुक्त करते हैं पर इन शब्दों का प्रयोग ठीक नहीं है और हमें न करना चाहिए।

वाष्पशील पदार्थ में हाइड्रोकार्बनों के अतिरिक्त अन्य पदार्थ, कार्बन के आक्साइड, भाप आदि भी रहते हैं। खनिज अंशों के विच्छेदन से भी अल्प मात्रा में 'वाष्पशील पदार्थ' बन सकते हैं।

कोयले में नमी का निर्धारण

नमी के निर्धारण के लिए कोयले का नमूना महीन पिसा हुआ रहना चाहिए। महीन पिसे हुए कोयले से तात्पर्य ऐसे कोयले से है जो ७०-अक्षि ब्रिटिश प्रामाणिक परीक्षण चलनी में छल जाय। ऐसे कोयले के चूर्ण की एक निश्चित मात्रा को लेकर १०५–११०° से० तक एक घण्टे या एक घण्टे से अधिक काल तक गरम करके शोषित्र में ठंडा कर बार बार तौलना चाहिए। जब अन्तिम दो तौलों में कोई अन्तर न रहे तब उस तौल से कोयले की तौल में जो कमी हुई है उससे कोयले में नमी की प्रतिशतता निकालनी चाहिए।

कोयले के गरम करने में वायु के वातावरण में कोयले का आक्सीकरण १०५° से० ताप पर भी अल्प हो सकता है। यदि कोयले में आक्सिजन की मात्रा अधिक हो तो यह आक्सीकरण अधिक तीव्रता से होता है। आक्सीकरण से नमी की मात्रा में वास्तविक नमी की मात्रा से कमी हो सकती है और अधिकता भी। यदि कोयले के सुखाने के समय कोयला आक्सिजन को अवशोषित कर फिर उसे निकालता नहीं तो नमी की मात्रा वास्तविक मात्रा से कम होगी, पर यदि कोयला आक्सिजन को अवशोषित कर पीछे जलकर आक्साइड के रूप में निकाल देता है तो जल की वास्तविक मात्रा से जल की मात्रा अधिक प्राप्त होती है।

चूल्हा रीति

महीन पीसे हुए कोयले के २ से १० ग्राम को लेकर एक छिछले ढक्कनवाले पात्र में बिछाकर गरम करते हैं। कोयले का चूर्ण ऐसा बिछाना चाहिए कि प्रति वर्ग सेंटीमीटर स्थल पर कोयले की मात्रा ०,३ ग्राम से अधिक न रहे। अब पात्र को १०५-११०° से० पर एक घण्टे तक गरम करते हैं। गरम करने के बाद ढक्कन से ढँककर शोषित्र में ठंडा करते हैं। शोषित्र में शोषण के लिए कैलसियम क्लोराइड अथवा सलफ्यूरिक अम्ल रखा रहता है।

छिछला पात्र (१) काँच की वर्धक प्याली (Petric dish) हो सकती है जो प्रायः १० मिलीमीटर गहराई की हो; (२) छिछली सिलिका अथवा धातु की प्याली हो सकती है जिसका ढक्कन भी हो; (३) छिछली डाटवाली तोलन-बोतल हो सकता है अथवा (४) दो घटि-कांच हो सकते हैं जिनके पकड़ रखने के लिए स्वज (clips) हों।

चूल्हा ऐसा रहना चाहिए कि उसका ताप स्थिर (steady) और एक-सा रखा जा सके। इसके लिए निचोलित चूल्हे इस्तेमाल होते हैं। निचोल में ग्लीसिरीन और जल उचित अनुपात में भरा जाता है ताकि उससे ताप १०५° से० प्राप्त हो सके। निचोल में टोल्वीन भी रखा जा सकता है। टोल्वीन या जल वाष्प बनकर निकल न जाय इसे रोकने के लिए निचोल में एक पश्चवाही संघनित्र जोड़ देते हैं। निचोल में एक थर्मामीटर लगा रहता है। इससे चूल्हे के ताप का पता लगता है।

कोयले के आक्सीकरण को रोकने के लिए चूल्हे का वातावरण शुष्क और पूर्व-तप्त नाइट्रोजन का होना चाहिए। प्रति घण्टा चार से पाँच बार नाइट्रोजन के वातावरण को बदलने की आवश्यकता पड़ती है। इस काम के लिए विशेष चूल्हे बने हुए हैं।

वायु का चूषण कर दबाव को २ से २५ इंच पारद के दबाव पर रखें तो आक्सीकरण की संभावना बिलकुल नहीं रहती। ऐसी दशा में सुखाने में भी कम समय लगता है। न्यून दबाववाले चूल्हे में एक घण्टे में प्रयोग की समाप्ति हो सकती है। अन्य चूल्हों में अधिक समय लगता है।

वाष्पशील पदार्थ

वाष्पशील पदार्थ के निर्धारण में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) ताप का नियंत्रण सरल और यथार्थता से होना चाहिए।

(२) गरम और ठंडा करने के समय आक्सीकरण से बचाना चाहिए।

(३) जिस ताप पर निर्धारण करना है उस ताप पर सारा वाष्पशील पदार्थ पूर्ण रूप से निकल जाना चाहिए।

वाष्पशील पदार्थ के निर्धारण के लिए जो ताप प्रामाणिक ताप माना गया है वह ९२५° से० है।

इस निर्धारण के लिए जो विधि प्रयुक्त होती है उसे 'बोन और सिल्वर विधि' कहते हैं। इस विधि की विशेषता निम्नलिखित है—

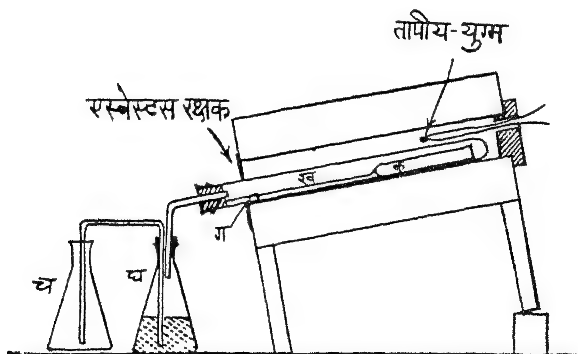
(१) कोयले को कोयला गैस के सम्पर्क में ही गरम और करते हैं। इससे आक्सीकरण का भय बिलकुल नहीं रहता।

(२) उपकरण ऐसा है कि वाष्पशील अंश का निष्कासन पूर्ण रूप से हो जाता है। उसकी मात्रा का ज्ञान भी सरलता से और यथार्थता से हो जाता है।

(३) जो कोयला चिटकता है उसके गरम करने की गति धीमी की जा सकती है ताकि चिटकने से परिणाम में कोई अन्तर न पड़े।

(४) यह विधि सब प्रकार के कोयले के लिए इस्तेमाल हो सकती है। वाष्पशील पदार्थ के कम होने से कोई हानि नहीं होती।

(५) इस विधि में कोयले का जो अवशेष बच जाता है उसकी मात्रा पर्याप्त रहती है। उससे कोयले की प्रकृति का स्पष्ट रूप से पता लग जाता है।



चित्र ६९—बोन और सिल्वर उपकरण

इस विधि का उपयोग ग्रेट ब्रिटेन में अधिकता से होता है पर अमेरिका में प्रयुक्त होनेवाली विधि इससे कुछ भिन्न है। अमेरिका में प्रयुक्त होनेवाली विधि को 'अमेरिकी विधि' अथवा 'मूषा विधि' कहते हैं। इसका वर्णन आगे होगा। जिस विधि

का यहाँ वर्णन किया जा रहा है उसमें जो उपकरण प्रयुक्त होता है उसे 'बोन और सिल्वर उपकरण' कहते हैं। उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।

निर्धारण की रीति

प्रायः १२ सेंटीमीटर लम्बी और १·५ सेंटीमीटर व्यास की एक छोटी सिलिका की नलिका 'क' रहती है। इस नलिका में महीन पिसे हुए वायु-शुष्क कोयले के प्रायः ५ ग्राम को बड़ी यथार्थता से तौलकर एक दूसरी बड़ी सिलिका नली में फिसला देते हैं। यह बड़ी नली 'ख' ३० सेंटीमीटर लम्बी और २·५ सेंटीमीटर व्यास की, एक ओर बन्द और दूसरी ओर खुली रहती है। नलिका का खुला छोर बड़ी नली के बन्द छोर की ओर रहता है। बड़ी नली के खुले छोर को काग 'ग' से बन्द कर उसमें एक छोटी निकास नली लगाकर उसे एक बोतल 'घ' में ले जाते हैं। बोतल में पानी रखा रहता है। एक सिलिका छड़ 'च' द्वारा नलिका को नली में फिसलने से रोकते हैं। बोतल को काग से बन्द कर देते हैं। काग में एक निकास नली और यू-नली जुड़ी रहती है। यू-नली का एक छोर एक रिक्त बोतल 'छ' के पेंदे में जाता है।

उपकरण को विद्युत्-भ्राष्ट्र अथवा अन्य किसी भ्राष्ट्र में गरम करते हैं। भ्राष्ट्र का ताप ९२५° से० उठाकर तब उसमें सिलिका नली डालते हैं। भ्राष्ट्र की लम्बाई २५ सेंटीमीटर से कम नहीं रहनी चाहिए। अपवारित भ्राष्ट्र अथवा नली भ्राष्ट्र प्रयुक्त हो सकता है। भ्राष्ट्र इतना बड़ा होना चाहिए कि दो या दो से अधिक नलियाँ उसमें रखी जा सकें। भ्राष्ट्र क्षितिज से ५ या १०° नत रखा जाता है ताकि कोयले से निकला अलकतरा बहकर बाह्य सिलिका के मुख पर चला आये और अभ्यन्तर नलिका के बाहर इकट्ठा होकर कोयला न बने।

उपकरण से स्थानान्तरित वायु और कोयले से निकली गैसें बोतल में आती हैं और पानी को बोतल से निकालकर पार्श्व में कर देती हैं। प्रायः ४० मिनट के बाद गैस का निकलना बन्द हो जाता है। जब गैस का निकलना बन्द हो जाय तब भ्राष्ट्र को ठंडा कर नली को निकालकर शोषित्र में ठंडा कर शीघ्रता से तौलते हैं। भार में जो कमी होती है उससे नमी की मात्रा निकालकर कोयले में वाष्पशील अंश की मात्रा मालूम करते हैं।

नली को बन्द करने के लिए रबर का काग अच्छा नहीं होता क्योंकि रबर गरम करने पर कोमल होकर मुख पर चिपक जाता है। छाल का काग अच्छा होता है। गरम करने से अधिक से अधिक वह झुलस जाता है। ऐसा काग सस्ता भी होता है।

यदि प्रयोग सावधानी से किया जाय तो दो प्रयोगों के परिणाम में ०·३ प्रतिशत से अधिक का अन्तर नहीं होता। साधारणतया अन्तर केवल ०·१ प्रतिशत का होता है। नली में जो कोयला बच जाता है उसका परीक्षण करते हैं। कोयला विभिन्न प्रकार का, सघन पिंड से लेकर सरलता से टूटनेवाला—दुर्बल हो सकता है।

इंगलैंड में जो रीति प्रामाणिक समझी जाती है वह इस प्रकार की है—

वायु-शुष्क कोयले के १ ग्राम को लेकर अपवारित भ्राष्ट्र में ९२५° से० की स्थिरता पर एक निश्चित विस्तार के पारभासक सिलिका की मूषा में ठीक ७ मिनट तक गरम करते हैं। इस रीति में तीन महत्त्व के सुधार हुए हैं। एक सुधार 'क' चिटकनेवाले कोयले के लिए अधिक उपयुक्त है। दूसरा सुधार 'ख' अंथ्रेसाइट और उच्च कोटि के कोक बननेवाले कोयले के लिए ठीक समझा जाता है और तीसरा सुधार 'ग' ऐसे कोयले के लिए अच्छा है जिसमें वाष्पशील पदार्थ १२ प्रतिशत तक रहता है।

(१) **भ्राष्ट्र**—भ्राष्ट्र को गैस या विद्युत् से गरम करते हैं। भ्राष्ट्र का ताप ९२५° से० पर स्थिर रहना चाहिए। भ्राष्ट्र में दो द्वार होते हैं। एक आगे और दूसरा पीछे। आगे का द्वार ऐसा रहता है कि वह आवश्यकता पड़ने पर बिलकुल बन्द किया जा सके। पीछे का द्वार साधारणतया बन्द ही रहता है। उसमें एक छोटी वाहनी (flue) लगी रहती है। भ्राष्ट्र का ताप ९२५° से० तक बढ़ाकर उसमें मूषा रखते हैं। मूषा रखने के समय तीन मिनट में ताप ९१०° से० तक पहुँच जाना चाहिए।

थर्मामीटर या तापीय युग्म—ताप के नापने के लिए तापीय युग्म का उपयोग होता है। तापीय युग्म एक मिलीमीटर मोटाई की धातु का बना होता है। भ्राष्ट्र में एक रिक्त मूषा को यथास्थान रखकर कुछ मिनट तक द्वार को बन्द कर उसके ताप का नियंत्रण कर लेते हैं। जब आवश्यक ताप प्राप्त हो जाता है तब कोयलावाली मूषा डालते हैं। भ्राष्ट्र के पिछले भाग के एक छोटे छेद से थर्मामीटर लगाते हैं। तापीय युग्म का जोड़ खुला नहीं रहना चाहिए, वह ढँका हुआ रहना चाहिए। एक प्रामाणिक तापीय युग्म से ढँके हुए तापीय युग्म की जाँच समय-समय पर कर लेनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो उसका संशोधन कर लेना चाहिए।

मूषा—मूषा पारभासक सिलिका की बेलनाकार होनी चाहिए। इसका ढक्कन भी रहना आवश्यक है। मूषा का आयाम इस प्रकार रहना चाहिए।

मूषा		ढक्कन	
ऊँचाई	३८ मिलीमीटर	अभ्यन्तर व्यास	२७ मिलीमीटर
बाह्य व्यास	२५ ,,	कूप का व्यास	२१ ,,
अभ्यन्तर व्यास	२२ ,,	कूप की गहराई	४ ,,

मूषा और ढक्कन का संयुक्त भार १२ से २४ ग्राम रहना चाहिए। मूषा एक स्तम्भ पर रखी जाती है।

प्रामाणिक कार्यप्रणाली

एक ग्राम कोयले को तौलकर मूषा में समान रूप से फैला देते हैं। ढक्कन से मूषा को ढँककर आधार पर रखते हैं। मूषा और ढक्कन को अब भ्राष्ट्र में रखते हैं जिसका ताप ९२५° से० रहता है। भ्राष्ट्र का द्वार बन्द कर देते हैं।

ठीक ७ मिनट के बाद मूषा को निकालकर लोहे के एक ठंडे पट्ट पर शीघ्र ठंडा होने के लिए रखते हैं। शीघ्रता इसलिए करते हैं कि कोयले का आक्सीकरण न हो। उष्ण मूषा को ही शोषित्र में रखकर ठंडी होने पर तुला पर तौलते हैं। तौल में जितनी कमी होती है उससे कमी की प्रतिशतता निकालते हैं। जल की प्रतिशतता निकाल लेने पर शेष प्रतिशतता वाष्पशील पदार्थ की है।

पहला 'क' सुधार—गरम करने के क्रम को नीचा करने के उद्देश्य से एस्बेस्टस मण्डल (डिस्क) २५ मिलीमीटर व्यास और १ मिलीमीटर गहराई पर रखकर मूषा को गरम करते हैं। मण्डल का उपयोग ही इसकी विशेषता है।

दूसरा 'ख' सुधार—कोक न बननेवाले कोयले के साथ कुछ कोक बननेवाला कोयला मिला देते हैं ताकि उससे सघन बटन बनकर चिटकने से कोयले की हानि न होने दे। कोक बननेवाले कोयले में लगभग २५ प्रतिशत वाष्पशील पदार्थ रहना चाहिए। यदि वाष्पशील पदार्थ इससे अधिक हो तो परिणाम में अधिक त्रुटि हो सकती है।

यहाँ ०·८ ग्राम परीक्षणवाले कोयले को ०·२ ग्राम कोक बननेवाले कोयले के साथ मिलाकर गरम करते हैं। कोक बननेवाले कोयले के वाष्पशील अंश की मात्रा का निर्धारण पहले कर लेते हैं।

यदि कोक बननेवाले कोयले में भार की कमी (नमी के साथ) 'क१' होती है और मिश्रित कोयले के भार में कमी 'क२' होती है तो परीक्षणवाले कोयले की वास्तविक कमी 'क' इस समीकरण से निकाली जाती है—

$$क = \frac{५क_२ - २क_१}{४}$$

इस 'क' से नमी की प्रतिशतता निकाल लेने से वास्तविक वाष्पशील पदार्थ की प्रतिशतता निकल आती है।

तीसरा 'ग' सुधार—१ ग्राम कोयले को ९२५° से० पर ७ मिनट तक नाइट्रोजन के प्रवाह में गरम करते हैं। ऐसे नाइट्रोजन को पहले लकड़ी के कोयले पर ९२५° से० पर प्रवाहित कर फिर क्षारीय पाइरोगैलोल के विलयन पर प्रवाहित कर आक्सिजन से मुक्त कर लेते हैं और अन्त में सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल पर प्रवाहित कर नाइट्रोजन को सुखा लेते हैं।

राख का निर्धारण

एक पोर्सीलेन अथवा सिलिका शराव लेते हैं। शराव प्रायः एक सेंटीमीटर गहरा और पाँच सेंटीमीटर व्यास का होना चाहिए। उसमें एक ग्राम के लगभग कोयले का महीन चूर्ण रखकर तौलते हैं। शराव को फिर ठंडे अपवारित भ्राष्ट्र में रखकर भ्राष्ट्र को गरम करके ३० मिनट में ४००–४५०° से० ताप तक पहुँचा देते हैं। इसी ताप पर ३० मिनट रखकर फिर एक घंटे तक ७७५°±२५° पर रखकर पूर्ण रूप से कोयले को जला लेते हैं। यदि दो भ्राष्ट्रों का इसके लिए उपयोग करें तो अच्छा है। दो भ्राष्ट्रों से जलना जल्दी समाप्त होता है और चिटकना भी कम होता है। यहाँ कुछ गन्धक यौगिक स्थायी यौगिक बनने के पूर्व विच्छेदित हो जाते हैं। इससे अस्थायी गन्धक की मात्रा स्थायी पायी जाती है।

यहाँ कई प्रयोगों को साथ-साथ करते हैं पर साधारणतया ६ प्रयोगों से अधिक नहीं करते। भ्राष्ट्र में वायु का प्रवेश स्वच्छन्दता से होने देते हैं। इसके लिए भ्राष्ट्र में छोटी वाहनी का प्रबन्ध रखते हैं। भ्राष्ट्र का अगला द्वार खिसकनेवाला होता है। कोयले के जलाने के समय द्वार को केवल $\frac{१}{४}$ इंच खुला रखते हैं। हवा का बहुत अधिक प्रवेश भी ठीक नहीं है क्योंकि हलकी राखें इससे उड़कर नष्ट हो सकती हैं।

भ्राष्ट्र से शराव निकालने के समय द्वार खोलने से पहले वाहनी को बन्द कर लेते हैं ताकि वायु के प्रवेश से राख उड़कर यांत्रिक रूप से निकल न जाय।

कोयला जलाने के समय शराव को ढँकना नहीं चाहिए। ढँकने से गन्धक स्वच्छन्दता से निकलता नहीं है। राख में मिलकर गन्धक की मात्रा इससे अनियमित हो जाती है।

यदि जलना पूर्ण न हो तो बार बार जलाना और तौलना चाहिए। जब भार स्थायी हो जाय तब जलाना बन्द कर देना चाहिए।

टिप्पणी—कोयले में जल की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। अतः जिस दिन कोयले में राख की मात्रा निकालनी हो उस दिन नमी की मात्रा का निर्धारण अवश्य कर लेना चाहिए।

प्राथमिक विश्लेषण के आँकड़ों को इस प्रकार अंकित करना चाहिए—

वैश्लेषिक रिपोर्ट

कोयले की क्रमसंख्या।

कोयले के नमूने का वर्णन। किस खान से कितने कोयले से नमूना निकाला गया है। खान से कोयला कब निकला है।

[झरिया खान से २००० टन कोयले से नमूना निकाला गया है। कोयला खान से जनवरी २ और जनवरी १४ के बीच निकाला गया था।]

नमूने की प्राप्ति का दिनांक। विश्लेषण का दिनांक।

जिस कोयले का विश्लेषण हुआ है उसमें नमी की मात्रा ६·४ प्रतिशत थी।

वायु-शुष्क कोयले का विश्लेषण

नमी	१·५ प्रतिशत
वाष्पशील पदार्थ (नमी छोड़कर)	२७·६ ,,
स्थायी कार्बन (अन्तर से)	५७·३ ,,
राख	१३·६ ,,
	१००·०० ,,
राख में गन्धक	०·१ ,,
दहनशील गन्धक	०·६ ,,
समस्त गन्धक	०·७ ,,

कलरीमान	
(क) वायु-शुष्क कोयले का	१२·६४० ब्रि० टि० यू० प्रति पाउण्ड
(ख) कोयले का, जैसा खान से आया	११·९३० ,, ,,
राख का रंग	हलका कपिल वर्ण
कोक के लक्षण	भूरे रंग का चमकीला।
	फूलनेवाला और रन्ध्ररहित
	कठोर और मजबूत

प्राथमिक विश्लेषण से भिन्न-भिन्न प्रकार के कोयले से जो आँकड़े प्राप्त होते हैं उनसे कोयले का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

प्राथमिक विश्लेषण से कोयले का वर्गीकरण

कोयला	खान से निकलने पर नमी की मात्रा	शुष्क राख रहित कोयले में ९००° से० पर वाष्पशील पदार्थ	कोक बनने का गुण	उपयोग
अंथ्रेसाइट	२ – ३	८ से कम	कोक बननेवाला	घरेलू ईंधन, भट्ठे और गैस उत्पादन में
अंथ्रेसाइटीय	३ – ६	८ – १६	,,	भाप और गैस उत्पादन में
अर्ध-बिटुमिनी	३ – ६	१५ – २०	कोक न बननेवाला अथवा मन्द कोक बननेवाला	भाप के उत्पादन में
कठोर कोक बननेवाला कोयला	३ – ६	१७ – ३०	घना कोक	धातु निर्माण में
गैस-कोयला	३ – ६	३० – ३६	प्रबल कोक	
गैस-कोयला	३ – १०	३५ – ४०	दुर्बल कोक	
भ्राष्ट्र-कोयला	५ – १५	४० – ४५	कोक न बननेवाला	घरेलू और परावर्तक भ्राष्ट्र में
ब्राउन कोयला और लिगनाइट	१५ – ६०	४५ के ऊपर	कोक न बननेवाला	

कोयले के पिंड बनने की क्षमता

प्रसमूहन-मान का निर्धारण

कार्बनीकरण से कैसा कोयला बनता है, इससे पता लगता है कि कोयला किस काम के लिए अधिक उपयुक्त है। कुछ कोयले के कार्बनीकरण से बहुत दुर्बल असम्बद्ध पिंड बनता है जो धातु के निर्माण के लिए ठीक नहीं है। जो कोयला प्रबल अरन्ध्र कोक बनता है वह बायलर में जलाने अथवा गैस-उत्पादन के लिए ठीक नहीं होता। इस कारण कोयले के पिंड बनने या प्रसमूहन-शक्ति या प्रसमूहन मान के निर्धारण की आवश्यकता पड़ती है।

पिंड बनने के गुण का निर्धारण अनेक रीतियों से हो सकता है। ब्रिटिश स्टैंडर्ड संस्था ने जिस रीति का समर्थन किया है वह यह है—

कोयले और बालू के विभिन्न मिश्रणों के २५ ग्राम को ९००° से० पर कार्बनीकृत करते हैं। इससे जो पिंड बनता है उस पर ५०० ग्राम भार रखकर देखते हैं कि वह इस भार को सहन कर सकता है या नहीं। यदि कर सकता है तो उससे ५ प्रतिशत से अधिक असम्बद्ध चूर्ण तो प्राप्त नहीं होता।

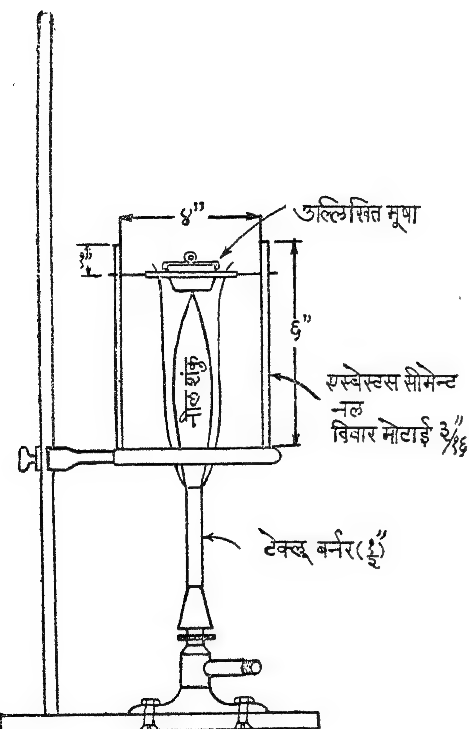
कोयले का गरम करना भ्राष्ट्र में होता है। भ्राष्ट्र का ताप ९००° $\pm$ १५° से० रहना चाहिए। भ्राष्ट्र का द्वार ठीक-ठीक व्यवस्थित रहना चाहिए। भ्राष्ट्र को गैस से अथवा बिजली से गरम करते हैं। भ्राष्ट्र ऐसा होता है कि ७ मिनट में उसका ताप ९००° से० तक पहुँच जाय। तापीय युग्म से भ्राष्ट्र का ताप नापते हैं। मूषा सिलिका की रहनी चाहिए। मूषा का आयाम ऐसा रहना चाहिए।

मूषा		ढक्कन
शिखर का अभ्यन्तर व्यास	३८ $\pm$ १· मि० मी०	अल्पतम चौड़ाई ४६ मि० मी०
पेंदे का बाह्य व्यास	२६ $\pm$ १ मि० मी०	महत्तम ,, ६० से ६२·५ ,,
ऊँचाई	४२ $\pm$ ०·७५ मि० मी०	मोटाई लगभग १·५ मि० मी०
वक्रता का व्यासार्ध (पेंदे के गोल किनारे में)	३·५ मि० मी०	ढक्कन के गुहा भाग का व्यास ३६ मि० मी०
		गुहा की गहराई ३ से ४ मि० मी०

ठोस रबर की डाट

व्यास, संकीर्ण छोर का	१ १/३ इंच
व्यास, चौड़े छोर का	१ ५/८ इंच
ऊँचाई	१ १/४ इंच

बालू—बालू शुद्ध सिलिका की होनी चाहिए। उसमें मिट्टी, चूना, पत्थर सदृश कोई अपद्रव्य मिला नहीं रहना चाहिए। इतनी महीन होनी चाहिए कि ५२-अक्षि ब्रिटिश प्रामाणिक चलनी में छन जाय पर ७२-अक्षि ब्रिटिश प्रामाणिक चलनी में न छने। इसमें बड़े-बड़े कण १५ प्रतिशत से अधिक और छोटे-छोटे कण प्रायः १० प्रतिशत से अधिक न रहें। ९२०° से० पर ३ घंटे गरम करने से कण टूट न जायँ। तप्त हलके हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में ०·५ प्रतिशत से अधिक घुलनी न चाहिए। इस काम के लिए विशेष प्रकार की बालू तैयार होती है। ऐसी ही विशिष्ट प्रकार से प्राप्त बालू का उपयोग करना चाहिए।



चित्र ७०—कोयले के फुलाव—प्रकृति निर्धारण का उपकरण

कार्य-प्रणाली

बालू और कोयले के तोलने के लिए एक तोलन-बोतल उपयुक्त होती है। ऐसी बोतल ३ इंच ऊँची और १ इंच व्यास की होती है। ऐसी बोतल में बालू और महीन पिसे कोयले के ठीक २५ ग्राम को रखकर तौलना चाहिए। बालू और कोयले को पूर्णतया एस्पैचुला से मिलाकर बोतल में रखना चाहिए। कोयले और बालू को फिर बोतल से लेकर मूषा में रखकर वहाँ भी भली-भाँति मिलाकर मूषा को ढक्कन

से ढँककर सिलिका त्रिकोण पर रखकर १ सेंटीमीटर ऊँचे एक स्तम्भ पर रखकर ९००$\pm$१५° से० तप्त भ्राष्ट्र में रखकर भ्राष्ट्र का द्वार बन्द कर देना चाहिए।

ठीक ७ मिनट तक भ्राष्ट्र में गरम कर स्तम्भ और मूषा को भ्राष्ट्र से हटाकर एस्बेस्टस के खत्ते पर रखकर कमरे के ताप तक ठंडा कर लेना चाहिए। ३० मिनट के बाद स्तम्भ से मूषा को हटाकर ढक्कन को उठा लेना चाहिए। अब मूषा में रबर की डाट को धीरे से ऐसा लगा देना चाहिए कि उसका संकीर्ण छोर कार्बनीकृत मिश्रण पर रहे। मूषा और डाट को सफेद काँचित कागज पर उलटकर चूर्ण को उस पर इकट्ठा करना चाहिए। अब मूषा को धीरे-धीरे ऊपर की सीध में उठाकर डाट से संबद्ध कार्बन के पिंड को डाट हटाकर अलग अलग बड़ी सावधानी से रखना चाहिए ताकि पिंड टूटे नहीं। अब पिंड पर ५०० ग्राम का भार बहुत धीरे-धीरे रखना चाहिए। यदि पिंड भार को सह ले तो डाट के ऊपर से चूर्ण को निकालकर भार से बने चूर्ण के साथ मिलाकर घटि-काँच पर तौलना चाहिए।

इसी प्रकार बालू और कोयले के अन्य मिश्रणों से बारी-बारी से प्रयोग कर देखना चाहिए कि किस मिश्रण से ऐसा पिंड प्राप्त होता है जो ५०० ग्राम भार को सहन कर सकता है और चूर्ण की मात्रा १·२ ग्राम से अधिक नहीं प्राप्त होती। कुछ मिश्रण ५०० ग्राम भार को सहन नहीं करते और कुछ मिश्रण १·२५ ग्राम से अधिक चूर्ण प्रदान करते हैं। यहाँ जो अनुपात न्यून होता है वही कोयले का प्रसमूहन-मान होता है।

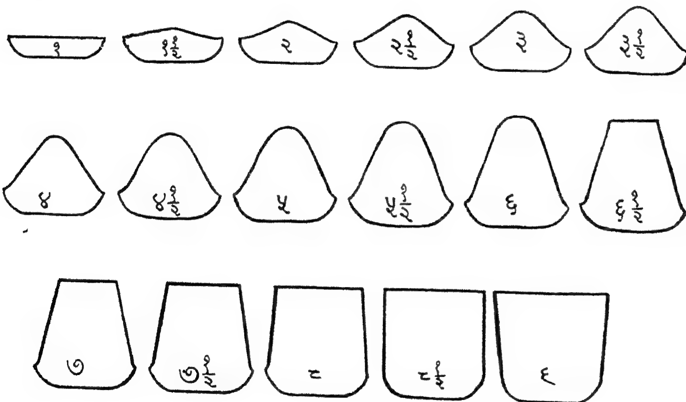
क्रमसंख्या	बालू का कोयले से अनुपात	चूर्ण	भार ग्राम में	प्रसमूहन मान
४६	१४	१·७	१०००	
	१६	२·०	१०००	
	१८	३·९	१०००	२१
	२०	३·९	१०००	
	२१	४·८	५००	
	२२	६·०	५००	
	२४	६·९	—	

कोयले की फुलावट सुप्रवृत्ति

कोयले के गरम करने पर वह फैलता है। कोयला कितना फैलता है इसका ज्ञान बहुत लाभकारी है। कोयले के इस प्रकार फूलने को 'फुलावट' कहते हैं। फुलावट के नापने के लिए जो परीक्षण होता है वह इस प्रकार का है—

उपकरण—(१) पारदर्शक सिलिका मूषा जिसका ढक्कन भी सिलिका का हो। मूषा ऐसी होनी चाहिए—

भार ११ से १२·७५ ग्राम
ऊँचाई २६ ± ०·५ मि० मी०
शिखर का व्यास ४१ ± ०·७५ मि० मी०
पेंदे का व्यास ११ मि० मी० से कम नहीं
धारिता लगभग १७ मिली
(२) त्रिकोण पारभासक सिलिका की
बाह्य व्यास ६ से ६·५ मि० मी०



चित्र ७१—फुलाव के प्रामाणिक बटन

यह त्रिकोण क्रोम-निकेल तार पर चढ़ा हुआ रहता है जिसके पार्श्व की लम्बाई ६३ से ६४ मि० मी० और अभ्यन्तर वृत्त का व्यास प्रायः ३२ मि० मी० होता है।

(३) टेक्लूबर्नर ½ इंच व्यास का

(४) वहति-वर्म—एस्बेस्टस सीमेंट नली का प्रायः ६ इंच लम्बा, ४ इंच अभ्य-

न्तर व्यास का और ४$\frac{3}{8}$ इंच बाह्य व्यास का होता है। एक छोर पर एक-एक इंच गहरी तीन दरारें होती हैं जिनमें सिलिका त्रिकोण का तार रखा जाता है।

टेक्लूबर्नर में गैस और वायु-प्रदाय ऐसा होता है कि ज्वाला प्रायः १२ इंच लम्बी हो।

मूषा, बर्नर, सिलिका त्रिकोण आदि को ऐसा व्यवस्थित रखते हैं कि मूषा का ताप १$\frac{1}{2}$ मिनट में ८००° $\pm$ १०° से० और २$\frac{1}{2}$ मिनट में ८२०° $\pm$ ५° से० पहुँच जाय।

परीक्षण रीति

वायु-शुष्क महीन पीसे हुए कोयले के १ ग्राम चूर्ण को मूषा में तौलकर १२ बार धीरे-धीरे बेंच पर थपथपाकर समतल कर लेते हैं। मूषा को ढक्कन से ढँककर सिलिका त्रिकोण पर रखकर वहृति-वर्म से सुरक्षित रखते हैं। अब गैस को जलाकर मूषा को २$\frac{1}{2}$ मिनट तक गरम करते हैं। मूषा को फिर ठंडा कर कोक के बटन को उससे निकालकर चित्र में दिये प्रामाणिक कोक के बटन के आकार से तुलना करते हैं। कोक के कई बटन तैयार कर उनसे तुलना करते हैं।

कोयले के रखे रहने से फुलाव की सुप्रवृत्ति बदल जाती है। अतः कोयला प्राप्त होते ही इस परीक्षण को कर लेना चाहिए। परीक्षण करने के ठीक पहले कोयले को पीसना चाहिए। रिपोर्ट में यह अवश्य लिखना चाहिए कि कब नमूना प्राप्त हुआ और कब उसका परीक्षण हुआ।

यदि बटन के स्थान में चूर्ण प्राप्त हो अथवा बटन का फुलाव न होता हो और बटन ५०० ग्राम के भार को सहन न कर सकता हो तो ऐसे कोयले को 'अनभि-पिंडन' (non-agglomerating) कोयला कहते हैं। यदि बटन बने और वह दृढ़ टुकड़ों में टूट जाय तो ऐसे कोयले को 'अभिपिंडन' (agglomerating) कोयला कहते हैं।

कोक का प्राथमिक विश्लेषण

नमी का निर्धारण

नमी का निर्धारण ठीक वैसा ही होता है जैसा कच्चे कोयले में नमी का निर्धारण होता है। अन्तर केवल यही है कि चूल्हे के वातावरण में नाइट्रोजन की आवश्यकता नहीं होती। वायु के वातावरण में भी प्रयोग हो सकता है, क्योंकि कोक १०५–११०° से० पर आक्सीकृत नहीं होता।

वाष्पशील पदार्थ का निर्धारण

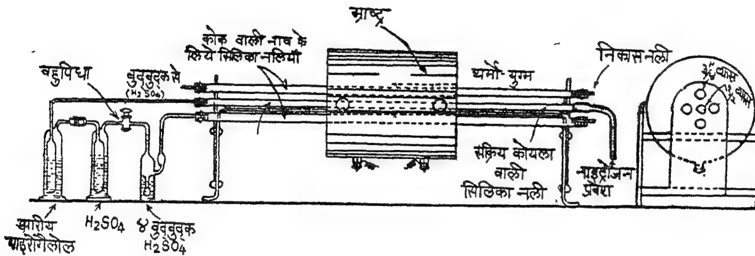
वाष्पशील पदार्थ के निर्धारण में भ्राष्ट्र का ताप ९५०° से० रहना चाहिए। चूंकि कोक में वाष्पशील पदार्थ कम रहता है और वह उपकरण से आक्सिजन के विस्थापन के लिए पर्याप्त नहीं होता, इस कारण कोक के गरम करने में नाइट्रोजन का वातावरण आवश्यक है।

अथवा

एक ग्राम कोक पर दो से चार बूंद बेंजीन को डालकर तब ताप को ९५०° से० उठाते हैं। बेंजीन का वाष्प वायु को विस्थापित कर कोक को आक्सीकरण से बचाता है।

अथवा

वाष्पशील पदार्थ का निर्धारण ऐसे उपकरण में करते हैं जिसमें साथ-साथ चार प्रयोग किये जा सकते हैं। यहाँ भ्राष्ट्र एक लम्बी नली १२ इंच की होती है जिसमें सिलिका की $\frac{3}{8}$ इंच व्यास की चार नलियाँ रखी जा सकें। केन्द्र की नली में सिलिंडर से नाइट्रोजन प्रविष्ट होता है। केन्द्र की नली में सक्रियित कार्बन रखा रहता है ताकि



चित्र ७२—वाष्पशील अंश के निर्धारण का उपकरण

आक्सिजन का अन्तिम अंश निकाला जा सके। नली के बाद दो धावन-बोतलें रहती हैं। एक में पाइरोगैलोल का क्षारीय विलयन और दूसरी में सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल रखा रहता है, ताकि आक्सिजन पूर्णतया निकल जाय और नाइट्रोजन सूख जाय। सलफ्यूरिक अम्ल से नाइट्रोजन के प्रवेश की गति का भी ज्ञान होता है।

कोयले के नमूने के एक ग्राम को पोर्सिलेन की नाव पर रखकर सिलिका नली में रख देते हैं। अब सिलिका नली को ६००° से० तक गरम करते हैं। यदि कोयला चिटकता हो तो ४००° से० तक ही गरम करना चाहिए। फिर ताप को ९५०° से० तक ऊपर उठाते हैं। ताप का यह उठना ४० मिनट में होना चाहिए। इस ताप पर

अब ठीक ७ मिनट रखते हैं। अब भ्राष्ट्र को हटाकर नाव को ठंडा होने देते हैं। नाइट्रोजन के प्रवाह की गति को अब बढ़ा देते हैं। पहले जहाँ प्रति सेकंड दो बुलबुले निकलते थे वहाँ अब तीन बुलबुले कर देते हैं। जब नाव ठंडी हो जाती है तब उसे शोषित्र में १० मिनट तक रखकर तौलते हैं। तौल में जो कमी होती है उससे वाष्पशील पदार्थ की प्रतिशतता निकालते हैं। वायु-शुष्क या शुष्क कोक में ही वाष्पशील पदार्थ का निर्धारण करते हैं।

अन्त्य विश्लेषण

कोयले के अन्त्य विश्लेषण में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, गन्धक और आक्सिजन की प्रतिशतता निकालते हैं।

कार्बन और हाइड्रोजन का निर्धारण

कार्बन और हाइड्रोजन का निर्धारण दहन रीति से होता है। इसमें कोयले को महीन पीसकर ज्ञात-भार को लेकर वायु या आक्सिजन के वातावरण में ताँबे के आक्साइड की उपस्थिति में जलाते हैं। दहन से कार्बन कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है और हाइड्रोजन जल। इन्हें इकट्ठा कर उनका भार मालूम करते हैं और उनसे कार्बन और हाइड्रोजन की प्रतिशतता निकालते हैं।

दहन के लिए जो उपकरण प्रयुक्त होता है वह वही है जो कार्बनिक रसायन में प्रयुक्त होता है। इस उपकरण का सविस्तर वर्णन किसी भी कार्बनिक रसायन की पुस्तक में मिल सकता है। अतः इसका सविस्तर वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

इस प्रयोग के लिए दहन-भ्राष्ट्र की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा भ्राष्ट्र बाजारों में रासायनिक उपकरणों की दूकानों पर बिकता है। गैस अथवा बिजली से भ्राष्ट्र गरम किया जाता है। कोयले को दहन-नली में रखते हैं। दहन-नली ताँबे के दानेदार आक्साइड से भरी रहती है, भ्राष्ट्र का ताप लगभग ८००° से० पहुँचना चाहिए।

हाइड्रोजन से बना जल का अवशोषण एक कैलसियम क्लोराइड यू-नली में होता है। कैलसियम क्लोराइड को १८०–२००° से० तक गरम करके पूरा अजल बना लेते हैं। इसे कार्बन डाइ-आक्साइड के प्रवाह से संतृप्त भी कर लेते हैं। वायु-प्रवाह द्वारा कार्बन डाइ-आक्साइड के आधिक्य को निकाल लेते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण एक विशेष प्रकार के अवशोषक पात्र—गीज़लर अवशोषक में करते हैं। इसमें दाहक पोटाश का ५० प्रतिशत विलयन रखा रहता है।

दहन पहले वायु के वातावरण में करते हैं। अन्त में १० से १५ मिनट के लिए आक्सिजन का वातावरण रखते हैं। इससे निश्चित हो जाता है कि दहन परिपूर्ण

हो गया है। यहाँ परीक्षण के लिए जो आक्सिजन तैयार करते हैं वह वैद्युत-विच्छेदन से प्राप्त नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ऐसे आक्सिजन में ०·५ प्रतिशत तक हाइड्रोजन रह सकता है। कैलसियम क्लोराइडवाली यू-नली और गीज़लर अवशोषक के भारों की वृद्धि से जल और कार्बन डाइ-आक्साइड बनने के भार का ज्ञान होता है।

परिणाम की यथार्थता

कोयले में कार्बोनेट रह सकता है। यह कार्बोनेट विच्छेदित होकर कार्बन डाइ-आक्साइड प्रदान करता है। यह कार्बन डाइ-आक्साइड भी दाहक पोटाश के विलयन में अवशोषित होकर वास्तविक कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा को बढ़ा देता है। एक प्रतिशत कैलसियम कार्बोनेट से ०·४४ प्रतिशत कार्बन डाइ-आक्साइड निकलता और उसमें ०·१२ प्रतिशत कार्बन रहता है। अतः प्रत्येक प्रतिशत कार्बोनेट के कारण कार्बन की प्रतिशतता ०·१२ से बढ़ जाती है। अतः परिणाम में संशोधन की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रयोग में जल की जो मात्रा प्राप्त होती है उसमें कोयले में हाइड्रोजन के अतिरिक्त कोयले का जल और कोयले में उपस्थित खनिज लवणों का जल भी रहता है। इससे वास्तविक हाइड्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। पर यह वृद्धि अधिक नहीं होती। फिर भी इस जल के कारण आक्सिजन की मात्रा में अवश्य पर्याप्त, कभी-कभी बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है।

नाइट्रोजन का निर्धारण

नाइट्रोजन की मात्रा निर्धारित करने में केल्डाल रीति का उपयोग होता है। इस रीति में कोयले के नाइट्रोजन को अमोनिया में परिणत करते हैं। अमोनिया को अमोनियम सल्फेट में बनाकर उसमें सामान्य रीति से नाइट्रोजन की मात्रा निर्धारित करते हैं।

कोयले के एक ग्राम महीन चूर्ण को केल्डाल फ्लास्क में रखते हैं। उसमें फिर ९ ग्राम पोटैसियम सल्फेट और ०·२ ग्राम सिलिनियम और ३० सी० सी० सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल रखकर दो घंटा उबालते हैं। फिर फ्लास्क को ठंडा कर एक लिटर-धारिता के गोल पेंदे के फ्लास्क में स्थानान्तरित कर पानी से धोकर आयतन २५० सी० सी० बना लेते हैं। उसमें फिर प्रबल दाहक सोडा का १३० सी० सी० विलयन डालते हैं। १०० सी० सी० विलयन में ४० ग्राम दाहक सोडा रहना चाहिए। फ्लास्क में अब पृथक्कारी निवाप और संघनित्र जोड़कर विलयन को उबालते हैं। वाष्प को $N/_{10}$ सलफ्यूरिक अम्ल के २० सी० सी० में ले जाते हैं। जब समस्त अमोनिया निकल

जाय तब बचे हुए सलफ्यूरिक अम्ल की मात्रा को $N/_{10}$ दाहक सोडा द्वारा अनुमापन से मालूम करते हैं। सूचक के रूप में मिथाइल औरेंज का उपयोग करते हैं।

यह सम्भव है कि जो प्रतिकारक प्रयुक्त हुए हैं उनमें किसी में नाइट्रोजन रहे। इसके लिए साथ-साथ एक रिक्त प्रयोग का भी करना अच्छा होता है।

समस्त गन्धक का निर्धारण

पोर्सीलेन अथवा प्लैटिनम की मूषा में महीन पीसा हुआ एक ग्राम कोयला तौलते हैं। उसमें फिर ३ ग्राम एश्का मिश्रण भली-भाँति मिला लेते हैं। ऊपर से एक ग्राम और एश्का मिश्रण से ढँक देते हैं। एश्का मिश्रण में दो भाग शुद्ध हलका निस्तप्त मैगनिशियम आक्साइड और एक भाग अजल सोडियम कार्बोनेट का रहता है। निस्तप्त मैगनिशियम आक्साइड के स्थान में शुद्ध चूना (CaO) भी इस्तेमाल हो सकता है। कैलसियम आक्साइड में साधारणतया सल्फेट का लेश रहता है। अतः ऐसे चूने का व्यवहार करना चाहिए जिसमें गन्धक न हो। लघु मैगनीशियम आक्सा-इड हलका होने के कारण कोयले के साथ भली भाँति मिल जाता है।

विना ढँकी मूषा को अब एक से दो घण्टा धीरे-धीरे गरम करते हैं। इससे वाष्प-शील पदार्थों का निष्कासन धीरे-धीरे होता है। फिर ताप को क्रमशः बढ़ाकर रक्त ताप करते हैं। कोयले का भस्मीकरण पूरा हो जाय इसके लिए मिश्रण को समय-समय पर प्लैटिनम अथवा निकेल के मजबूत तार से उटकेरते रहते हैं। कोयले के काले कण जब बिलकुल लुप्त हो जायँ तब भस्मीकरण बन्द कर देते हैं।

मूषा का गरम करना अपवारित (muffle) भ्राष्ट्र में अच्छा होता है। गैस से गरम करने में गैस के गन्धक से दूषित हो जाने का भय रहता है। यदि अप-वारित भ्राष्ट्र प्राप्य न हो तो स्पिरिट लम्प से अथवा गैस-तप्त भ्राष्ट्र से, जिसमें गैस मूषा के सम्पर्क में न आती हो, गरम कर सकते हैं।

भस्मीकरण के पूरा होने पर जब कोयले के कण मूषा में देख न पड़ें तो मूषा को ठंडा कर मिश्रण को बीकर में स्थानान्तरित कर मूषा को उष्ण जल से धोकर और जल डालकर १५० सी० सी० बना लेना चाहिए।

अब उसमें १० सी० सी० ब्रोमीन जल डालकर आधा घंटा जल-ऊष्मक पर गरम करना चाहिए। इससे गन्धक का पूर्णतया आक्सीकरण हो जाता है। गन्धक सोडियम और पोटैसियम के सल्फ़ेट में परिणत हो जाता है।

पर्याप्त हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर ठोस को घुला लेते हैं। उबालकर ब्रोमीन के आधिक्य को निकालकर छान लेते हैं। छनित को उबालकर अमोनियम हाइड्रा-

क्साइड से प्रायः उदासीन बना लेते हैं। (२ या ३ बूँद मिथाइल औरेंज सूचक के रूप में डालते हैं)। फिर सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का २ सी० सी० डालकर उबालते और उबलते विलयन में ही १० प्रतिशत बेरियम क्लोराइड के विलयन का १० सी० सी० धीरे-धीरे डालकर १५ मिनट और उबालते हैं। अब बीकर को कम से कम ४ घण्टा छोड़ देते हैं। उसके वाद छन्ना कागज़ पर (इसके लिए वाटमैन नं० ४० कागज़ अच्छा होता है) अथवा गूच मूषा में अवक्षेप को स्थानान्तरित कर उष्ण जल से धोते हैं। जब धोवन में सिलवर नाइट्रेट के विलयन से कोई दुग्धाभ न बने तो धोना बन्द कर छन्ना कागज़ और अवक्षेप को सुखाकर जलाकर भस्मीभूत करते हैं। अवशेष को एक बूँद सलफ्यूरिक अम्ल से भिगोकर फिर उत्तप्त कर ठंडा कर तौलते हैं। बेरियम सल्फेट के भार को ०·१३७४ से गुणा करने से गन्धक की मात्रा (भार में) प्राप्त होती है।

एश्का मिश्रण के साथ एक रिक्त प्रयोग भी करना चाहिए और उससे जो बेरियम सल्फेट आये उसे ऊपर प्रयोग से प्राप्त बेरियम सल्फेट के भार से घटा लेना चाहिए। सिम्पकिन और जोन्स (Simpkin and Jones) का मत है कि एश्का विधि उसी दशा में विश्वसनीय है जब गन्धक की मात्रा दो प्रतिशत से अधिक रहे।

बमविधि

बमविधि में कलरीमान के साथ-साथ गन्धक की मात्रा भी निर्धारित होती है। इससे समय, उपकरण और सामानों की बचत होती है।

कलरीमान के निर्धारण के बाद बम कलरीमापी को कम से कम ३० मिनट तक छोड़ देते हैं। इससे अम्लों के फुहारे बैठ जाते हैं। संपीड़ित गैस को केवल ४ मिनटों के लिए निकलने देते हैं। अब बम कलरीमापी को खोलते हैं और ढक्कन, निकास-कपाट, बम के अभ्यन्तर भाग और मूषा को आसुत जल से पूर्ण रूप से धो लेते हैं। धोवन को एक बीकर में रखकर फिर उसे विलयन में मिला देते हैं जिसमें गैस धोयी गयी है। राख में कुछ गन्धक रह जाता है। यह गन्धक नष्ट हो सकता है। यदि इसे नष्ट होने से बचाना अभीष्ट हो तो राख को सोडियम कार्बोनेट के साथ द्रवित कर हलके हाइड्रोक्लोरिक से निष्कर्ष निकालकर बम कलरीमापी के धोवन में मिला देते हैं।

सब धोवन को इकट्ठा कर उसमें २ सी० सी० ब्रोमीन जल डालकर २ सी० सी० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाकर उबालते और छानते हैं। छन्ने कागज़ पर जो अवशेष बच जाता है उसे उबलते जल से धो लेते हैं। अब विलयन को २५० सी० सी०

में बनाकर उसमें पूर्व की भाँति बेरियम सल्फ़ेट के रूप में गन्धक को अवक्षिप्त कर गन्धक की मात्रा निकालते हैं।

इस प्रकार से प्राप्त आँकड़े यथार्थ हों इसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना बहुत जरूरी है—

(१) बम कलरीमापी ऐसा रहना चाहिए कि उसमें सीस का कोई आस्तर न रहे। सीस के रहने से लेड सल्फ़ेट बन सकता है जो कठिनता पैदा कर सकता है।

(२) बम कलरीमापी का आस्तर ऐसा रहना चाहिए कि वह खनिज अम्लों से आक्रान्त न हो।

(३) बम को भरने और खाली करने के लिए अलग-अलग दो कपाट रहने चाहिए।

गन्धक का वितरण

कोयले का गन्धक तीन रूपों में रह सकता है—

(१) कुछ गन्धक तो सल्फेट के रूप में रह सकता है। कैलसियम का सल्फेट जिप्सम ($CaSO_4$, $2H_2O$) के रूप में रहता है। लोहे का सल्फेट, फेरस सल्फेट ($FeSO_4$, $7H_2O$) भी कभी-कभी पाया जाता है।

(२) कुछ गन्धक सल्फ़ाइड के रूप में रहता है। लौह माक्षिक, $Fe\ S_2$ साधारणतया कोयले में पाया जाता है।

(३) कुछ गन्धक कार्बनिक यौगिक के रूप में पाया जाता है।

सल्फ़ेट की मात्रा साधारणतया कम रहती है। ०·१ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। सल्फ़ाइड की मात्रा ०·२ से ३ प्रतिशत अथवा इससे अधिक भी रह सकती है। कार्बनिक यौगिकों के रूप में किसी नमूने में गन्धक की मात्रा कम और किसी में अधिक रहती है।

कोयले की सफ़ाई से सल्फाइड गन्धक की मात्रा कम की जा सकती है। पर सल्फेट गन्धक की मात्रा का कम होना कुछ कठिन है। कारण जिप्सम कोयले के साथ बहुत दृढ़ता से चिपका रहता है, इस कारण सफ़ाई से वह नहीं निकलता। सफ़ाई से कार्बनिक गन्धक की मात्रा में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि ऐसा गन्धक कोयले का एक आवश्यक अंग होता है। किस रूप में कोयले में गन्धक उपस्थित हैं, इसका ज्ञान होना आवश्यक है।

कोयले में समस्त गन्धक की मात्रा निर्धारित करने की रीति ऊपर दी हुई है। यदि हमें खनिज गन्धक की मात्रा मालूम हो जाय तब अन्तर से हम कार्बनिक गन्धक

की मात्रा निकाल सकते हैं। खनिज गन्धक की मात्रा निकालने के लिए हमें सल्फ़ेट और सल्फाइड के गन्धक की मात्रा अलग-अलग निर्धारित करनी पड़ती है।

सल्फेट गन्धक

सल्फ़ेट गन्धक की मात्रा निर्धारित करने के लिए पौवेल (A. R. Powel) और पार्र (S. W. Parr) की सुधारित रीति प्रयुक्त होती है। इस रीति में कोयले को ऐसा पीसते हैं कि वह १२०-अक्षि चलनी में छन जाय।

कोयले के इस महीन चूर्ण के ५ ग्राम में तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (२०० सी० सी०) डालकर डाटवाले ५०० सी० सी० धारिता के शंक्वाकार फ्लास्क में हिलाते हैं ताकि कोयला इसमें भीग जाय। (३ सी० सी० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को आसुत जल द्वारा १०० सी० सी० में बनाने से तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल प्राप्त होता है।)

फ्लास्क के पार्श्व में चिपके कोयले के कणों को तनु अम्ल से बहाकर फ्लास्क के पेंदे में करके लगभग ६०° से० पर ४० घंटे पकाते हैं। बीच-बीच में फ्लास्क को हिलाकर मिला लेते हैं। ४० घंटे के बाद द्रव को गूच मूषा में छानते हैं। गूच मूषा में एस्बेस्टस की गद्दी बैठाकर तनु हाइड्रोक्लोरिक और तनु नाइट्रिक अम्ल से धो लेते हैं। फ्लास्क में जो कुछ बच जाता है उसे मूषा में स्थानान्तरित कर थोड़े-थोड़े आसुत जल से दो तीन बार धो लेते हैं। मूषा में अब जो अवशेष बच जाता है उसे माक्षिक गन्धक के निर्धारण के लिए रख देते हैं।

छनित को अब ब्रोमीन जल (२ सी० सी०) से उपचारित कर क्वथनांक तक गरम करके अमोनियम हाइड्रॉक्साइड का अल्प आधिक्य सावधानी से डालते हैं। कुछ मिनटों के बाद फेरिक हाइड्राक्साइड के अवक्षेप को छन्ना कागज पर छान लेते हैं। काँच में जो अवक्षेप चिपका हो उसको निकाल लेना आवश्यक नहीं है। अवक्षेप को आसुत जल की अल्प मात्रा से तीन बार धो लेते हैं। आसुत जल में अमोनियम हाइड्रॉक्साइड और अमोनियम क्लोराइड का लेश डाला रहता है।

छनित को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अल्प अम्लीय बनाकर बेरियम सल्फ़ेट में अवक्षिप्त कर गन्धक की मात्रा का निर्धारण करते हैं।

माक्षिक गन्धक

कोयले के नमूने (५ ग्राम) को तनु नाइट्रिक अम्ल (३०० सी० सी०) में घुलाते हैं। (१·४२ घनत्व के नाइट्रिक अम्ल के १ आयतन को जल के ३ आयतन में घुलाकर तनु अम्ल तैयार करते हैं।) ५०० सी० सी० की धारिता के शंक्वाकार फ्लास्क में

मिश्रण को रखकर ब्रोमीन जल (१० सी० सी०) डालकर २४ घंटा रख देते हैं। बीच-बीच में उसे हिलाते रहते हैं।

कागज़ पर अथवा एस्बेस्टस पर द्रव को अब छानते हैं। अवशेष को ठंडे अल्प आसुत जल से धो लेते हैं। छनित को क्वथनांक तक गरम करके अमोनियम हाइड्रॉक्साइड के अल्प आधिक्य से लोहे को हाइड्राक्साइड के रूप में अवक्षिप्त कर लेते हैं। द्रव को प्रक्षुब्ध कर एक या दो मिनट उबालकर रख देते हैं। इससे अवक्षेप नीचे बैठ जाता है। अवक्षेप को अब कागज़ पर छान लेते हैं। छन्ने की नोक में एक सूराख करके बीकर के अवक्षेप को धोकर बहा लेते हैं। महीन जेट से अल्प से अल्प जल प्रयुक्त करना चाहिए। छन्ने कागज को क्वथनांक तक तप्त तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (५ सी० सी०) से प्रक्षालित कर लेना चाहिए। कागज़ को फिर पर्याप्त जल से प्रक्षालित कर पीले दाग़ को दूर कर प्लैटिनम-मूषा में निस्तप्त करते हैं। भस्म को बीकर के अवक्षेप में डाल देते हैं। अवक्षेप में सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (१० सी० सी०) डालकर क्वथनांक तक पकाते हैं। इससे समस्त फेरिक हाइड्रॉक्साइड घुल जाता है। अब उबलते जल (२०० सी० सी०) से तनु बनाकर अवक्षेप प्राप्त करते हैं। अवक्षेप नाइट्रेट से बिलकुल मुक्त हो जाय इसके लिए आवश्यक है कि अवक्षेप को एक बार फिर घुलाकर अवक्षिप्त करें। फिर टाइटेनस सल्फेट के अनुमापन से लोहे की मात्रा निर्धारित करते हैं।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से निष्कर्ष निकाल लेने के बाद जो अंश बच जाता है उसका यदि नाइट्रिक अम्ल से फिर निष्कर्ष निकालें तो इससे जो लोहा प्राप्त होगा वह लौह माक्षिक का लोहा होगा। माक्षिक गन्धक की प्रतिशतता माक्षिक लोहे की प्रतिशतता के १·१५ के गुणा करने से प्राप्त होती है।

माक्षिक गन्धक की मात्रा का निर्धारण

माक्षिक गन्धक का निर्धारण प्रत्यक्ष रीति से भी हो सकता है। यहाँ माक्षिक गन्धक को नवजात हाइड्रोजन के अवकरण से हाइड्रोजन सल्फ़ाइड में परिणत करते हैं और तब उसे कैडियम सल्फ़ाइड में परिणत कर प्रामाणिक आयोडीन के विलयन से अनुमापन करते हैं।

आक्सिजन का निर्धारण

आक्सिजन की मात्रा के निर्धारण की कोई सन्तोषप्रद प्रत्यक्ष रीति नहीं है। पहले अन्य सब तत्त्वों की प्रतिशतता निकालते हैं। उन्हें जोड़कर देखते हैं कि उनका जोड़ १०० होता है अथवा नहीं। यदि प्रतिशतता १०० नहीं होती तो १०० से जो

कमी रह जाती है उसी कमी को आक्सिजन की प्रतिशतता मानते हैं। आक्सिजन की यह प्रतिशतता यथार्थ नहीं हो सकती। अन्य सब तत्त्वों के निर्धारण में जो त्रुटियाँ रहती हैं वह सब आक्सिजन में आ जाती हैं। कुछ नमूनों में यह त्रुटियाँ पर्याप्त हो सकती हैं। इस कारण आक्सिजन की प्रतिशतता यथार्थ नहीं मानी जा सकती।

कोक का अन्त्य विश्लेषण

कोक में विभिन्न तत्त्वों का निर्धारण ठीक उसी प्रकार होता है जैसे कच्चे कोयले में होता है।

'स्थायी' और 'वाष्पशील' गन्धक

कोयले के जलाने पर राख में जो गन्धक रह जाता है उसे 'स्थायी' गन्धक कहते हैं। समस्त गन्धक और स्थायी गन्धक के अन्तर को 'वाष्पशील' गन्धक कहते हैं।

स्थायी गन्धक के निर्धारण के लिए इतने कोयले को जलाते हैं कि उससे ०·२ से ०·३ ग्राम राख प्राप्त हो जाय। राख को बीकर में रखकर उसमें ९० सी० सी० आसुत जल, ५ सी० सी० ब्रोमीन जल और १० सी० सी० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर प्रायः एक घंटा क्वथनांक पर पकाते हैं। बीकर को घटि-काँच से ढके रखते हैं। अब द्रव को छानकर अवशेष को उष्ण आसुत जल से पूर्णतया धो लेते हैं। अवशेष को सुरक्षित रखते हैं।

छनित को अमोनियम हाइड्राक्साइड से उदासीन बनाकर २ सी० सी० हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालकर पूर्व की भाँति गन्धक को बेरियम सल्फ़ेट में परिणत कर गन्धक की मात्रा का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

यदि गन्धक की मात्रा ०·०१ ग्राम से अधिक हो तो अवशेष में कुछ गन्धक रह सकता है। ऐसी दशा में अवशेष को सोडियम कार्बोनेट के सहयोग से द्रवित कर उत्तप्त करते हैं और द्रवित पुंज को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलाकर उसमें गन्धक की मात्रा निर्धारित करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त गन्धक को पहले से प्राप्त गन्धक की मात्रा में जोड़ देते हैं।

यदि अवशेष को द्रवित करना पड़े तो एक रिक्त प्रयोग भी साथ-साथ करते हैं। इससे प्रतिकार को और गैस के कारण गन्धक के प्रवेश से जो त्रुटि होती है उसका परिहार हो जाता है।

आर्सेनिक

कोयले और कोक में अल्प मात्रा में आर्सेनिक रहता है। साधारणतया दस लाख भाग में कुछ भाग ही आर्सेनिक का रहता है। किसी-किसी नमूने में अधिक भी रह

सकता है। दस लाख भाग में दो हजार भाग तक पाया गया है। आर्सेनिक बहुत विषैला होता है। कोयले के दहन के उत्पाद से खाद्य-पदार्थ में मिलकर यह उसे विषैला बना सकता है। इस कारण कोयले में आर्सेनिक की उपस्थिति का ज्ञान महत्त्व का है।

कोयले के जलाने पर कुछ आर्सेनिक उड़कर निकल जाता और कुछ राख में रह जाता है। गन्धक के सदृश इस प्रकार आर्सेनिक में भी 'स्थायी' और 'वाष्पशील' अंश होते हैं।

आर्सेनिक के निर्धारण की ब्रिटिश प्रामाणिक रीति

इस रीति में निम्नलिखित पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है—

(१) **लेड एसिटेट कागज**—लेड एसिटेट के एक प्रतिशत विलयन में छन्ना कागज़ को डुबाकर सुखाने और ७·५ सेंटीमीटर के टुकड़ों में काटने से यह कागज़ प्राप्त होता है।

(२) **परीक्षण मण्डल**—स्याहीसोख कागज़ को शुद्ध मकर्यूरिक क्लोराइड के एक प्रतिशत विलयन में डुबाकर अजल कैलसियम क्लोराइड पर अन्धकार में सुखाने से यह कागज़ प्राप्त होता है। कागज़ को १४ से १५ मिलीमीटर के मण्डल में काट-कर अजल कैलसियम क्लोराइड पर अन्धकार में रखते हैं।

सलफ्यूरिक अम्ल—सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·८) और तनु सल-फ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·२ और १·०१)।

लौह फिटकरी विलयन—१० ग्राम सोडियम क्लोराइड को सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·२) में घुलाया जाता है। ८४ ग्राम फेरिक अमोनियम ऐलम को ऐसे आसुत जल में घुलाया जाता है जिसमें ऊपर का १० सी० सी० विलयन डाला हुआ है। विलयन को फिर एक लिटर में बना लेते हैं।

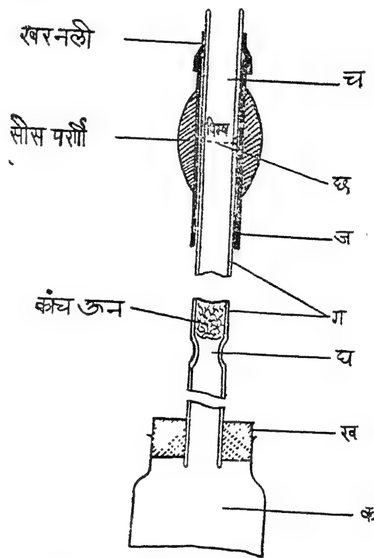
स्टेनस् क्लोराइड विलयन—आर्सेनिक-मुक्त ८० ग्राम स्टेनस् क्लोराइड को ऐसे आसुत जल के १०० सी० सी० में घुलाते हैं जिसमें सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का ५ सी० सी० डाला हुआ है।

प्रामाणिक परीक्षण मण्डल—शुद्ध आर्सिनियस आक्साइड के एक ग्राम को सोडियम हाइड्रॉक्साइड (वि० भा० १·२) के २५ सी० सी० में घुलाकर विलयन को तनु सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·२) से उदासीन बनाकर तनु सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·०१) का विलयन डालकर उसे एक लिटर में बनाते हैं। ऐसे विलयन के १० सी० सी० को तनु सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·०१) से एक लिटर में बनाते

हैं। इसे विलयन नं० १ कहते हैं। इसके प्रति सी० सी० में ०·१ मिलीग्राम AS_2O_3 रहता है।

विलयन नं० १ के १०० सी० सी० को लेकर तनु सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १·०१) डालकर फिर एक लिटर में बनाते हैं। इस विलयन को विलयन नं० २ कहते हैं। इसके प्रति सी० सी० में ०·००१ मिलिग्राम AS_2O_3 रहता है।

उपकरण—एक चौड़े मुँह की बोतल 'क' ली जाती है। इस बोतल में रबर का काग 'ख' लगा रहता है। इस काग में काँच की एक नली 'ग' लगी रहती है। इस काँचनली का अभ्यन्तर व्यास १० मि० मी० का और बाह्य व्यास १४ से १५ मि० मी० का और लम्बाई १८० मि० मी० रहती है। नीचे के छोर से ७० मि० मी० की दूरी पर एक संकुचन 'घ' रहता है जहाँ नली का बाह्य व्यास कुछ कम, १० मि० मी० का रहता है। संकुचन के ऊपर काँच-ऊन रखा रहता है। काँच-ऊन लेड एसिटेट के (१ प्रतिशत) विलयन से भिंगाया रहता है। काँच-ऊन के नीचे लेड एसिटेट कागज़ का एक गोलक (roll) रखा रहता है जिस पर काँच-ऊन आधारित होता है। काँचनली के ऊपर एक दूसरी काँच-नली 'च' रहती है जिसका व्यास 'ग' नली के व्यास के बराबर ही रहता है। इन दोनों नलियों के बीच परीक्षण कागज का मण्डल 'छ' रखा रहता है। नलियों का छोर ऐसा घिसा रहता है कि एक के ऊपर दूसरा ठीक-ठीक बैठ जाय। ऊपर की नली नीचे की नली से एक दूसरी 'ज' नली के द्वारा रबर से बँधी रहती है।



चित्र ७३—आर्सेनिक निर्धारण का उपकरण

प्रतिक्रिया बोतल से निकली सारी गैसें परीक्षण-पत्र 'छ' के द्वारा पारित होती हैं। बाह्य नली 'ज' को १५० ग्राम सीस के पर्ण से भरे रखते हैं।

कार्यप्रणाली—सूखे कोयले को महीन पीसकर १ से २ ग्राम लेकर चिपटे पेंदे की सिलिका प्याली में रखकर महीन चूर्णित गुरु मैगनीशियम आक्साइड के साथ भली भाँति मिलाते हैं। मिश्रण को आर्सेनिक-रहित चूना-पानी के २ से ३ सी० सी०

से भिगोकर अपवारित भ्राष्ट्र में पहले धीरे-धीरे और पीछे ताप को धीरे-धीरे ६५०—७००° से० बढ़ाकर तब तक गरम करते हैं जब तक समस्त काले कण पूर्ण रूप से लुप्त न हो जायँ। अब कोयला पूर्ण रूप से आक्सीकृत हो गया है।

ऐसे भस्मीकृत अवशेष को प्रतिक्रिया बोतल 'क' में स्थानान्तरित कर उसमें तनु सलफ्यूरिक अम्ल (वि० भा० १'२) डालकर उदासीन बना लेते हैं। सूचक के रूप में मिथाइल औरेंज का २ से ३ बूंद और सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल का ३ से ४ सी० सी० इस्तेमाल करते हैं।

लोहे के ऐलम के विलयन (२ सी० सी०) में स्टेनस् क्लोराइड का विलयन डालकर अवकृत करते हैं। इस मिश्रण को फिर प्रतिक्रिया बोतल में रखकर आसुत जल से ५० सी० सी० में बना लेते हैं। आर्सेनिक मुक्त जस्ते की गोली (१/३ से १/६ अक्षि) के १० ग्राम को डालकर शीघ्रता से काग लगाकर रख देते हैं। सावधानी रखते हैं कि मण्डल स्थान से हट न जाय। एक घंटे तक प्रतिक्रिया होने देते हैं। इस समय प्रतिक्रिया बोतल को जल-ऊष्मक पर ४० से ५०° से० तक गरम रखते हैं। परीक्षण कागज़ के मण्डल को हटाकर अँधेरे में कैलसियम क्लोराइड के ऊपर एक छोटी पतली दीवारवाली नली में रखते हैं। नली को रबर-काग से ठीक-ठीक बन्द कर देते हैं। ऐसे मण्डल की प्रामाणिक मण्डल से तुलना कर आर्सेनिक की मात्रा निर्धारित करते हैं।

इस विधि में कुछ लोगों ने सुधार का सुझाव रखा है। एक सुझाव है लेड एसिटेट कागज के स्थान में लेड एसिटेट विलयन से भींगा हुआ काँच-ऊन का उपयोग। दूसरा सुझाव है ६० सी० सी० बोतल के स्थान में २०० सी० सी० बोतल का उपयोग। एक तीसरा सुझाव है कि यदि आर्सेनिक की मात्रा बड़ी अल्प हो तो नली का व्यास आधा किया जा सकता है।

रंग की तुलना के लिए प्रामाणिक मण्डल प्रति मास तैयार करना चाहिए। ऐसा मण्डल स्याहीसोख कागज़ का होता है। ऐसिटोन में मरक्यूरिक क्लोराइड के १ प्रतिशत विलयन में कागज़ को डुबोकर और सुखाकर बनाते हैं।

एक रिक्त प्रयोग भी साथ-साथ करना चाहिए।

एक दूसरी विधि

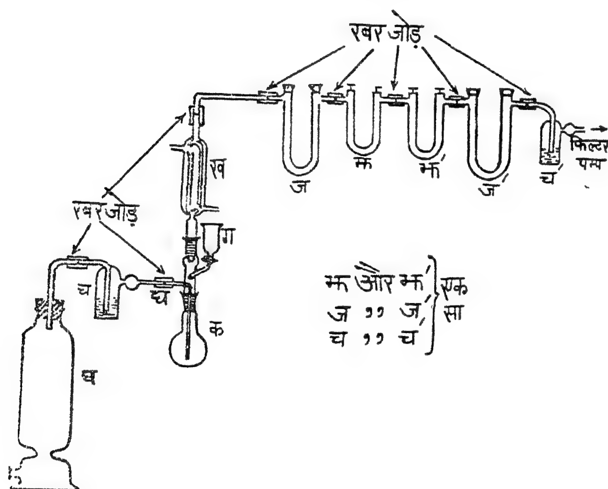
फ्युएल रिसर्च बोर्ड ने एक दूसरी रीति का उपयोग किया है। इस रीति में कोयले को मैगनीशियम आक्साइड (१० भाग), सोडियम कार्बोनेट (५ भाग) और पोटैसियम नाइट्रेट (३ भाग) के साथ भस्मीभूत करते हैं। यहाँ मरक्यूरिक

क्लोराइड कागज़ के मण्डल पर दाग की तीव्रता की तुलना करने के स्थान में प्रामाणिक मरक्यूरिक ब्रोमाइड कागज़ पर दाग़ बनने की लम्बाई से तुलना करते हैं।

कार्बन डाइ-आक्साइड का निर्धारण

किसी-किसी कोयले में पर्याप्त कार्बोनेट रहता है। यदि इस कार्बोनेट के कार्बन डाइ-आक्साइड का ज्ञान नहीं हो तो कार्बन के दहन से कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा ठीक-ठीक नहीं मालूम हो सकती। अतः यह जरूरी है कि कोयले के कार्बोनेट की मात्रा ठीक-ठीक मालूम हो जाय, ताकि इस मात्रा को निकालकर तब दहन से प्राप्त अंक से कार्बन से बने कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा ठीक-ठीक मालूम हो सके।

कार्बोनेट से निकले कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा के मालूम करने में जो उपकरण प्रयुक्त होता है उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है।



चित्र ७४—कार्बन डाइ-आक्साइड के निर्धारण का उपकरण

यहाँ एक फ्लास्क 'क' रहता है। इसकी धारिता ५०० सी० सी० रहती है। इसमें दो तलवाला एक संघनित्र 'ख' और एक बिन्दुपाती कीप 'ग' जुड़ी रहती है। वायु प्रवेश के लिए एक नली 'घ' रहती है। यह फ्लास्क के पेंदे तक जाती है। उपकरण के सब भाग प्रामाणिक घिसे हुए काँच के जोड़ों से जुटे रहते हैं। फ्लास्क के स्थान में चौड़ी गर्दनवाला फ्लास्क प्रयुक्त हो सकता है। समें तीन छेदवाला रबर

का काग रहता है। उपकरण में एक मीनार 'घ' होती है, जिसमें सोडा लाइम भरा रहता है। सोडा लाइम से फ्लास्क में प्रवेश करनेवाली वायु का कार्बन डाइ-आक्साइड निकाला जाता है। फ्लास्क और मीनार के बीच एक छोटा मार्जक 'च' रहता है। मार्जक में सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल रखा जाता है। इससे वायु-प्रवेश की गति जानी जाती है। फ्लास्क से गैस निकलकर दो तलवाले संघनित्र में जाती है जहाँ गैस का अधिकांश जल-वाष्प संघनित हो जाता है। वहाँ से गैस ४ यू-नलियों में होकर पारित होती है। प्रारम्भ और अन्त की दो यू-नलियों 'ज', 'ज'' में कार्बन डाइ-आक्साइड से संतृप्त कैलसियम क्लोराइड रखा रहता है। बीच की दो नलियों 'झ' और 'झ'' में सोडा लाइम रखा रहता है। इन दो नलियों में कार्बन डाइ-आक्साइड का अवशोषण होता है। सोडा लाइम में कोई सूचक भी रखा रहता है। इन दोनों नलियों को प्रयोग के पूर्व और पश्चात् तौलते हैं। इन यू-नलियों का पानी उड़कर निकल न जाय इससे नलियों की प्रत्येक भुजा के ऊपर आधा इंच मोटा कैलसियम क्लोराइड का स्तर रखा रहता है। यू-नलियों के बाद एक छोटी बोतल और लगी रहती है जिसमें सलफ्यूरिक अम्ल रखा होता है। इससे भी वायु के बहाव की गति का ज्ञान होता है। इससे बहाव की गति का नियंत्रण भी हो सकता है।

जब उपकरण को ठीक-ठीक बैठा दिया जाय तब महीन पीसे हुए कोयले को ३ से ५ ग्राम तौलकर फ्लास्क 'क' में रखते हैं। कीप से फिर उसमें १०० सी० सी० ठंडा उबाला हुआ आसुत जल डालते हैं। उपकरण का कार्बन डाइ-आक्साइड शुद्ध वायु से निकाल देते हैं। जब सारी कार्बन डाइ-आक्साइडवाली वायु निकल जाय तब फ्लास्क को बन्द कर देते हैं और कोयले को पानी से भिगो देते हैं। अब सारे उपकरण को ऐसी वायु से भर देते हैं जिसमें कार्बन डाइ-आक्साइड नहीं है।

अब 'झ' और 'झ'' नलियों को निकालकर आधा घंटा रखकर रासायनिक तुला पर तौलते हैं। इस समय 'ज' और 'ज'' नली को बन्द कर देते हैं। तौलने के बाद 'झ' और 'झ'' नलियों को जोड़कर फ्लास्क में २५ सी० सी० १·३ विशिष्ट भार का फ़ास्फरिक अम्ल कीप द्वारा डालते हैं। अब फ्लास्क को धीरे-धीरे गरम कर क्वथनांक तक पहुँचा देते हैं। फ्लास्क को या तो तारजाली पर सीधे गरम करते हैं अथवा ग्लीसरीन-ऊष्मक पर रखकर गरम करते हैं और आधे से पौन घंटे तक उबलने देते हैं। उबलने की गति ऐसी रहती है कि समस्त जल संघनित होकर फ्लास्क में लौट आये। जब उबलना समाप्त हो जाय तब यू-नली 'झ' और 'झ'' को हटाकर प्रायः आधा घंटा रखकर तब तौलते हैं। भार के अन्तर से कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा मालूम होती है।

कुछ कोयले में ऐसे सल्फ़ाइड रह सकते हैं जिससे हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकलकर सोडा-लाइम में अवशोषित हो जाता है। ऐसी दशा में 'ज' और 'झ' नलियों के बीच एक और नली रखते हैं जिसमें सिल्वर सल्फ़ेट अथवा अजल कॉपर सल्फ़ेट भरा रहता है। इसके ऊपर कुछ काँच-ऊन भी रखा होता है। इस नली में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड अवशोषित हो जाता है।

फास्फ़रस

कोयले में अल्प फास्फरस सदा ही रहता है। सम्भवतः यह कैलसियम फास्फेट के रूप में रहता है। अल्प फास्फरस से कोई हानि नहीं होती पर कोयले को यदि लोहे या इस्पात के निर्माण में प्रयुक्त करना है तो फास्फरस का रहना ठीक नहीं है। अतः कोयले में फास्फरस की मात्रा का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

साधारणतया कोयले का समस्त फास्फरस कोयले की राख में रह जाता है। अतः कोयले की राख में ही फास्फरस की मात्रा निर्धारित होती है। फास्फरस के निर्धारण की प्रामाणिक रीति यह है—

कोयले को ७७५° $\pm$ २५° से० पर जलाकर राख प्राप्त करते हैं। ऐसी राख का प्रायः २ ग्राम लेकर महीन पीसते हैं ताकि राख का यह चूर्ण २४०—अक्षि की ब्रिटिश प्रामाणिक चलनी में छन जाय। पीसने के बाद महीन बुकनी को कुछ काल तक फिर ७७५° $\pm$ २५° से० पर गरम करते हैं। इससे अवशोषित जल और कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाते हैं। अब महीन बुकनी को वायुरुद्ध बन्द पात्र में रखते हैं।

इस राख से कुछ अंश निकालकर ठीक-ठीक तौलते हैं। कितनी राख तौली जाय यह फास्फरस की मात्रा पर निर्भर करता है। इसके लिए एक प्रारम्भिक प्रयोग करके फास्फरस की सन्निकट मात्रा का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

राख को प्लैटिनम की एक मूषा में तौलते हैं। मूषा की धारिता ३० सी० सी० रहती है। उसमें १० सी० सी० सान्द्र नाइट्रिक अम्ल और ५ सी० सी० हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल धीरे-धीरे डालते हैं। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में अपद्रव्य के रूप में फास्फरस नहीं रहना चाहिए और उसके एक लिटर में हाइड्रोजन क्लोराइड की मात्रा प्रायः ५५० ग्राम रहनी चाहिए।

अब मूषा को ढँककर तप्त पट्ट पर गरम करते हैं। इस बात की सावधानी रखते हैं कि राख छिटककर नष्ट न हो जाय। प्रायः ४५ मिनटों में द्रव को पूरा सुखा देते हैं। इस प्रक्रिया (आपरेशन) को दोहराते हैं। इससे क्लोराइड का अन्तिम लेश निकल जाता है। इस प्रारम्भिक उपचार से यदि सिलिका हो तो वह भी निकल जाता है क्योंकि सिलिका के रहने से फास्फरस के अवक्षेपण में बाधा पहुँचती है।

राख में फास्फरस की कितनी मात्रा के रहने से कितनी राख लेनी चाहिए यह निम्नलिखित सारणी से मालूम होता है—

राख में फास्फरस की सन्निकट प्रतिशतता	कितनी राख प्रयोग के लिए ली जाय-(ग्राम में)
१ प्रतिशत से अधिक	०·१
१ से ०·७५ प्रतिशत	०·२
०·७५ से ०·५ प्रतिशत	०·२५
०·५ से ०·२५ प्रतिशत	०·४
०·२५ से ०·१ प्रतिशत	०·५
०·१ प्रतिशत से कम	१·०

प्रारम्भिक उपचार के बाद जो अंश बच जाता है उसमें तनु नाइट्रिक अम्ल (वि० भा० १·२), १५ सी० सी० डालकर द्रव को उद्वाष्पित कर ७ सी० सी० में बना लेते हैं। इस द्रव को फिर २५० सी० सी० के बीकर में स्थानान्तरित कर मूषा को कई बार धोकर विलयन की मात्रा ८० सी० सी० बना लेते हैं।

अब बीकर को घटि-काँच से ढँककर विलयन को १५ मिनट तक उबालते हैं। ९ सेंटीमीटर के व्यास के वाटमैन नं० ३ छन्ने कागज़ पर शंक्वाकार फ्लास्क (५०० सी० सी० धारिता के) में छान लेते हैं। जो अवशिष्ट ठोस अंश बच जाता है उसे बार बार धो लेते हैं। छनित का १० सी० सी० जब फीनोल्फथलीन और एक बूँद N/10 NaOH से क्षारीय प्रतिक्रिया देने लगे तब धोना बन्द कर देते हैं। इस प्रकार धोने से छनित का आयतन प्रायः २५० सी० सी० हो जाता है। अब विलयन को उद्वाष्पित कर उसका आयतन ५० सी० सी० करके उसमें बूँद बूँद सान्द्र अमोनियम हाइड्राक्साइड का विलयन (वि० भा० ०·८८०) डालते हैं। जब स्थायी अवक्षेप कुछ बन जाय तो विलयन डालना बन्द कर देते हैं। अब नाइट्रिक अम्ल बूँद बूँद डालकर अवक्षेप को ठीक से घुला लेते हैं। जब अवक्षेप ठीक-ठीक घुल जाय तब सान्द्र नाइट्रिक अम्ल (४ सी० सी० और) डाल देते हैं। अब फ्लास्क के मुँह को काग से बन्द कर देते हैं। काग में थर्मामीटर लगा रहता है। थर्मामीटर का बल्ब विलयन में डूबा और फ्लास्क के पार्श्व को छूता रहता है। काग में वायु के प्रवेश के लिए एक छोटा छेद रखते हैं।

अब विलयन को ७५° से० तक गरम कर फ्लास्क को हटाकर काग और थर्मामीटर निकाल लेते और पहले से ५५०° से० तक गरम किये अमोनियम मोलिबडेट

के विलयन के ३० सी० सी० को अविराम पतली धारा में डालते हैं। विलयन का डालना बहुत धीरे-धीरे और सतत धारा में होना चाहिए और फ्लास्क को जोरों से हिलाते रहना चाहिए। जब मोलिबडेट विलयन का डालना समाप्त हो जाय तब काग और थर्मामीटर के साथ-साथ फ्लास्क को २ मिनट और हिलाकर ३० मिनट तक ५०° से० पर रखना चाहिए। इसके बाद फ्लास्क को ठंडा कर कम से कम ३ घंटा रख देते हैं। पर रात भर से ज्यादा नहीं रखते।

अब अवक्षेप को ११ सेंटीमीटर व्यास के वाटमैन नं० ३२ छन्ना कागज में अथवा गूचमूषा में छानते हैं। अवक्षेप को पोटेसियम नाइट्रेट के उदासीन ०·१ प्रतिशत विलयन से धोकर छनित का परीक्षण करते हैं। जब छनित का १० सी० सी० एक बूँद N/10 NaOH और एक बूँद फीनोल्फथलीन के विलयन से प्रबल क्षारीय प्रतिक्रिया दे तब धोना बन्द कर देते हैं। धोने के पानी की मात्रा जहाँ तक हो कम से कम रहनी चाहिए क्योंकि धोनेवाले जल में अवक्षेप अल्प विलेय है और आक्सीकरण से विलेयता और बढ़ जाती है। आक्सीकरण रोकने के लिए अवक्षेप को बराबर भींगा रखना चाहिए।

अवक्षेप और छन्ने कागज को ५० सी० सी० फ्लास्क में स्थानान्तरित करना चाहिए। फ्लास्क में डाट और डाट में सोडा-लाइम की नली लगी हुई रहनी चाहिए। फिर फ्लास्क में सोडियम हाइड्राक्साइड के N/10 विलयन का १० सी० सी० डालकर डाट और सोडा-लाइम नली लगाकर ३५ से ४०° से० तक गरम करते हैं। फ्लास्क को हिला-डुलाकर अवक्षेप को घुला लेते हैं। अब विलयन को ठंडा कर उदासीन फीनोल्फथलीन डालकर NaOH के आधिक्य का N/10 नाइट्रिक अम्ल से अनुमापन कर लेते हैं।

ग्राम में फास्फरस का भार = ०·०००१३ × N/10 सोडियम हाइड्राक्साइड का सी० सी०—N/10 नाइट्रिक अम्ल का सी० सी०।

इससे राख में फास्फरस की प्रतिशतता और उससे फिर कोयले में फास्फरस की प्रतिशतता निकालते हैं।

अमोनियम मोलिबडेट विलयन—शुद्ध मोलिबडिक अम्ल के—जिसमें MoO_3 की मात्रा ८५ प्रतिशत से कम न हो—१०० ग्राम लेकर उसमें सान्द्र अमोनियम हाइड्राक्साइड का ८० सी० सी० और शीत आसुत जल और सान्द्र नाइट्रिक अम्ल के ४०० सी० सी० विलयन में धीरे-धीरे डालते हैं। फ्लास्क को बराबर हिलाते रहते हैं। फिर माइक्रो कौस्मिक लवण ($NaNH_4$ HPO_3, $4H_2O$) के ४०० मिलिग्राम को अल्प जल में घुलाकर उसमें डालते हैं। फिर उसे प्रक्षुब्ध करते हुए

६५° से० तक गरम करके रात भर रख देते हैं। अब विलयन को निथारकर डाट-वाली रंगीन बोतल में रख देते हैं।

यह विलयन तीन मास तक प्रतिकारक के रूप में प्रयुक्त हो सकता है।

सोडियम हाइड्राक्साइड विलयन—सोडियम हाइड्राक्साइड का N/10 विलयन तैयार करते हैं। उसका बल N/10 नाइट्रिक अम्ल के प्रमाप विलयन से अनुमापन द्वारा मालूम कर लेते हैं। अनुमापन एक बन्द फ्लास्क में करते हैं जिसमें सोडा-लाइम नली लगी रहती है। इससे वायु का कार्बन डाइ-आक्साइड सोडियम हाइड्राक्साइड के संसर्ग में नहीं आता वरन् वायु कार्बन डाइ-आक्साइड से मुक्त रहती है।

क्लोरीन

सब कोयले में कुछ न कुछ क्लोरीन ०·०५ से ०·२० प्रतिशत रहता है। किसी-किसी कोयले में १ प्रतिशत तक क्लोरीन रह सकता है। किस रूप में क्लोरीन रहता है इसका ठीक-ठीक पता नहीं है। कुछ क्लोरीन क्लोराइड के रूप में और कुछ कार्बन के साथ संयुक्त रह सकता है। पानी के कारण भी कोयले में क्लोरीन आ सकता है। कोयले के कार्बनीकरण से क्लोरीन के कारण कुछ क्षति हो सकती है। उच्च ताप पर क्लोरीन वाष्पीभूत होकर भभके की दीवारों का शीघ्रता से संक्षरण कर सकता है। कोयले में जल-विलेय क्लोरीन का निर्धारण सरल नहीं है क्योंकि ऐसा क्लोरीन कोयले से सरलता से निकाला नहीं जा सकता पर कोयले में समस्त क्लोरीन का निर्धारण सरलता से होता है।

समस्त क्लोरीन के निर्धारण के लिए महीन चूर्ण किये कोयले के ५ ग्राम को लेकर अजल सोडियम कार्बोनेट के प्रायः ६ ग्राम के साथ भली-भांति मिलाकर मूषा में रखकर ऊपर से ३ ग्राम और सोडियम कार्बोनेट रखकर अपवारित भ्राष्ट्र में गरम करते हैं। भ्राष्ट्र का ताप ४७५°±२५° से० एक से दो घण्टे में उठाकर उसी ताप पर तब तक रखते हैं जब तक भस्मीकरण पूर्ण न हो जाय। साधारणतया भस्मीकरण में लगभग २० घंटे लगते हैं। पहले १२ घंटा मूषा के पदार्थ को प्रक्षुब्ध नहीं करते और भ्राष्ट्र में पर्याप्त संवातन (वेंटिलेशन) रखते हैं।

भस्मीकरण के बाद मूषा को ठंडा होने देते, अन्तर्वस्तु को ४०० सी० सी० धारिता के बीकर में स्थानान्तरित कर क्लोरीन-मुक्त जल से एक सूक्ष्म-क्षेप से धोते हैं। बीकर में फिर ४० सी० सी० जल डालकर उसमें ३० सी० सी० सान्द्र नाइट्रिक अम्ल (वि० भा० १·४२) डालकर घटि-काँच से ढँक देते हैं। अब विलयन को क्वथनांक तक गरम करके—उबालते नहीं—ठंडा होने को रख देते हैं। जब ऊपर का विलयन

स्वच्छ हो जाता है तब विलयन को गूचमूषा में चूषण द्वारा छान लेते हैं। गूचमूषा में छन्ना कागज रखे रहते हैं। पाँच-पाँच सी० सी० आसुत जल से बीकर को दो बार धो लेते हैं। धोवन को छन्ना कागज पर डाल देते हैं। उसके बाद अवशिष्ट अव-क्षेप को दो बार और पाँच-पाँच सी० सी० आसुत जल से प्रक्षालन करते हैं। छनित को ३५० सी० सी० धारिता के शंक्वाकार फ्लास्क में स्थानान्तरित कर फ्लास्क को दो बार और पाँच-पाँच सी० सी० आसुत जल से धोकर जल को बहा देते हैं।

अब स्वच्छ विलयन को गरम करके (उबलने नहीं देते) उसमें N/20 सिलवर-नाइट्रेट का विलयन (आधिक्य में) डालते हैं। साधारणतया २५ सी० सी० विलयन पर्याप्त होता है। फ्लास्क को घटि-काँच से ढँककर अंधेरे में रख देते हैं, ऐसे स्थान में जहाँ वह क्लोरीन के संसर्ग में न आ सके। जब अवक्षेप नीचे बैठ जाय तब व को छन्ना कागजवाली गूचमूषा में छान लेते हैं। फ्लास्क और अवक्षेप को पूर्व की भांति धो और प्रक्षालित कर लेते हैं। अब छनित में लौह फिटकरी के विलयन का दो सी० सी० सूचक के रूप में डालकर N/20 अमोनियम पोटैसियम थायोसायनेट से अनुमापन करते हैं। अन्तिम बिन्दु वह है जब रंग सफेद से मलाई के रंग का हो जाता और एक बूँद और डालने से नारंगी से लाल हो जाता है। जिस बिन्दु से सफ़ेद रंग बदलता है वही अनुमापन का अन्तिम बिन्दु है। N/20 सिलवर नाइट्रेट का १ सी० सी० विलयन क्लोरीन के ०·००१७७३ ग्राम के बराबर है।

टिप्पणी—लौह फिटकरी विलयन के तैयार करने में फेरिक अमोनियम ऐलम का ठंडा संतृप्त विलयन तैयार कर उसमें इतना नाइट्रिक अम्ल डालते हैं कि विलयन का भूरा रंग निकल जाय। इस सूचक का रंग हलका पुआल के रंग से गाढ़ा नहीं रहना चाहिए।

यदि कोयले में क्लोरीन की मात्रा ०·०५ प्रतिशत अथवा इससे कम हो तो N/20 सिलवर नाइट्रेट के विलयन के स्थान में N/50 सिलवर नाइट्रेट का विलयन इस्तेमाल करना चाहिए। यदि कोयले में क्लोरीन की मात्रा ० ७ प्रतिशत से अधिक हो तो ५ ग्राम कोयले के स्थान में ३ ग्राम कोयला लेना ही अच्छा है। एक साथ कई प्रयोगों को करना चाहिए। साथ-साथ एक रिक्त प्रयोग भी करना चाहिए।

विलेय खनिज लवण

कोयले में विलेय खनिज लवणों के निर्धारण को भी आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए महीन पीसे हुए कोयले, २५०-अक्षि चलनी में छने हुए, का २५ ग्राम एक

शंक्वाकार फ्लास्क (४०० धारिता के) में तौलकर क्लोरीन-मुक्त २५० सी० सी० जल डालकर फ्लास्क को कई घंटे जल-ऊष्मक पर गरम करना चाहिए। फ्लास्क को समय-समय पर हिलाते रहना चाहिए ताकि कोयला पूरा भींगता रहे। अब कोयले को छानकर धो लेना चाहिए। जब छनित में कोई क्लोराइड न रहे तब धोना बन्द कर देना चाहिए। विलयन और धोवन को मिलाकर ५०० सी० सी० बना लेना चाहिए।

ऐसे विलयन के १०० सी० सी० को एक तौले हुए काँच के बेसिन में स्थानान्तरित कर उद्वाष्पन द्वारा सुखा लेना चाहिए। १३०° से० पर सुखाने पर जब भार स्थायी हो जाय तब सुखाना बन्द कर देना चाहिए। इससे जो भार प्राप्त होता है वह समस्त विलेय लवण का भार है।

इसमें क्लोराइड की मात्रा निकालने के लिए बेसिन के अवशिष्ट अंश में जल डालकर एक बूँद उदासीन पोटैसियम क्रोमेट का विलयन डालकर N/50 सिलवर नाइट्रेट के विलयन से अनुमापन करना चाहिए। जो परिणाम आये उससे कोयले में सोडियम क्लोराइड की प्रतिशतता निकालनी चाहिए। एक अन्य प्रभाग में सोडियम सल्फेट के रूप में सल्फेट की मात्रा का भी निर्धारण सामान्य रीति से किया जाता है।

कोयले का ऊष्मीय मान

कोयले का उपयोग ऊर्जा उत्पन्न करने में होता है। ऊर्जा ऊष्मीय मान पर निर्भर करती है। कोयले के ऊष्मीय मान से ही कोयले का मूल्य आँका जाता है। अतः कोयले का ऊष्मीय मान बड़े महत्त्व का है।

ऊष्मीय मान को नापने के लिए कोई इकाई चाहिए। साधारणतया दो प्रकार की इकाइयाँ प्रयुक्त होती हैं। एक ब्रिटिश क्रम की इकाई है और दूसरी मेट्रिक क्रम की इकाई। ब्रिटिश क्रम में ऊष्मा की उस मात्रा को ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक कहते हैं जो ऊष्मा एक पाउण्ड जल को ६०° फ० के आस-पास के ताप पर १° ताप के उठाने में खर्च होती है। मेट्रिक क्रम में एक किलोग्राम जल के ताप को १५° से० के सन्निकट ताप पर १° से० ताप के उठाने में जितनी ऊष्मा खर्च होती है उसे कलरी या बड़ी कलरी कहते हैं। इस क्रम में एक छोटी कलरी भी होती है जो एक ग्राम जल के ताप को १५° से० के आसपास १° से० ताप के उठाने में खर्च होती है।

दोनों मात्रकों के बीच का सम्बन्ध निम्नलिखित समीकरण से प्रकट होता है।

१५° से० पर एक ब्रिटिश ऊष्मामात्रक (B. Th U. या ब्रि० ऊ० मा०)= ०·२५२ किलोग्राम ऊष्मामात्रक (K. C. U या कि० ऊ० मा०) और एक किलोग्राम कलरीमात्रक = ३·९६८३ (ब्रि० ऊ० मा०)

ऊष्मीय मान निकालने की रीतियों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, एक प्रत्यक्ष रीति और दूसरी परोक्ष रीति।

प्रत्यक्ष रीति

प्रत्यक्ष रीति से ऊष्मीय मान निकालने में निम्नलिखित रीतियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं—

(१) कोयले को संपीडन द्वारा गुलिका (pellet) में परिणत करना अथवा पीसकर चूर्ण बनाना। ऐसे कोयले के ज्ञात भार को लेकर अधिक दबाव में जलाते हैं। दबाव कम से कम २५ वायुमण्डल का होना चाहिए।

(२) कोयले को वायु के प्रवाह में वायुमण्डल में जलाते हैं। यहाँ भी कोयला गुलिका के रूप में अथवा चूर्ण के रूप में रहता है।

(३) महीन पीसे हुए कोयले को ऐसे पदार्थ के साथ भली-भाँति मिलाकर जलाते हैं जिसमें आक्सिजन अधिक रहता है। ऐसे पदार्थों में पोटैशियम क्लोरेट, पोटैशियम नाइट्रेट और सोडियम पेराक्साइड हैं।

प्रत्यक्ष रीति में (१) कोयले को पूर्ण रूप से जलाते हैं, (२) जलाने से जो ऊष्मा उत्पन्न होती है उससे जल का ताप बढ़ता है। ताप की इस वृद्धि को बड़ी यथार्थता से नापते हैं। जल के ताप की वृद्धि से उत्पन्न ऊष्मा की गणना करते हैं।

कोयले के पूर्ण दहन के लिए आक्सिजन का वातावरण आवश्यक है। आक्सिजन के वातावरण में दहन शीघ्रता से और पूर्णतया होता है। वायुमण्डल के अधिक दबाव, कम से कम २५ वायुमण्डल के दबाव में दहन और भी शीघ्रता से और पूर्णतया होता है। सामान्य दबाव पर दहन से दहन अपूर्ण रह सकता है।

कोयले को गुलिका में परिणत करना अच्छा होता है। चूर्ण रूप में रहने से कोयले के कणों के बिना जले निकल जाने की सम्भावना रह सकती है। लिगनाइट और अंथ्रेसाइट सदृश कुछ कोयले दबाव से गुलिका में नहीं परिणत होते।

इस सम्बन्ध में जो प्रयोग हुए हैं उनसे स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि आक्सिजन का दबाव यदि २५ वायुमण्डल से कम हो तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि दहन पूर्ण रूप से हुआ है। आक्सिजनवाले ठोस पदार्थों के उपयोग से उनके विघटन से परिणाम में कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं। यह भी सम्भव है कि कोयले की राख

के खनिज लवणों से उनकी कोई प्रतिक्रिया हो और इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ऊष्मा का कुछ परिवर्तन हो।

दहन से उत्पन्न ऊष्मा का मापन एक विशेष प्रकार के बन्द पात्र में होता है। यह पात्र जल से घिरा रहता है। यह ऐसा रखा होता है कि बाहर से न ऊष्मा प्रवेश कर सकती और न अन्दर की ऊष्मा बाहर निकल सकती है। कोशिश यह होती है कि उपकरण में ऊष्मा की क्षति न्यूनतम हो। ऐसे उपकरण को ऊष्मा-मापी अथवा कलरीमापी या कलोरीमीटर कहते हैं। अनेक प्रकार के ऊष्मा-मापी बने हैं। भिन्न-भिन्न निर्माणकर्ताओं ने भिन्न-भिन्न किस्म के कलरीमापी बनाये हैं पर उन सबके सिद्धान्त एक से ही हैं। ऐसे एक कलरीमापी का सविस्तर वर्णन आगे होगा।

परोक्ष रीति

कोयले के अन्य विश्लेषण से, कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन और गन्धक की प्रतिशतता से, कोयले के ऊष्मा-मान प्राप्त करने की चेष्टाएँ हुई हैं। यह रीति पूर्ण यथार्थ नहीं समझी जाती क्योंकि कोयले के विभिन्न अवयवों का पूरा-पूरा ज्ञान हमें नहीं है।

ड्यूलंग ने इस सम्बन्ध में जो सूत्र प्रतिपादित किया है वह यह है––

क$=\frac{१}{१००}$ [८०८० का+३४,४६० (हा$-\frac{१}{८}$ आ)+२२५०ग]

यहाँ क, किलोग्राम ऊष्मा-मात्रक कलरी है

का, कार्बन की प्रतिशतता है

हा, हाइड्रोजन की प्रतिशतता है

आ, आक्सिजन की प्रतिशतता है

ग, गन्धक की प्रतिशतता है।

इस सूत्र से कोयले का जो ऊष्मीय मान प्राप्त होता है उसमें दो प्रतिशत की त्रुटि पायी गयी है। साधारणतया ऊष्मीय मान दो प्रतिशत अधिक होता है। ऐसा उसी दशा में होता है जब कोयले में आक्सिजन की मात्रा कम रहती है।

माहलर[१] ने एक दूसरे सूत्र का प्रतिपादन किया है। वह सूत्र है––

क$=\frac{१}{१००}$ [८१४० का+३४५०० हा–३००० (आ+ना)]

यहाँ 'ना' नाइट्रोजन की प्रतिशतता है।

इस सूत्र से काले लिगनाइट से परिणाम एक प्रतिशत ऊँचा और जापानी कोयले से ४ प्रतिशत नीचा पाया गया है।

१. Mahler

ग्रुमेल और डेविज़[1] ने इस सम्बन्ध में जो सूत्र प्रतिपादित किया है वह यह है—

$$क = (३\cdot६३५\ हा + २३५\cdot९)\left\{का + हा - \frac{आॅ - ग}{८}\right\}$$

यहाँ भी 'का', 'हा', 'आ' और 'ग' क्रमशः कार्बन हाइड्रोजन, आक्सिजन और गन्धक की प्रतिशतता है।

इस सूत्र से बहुत यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है और यह सब प्रकार के कोयले में लागू होता है। बम कलरीमापी से प्राप्त और इस सूत्र से प्राप्त अंकों में बहुत अल्प अन्तर पाया गया है।

ग्रुमेल और डेविस का मत है कि डचू लंग का सूत्र उस कोयले के लिए अधिक उपयुक्त है जिसमें कार्बन की प्रतिशतता ८६ प्रतिशत तक रहती है। यदि कोयले में कार्बन की प्रतिशतता इससे अधिक हो तो परिणाम ठीक नहीं निकलता और ९० प्रतिशत से अधिक होने पर तो बिलकुल लागू नहीं होता।

वाइट[2] ने ३०० कोयले का विश्लेषण कर, ऐसा कोयला जिसमें राख २·३८ से २९·३८ प्रतिशत थी और आक्सिजन १·८२ और ३८·५७ प्रतिशत था, इस सूत्र का प्रतिपादन किया है—

$$प्रति\ पाउण्ड\ ब्रिटिश\ ऊष्मा\text{-}मात्रक = १६७८० - \frac{१७२३०}{प + ०\cdot९८}$$

$$यहाँ \quad 'प' = \frac{कार्बन}{आक्सिजन + राख}$$

यहाँ त्रुटियाँ +७·७ से–८·१ प्रतिशत पायी गयी हैं। औसत त्रुटि प्रति पाउण्ड १२१ ब्रिटिश ऊष्मा-मात्रक है।

वाइट का यह सूत्र कुछ कोयले के लिए लागू नहीं होता है। यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि ब्रिटेन, जापान और भारत के कोयले में यह लागू नहीं होता। यह सूत्र अमेरिकी कोयले में ही लागू होता है।

गाउथल[3] ने प्राथमिक विश्लेषण के आधार पर कोयले का ऊष्मीय मान निकालने के लिए एक सूत्र का प्रतिपादन किया है। वह सूत्र है—

१. Grumell and Davies
२. White
३. Gouthal

प्रति किलो किलोग्राम कलरी-मात्रक=८२ का+अ वा

यहाँ 'का' स्थायी कार्बन की प्रतिशतता

'वा' वाष्पशील अंश की प्रतिशतता और

'अ' एक परिवर्ती (वैरियेबिल) कारक (फैक्टर) है जो कोयले के वाष्पशील अंश पर निर्भर करता है।

यदि वाष्पशील अंश १ से ४, १०, १५, २०, २५, ३०, ३५ और ४० है तो 'अ' का मान क्रमशः १५०, १४५, ११७, १०९, १०३, ९८, ९५ और ८० होता है।

ग्रेट ब्रिटेन के कोयले के १८ नमूनों में टेलर और पैटर्सन[१] ने इस सूत्र का उपयोग किया और देखा कि १५ नमूनों में इससे गणित अंकों और बम ऊष्मामापी से प्राप्त अंकों में केवल ५ प्रतिशत का अन्तर, २ में ५ से ६ प्रतिशत का अन्तर और एक में १३·३ प्रतिशत का अन्तर (कम मान) था।

गाउथेल सूत्र में कुछ सुधार नाकामुरा[२] ने किया है। इस सुधार से यह सूत्र उन्हीं कोयलों में लागू हो सकता है जिनमें वाष्पशील अंश की मात्रा २० प्रतिशत से अधिक रहती है।

सुधारा हुआ सूत्र यह है—

$$\text{क}=\text{अ}\left\{\left(\text{वा}-\frac{\text{राख}}{१०}\right\}+७८\ \text{का}\right.$$

यहाँ 'अ' एक परिवर्ती कारक है जो कोयले की वाष्पशील प्रतिशतता और कोयले के पिंड बनने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस सूत्र के निकालने में नाकामुरा ने कोयले के १२·३३७ नमूनों का विश्लेषण किया था। यदि अन्य देशों के कोयले की कलरी निकालने में इस सूत्र का उपयोग करना हो तो पहले से 'अ' का मान निकाल लेना या निश्चित कर लेना आवश्यक होता है।

उच्च दबाववाला बम ऊष्मामापी

कोयले का ऊष्मीय मान निकालने में जो उपकरण प्रयुक्त होता है वह उच्च दबाववाला बम ऊष्मामापी है। इस उपकरण में दोष केवल यही है कि यह मूल्यवान होता है। कम मूल्यवाले ऊष्मामापी भी मिलते हैं, पर ऐसे ऊष्मामापी से प्राप्त अंक विश्वसनीय नहीं होते। बम ऊष्मा-मापी से प्राप्त अंकों पर पूरा पूरा विश्वास किया जा सकता है।

१. Taylor and Patterson

२. Nakamura

बम ऊष्मामापी में इस्पात का एक बम होता है। इस बम में ही कोयला आक्सिजन के वातावरण में २५ वायुमण्डल के दबाव पर जलाया जाता है। बम के चारों तरफ़ पानी भरा रहता है। बम में एक विलोडक और एक थर्मामीटर भी रहता है। थर्मामीटर ऐसा होता है कि डिगरी का शतांश उसमें पढ़ा जा सके। ऊष्मामापी को आक्सिजन से भरने का भी प्रबन्ध रहता है। बम ऊष्मामापी अनेक किस्म के बने हैं। सबके सिद्धान्त प्रायः एक से ही हैं यद्यपि उनकी बनावट में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है।

अच्छे बम ऊष्मामापी में निम्नलिखित गुणों पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है।

(१) बम के अन्दर का तल ऐसी धातु का बना होना चाहिए कि दहन से उत्पन्न अम्ल की उस पर कोई क्रिया न हो। यदि अन्दर के तल पर निकेल का आस्तर चढ़ा हो तो ऐसे बम से प्राप्त अंकों में २^{१}/$_{२}$ प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

(२) बम को २५ वायुमण्डल के दबाव पर आक्सिजन से भरने पर दहन के लिए आवश्यक आक्सिजन की मात्रा से कम से कम २^{१}/$_{२}$ गुना अधिक आक्सिजन अँटना चाहिए।

(३) बम के चारों ओर पानी का एक निचोल रहना चाहिए जिसमें १५ से २० लिटर पानी अँट सके।

(४) पानी को प्रक्षुब्ध करने के लिए ऐसा विलोडक रहना चाहिए जो एक-सी गति से घूमता रहे और जिसकी गति पर्याप्त ऊँची हो।

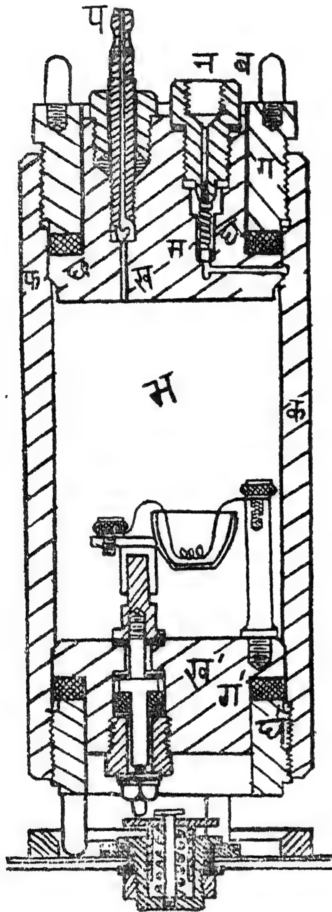
(५) ऊष्मामापी का थर्मामीटर ऐसा होना चाहिए कि उसमें ०·०१° से० अंकित हो और लेंस की सहायता से ०·००२° से० तक पढ़ा जा सके। थर्मामीटर प्रामाणिक और फिजिकल नेशनल लैबोरेटरी का सार्टीफिकेटवाला होना चाहिए। साधारणतया बेकमैन का थर्मामीटर इस काम के लिए उपयुक्त होता है।

(६) २५ वायुमण्डल के दबाव पर आक्सिजन प्राप्त होना चाहिए। आक्सिजन में कोई अन्य दहनशील पदार्थ नहीं रहना चाहिए। विद्युत्-विच्छेदन से प्राप्त आक्सिजन में अल्प हाइड्रोजन रहता है। अतः यह आक्सिजन दहन के लिए ठीक नहीं है।

ग्रिफिन और टैटलौक कम्पनी ने एक ऊष्मामापी बनाया है जिसे "ग्रिफिन-सट्टन बम ऊष्मामापी" कहते हैं। ऊष्मीय मान निकालने के लिए आज-कल यही ऊष्मामापी अधिकता से प्रयुक्त होता है। इस ऊष्मामापी का रेखा-चित्र यहाँ दिया हुआ है।

इसमें बम 'क' अकलुष इस्पात का बना होता है। यह इस्पात एक विशेष प्रकार की संरचना का होता है। मशीन से काटकर इस बम को बनाते हैं। ऊपर और नीचे

कुछ दूरी तक यह अन्दर से पेच से कसा रहता है। पेच छोटे-छोटे अंशों (shoulders) से बने होते हैं।



चित्र ७५—ग्रिफिन-सट्टन बम ऊष्मामापी

बम का निचला छोर रबर धावक से संमुद्रित रहता है। यह धावक स्फारी टोपी (flanged cap) 'ख' और पेचदार बाहुप (स्लीव) 'ग' के बीच में स्थित रहता है। 'ख' टोपी पर ही वह स्तम्भ होता है जिस पर मूषा रखी जाती है, और मूषा में कोयला जलाया जाता है। स्तम्भ छोटा पर दृढ़ होता है। स्तम्भ और टोपी एक क्षुप (बुश) और अभ्रक धावक 'घ' (माइका-वाशर) से पृथक् किये रहते हैं। ऊष्मामापी के पेंदे में स्थित एक कमानी द्वारा टोपी संस्पर्श रखता है।

ऊष्मामापी के ऊपरी भाग में एक टोपी 'ख'' एक बाहुप 'ग'' और एक धावक 'घ'' संमुद्रित रहते हैं। ऊपर की टोपी में एक पेचदार और नालिकावाली (riffled) नली 'प' रहती है जो एक नीचे की टोपी तक एक छोटी सपक्ष नह (winged nut) द्वारा पहुँचती है। एक प्रवेश-कपाट 'ट' रहता है जिसे आवश्यकतानुसार स्थानान्तरित कर सकते हैं। आक्सिजन सिलिंडर से जोड़ने के लिए एक पेचदार प्रवेश-मार्ग 'ठ' होता है। गैस 'ट' द्वारा अन्दर प्रवेश करती है। गैस क्षैतिज प्रणाली (duct) की प्रसीता द्वारा बम 'भ' में प्रवेश करती है। मूषा 'म' में कोयला रखा जाता है। एक छोटा स्वज (clip) ऊपरी टोपी में लगा रहता है, जिससे टोपी 'ख'' और बाहुप 'ग'' यथास्थान रखे जा सकते हैं। बाहुप 'ग' और 'ग'' में टोपियाँ 'ख'' और 'ख' ऊपर नीचे खिसक सकती हैं पर बम की दीवारों पर अंशों के कारण वे खिसकती नहीं। भीतरी तल पर गैस

के दबाव से बाहर की ओर खिसक सकती हैं जिससे धावक 'घ' और 'घ'' पर दबाव पड़कर अभ्यन्तर भाग को ऐसा संमुद्रित कर देता है कि जब तक अन्दर का दबाव नहीं हटता, तब तक बाहुप 'ग' और 'ग'' नहीं खिसक सकता।

ऊष्मामापी में ताँबे के दो पात्र होते हैं जिनके व्यास भिन्न-भिन्न होते हैं। ये दोनों ऊपर और नीचे नलियों से संबद्ध होते हैं। अभ्यन्तर नली में एक विलोडक लगा रहता है जिसमें तीन फलवाले प्रणोदक होते हैं। यह विलोडक अकलुष इस्पात की ईषा पर लगा रहता है। इस विलोडक से अन्दर का ताप एक-सा रखा जा सकता है। बम को बड़ी नली में रखकर बिजली द्वारा उसे उत्तप्त करते हैं। ऊष्मामापी बिजली के दो सिरों से जुटा रहता है।

पर्याप्त महीन पीसे हुए वायु-शुष्क कोयले को दबाकर गुलिका रूप में बनाते हैं। गुलिका को ऊष्मामापी की मूषा में तौलते हैं। प्लैटिनम तार की पाशी (loop) को गुलिका के संसर्ग में रखकर प्लैटिनम का महीन तार (०·००३ इंच की मोटाई) से बम में फैलाकर रखते हैं। प्लैटिनम तार की पाशी कोयले की गुलिका को छूती रहती है।

बम में प्रायः १० ग्राम आसुत जल रखते हैं, ताकि दहन से प्राप्त अम्ल उसमें घुल जाय। अब ढक्कन को पेंच से कस देते हैं।

बम को आक्सिजन के सिलिंडर और दाब प्रमापी से संबद्ध कर आक्सिजन को धीरे-धीरे प्रविष्ट कराते हैं। जब आक्सिजन का दबाव २५ वायुमण्डल का हो जाता है तब आक्सिजन का प्रवेश बन्द कर देते हैं। अब बम को पानी की बाल्टी में रखकर देखते हैं कि वह वायु-रुद्ध है अथवा नहीं। अब पानी को पोंछकर बिजली के सिरे से संबद्ध कर देते हैं।

ऊष्मामापी पात्र को तौलते हैं। पर्याप्त पानी को तौलकर उसमें रखते हैं। पानी इतना रहना चाहिए कि ढक्कन के साथ बम उसमें डूब जाय। अब विलोडक, थर्मामीटर आदि को यथास्थान रखकर थर्मामीटर को व्यवस्थित कर विलोडक को चला देते हैं।

जल का ताप पाँच-पाँच मिनट के अवकाश पर पढ़ते हैं। थर्मामीटर ऐसा रहता है कि उसमें ०·००२° से० के सन्निकट तक ताप पढ़ा जा सके।

पाँचवें मिनट के अन्त में गरम करनेवाली बिजली के तार को पर्याप्त संचायक (ऐक्यूमुलेटर) से अथवा शुष्क कोशिका (सेल) से जोड़कर बिजली प्रवाहित करते हैं। बिजली ऐसी होनी चाहिए कि ८ से १२ वोल्ट प्राप्त हो सके। इससे कोयला जलने लगता है। समय-समय पर थर्मामीटर को पढ़ते हैं। पहले दो मिनटों में ताप बड़ी शीघ्रता से उठता है पर उसके बाद उठना कम होता जाता है। जब ताप कम हो

जाय उसके बाद आध घंटे तक बम को छोड़ देते हैं। उसके बाद बम को खोलकर अम्ल को नीचे बैठे रहने देते हैं।

बम की अन्तर्वस्तु को कठोर काँच के बीकर में धोते हैं। कभी-कभी उसमें लेड सल्फेट के निक्षेप पाये जाते हैं। ये पात्र से आते हैं। यदि ऐसे निक्षेप बने हों तो उन्हें निकाल लेते हैं। अब उसमें N/10 सोडियम कार्बोनेट का २५ सी० सी० विलयन डालकर उबालकर १० सी० सी० बना लेते और यदि लेड कार्बोनेट का अवक्षेप बना हो तो उसे धो लते हैं। अब सोडियम कार्बोनेट के आधिक्य का N/10 हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन से अनुमापन कर लेते हैं। सूचक के रूप में मिथाइल औरेंज का उपयोग करते हैं। अब विलयन को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अम्लीय बनाकर गन्धक को बेरियम सल्फेट के रूप में अवक्षिप्त कर गन्धक की मात्रा मालूम करते हैं।

कोयले का गन्धक आक्सिजन के वातावरण में दहन से सल्फर ट्राइ-आक्साइड बनता है जो जल में घुलकर सलफ्यूरिक अम्ल बनता है। वायु में दहन से गन्धक प्रधानतया सल्फर डाइ-आक्साइड बनता है। इसका परिणाम यह होता है कि कोयले के एक प्रतिशत गन्धक से प्रति ग्राम कोयले से २२·५ कलरी अधिक ऊष्मा मुक्त होती है।

कोयले का नाइट्रोजन और वायु का कुछ नाइट्रोजन बम में दहन से नाइट्रिक अम्ल बनता है। इसका भी संशोधन होना आवश्यक है। नाइट्रिक अम्ल के निर्माण की ऊष्मा का N/10 नाइट्रिक अम्ल के प्रत्येक घन सेंटीमीटर के लिए १·४३ कलरी घटाना आवश्यक होता है। नाइट्रिक अम्ल के 'क' सी० सी० के लिए क $\times$ १·४३ कलरी निकालना आवश्यक होता है।

थर्मामीटर से जो ताप प्राप्त होता है वह वास्तविक ताप नहीं है। विकिरण से कुछ ऊष्मा नष्ट हो जाती है। इससे थर्मामीटर के ताप की आवश्यक वृद्धि नहीं होती। इस विकिरण के कारण संशोधन के लिए कुछ सूत्र प्रतिपादित हुए हैं। रेनो और पाउंडलर[१] ने जो सूत्र प्रतिपादित किया है वह अधिक विश्वसनीय है।

ऊष्मामापी के जल-तुल्यांक का ज्ञान बहुत आवश्यक है। प्रयोग से यह जल-तुल्यांक निकाला जाता है। शुद्ध बेंज़ोइक अम्ल के ज्ञात भार (प्रायः १·२ ग्राम) को बम ऊष्मामापी में जलाते है। बेंज़ोइक अम्ल शुद्ध और शुष्क होना चाहिए। इसे सलफ्यूरिक अम्ल पर शोषित्र में बहुत काल रखकर अथवा इसके गलनांक के केवल ५° से० के ऊपर गरम कर सावधानी से सुखा लेते हैं। सूखे बेंज़ोइक अम्ल को शोषित्र में रखते

१. Regnault and Paundler

अथवा गुलिका में दबाकर बना लेते हैं। बेंज़ोइक अम्ल का ऊष्मीय मान १५° से० पर प्रति ग्राम ६३२४ कलरी है। बेंज़ोइक अम्ल के स्थान में अन्य कार्बनिक रासायनिक, जैसे नैफ्थलीन, सैलीसिक अम्ल या कपूर, भी इस्तेमाल हो सकते हैं। इनके ऊष्मीय मान प्रति ग्राम क्रमशः ९३२२ कलरी, ५२६९ कलरी और ९२९२ कलरी हैं।

ऊष्मामापी के जल-तुल्यांक वस्तुतः ऊष्मामापी के विभिन्न अंगों के भार और विशिष्ट ऊष्मा से संबंधित हैं। उदाहरणस्वरूप—

इस्पात बम	६२८२+०·०१ =६२८
ताँबा ऊष्मा-मापी	१३४१ +०·०९५=१२७
पीतल का विलोडक	१२०+०·०९५= ११
थर्मामीटर	४
	७७०

धातु अंगों के जल-तुल्यांक

इस मान और प्रयोग से प्राप्त अंकों में १५ या २० से अधिक का अन्तर नहीं रहना चाहिए। साधारणतया ग्रिफिन-सट्टन ऊष्मामापी का जल-तुल्यांक ७८४ होता है।

ऊष्मीय मान या तो स्थिर आयतन पर निकाला जाता है अथवा स्थिर दबाव पर। स्थिर आयतन पर निकला मान स्थिर दबाव से प्राप्त मान से कुछ कम होता है। स्थिर दबाव का मान स्थिर आयतन के मान से निम्नलिखित समीकरण द्वारा निकाला जाता है।

$$Qcp = Qcv - (\triangle n)\ R\ T$$

यहाँ Qcp स्थिर दबाव पर ऊष्मीय मान है।
Qcv स्थिर आयतन पर ऊष्मीय मान है
$\triangle n$ प्रतिक्रिया के बाद अणु की संख्या में वृद्धि है
R गैस स्थिरांक है जिसका मान १·९८८५ है
T परमताप है जिस ताप पर प्रतिक्रिया का सम्पादन होता है।

यदि मेट्रिक मात्रक प्रणाली का उपयोग करें तो किलोग्राम-अणु और सेण्टीग्रेड डिगरी+२७३ प्रयुक्त करते हैं और ब्रिटिश मात्रक प्रणाली प्रयुक्त करें तो पाउण्ड-अणु और फारेन-हाइट डिगरी+४६० प्रयुक्त करते हैं।

विश्लेषण-परिणामों की यथार्थता

कोयले के एक ही नमूने के विश्लेषण के लिए वे १२ प्रयोगशालाओं को भेजे गये थे। उनके विश्लेषण से जो अंक प्राप्त हुए उनमें इस प्रकार का अन्तर पाया गया था—

निर्धारण	परिणाम			विभिन्न प्रयोगशालाओं के परिणामों में महत्तम अन्तर
	अल्पतम	महत्तम	औसत	
जल	०·५	०·७४	०·५८	०·२४
वाष्पशील	२३·१५	२५·२	२४·१५	२·०८
राख	५·२८	५·५८	५·४४	०·३०
स्थायी कार्बन	६८·७	७०·६९	६९·८३	१·९९
कार्बन	८४·५२	८४·८९	८४·७३	०·३७
हाइड्रोजन	४·५०	४·८०	४·६२	०·३०
नाइट्रोजन	१·३८	१·५३	१·४५	०·१५
गन्धक (वाष्पशील)	०·६०	०·७२	०·६७	०·१२
आक्सिजन (अन्तर से)	२·७५	३·३९	३·०६	०·६४
समस्त गन्धक	०·७५	०·८५	०·८०	०·१३
कार्बन डाइआक्साइड	०·४३	०·६६	०·५४	०·२३
ऊष्मीय मान- (ब्रिटिश-ऊष्मा-मात्रक)				
वायुशुष्क	१४,७००	१४,८३०	१४,७६५	१३०
शुष्क राखमुक्त	१५,६५०	१५,७९०	१५,७२०	१४०
डूलंग सूत्र से गणित	—	१५,७७०	१५,९७०	२००

दो प्रयोगों के बीच कितना अन्तर रहना चाहिए, यह निम्नलिखित आँकड़ों से ज्ञात होता है। यदि इससे अधिक अन्तर हो तो प्रयोग को दोहराना आवश्यक होता है।

प्राथमिक विश्लेषण (वायु-शुष्क कोयले के आधार पर)

	महत्तम अन्तर
जल	०·१६
वाष्पशील अंश	०·२६
राख	०·१२
स्थायी कार्बन	०·३१

अन्त्य विश्लेषण (शुष्क राखमुक्त कोयले के आधार पर)

कार्बन	०·२०
हाइड्रोजन	०·१५
नाइट्रोजन	०·०७
समस्त गन्धक	०·०५
आक्सिजन (अन्तर से)	०·५४

ऊष्मीय मान (शुष्क राखमुक्त कोयले के आधार पर) ५० ब्रि० ऊ० मा०

कोयले का कार्बनीकरण आमापन

कोयले के प्राथमिक विश्लेषण से कुछ कुछ पता लगता है कि कोयले के कार्बनीकरण से कैसे-कैसे उत्पाद, विशेषतः कोक और वाष्पशील पदार्थ बन सकते हैं। पर यह पता नहीं लगता कि किस ताप पर कितना वाष्पशील अंश निकलता है और कोक की प्रकृति कैसी होती है।

विभिन्न उत्पादों की प्रकृति और मात्रा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोयले के आमापन की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए ईंधन अनुसंधान बोर्ड ने कुछ प्रामाणिक विधियों का प्रतिपादन किया है। यह आवश्यक है कि यह आमापन प्रामाणिक परिस्थिति में ही हो, ताकि उससे प्राप्त अंकों से हम कोयले की प्रकृति का ठीक-ठीक पता लगा सकें।

निम्न ताप पर कार्बनीकरण आमापन

इस आमापन का ताप ६००° से० होता है। इस प्रयोग से पता लगता है कि कोयले से कितना कोक, कितनी गैस, कितना अलकतरा, अमोनिया और द्रव प्राप्त होते हैं।

छोटे पैमाने पर जो आँकड़े प्राप्त होते हैं उनसे बड़े पैमाने पर होनेवाले आँकड़ों का अनुमान लगाया जाता है।

कोक—आमापन से प्राप्त कोक और वाष्पशील पदार्थ की मात्रा वही रहती है जो बड़े पैमाने पर प्राप्त होती है।

गैस—आमापन से प्राप्त गैस की मात्रा बड़े पैमाने पर प्राप्त होनेवाली मात्रा से अल्प अधिक रहती है, क्योंकि बड़े पैमाने पर कार्बनीकरण का समय सीमित रहता है।

अलकतरा—आमापन से जो अलकतरा प्राप्त होता है उसका ६० प्रतिशत ही बड़े पैमाने पर प्राप्त होता है।

यदि आमापन के लिए कोयले का चूर्ण प्रयुक्त हुआ है और आमापन तथा बड़े पैमाने का ताप एक ही है तो कोक की प्रकृति एक-सी रहती है।

जिस ताप पर कोयले का विच्छेदन शीघ्रता से होता है उसका पता तेल-वाष्प की उपस्थिति अथवा गैस के स्थिर उद्विकासन से लगता है। आमापन में तेल की मात्रा इतनी प्राप्त होती है कि उससे उसका विशिष्ट भार यथार्थता से निकाला जा सके।

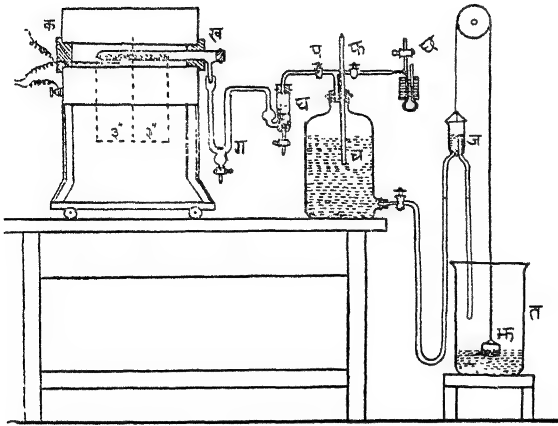
आमापन से जो गैस प्राप्त होती है उसका विशिष्टभार और ऊष्मीय मान निकाला जा सकता है। उसका विश्लेषण भी किया जा सकता है। बड़े पैमाने पर प्राप्त होने-वाली गैस की प्रकृति-जैसी ही यह गैस होती है। आमापन से प्राप्त गैस में असंतृप्त हाइड्रोकार्बन की प्रतिशतता कुछ कम होती है।

उपकरण

निम्न ताप पर आमापन में जो उपकरण प्रयुक्त होता है, उसका चित्र यहाँ दिया हुआ है। इसमें एक भ्राष्ट्र 'क' होता है। बिजली से भ्राष्ट्र को गरम करना सुविधाजनक होता है। भ्राष्ट्र के मध्य में कम से कम १५ सेंटीमीटर का स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ पदार्थ एक-सा गरम किया जा सके। ताप के नियंत्रण का पूरा प्रबन्ध रहना चाहिए। भ्राष्ट्र में जो भभका रखा जाता है उसका बाहरी भाग 'ख' है। यह भभका भ्राष्ट्र के मध्य में रखा जाता है।

भभका 'ख' सिलिका की नली होती है। इसकी लंबाई ३० सेंटीमीटर की और व्यास २ सेंटीमीटर का होता है। इस सिलिका नली के खुले छोर से प्रायः २ सेंटीमीटर की दूरी पर एक पतली छोटी नली प्रायः ९ मि० मी० व्यास की संमुद्रित रहती है। सिलिका नली का खुला छोर रबर के काग से बन्द रहता है। नली चिकनी और समान छेद की रहनी चाहिए। कुछ शुण्डाकार रहे तो और अच्छा है। बाहर की ओर कुछ

चौड़ी रहनी चाहिए। इस छोटी पार्श्वनली से एक यू-नली 'ग' जुटी रहती है। यह नली संघनित्र का काम करती है। यह बाहर से ठंडी की जा सकती है। इसमें एक छोटा बल्ब और रोधनी लगी रहती है। बल्ब ऐसा होता है कि उसमें ५ सी० सी० द्रव अँट सके।



चित्र ७६—निम्न ताप पर आमापन का उपकरण

इस यू-नली के साथ एक दूसरी नली 'घ' लगी रहती है। यह १५ सेंटीमीटर लंबी और २ से ३ सेंटीमीटर व्यास की होती है। इस नली में काँच के मनके भरे रहते हैं, और मनके सलफ्यूरिक अम्ल से भींगे रहते हैं। इस नली में अमोनिया का अवशोषण होता है। इस नली में एक गैस-धारी (gas holder) 'च' जुटा रहता है जिसमें ग्लिसरीन और जल के सम आयतन का मिश्रण भरा रहता है। रबर नली के द्वारा गैस-धारी एक काँच आशय 'छ' से संबद्ध रहता है। यह आशय घर्घरी से एक डोरी द्वारा लटका रहता है। इस डोरी के दूसरे छोर पर काँच का एक पात्र रहता है जिसमें सीस की गोलियाँ रखकर आशय को संतुलित रखते हैं।

जब गैस 'च' में प्रवेश करती है तब गैसधारी का द्रव निकलकर 'प' पात्र में चला जाता है। इस पात्र का अभ्यन्तर व्यास 'च' के व्यास के बराबर ही होता है। 'प' पात्र में एक प्रतिभार 'फ' तैरता है। 'च' पात्र में तरल की सतह में जितनी कमी होती है उतनी ही द्रव की सतह 'च' में और उससे 'फ' उठता और उतना ही 'छ' गिर जाता है जिससे गैसधारी का दबाव स्थायी रहता है।

'प' की ऊँचाई का समंजन प्रयोग के प्रारम्भ में ही कर लेते हैं ताकि आशय के द्रव का समतल (लेवल) गैस-धारी 'च' के समतल से नीचा रहे। प्रारम्भ में इन दोनों समतलों में जो अन्तर रहे वही अन्तर बराबर बना रहना चाहिए। इन दोनों को सम्बद्ध करनेवाली नली का व्यास भी ऐसा रहना चाहिए कि द्रव स्वच्छन्दता से 'च' से 'छ' में आता जाता रहे।

प्रयोग-प्रणाली

कोयले को ऐसा पीसते हैं कि वह ७२-अक्षि की चलनी में छन जाय। उसे फिर १०५ से ११०° से० पर सुखा लेते हैं। गैस-धारी में द्रव भर लेते और आशय का समंजन ऐसा कर लेते हैं कि द्रव का समतल 'च' के द्रव के समतल से प्रायः एक सेंटीमीटर नीचा रहे। शुष्क यू-नली 'ग' को तौल लेते हैं। 'ख' नली को अल्प प्रज्ज्वलित (इग्नाइटेड) एस्बेस्टस-ऊन के साथ तौलते हैं। एस्बेस्टस-ऊन ठेपी (प्लग) का काम करता है। उसमें फिर २० ग्राम सूखे कोयले को तौलकर नली के स्तर में ऐसा फैला देते हैं कि नली के व्यास के प्रायः दो तिहाई स्थान को वह घेर ले। लगभग ६ इंच की लम्बाई में यह फैल जाता है। एस्बेस्टस ठेपी के कारण यह अपने स्थान पर रहता है। इस प्रकार भरी नली को एक रबर की पिधा द्वारा 'ग' से जोड़ देते हैं। अब भ्राष्ट्र को पहले से ३००° से० तक गरम कर नली को उसमें फिसला देते हैं।

कोयले से ज्यों ही अधिधारित गैस और वायु का निकास बन्द हो जाता है, भ्राष्ट्र का ताप धीरे-धीरे उठाकर एक घंटे में ५५० से ६००° से० तक पहुँचा देते हैं। इस समय देखते रहते हैं कि किस ताप पर तेल पहली बार देख पड़ता है और गैस निकलना शुरू होती है। इस अन्तिम ताप पर एक घंटे तक गरम करते हैं। इसके बाद गैस का निकलना बन्द हो जाता है और गैस के आयतन में वृद्धि नगण्य होती है। अब नली को भ्राष्ट्र से निकालकर ठंडा होने देते हैं।

अब दाब प्रमापी 'छ' (प्रेशर गेज) को शून्य में करके रोधनी 'प' और 'फ' को बन्द कर 'ख' को खोल देते हैं। ठंडा होने पर 'ख' के तौलने से कोक की मात्रा मालूम होती है। तौलने के बाद 'ख' में यदि कुछ अलकतरा लगा रहे तो किसी विलायक द्वारा उसे निकाल लेते अथवा नली के बाह्य भाग को धौंकनी (ब्लोपाइप) की ज्वाला में तपाकर जला देते हैं। नली को फिर तौलते हैं। तौल में जो कमी होती है वह अलकतरे के कारण होती है। इस भार को 'ग' के अलकतरे के भार में जोड़कर अलकतरे और द्रव की मात्रा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। नली के भार से कोक की मात्रा का पता लगता है।

यदि अकलतरा और द्रव की मात्रा अलग-अलग मालूम करना हो तो उसे टोल्विन से धोकर १० सी० सी० की अंशांकित नली में रखकर जलीय स्तर का आयतन बढ़ा लेते हैं। यदि जलीय स्तर और टोल्विन-स्तर के विभेद करने में कोई कठिनाई हो तो केन्द्रापसरण की सहायता ले सकते हैं।

'घ' नली की अन्तर्वस्तु को धोकर फ्लास्क में कर लेते और 'ग' से प्राप्त जलीय स्तर को भी उसमें मिला लेते हैं। अब पर्याप्त सोडियम हाइड्राक्साइड का विलयन डालकर क्षारीय बनाकर अमोनिया का आसवन कर लेते हैं। आसुत को N/10 सलफ्यूरिक अम्ल के ज्ञात विलयन में ले जाकर जो अम्ल बच जाता है उसका N/10 सोडियम हाइड्राक्साइड के विलयन से अनुमापन कर लेते हैं।

गैस का आयतन मालूम करने के लिए पिपेट द्वारा 'प' से पानी निकालकर उसे आशय 'छ' में बहने देते हैं। आशय को फिर धीरे धीरे उठाकर इतना ऊँचा करते हैं कि उसका द्रव उसी समतल पर आ जाय जिस समतल पर 'च' का द्रव है। दबाव प्रमापी 'ट' 'प' के विलयन के भार और विशिष्ट भार से गैस का आयतन वायु के ताप और वायुमण्डल के दबाव पर निकालकर उससे गणना द्वारा आयतन निकालते हैं।

यदि प्रथम बार प्रयोग किया जाय तो उससे प्राप्त गैस में कुछ वायु मिली रह सकती है। यह वायु नली और अन्य पात्रों से आती है। यदि इसी नली में दूसरा प्रयोग किया जाय तो उससे प्राप्त गैस अधिक शुद्ध होती है और उसमें वायु नहीं मिली रहती। शुद्ध गैस को ही विश्लेषण, विशिष्ट भार और ऊष्मीय मान के लिए प्रयुक्त करना चाहिए।

टिप्पणियाँ—(१) यदि प्रयोग ठीक-ठीक किया जाय तो परिणाम पर्याप्त यथार्थ प्राप्त होता है। + ०·२ प्रतिशत से अधिक की त्रुटि नहीं होती। कोयले के प्रति १०० ग्राम में गैस के आयतन में +१२५ सी० सी० तक की त्रुटि हो सकती है।

(२) प्रयोग के लिए जो भ्राष्ट्र प्रयुक्त होता है वह ऐसा होना चाहिए कि उसमें एक-सा ताप प्राप्त हो सके।

(३) कोयले का स्तर एक-सा गहरा और केवल ६ इंच लम्बा होना चाहिए।

(४) नली में जो अलकतरा चिपका हो उसे ऐसिटोन से धो लेना चाहिए। अल्पतम ऐसिटोन का व्यवहार करना चाहिए।

(५) संघनित्र ऐसा होना चाहिए कि वह पानी या बर्फ से ठंडा किया जा सके।

(६) गैस के मापन में विशेष यथार्थता रखनी चाहिए।

(७) कोयले को १०५ से ११०° से० पर सुखा लेने से कोयले से जो पानी निकलता है वह कोयले के विच्छेदन से प्राप्त पानी होता है।

(८) गैस में हाइड्रोजन सल्फाइड पर्याप्ति मात्रा में रह सकता है, यदि कोयले में गन्धक की मात्रा अधिक है।

हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा का निर्धारण सरल नहीं है, वह पानी और ग्लिसिरीन के मिश्रण में घुल जाता और गैस-उपकरण के पारद को आक्रान्त करता है। इससे हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा वास्तविक मात्रा से कम प्राप्त होती है। इससे अच्छा यही होता है कि कार्बनीकरण के समय ही हाइड्रोजन सल्फाइड को कैडमियम सल्फाइड के रूप में निकाल लिया जाय और उसे आयोडीन के प्रामाणिक विलयन से अनुमापित कर लिया जाय।

इसके लिए कैडमियम क्लोराइड अथवा कैडमियम सल्फ़ेट के विलयन को अमोनिया-मार्जक के बाद उद्बुद (bubbler) की पंक्तियों में रखना पड़ता है। हाइड्रोजन सल्फाइड से कैलसियम सल्फाइड का अवक्षेप बनता है। अवक्षेप को उष्ण जल से भली-भाँति धो लेते हैं। अवक्षेप को फिर पिधावाले ५०० सी० सी० की बोतल में स्थानान्तरित कर २०० सी० सी० आसुत जल डालकर बोतल को जोरों से हिलाकर अवक्षेप को सूक्ष्म वना लेते हैं। उसमें फिर आयोडीन का N/10 विलयन आधिक्य में डालकर तनु सलफ्यूरिक अम्ल से अम्लीय बना लेते हैं। उसे फिर कुछ देर रखकर जब कैडमियम सल्फाइड पूर्णतया घुल जाय तब आयोडीन के आधिक्य को सोडियम थायोसल्फ़ेट के N/10 विलयन से अनुमापन करते हैं। सूचक के रूप में स्टार्च के विलयन का उपयोग करते हैं।

N/10 आयोडीन विलयन का एक घन सेंटीमीटर
=नार्मल ताप और दबाव पर १·२२ सी० सी० हाइड्रोसल्फाइड के या ०·००१७ ग्राम के।

बहुत फूलनेवाला कोयला

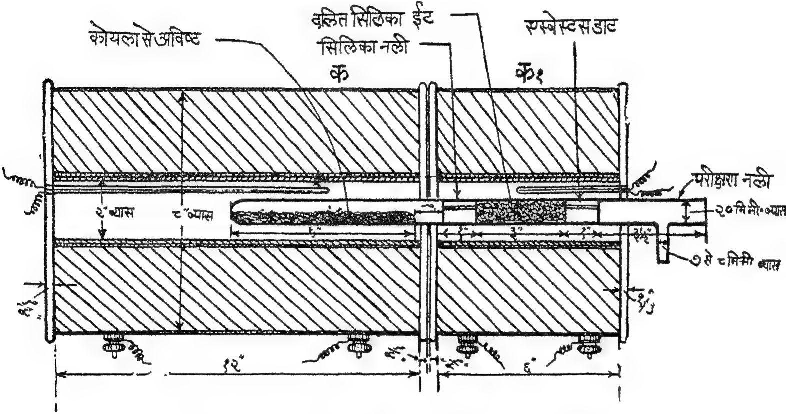
यदि कोयला बहुत फूलनेवाला हो तो वायु-शुष्क कोयले को महीन पीसे हुए वायु-शुष्क कोक से मिलाकर तब प्रयोग करते हैं। कोक इतना मिलाते हैं कि कोयले के फैलने से नली पूरी भर न जाय। ऐसे मिश्रण की मात्रा २० ग्राम से अधिक नहीं रहनी चाहिए।

उच्चताप कार्बनीकरण आमापन

यह आमापन ९००° से० के लगभग ताप पर होता है। भ्राष्ट्र को पहले ८००° से० तक गरम कर तब उसमें कोयला डालते हैं। कोयले को प्रायः ३००° से० तक पहले गरम कर लेते हैं। प्रायः दो घंटे में भ्राष्ट्र के ताप को ९००° से० पर उठाकर ३० मिनट इसी ताप पर रखते हैं। यहाँ जो उपकरण प्रयुक्त होता है वह प्रायः वैसा ही होता है

जैसा उपकरण निम्न ताप पर प्रयुक्त होता है। केवल सिलिका का पात्र कुछ विभिन्न होता है।

यहाँ भी भ्राष्ट्र बिजली से गरम किया जाता है। भ्राष्ट्र में 'क' और 'क^१' के बीच का ताप एक-सा रहना चाहिए। भभका प्रायः एक-सा ही होता है। भभके में यहाँ भी सिलिका नली होती है। भभके में कोयला कैसे रखते हैं उसका पता चित्र से लगता है। प्रयोग के अन्य विस्तार भी प्रायः एक-से ही हैं।



चित्र ७७—कार्बनीकरण आमापन का उपकरण

कोयले में खनिज द्रव्य

कोयले में खनिज द्रव्य अवश्य रहता है। कुछ खनिज द्रव्य समस्त कोयले में एक-सा बिखरा रहता है। ऐसे खनिज द्रव्य को 'अन्तर्निहित' खनिज द्रव्य कहते हैं। कुछ खनिज द्रव्य विभिन्न मोटाई और विस्तार के पिंड या पट्ट के रूप में रहते हैं। ऐसे खनिज द्रव्य को 'बाह्य' या 'मुक्त' खनिज द्रव्य कहते हैं।

अन्तर्निहित खनिज द्रव्य में अकार्बनिक लवण रहता है। यह लवण पौधों से कोयले में आता है। अवशोषण और अधिशोषण से और वर्षा और वायु से वह सांद्रित हो जाता है। कोयले में यह सूक्ष्म दशा में और सर्वत्र फैला हुआ रहता है। सामान्य धावन से यदि कोयले की सफ़ाई की जाय तो यह अन्तर्निहित लवण नहीं निकलता।

बाह्य खनिज द्रव्य भी प्रायः सदा ही कोयले में कुछ न कुछ रहता है। यह मिट्टी, शिलिका (shale) और चट्टानों से आता है। ऐसे द्रव्यों में लौहमाक्षिक, चूना, मैगनीशिया और लोहे के कार्बोनेट और चूने के सल्फ़ेट रहते हैं। कुछ ऐसे द्रव्य

तो पेड़-पौधों के साथ ही विक्षिप्त होते और कुछ पारच्यवन (parcolation) और आलम्बन से कोयले में आते हैं। खनन के समय कुछ छतों और गचों की चट्टानों से भी निकलकर कोयले में मिल जाते हैं। ऐसे खनिज द्रव्यों से धावन में कोयले की बहुत कुछ सफ़ाई हो जाती है

कोयले के जलाने से खनिज द्रव्यों में कुछ परिवर्तन होते हैं। शिलिका के ६००° से० तक गरम करने से संयुक्त जल निकल जाता है। चूना, मैगनीशिया और लोहे का कार्बोनेट विच्छेदित होकर कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाता और आक्साइड रह जाता है। लोहे का सल्फाइड भी लोहे के आक्साइड में आक्सीकृत हो जाता है। कार्बनिक गन्धक गन्धक के ट्राइ-आक्साइड में परिणत हो चूना या अल्कली धातु से मिलकर सल्फ़ेट बनता है। क्षारीय धातुओं के क्लोराइड भी कोयले में अल्प मात्रा में रहते हैं। गरम करने से ये उड़कर पूर्णतया निकल जाते हैं।

कोयले के दहन से जो राख प्राप्त होती है उसमें कोयले के खनिज द्रव्य सब के सब नहीं रहते। विच्छेदन से उनका कुछ अंश निकल जाता है पर कोयले की राख से भी कोयले में खनिज द्रव्य की मात्रा निकाली जा सकती है। इस सम्बन्ध में कुछ सूत्र प्रतिपादित हुए हैं जिनकी सहायता से राख से खनिज द्रव्यों की मात्रा निकाली जा सकती हैं।

कोयले से खनिज द्रव्यों का निकाल बाहर करना आवश्यक है। खनिज द्रव्यों से कोयले की हानि होती है। खनिज द्रव्यों के निकालने के निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) यदि खानों से कोयला निकाल लेने पर ही कोयले की सफ़ाई कर ली जाय तो खनिज द्रव्यों का परिवहन खर्च बच जाता है।

(२) खनिज द्रव्यों के निकाल लेने से कोयले की दक्षता बढ़ जाती है। ऐसे कोयले से अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है।

(३) खनिज द्रव्यों के कारण कोयले में राख और प्रझाम अधिक बनते हैं। इनके हटाने में अधिक खर्च पड़ता है। उष्ण राख भ्राष्ट्र के आस्तर को आक्रान्त कर भ्राष्ट्र को शीघ्र नष्ट कर सकती है। ऐसे भ्राष्ट्र को प्रझाम के निकालने के लिए बार बार उटकेरने से भी भ्राष्ट्र की क्षति हो सकती है।

(४) खनिज द्रव्यों में गन्धक और फास्फरस भी रहते हैं। ये कोक में रह सकते हैं। ऐसा कोक धातुनिर्माण के लिए अच्छा नहीं होता।

पर कोयले की बहुत अधिक सफाई भी अच्छी नहीं होती। ऐसे कोयले से प्राप्त राख का गलनांक नीचा होने से कोयले की उपयोगिता बहुत कुछ घट जाती है।

कोयले में केवल अन्तर्निहित द्रव्य हैं अथवा बाह्य खनिज द्रव्य भी हैं, इसका कुछ ज्ञान 'एक्स-परीक्षण' से हो सकता है। बाह्य खनिज द्रव्यवाला कोयला अपारदर्शक होता है और केवल अन्तर्निहित द्रव्यवाला कोयला अपेक्षया पारदर्शक होता है। विशिष्ट भार के निर्धारण से भी कुछ पता लग सकता है। कोयले में जितना ही खनिज द्रव्य रहता है वह उतना ही हलका होता है। कोयले की सफाई का वर्णन पहले हो चुका है।

छोटे पैमाने पर भी कोयले की सफाई का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे प्रयोग के लिए कोयले के टुकड़े इतने बड़े होने चाहिए जितने बड़े टुकड़े बड़े पैमाने पर प्रयुक्त होते हैं। यदि ऐसा न हो तो परिणाम से विशेष लाभ नहीं होता। इस प्रयोग के लिए कोयले को सुखाना आवश्यक नहीं है। सुखाने से केवल विशिष्ट भार में ही अन्तर नहीं पड़ता, वरन् उससे कोयले का कुछ विघटन (डिसइंटेग्रेशन) भी हो सकता है।

इस प्रयोग के लिए कोयला इतना लेना चाहिए कि कोयले के सब मैल उसमें आ जायँ। साधारणतया ऐसे कोयले में २००० टुकड़े रहने चाहिए। भिन्न भिन्न विस्तार के टुकड़ों का परीक्षण अलग-अलग करना चाहिए। एक साथ करने से विश्वसनीय परिणाम नहीं प्राप्त होता।

चैपमैन और मौट्ट[१] का सुझाव है कि इस परीक्षण के लिए कोयले के टुकड़े निम्नलिखित आकार के अलग रहने चाहिए—

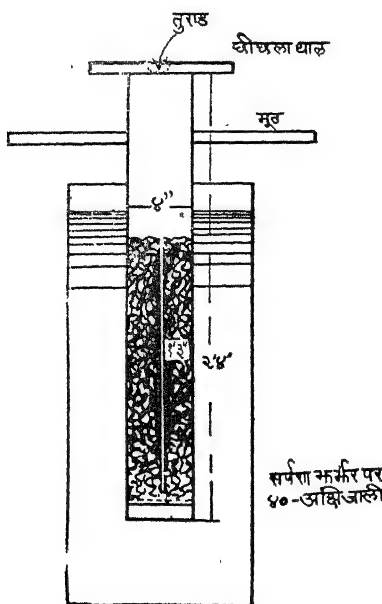
१ इंच के
१ इंच से ३/४ इंच के
३/४ इंच से १/२ इंच के
१/२ इंच से ३/८ इंच के
३/८ इंच से १/४ इंच के
१/४ इंच के
१/४ इंच से १/८ इंच के
१/८ इंच से १/१६ इंच के
१/१६ इंच के

१. Chapman and Mott

हेनरी रीति

छोटे पैमाने पर परीक्षण हेनरी रीति से किया जा सकता है। यहाँ पीतल की एक नली, २८ से ३० इंच की लम्बाई और ४ इंच व्यास की होती है। इस नली के ऊपरी अंश में एक छिछला थाल स्थित रहता है। इस थाल से कोयले के नमूने को सुविधा से हटा सकते हैं। थाल के कुछ नीचे पकड़ने के लिए मूठ लगी रहती है। मूठ को पकड़कर नली को पानी में डुबा सकते हैं। पेंदे से एक इंच की दूरी पर नली में पीतल का एक ग्रैवेय (कालर) अन्दर से जुड़ा रहता है। इस ग्रैवेय पर पीतल का एक मण्डल रखा जाता है। इस मण्डल में छेद होता है। मण्डल पर ४०-अक्षि की तारजाली रखी रहती है जो पेच से अपने स्थान पर कसी रहती है।

पानी रखने के लिए एक पात्र रहता है। यह पात्र प्रायः ३० इंच गहरा और नली के व्यास से दो इंच अधिक व्यास का होता है। इस पात्र को पानी से भर देते हैं। उसमें उपर्युक्त नली डालते हैं। फिर कोयले को तौलकर नली में डालते हैं। कोयला इतना रहना चाहिए कि वह नली के १५ इंच स्थान को ले सके। यदि नली का व्यास ४ इंच है तो ऐसी नली के लिए १२०० से १६०० ग्राम कोयले की आवश्यकता पड़ती है।



चित्र ७८—परीक्षण की हेनरी नली

अब नली को पानी में ऊपर नीचे प्रायः एक मिनट तक करते हैं। नीचे करने में कुछ बल का उपयोग करते ओर ऊपर करने में ऐसा नहीं करते। इससे ऊपर की ओर कोयला कुछ ज़ोर से उठता है और नीचे की ओर धीरे-धीरे बैठता है। इससे विशिष्ट भार के अनुसार कोयले के टुकड़े व्यवस्थित हो जाते हैं। स्वच्छ कोयले हलके होने के कारण ऊपर उठते हैं और खनिज द्रव्यवाले कोयले भारी होने के कारण नीचे बैठते हैं। भिन्न-भिन्न प्रयोगों से तुलनात्मक परिणाम प्राप्त होता है। पर इसके लिए आवश्यक है कि कोयले एक-जैसे हों, एक निश्चित समय

तक ऊपर नीचे होते रहें और एकसा ऊपर नीचे होता रहे। बड़े पैमाने पर धोने के लिए यदि जिग का उपयोग करना है तो इस नली में कोयले को १० से २० मिनट तक रखने की आवश्यकता पड़ती है।

धावन के बाद नली को निकालकर पानी बहा लेते हैं। पेंदे में पीतल के ग्रैवेय (कालर) और तारजाली को पेच हटाकर निकाल लेते हैं। लकड़ी के एक छड़ से धक्का देकर कोयले को सावधानी से बाहर निकालते हैं। नली से बाहर कोयला ज्यों ही आध इंच निकले, झटका मारकर थाल से निकालकर एक तौले हुए बेसिन में रखते हैं। इस प्रकार दो या तीन स्तर आधे-आधे इंच के अलग रखते हैं। ये स्तर प्रायः शुद्ध कोयले के होते हैं। इनमें कोई अपद्रव्य नहीं रहता, केवल अन्तर्निहित खनिज पदार्थ रहते हैं। दो या तीन नमूनों के निकाल लेने के बाद एक इंच लम्बाई के कोयले के स्तर को अलग-अलग रखते हैं। जब नली में केवल एक इंच लम्बाई का स्तर रह जाता है तब उसे और छोटे-छोटे स्तरों में निकालते हैं। ऐसे स्तरों में कंकड़ अधिक रहते हैं। पेंदेवाले स्तर में तो कोयला प्रायः होता ही नहीं है, केवल कंकड़ ही कंकड़ रहते हैं।

प्रत्येक स्तर को सुखाकर तौलते हैं। उसे पीसकर महीन बनाकर राख की मात्रा निर्धारित करते हैं। राख की मात्रा से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि राख की मात्रा क्रमशः निचले स्तरों में बढ़ती जाती है और अन्तिम स्तर में तो प्रायः ७२ प्रतिशत तक पहुँच जाती है।

कोयले में राख का विश्लेषण

कोयले के उत्तापन से जो राख प्राप्त होती है वह पर्याप्त महीन होती है और विश्लेषण के लिए साधारणतया उसे फिर महीन करना नहीं पड़ता। पर यदि राख महीन न हो और उसमें कुछ छोटे-छोटे पिंड हों तो स्फटिक खरल में पीसकर उसे महीन बना लेना चाहिए।

महीन चूर्ण में अल्प मात्रा में जल के अवशोषण की क्षमता होती है। वायु में खुला रखने से ऐसा चूर्ण कुछ पानी सोख लेता है। ऐसे अवशोषित जल को १०५° से० तक कुछ समय तक गरम करके निकाल लेना चाहिए। सूखे चूर्ण को पिधा-लगी बोतलों में बन्द करके अथवा शोषित्रों में रखना चाहिए।

ऐसे सूखे चूर्ण के १ ग्राम को यथार्थता से तौलकर उसमें प्रायः ४ ग्राम सोडियम कार्बोनेट डालकर ढक्कनवाली प्लैटिनम की मूषा में गरम करना चाहिए। पहले धीरे-धीरे बुंसेन ज्वाला में गरम करना चाहिए। पीछे तीव्रता से गरम कर मिश्रण को पूर्ण

रूप से पिघला लेना चाहिए। पिघलाने के लिए मेकर[१] बर्नर का अथवा धौंकनी का उपयोग करते हैं। पिघले हुए पुंज को कुछ मिनट तक पिघली हुई दशा में रखते हैं। ठंडा करने पर पिघला हुआ पुंज जल्दी ठोस हो जाता है। ठोस को मूषा में चारों ओर फैला देते हैं।

सिलिका

अब उसे जल से उपचारित करते हैं। फिर पोर्सीलेन या प्लैटिनम बेसिन में स्थानान्तरित करते हैं। मूषा को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धोकर बेसिन के द्रव और आलम्बित को ठोस में मिला देते हैं। बेसिन को घटि-काँच से ढककर रखते हैं ताकि कार्बोनेट के विच्छेदन से निकले बुलबुलों के साथ कोई ठोस निकलकर नष्ट न हो जाय।

बेसिन की अन्तर्वस्तु को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से स्पष्ट रूप से अम्लीय बनाकर जल-ऊष्मक पर कुछ मिनट गरम करते हैं। गरम करने में बड़ी छोटी ज्वाला का उपयोग करते हैं। जब विलयन से समस्त कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाय तब गरम करना बन्द कर देते हैं। घटि-काँच के निचले तल को पानी से धोकर बेसिन में करके बेसिन को उद्वाष्पन से पूरा सुखा लेते हैं। जब बेसिन से अम्ल का धूम निकलना बन्द हो जाय तब गरम करना बन्द कर देते हैं। बेसिन की अन्तर्वस्तु को काँच-छड़ से धीरे-धीरे उटकेरने से अम्ल जल्दी निकल जाता है।

अवशेष में अल्प जल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल फिर डालकर एक बार और सुखा लेते हैं।

पिंड को फिर जल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से उपचारित करते हैं। यदि आवश्यक हो तो गरम कर ले सकते हैं। गरम करने से छानने में सुविधा होती है। आलम्बन में जो सिलिका रहती है उसे वाटमैन छन्ना कागज़ (नं० ४०) में छान लेते और धोकर लवण से मुक्त कर लेते हैं। सिलवर नाइट्रेट का विलयन डालकर छनित में देखते हैं कि वह क्लोराइड से मुक्त हो गया है या नहीं। छनित की कुछ बूँदों में ही सिलवर नाइट्रेट का विलयन डालते हैं अथवा छनित की २० बूँदों को घटि-काँच पर रखकर जल-ऊष्मक पर उद्वाष्पित कर देख लेते हैं कि उसमें कोई तलछट रह जाती है या नहीं। जब कोई क्लोराइड अथवा तलछट न रहे तब सिलिकावाले छन्ना कागज़ को एक तौली हुई प्लैटिनम मूषा में स्थानान्तरित कर पहले धीरे-धीरे और पीछे फूँकनी ज्वाला में गरम कर भार को स्थायी बना लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त स्थायी भार को 'अशुद्ध सिलिका'

१. Meker

संज्ञा देते हैं। ऐसी सिलिका में राख का कुछ अन्य अवयव भी मिला रहता है। यह चूर्ण बहुत हलका होता है। यदि इसे गरम करना पड़े तो पहले बहुत धीरे-धीरे गरम करते हैं ताकि उसके कण के निकल जाने का भय नहीं रहे।

अशुद्ध सिलिका को तनु सलफ्यूरिक अम्ल से अम्लीय बनाकर पर्याप्त हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल डालकर सिलिका को सिलिकन फ्लोराइड में परिणत करते हैं।

सलफ्यूरिक डालकर अम्लीय बनाने का उद्देश्य यह है कि अलूमिनियम फ्लोराइड सदृश अन्य धातुओं के वाष्पशील फ्लोराइड अम्ल द्वारा अवाष्पशील सल्फ़ेट में परिणत हो जायँ।

अब मूषा को रेत-ऊष्मक पर धूम-आधरण में गरम कर पूर्णतया सुखा लेते और मेकर बर्नर पर प्रबलता से गरम करते हैं। जो अवशेष बच जाता है उसके भार को 'अशुद्ध सिलिका' के भारसे घटाने पर जो भार बच जाता है वही 'शुद्ध सिलिका' का भार है। अवशेष बहुत अल्प रहता है। उसे फिर पोटैसियम बाइ-सल्फ़ेट के साथ मिश्रित कर द्रवित करते, फिर द्रवित पुंज को घुलाकर सलफ्यूरिक अम्ल से अम्लीय बनाकर सिलिका से प्राप्त छनित में मिला देते हैं अथवा मूषा में ही छोड़ देते हैं, जो अन्य धातुओं के निर्धारण में प्रयुक्त होता है।

छनित के विश्लेषण के लिए यदि उसमें मैंगनीज़ है तो एक रीति और यदि मैंगनीज़ नहीं है तो दूसरी रीति प्रयुक्त होती है। मैंगनीज़ के रहने से लोहे और अलूमिनियम को अलग कर तब मैंगनीज़ की मात्रा निर्धारित करते हैं।

लोहा

लोहे की मात्रा निकालने में लोहे को अवकृत कर अनुमापन से ऐसा करते हैं। अवकरण के लिए जस्ता इस्तेमाल करते हैं। प्रामाणिक पोटैसियम डाइक्रोमेट के विलयन से अनुमापन करते हैं। ऐसे परिणाम में कुछ त्रुटि हो सकती है। टाइटेनियम आक्साइड भी लोहे के साथ-साथ अवकृत होकर लोहे की मात्रा को बढ़ा देता है।

इस त्रुटि के निवारण के लिए लोहे को हाइड्रोजन सल्फाइड से अवकृत करते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड के वातावरण में उबालकर हाइड्रोजन सल्फाइड के आधिक्य को निकाल डालते और तब प्रामाणिक पोटाश परमैंगनेट के विलयन से अनुमापन करते हैं। मरक्यूरिक क्लोराइड कागज़ से भाप में हाइड्रोजन सल्फाइड की उपस्थिति का पता लगाते हैं। हाइड्रोजन सल्फाइड से कागज़ काला हो जाता है।

टाइटेनियम

टाइटेनियम का निर्धारण रंगमापी रीति से होता है। टाइटेनियम के एक प्रामाणिक विलयन से रंग की तुलना करते हैं। शुद्ध टाइटेनियम के आक्साइड के ०·१ ग्राम को पोटैसियम बाई-सल्फ़ेट के साथ द्रवित कर पिघले पुंज को ऐसे पानी में घुलाते हैं जिसमें प्रायः १० प्रतिशत सलफ्यूरिक अम्ल पड़ा हुआ है। इसको फिर १० मिली० में बनाकर रंग की तुलना करते हैं। यदि ऐसे विलयन का रंग इतना गाढ़ा हो कि रंग की तुलना करना सम्भव न हो तो ऐसे विलयन का १ मिली० लेकर उसमें पर्याप्त हाइड्रोजन पेराक्साइड डालकर पीले रंग को विकसित कर १०० मिली० में बना लेते हैं। ऐसे तनु प्रामाणिक विलयन के १ मिली० में ०·००१ ग्राम टाइटेनियम आक्साइड रहता है।

ऐसे विलयन के अल्प अंश में जिसमें सारा लोहा, अलूमिनियम और टाइटेनियम विद्यमान हैं, ५ घन से० में (२५० घन से० से) हाइड्रोजन पेराक्साइड डालकर मिश्रण को नेसलर काँच में रखकर इसके रंग को उसी विस्तार के दूसरे नेसलर काँच में प्रामाणिक विलयन को बुरेट से डालते हैं और दोनों के रंगों की तुलना कर एक-सा करते हैं। जब दोनों का रंग एक-सा हो जाय तब जितना घन सेंटीमीटर विलयन लगा है उसे ०·०००००१ से गुणा करने से टाइटेनियम आक्साइड का भार निकलता है। यह भार ५ घन सेंटीमीटर में टाइटेनियम आक्साइड का है।

अलूमिनियम

राख में फेरिक आक्साइड, टाइटेनियम आक्साइड और अलूमिनियम आक्साइड तीनों रहते हैं। यदि फेरिक आक्साइड और टाइटेनियम आक्साइड के भार को निकाल लें तो जो शेष बच जाता है वही अलूमिनियम आक्साइड का भार है।

यदि राख में मैंगनीज़ की मात्रा बड़ी अल्प हो तो सिलिका के निकाल लेने पर जो छनित प्राप्त होता है उसमें अमोनिया डालने से लोहा, अलूमिनियम आदि के हाइड्राक्साइड अवक्षिप्त हो जाते हैं। अवक्षेप के प्रज्वलित करने के स्थान में यदि उष्ण तनु सलफ्यूरिक अम्ल में घुलाया जाय तो पर्याप्त यथार्थ परिणाम प्राप्त होता है। जिस छन्ने कागज़ में अवक्षेप को छानते हैं उस कागज़ में भी लोहे आदि का लेश रहता है। उस कागज़ को मूषा में रखकर प्रज्वलित करके 'अशुद्ध सिलिका' से प्राप्त अवशेष में डालकर उसे पोटैसियम बाइ-सल्फ़ेट से द्रवित कर 'द्रवित पुंज' को घुलाकर उस विलयन में डाल देते हैं जिसमें लोहा आदि घुला हुआ है। अब विलयन को २५० मिली० में बनाकर उसका अवशेष भाग, ५० मिली० लेकर अमोनिया से अवक्षिप्त करते हैं।

अवक्षेप को छान, धो और प्रज्वलित कर तौलते हैं। ऐसे प्राप्त भार को ५ से गुणा करने से मिश्रित आक्साइड का भार प्राप्त होता है। ऐसे भार से लोहा और टाइटेनियम के भार के निकाल लेने से अलूमिनियम का भार शेष रह जाता है।

मैंगनीज

राख के विलयन में बेंज़िक एसिटेट विधि से अवक्षेपण से लोहा, अलूमिनियम आदि अवक्षिप्त हो जाते हैं। छनित को सान्द्र करके उसमें ब्रोमीन डालते हैं। जब विलयन का रंग स्पष्ट नारंगी हो जाता है तब ब्रोमीन का डालना बन्द कर देते हैं। अब विलयन को अमोनिया डालकर स्पष्ट क्षारीय बनाकर उबालते हैं। यदि मैंगनीज विद्यमान है तो वह अवक्षिप्त हो जाता है। अवक्षेप को छानकर, धोकर और प्रज्वलित कर तौलते हैं। यहाँ मैंगनीज़ Mn_3O_4 के रूप में रहता है। इसे ०·९१ से गुणा करने से MnO का भार प्राप्त होता है।

कैलसियम और मैगनीशियम

मैंगनीज़ के अवक्षेपण के बाद जो छनित प्राप्त होता है उसे उबालकर अमोनियम औक्ज़लेट डालकर कैलसियम को कैलसियम औक्ज़लेट के रूप में अवक्षिप्त कर CaO के रूप में परिणत कर तौलते हैं।

छनित को अमोनिया से क्षारीय बनाकर उसमें हाइड्रोजन डाइसोडियम फास्फ़ेट डालकर मैगनीशियम को मैगनीशियम पाइरो-फास्फ़ेट, $Mg_2P_2O_7$ के रूप में अवक्षिप्त कर, धोकर और जलाकर तौलते हैं। $Mg_2P_2O_7$ को ०·३६ से गुणा करने से MgO की मात्रा निकलती है।

यदि राख में फास्फरस की मात्रा अधिक हो तो इस रीति में कुछ सुधार की आवश्यकता होती है। कारण धातुओं के हाइड्राक्साइड के साथ-साथ फास्फ़ेट भी अवक्षिप्त होता है।

अल्कली का निर्धारण

राख में अल्कली निर्धारित करने की रीति इस प्रकार है—

महीन पीसी हुई राख के ०·२५ से ०·५ ग्राम को तौलकर उसमें प्रायः समान भार अमोनियम क्लोराइड और आठ-गुना कैलसियम कार्बोनेट डालते हैं। राख और अमोनियम क्लोराइड को पहले एगेट या पोरसीलेन खरल में पीसकर थोड़ा-थोड़ा करके कैलसियम कार्बोनेट का तीन-चौथाई भाग डालते हैं। मिश्रण को अब प्लैटिनम मूषा में रखते हैं। मिश्रण के रखने के पूर्व मूषा के पेंदे को कार्बोनेट के एक पतले स्तर

से ढँक देते हैं। शेष कार्बोनेट से खरल को उद्-क्षालित (रिंज़) कर मूषा में डाल देते हैं। मूषा को कसे हुए (चुस्त) ढक्कन से ढँककर एस्बेस्टस के दफ़्ती के सुराख में रखकर गरम करते हैं। दफ़्ती में रखने का कारण यह है कि बर्नर की ज्वाला से निकला गंधकवाला धुआँ मूषा के मिश्रण के संसर्ग में न आये।

मूषा को पहले प्रायः २० से ३० मिनट तक बहुत धीरे-धीरे गरम करते हैं ताकि अमोनियम लवण धीरे-धीरे वाष्पीभूत हो जाय। फिर इतने जोर से गरम करते हैं कि मूषा के तृतीयांश का ताप मन्द रक्त ताप पर पहुँच जाय। मूषा को इस ताप पर प्रायः १५ मिनट रखते हैं। इससे मिश्रण कुछ संकुचित या सिकुड़ जाता है। पुंज द्रवित नहीं होता पर संपुजित (sintered) अवश्य हो जाता है। ठंडा होने पर पुंज को सरलता से मूषा से पृथक् कर सकते हैं। उसे बेसिन में रखकर प्रायः १५० घन से० उष्ण जल से ढँक देते हैं। इससे पुंज का वियोजन (डिसइण्टेग्रेशन) हो जाता है और क्षार द्रव में आ जाता है। द्रव को अब छन्ना कागज़ पर छानते और यदि कोई पिंड रह गया हो तो दलकर उष्ण जल से छन्ने कागज़ पर ही धो लेते हैं।

अब छनित का आयतन ४०० मिली० हो जाता है। उसमें पर्याप्त ठोस अमोनियम कार्बोनेट डालकर कैलसियम को अवक्षिप्त कर लेते और विलयन को उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं।

अवशेष को अमोनिया और अमोनियम कार्बोनेट से उपचारित कर कैलसियम के लेश को छानकर निकाल लेते और छनित तथा धोवन को एक तोलित प्लैटिनम प्याली (डिश) में रखकर उद्वाष्पित कर सुखा लेते हैं। अब शेष ठोस को बड़ी नीची ज्वाला से गरम कर समस्त अमोनियम लवण को उद्वाष्पित कर लेते हैं।

अवशेष में अल्कली के क्लोराइड रहते हैं। उसे अवकरण-ताप के नीचे ही गरम करते हैं और जब भार स्थायी हो जाता है तब गरम करना बन्द कर देते हैं।

उष्ण प्याली को गरम कर ठंडा करने से भार पहले कम होता है, फिर कुछ देर स्थायी रहता है और अन्त में जल के अवशोषण के कारण बढ़ता है। जब प्याली का भार स्थायी हो जाय तब गरम करना और तौलना बन्द कर देना चाहिए।

क्षार के क्लोराइड में सोडियम और पोटैसियम दोनों के क्लोराइड रहते हैं। परक्लोरिक अम्ल द्वारा उन्हें पृथक् कर सकते हैं। मिश्रित क्लोराइड को पानी के कुछ घन सेंटीमीटर में घुलाकर तिगुना परक्लोरिक अम्ल डालकर क्लोराइड को परक्लोरेट में परिणत करते हैं। तरल को फिर उद्वाष्पित करते हैं। जब परक्लोरिक अम्ल का धुआँ निकलने लगे, तब उसमें ६ मिली० परक्लोरिक अम्ल डालकर उद्वाष्पन को फिर दुहराते हैं। जब सफ़ेद धुआँ आने लगे तब उद्वाष्पन बन्द कर देते हैं। उसमें

अब ०·८ विशिष्ट घनत्व का अलकोहल (भार में ९६ से ९७ प्रतिशत परिशुद्ध अलकोहल) डालकर पोटैसियम परक्लोरेट को अवक्षिप्त कर गूच-मूषा में छान लेते हैं, फिर उसी के बल के अलकोहल से धो लेते हैं। अलकोहल में ०·२ प्रतिशत (भार में) परक्लोरिक अम्ल मिला रहता है। मूषा और अवक्षेप को १२०° से० पर सुखाकर तौलते हैं। निम्नलिखित दत्त से पोटैसियम और सोडियम आक्साइड की मात्रा की गणना करते हैं—

$KClO_4$ का भार × ०·५३८१ = KCl
,, का भार × ०·३४ = K_2O
मिश्रित क्लोराइड का भार − KCl = $NaCl$
$NaCl$ का भार × ०·५३० = Na_2O

इन धातुओं के अतिरिक्त निम्नलिखित धातुओं के आक्साइड भी लेश में राख में रहते हैं—

लिथियम, रूबीडियम, सीज़ियम, ताम्र, रजत, स्वर्ण, स्ट्रौंशियम, बेरियम, जस्ता, जर्मेनियम, इण्डियम, थोरियम, बोरन, बेनेडियम, आर्सेनिक, अण्टीमनी, बिस्मथ, क्रोमियम, मोलिबडेनम और निकेल। इन आक्साइडों का निर्धारण नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेन के कोयले में अल्प मात्रा में जर्मेनियम और गैलियम पाया जाता है। ये आक्साइड धूल के रूप में वाहनी में एकत्र होते हैं। इन्हें निकालकर प्राप्त किया जा सकता है।

कोयले की राख का द्रवणांक

उत्तम कोटि के कोयले में राख की मात्रा अधिक नहीं रहनी चाहिए। पर राख की मात्रा इतने महत्त्व की नहीं है जितना राख का द्रवणांक। यदि राख जल्दी पिघलती है तो राख की मात्रा कम होने पर भी ऐसा कोयला अच्छा नहीं समझा जाता। यदि राख अधिक भी हो पर झाम बननेवाली न हो तो उससे विशेष हानि नहीं।

निम्न ताप पर पिघलनेवाली राख से अनेक कठिनाइयाँ हो सकती हैं और अधिक हानि भी। ऐसी राख में निम्नलिखित कठिनाइयाँ हो सकती हैं:—

(१) राख के पिघले पुंज में कोयले का समवरण (enclosure) होकर कोयला नष्ट हो सकता है।

(२) राख के प्रझाम बनने से भ्राष्ट्र की घरघरी (grate) द्वारा वायु का प्रवेश रुक सकता है। तब प्रझाम को तोड़ने के लिए उटकेरने की आवश्यकता पड़ती है। उटकेरने से कोयले टुकड़े टुकड़े होकर घरघरी से गिरकर राख-गर्त में चले जाते हैं।

इस प्रकार कुछ कोयला नष्ट हो सकता है। प्रज्ञाम के कुछ टुकड़े भ्राष्ट्र के महत्तम उष्ण मण्डल में जाकर वहाँ बड़े-बड़े प्रज्ञाम बन सकते हैं।

(३) राख के कारण भ्राष्ट्र में वायु का प्रवेश रुद्ध हो सकता है। इससे पूर्ण दहन के लिए अधिक वायु के प्रवाह की आवश्यकता पड़ सकती है।

(४) भ्राष्ट्र के ऊष्म-सह के साथ प्रज्ञाम का द्रवण होकर प्रज्ञाम के निकालने के समय भ्राष्ट्र की क्षति हो सकती है।

(५) भ्राष्ट्र के ऊष्म-सह के साथ प्रज्ञाम की क्रिया होकर भ्राष्ट्र की क्षति हो सकती है।

इन कारणों से यह आवश्यक है कि छोटे पैमाने पर प्रयोगशालाओं में कोयले की राख के प्रज्ञाम बनने की प्रवृत्ति का पता लगा लिया जाय। पर इस प्रकार से प्राप्त परिणाम और भ्राष्ट्र में प्रज्ञाम बनने में बिलकुल समान्तरता का समझ लेना भूल होगी। दोनों की परिस्थितियाँ एक-सी नहीं हैं। प्रयोगशाला में राख को महीन पीसकर और चूर्ण रूप से मिलाकर तब प्रयोग करते हैं। भ्राष्ट्र में कोयले में असमान रूप से, कहीं कम और कहीं अधिक, राख फैली हुई रहती है।

राख के अन्त्य विश्लेषण से प्रज्ञाम बनने के सम्बन्ध में विशेष रूप से कुछ पता नहीं लगता। यदि राख में अलूमिना और सिलिका की मात्रा $Al_2 O_3, 2SiO_3$ के अनुकूल है और लोहे और अल्कली की मात्रा कम है तो ऐसी राख जल्दी नहीं पिघलती है पर सदा ही ऐसा होते हुए नहीं देखा जाता।

प्रज्ञाम बनने के लिए केवल भ्राष्ट्र का ताप इतना ऊँचा नहीं रहना चाहिए कि राख पिघल जाय, वरन् धातुमल (slag) की श्यानता भी बड़ी अल्प होनी चाहिए, ताकि धातु-मल बहकर निकल न जाय। यदि धातुमल शीघ्रता से बहकर निकल जाता है तो ऐसे धातु-मल से प्राप्त प्रज्ञाम पर्याप्त पिघला हुआ न होकर ठोस या अर्ध-ठोस रह सकता है। यदि राख में प्रधानतया अलूमिना और सिलिका है तो यह राख पूर्णरूप से पिघलकर श्यानता के ऊँची होने के कारण भ्राष्ट्र से जल्दी निकलती नहीं है।

यहाँ हमें जानना यह है कि किस ताप पर राख ऐसा धातु-मल बनती है कि या तो वह बहकर निकल जाय अथवा ईंधन-तल पर ही अभिपिंडन बन जाय। यह ताप साधारणतया द्रवणांक से कुछ नीचा होता है क्योंकि वह वस्तुतः द्रवण-क्रांतिक मिश्रण बनता है। जिस ताप पर राख धातु-मल बनती है उसका ज्ञान मृदुकरणांक परीक्षण से होता है। मृदुकरणांक वह ताप है जिस ताप पर राख का बना एक छोटा कोण-स्तूप (pyramid) गिरकर चिपटा गोली (blob) सा बन जाता है।

राख में लोहे के आक्साइड का प्रभाव महत्त्व का है। सिलिका के साथ यह ऐसा यौगिक बनता है जो ऊँचे ताप पर पिघलता है। आक्सीकरण वातावरण में, अवकरण गैसों के अभाव में लोहा फेरिक आक्साइड या चुम्बकीय आक्साइड के रूप में कार्य करता है। ऐसा धातु-मल उस धातु-मल से अधिक उष्ण-सह और अधिक श्यान होता है जो फेरस आक्साइड (FeO) से बनता है।

फिल्डनर और सेल्विग[१] ने कोयले की पांच राखों से प्रयोग किये जिनमें फेरिक आक्साइड की मात्रा ७ से ७० प्रतिशत थी और वातावरण भाप और विभिन्न अनुपात में हाइड्रोजन का था। प्रत्येक राख का मृदुकरणांक हाइड्रोजन के वातावरण में ऊँचा पाया गया था क्योंकि यहाँ लोहे का आक्साइड लोहे में अवकृत हो गया था। भाप के वातावरण में भी मृदुकरणांक ऊँचा था। यदि हाइड्रोजन की मात्रा ३० से ७० प्रतिशत हो ताकि लोहा फेरस आक्साइड में परिणत हो जाय तो मृदुकरणांक नीचा होता है।

सारणी

वातावरण की विभिन्नता से कोयला-राख के मृदुकरणांक में परिवर्तन

राख का संघटन	प्रतिशत	गैस में हाइड्रोजन प्रतिशत	मृदुकरणांक °से०
सिलिका, SiO_2	३७·२	१००	१३७०
अलूमिना और फास्फरस पेण्टाक्साइड, Al_2O_3, P_2O_5	२५·५	९३	१२७०
फेरिक आक्साइड, Fe_2O_3	११·८	८०	१२००
टाइटेनिया, TiO_2	१·५	५८·५	१०६५
चूना, CaO	१२·६	४९	१०७५
मैगनीशिया, MgO	१·९	२२·५	१०९५
सोडा, Na_2O	१·४	१६	१०९५
पोटाश, K_2O	०·४	५	१०८०
सल्फर ट्राइआक्साइड, SO_3	५·६	०	१३००

अन्य राखों में भी ऐसे ही प्रभाव देखे गये, यद्यपि वे उतने स्पष्ट नहीं थे।

१. Fieldner and Selvig

कोयले की राख का द्रवणांक

राख का मृदुकरणांक वह ताप है जिस ताप पर राख के बने कोण-स्तूप का विरूपण (डिफारमेशन्) होता है। इस ताप पर कोण-स्तूप के किनारे गोल होना शुरू करते हैं।

द्रवणांक वह ताप है जिस ताप पर राख का बना कोण-स्तूप पूर्णतया पिघलकर चिपटा गोली सा बन जाता है।

मृदुकरणांक और द्रवणांक के बीच के ताप को द्रवणपरास (fusion range) कहते हैं।

राख का शंकु बनाना

राख को एगेट खरल में पीसकर प्राय: २४०-अक्षि चलनी में छान लेते हैं। फिर उसमें डेक्स्ट्रिन का १० प्रतिशत विलयन डालकर पिष्टि बना लेते हैं। पीतल के साँचे में पिष्टि को रखकर शंकु बनाते हैं। साँचे के तल पर वेसलीन का एक पतला लेप चढ़ा लेते हैं ताकि साँचे में राख चिपक न जाय। शंकु का आकार त्रिभुजाकार कोण-स्तूप होता है जिसका एक पार्श्व आधार का लंब होता है। शंकु की ऊँचाई एक इंच और आधार का विस्तार १/२ इंच होता है। आर्द्र शंकु को वायु में सुखाते और तब ऊष्म-सह ईंट के आधार पर बैठाते हैं।

शंकु के कार्बनिक द्रव्य और डेक्सट्रिन के कार्बन को कुछ समय तक एक खुले अपवारित भ्राष्ट्र में जलाकर निकाल लेते हैं। अपवारित भ्राष्ट्र का ताप ८०० से ९००° से० रहना चाहिए।

निर्धारण रीति

मृदुकरणांक और द्रवणांक निकालने के लिए जिस भ्राष्ट्र का उपयोग करते हैं उसका ताप पहले लगभग ८००° से० कर लेते हैं, तब उसमें शंकु को रखकर एक घंटे में ताप को प्राय: १०००° से० कर लेते हैं।

भ्राष्ट्र को ऐसा गरम करते हैं कि अवकरण वातावरण में प्रति मिनट ३ से ४° से० की और आक्सीकरण वातावरण में प्रति मिनट ५° से० की वृद्धि हो।

जब प्रारम्भिक विरूपण का ताप पहुँच जाता है तब ताप की वृद्धि की गति धीमी कर दी जाती है, अवकरण वातावरण में प्रति मिनिट २° से० हो जाता है। यदि २० से ३० मिनट में पिघल जाय तो ठीक है, नहीं तो ताप की वृद्धि की गति फिर बढ़ाकर ३ से ४° से० प्रति मिनट कर दी जाती है।

अवकरण वातावरण में अवकरण और आक्सीकरण गैसों का अनुपात प्रायः ४०:६० रहता है। गैसों के इस अनपात में कुछ सीमा तक परिवर्तन किया जा सकता है। यह सीमा २०:८० और ८०:२० के बीच रह सकती है। अवकरण गैसों में हाइड्रोजन, हाइड्रोकार्बन और कार्बन मनाक्साइड रहते हैं और आक्सीकरण गैसों में आक्सिजन, कार्बन डाइ-आक्साइड और भाप रहते हैं।

अवकरण वातावरण की प्राप्ति के लिए अंशतः जली कोयला-गैस के साथ अल्प मात्रा में ताजी कोयला-गैस मिली रहती है। एक दूसरी रीति से भी ऐसा वातावरण प्राप्त कर सकते हैं। हाइड्रोजन को ऐसे तप्त किये जल पर प्रवाहित करते हैं जिससे अवकरण और आक्सीकरण गैसों का उपयुक्त अनुपात प्राप्त हो सकता है। सिलिंडर में रखे हाइड्रोजन और कार्बन डाइ-आक्साइड के उपयुक्त अनुपात में मिला कर भी ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है।

भ्राष्ट्र में ताप को नापने के लिए प्रकाश उत्तापमापी का उपयोग करते हैं। उत्तापमापी से प्राप्त ताप के अंक में कुछ संशोधन की आवश्यकता पड़ती है। यह संशोधन द्वारी के कारण होता है। १० से १५° से० से अधिक का अन्तर नहीं होता। इस संशोधन के लिए उत्तापमापी को एक ऐसे भ्राष्ट्र में रखते हैं जिसमें द्वारी नहीं रहती और दूसरे ऐसे भ्राष्ट्र में जिसमें द्वारी होती है। दोनों के अन्तर से संशोधन के अंक का पता लग जाता है।

परिणाम को इस प्रकार अंकित करते हैं—

'क' कोयले की राख		दिनांक—उत्तापमापी नम्बर— भ्राष्ट्र — वातावरण, अवकरण
समय	ताप °से०	प्रेक्षण
२·०	—	प्रारम्भ
२·५०	१०००	कोई परिवर्तन नहीं
	१०५०	,,
	१०७०	,,
३·१५	११००	,,
	११२५	आधार पर उदस्फोटन (blistering)
	११४०	कोई परिवर्तन नहीं
३·३०	११५५	अग्र (tip) का कुछ गोल होना
३·३५	११६५	अग्र का पर्याप्त गोल होना
३·३९	११७५	शंकु बैठना शुरू करता है
३·४४	११८५	शंकु बैठता है
३.५१	१२००	बैठता और उदस्फोटन करता है
३·५९	१२१५	बहुत अल्प परिवर्तन
४·६	१२३०	बैठना और उदस्फोटन होना
४·९	१२४०	गिर पड़ना और उदस्फोटन होना
५·१२	१२५०	पूर्ण रूप से गिर पड़ना और उदस्फोटन होना

राख का रंग	
(क) भस्मीकरण पर	मलाई का रंग
(ख) पीसने पर	अल्प आपद्म (पिंक) के साथ पांडुरंग (buff)
पिष्टि का रंग	हलका अवबभ्रु (fawn)
तप्त करने के बाद अवशेष का रूप	कुछ भूरेपन के साथ काला, तल रुखड़ा, बिना चमक का और उदस्फुटित

शंकुवाला प्रयोग एक विशेष प्रकार के भ्राष्ट्र में किया जाता है। भ्राष्ट्र की विशेषताएँ निम्नलिखित रहनी चाहिए—

(१) भ्राष्ट्र में एक ऐसा मण्डल अवश्य रहना चाहिए जिसका ताप एक-सा रखा जा सके। इसी मण्डल में रखकर शंकु को गरम करते हैं।

(२) भ्राष्ट्र के ताप के नियमित रूप से बढ़ने का विशेष प्रबन्ध रहना चाहिए।

(३) भ्राष्ट्र में शंकु के चारों ओर जैसा चाहें वैसा वातावरण रखने का प्रबन्ध रहना चाहिए।

(४) गरम करने के समय शंकु देखा जा सके इसका प्रबन्ध रहना चाहिए।

एक ऐसा भ्राष्ट्र बना है। यह भ्राष्ट्र न्यून दबाव पर कार्य करता है। इसमें दबाव १५०० से० का ताप ६ इंच जल के दबाव पर प्राप्त हो सकता है। इसमें एक छोटी हवा देनेवाली धौंकनी रहती है। इतना ताप पहुँचने के लिए वायु को पहले गरम कर तब भ्राष्ट में ले जाते हैं। भ्राष्ट्र बर्नर द्वारा गरम किया जाता है। तप्त वायु प्रमुख बर्नर में आकर जलती है। तप्त गैसें मूषा के चारों ओर घूमती हुई मूषा को तप्त करती हैं।

मूषा में अवकरण वातावरण उत्पन्न करने के लिए शिखर पर वायु निकास-मार्ग को अंशतः बन्द कर देते और वातयम को खोल देते हैं। इससे अंशतः जली हुई गैस मूषा में पहुँचती है। जिस स्तंभ के सूराख में राख का शंकु रखा रहता है उसी मार्ग से गैस मूषा से बाहर निकल जाती है। आक्सीकरण वातावरण के लिए देखनेवाली नली की द्वारी को खोल देते और वातयम (डैम्पर, अवमन्दक) को बन्द कर देते तथा शिखर के निकास-मार्ग को पूरा खोल देते हैं। देखनेवाली नली द्वारा शंकु के कोमल होनेवाले ताप को प्रकाश-उत्तापमापी में देखते हैं।

सामान्य अवकरण और आक्सीकरण परिस्थिति में जब प्रति घनफुट ४९० ब्रिटिश तापीय मात्रक की कोयला-गैस प्रयुक्त होती है तब १४००° से० के ताप की प्राप्ति के लिए गैस और वायु की मात्रा इस प्रकार की रहनी चाहिए—

परिस्थिति	गैस घनफुट प्रति घंटा	वायु घनफुट प्रति घंटा	वायुदबाव इंचजल
अवकरण	१२०	३९०	२·२
आक्सीकरण	७३	५१५	५·०

पूर्व-तापन के लिए जो गैस प्रयुक्त होती है उसमें अवकरण ताप के लिए गैस की मात्रा प्रायः १७ प्रतिशत और आक्सीकरण ताप के लिए गैस की मात्रा २७ प्रतिशत रहनी चाहिए। अवकरण ताप के प्रायः १३००° से० के लिए एक प्रयोग में लगभग १६० घनफुट गैस और आक्सीकरण ताप के प्रायः १४००° से० के लिए ८० घनफुट गैस खर्च होती है।

एक बिजली का भ्राष्ट्र भी बना है। इसमें भी राख का द्रवणांक निकाला जा सकता है। इस भ्राष्ट्र में ताप के नापने के लिए वैद्युत तापमापी का उपयोग होता है।

पारिभाषिक शब्दों की सूची

अग्न्यंशन pyrolysis
अतपभेदी adiabatic
अधिशोषण adsorption
अधोवाही bast (inner bark)
अधरणिक sapropelic
अधोवाप hopper
अनभिपिण्डन non-agglomeration or non-agglomerating
अनुदैर्घ्य longitudinal
अनुमाप scale (मापनी)
अनुमापन titration
अनुप्रस्थ काट cross section
अनुप्रस्थ प्रभाग cross fraction or section
अपचयन disintegration
अपद्रव्य impurity
अपशोषण (दे० अधिशोषण)
अपोद्धर्षक scraper
अभिपिण्डन agglomeration or agglomerating
अवकरण reduction
अवक्षेप precipitate
अवक्षेपक precipitant
अवक्षेपण precipitation
अवतल (नतोदर) concave
अवपंक sludge
अवशोषण absorption
अवसादीय चट्टान sedimentary rock
अशाख श्रृंखला non-branched chain
असंघनीय गैस incondensible gas
अस्थिकाल bone-black
आंतरक नली core tube
आंभस प्रनाड hydraulic main
आप्यक algae
आयाम dimension
आयाम तन्तु dimension tissue
आलम्बित suspended or hanging
आवेश charge
आसवन distillation
आसुत distillate
आशय reservoir
ईषा shaft
उत्केन्द्र eccentric
उत्क्षालित करना rinse
उत्पाद product
उद्गम source
उद्वाष्पन evaporation
उन्देक्षीय जल (आर्द्रताग्राही) hygroscopic water
उद्दन्त crown, as crown wheel
उपजात bye-product
उद्याम (उत्तोलक) lever

ऊर्ध्वाधार vertical
ऊष्मसह refractory
ऊष्मक bath
ऊष्मा heat
ऊष्मीय मान calorific value
ऊष्मामापी calorimeter
ऊष्मा आदा heat input
एधा cambium
औसांक dew point
कपाट valve
कर्कट muck
कर्मण्यक actifier
कर्बुरित carburetted
कलिल colloid
कवक fungus
कारामेल १००
कार्यवाहक पर्याय, operator
काष्ठनाद vat
काष्ठ जीवितक wood parenchyma
काष्ठासुत अम्ल pyroligneous acid
कास्थि cartilage
किण्वन fermentation
कुंडली भापकी coil of steam
कूर्पर cranck
कूपक (दे० 'ईपा') shaft
केंद्रापसारण ७२ centrifuging
कोणस्तूप pyramid
क्षैतिज horizontal
गूचमूषा Gooch crucible
घटि कांच watch glass
घरघरी, घर्घरी pulley
घूर्णक भभका rotary still or retort
चक्री car
चय (टाल) stack
चलिष्णु तेल mobile oil
चूषण aspiration
च्याव leakage
छनित्र filter
जनित्र generator
जल निचोलित water-jacketted
जलवाही कोथ water carrying gangrene
जलांशन hydrolysis
जलाभेद्य water-proof
जलीयन hydration
जांतव कोयला animal charcoal
जिग Jig
जीव विष toxin
जीर्णक peat (रघु०)
झर्झर grid
झर्झरी grating; grate
तनु dilute
तापीय युग्म thermocouple
ताम्रमाक्षिक copper pyrities
तारपाशी wire-loop
तेल का भंजन cracking of oil
त्रिकोण तिपाई stool
त्वक्षा cork
त्वक्षैधा cork cambium
दमक कक्ष Flash chamber
दलित्र crusher
द्वारी window; small door

द्रोणी (द्रोणिक) trough
द्वैत्रिज्य विसर्जक Sector Discharger
द्विबंध double bond
धरणिक कोयला humic
धातुमल slag
धारिता capacity
धारण catch; wear
धावन, washing; शुष्क धावन, dry washing
धावनकाल washing period; धावन-तेल washing oil
धूम आधरण fume cupboard
नति bend
नरछिद्र (प्रवेशछिद्र) manhole
नरनाली manhole
निथारक decanter
निराकरण neutralisation
निर्वात vacuum
निष्कर्ष extract
निक्षेप deposit
निष्कर्षक extractor
नेतृशलाका guide
नौरिट norrit
नोदक propellor
परास range
परिणाह periphery; apex
परिष्करणी refinery
पर्पटी crust
पश्चवाही reflux
पायस emulsion
पारित करना to pass
पारच्यवन percolation
पारभासक translucent
पिटक basket
पिधा stopper
पिष्टीपिंड pasty mass
पुनर्जनित्र regenerator
पुनराप्त्र recuperator
पुरुभाजन polymerisation
पुरुभाजित polymerised
प्रझाम clinker
प्रतिकर्मक reactant
प्रतिकारक antidote; agent
प्रद्रावण smelting
प्रनाड (प्रणाल भी) main
प्रयोग सिद्ध empirical
प्रशीतन refrigeration
प्रसमूहन agglutinisation or agglutinating
प्रसीता furrow
प्रहारिता lichens
प्रारूपिक typical
प्लव float
बौमा Baume
ब्रि० टि० यू० Bri. thermal unit ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक
भंजक आसवन destructive distillation
भल (मल ?) silt
भौमिकी आपरीक्षण Geological Survey
भाप कुंडली steam coil

भ्राष्ट्र furnace
मज्जक किरण medullary ray
मज्जा pith
मणिभ (केलास) crystal
मणिभीकरण crystallisation
मध्यक middlings
महापंक Swamp
माक्षिक pyrities
मातृद्रव mother liquor
मात्रक unit
मार्जक scrubber
मृत् शिलिका clay slate
मूषा crucible
मृदुकरणांक Softening point
रंगस्थापक mordant
रसकाष्ठ sapwood
रंभ cylinder
रेचक पंप Exhaust pump or Exhauster
रोधनी stop cock
लघु तेल light oil
लोष्ठन flocculation
लोहा उत्प्रेरक iron catalyst
लौहद्रव iron liquor
वरणात्मक selective
वर्णक pigment
वलय ring
वल्क rind; bark
वहति draught
वातयम damper
वाहिनी गैस flue gas
विक्षालन प्रक्रम lixiviation process
विचलन deviation
विच्छेदन decomposition
विजलीयन dehydrating
विपुरु भाजन de-polymerisation
विभव अंतर, पृ० २८५
विलोडक stirrer
विरंजक bleaching agent
विवर्त्ती trunnion, pivot; trochoid
विरूपण परीक्षण Shear test
विलायक solvent
शंकाभीय coinchoidal
शराव dish
शिलिका slate
शीतक cooler
शीतीकरण refrigeration
शोषित्र desiccator
श्यानता viscosity
श्यान viscous
संकिर rake
संकुल काष्ठ coniferous wood
संक्षारण Corrosion
संगणन computation
संग्राही receptacle
संघनक condenser
संघनन condensation
संघनित्र condenser
संघनीय गैस condensible gas
संचायक accumulator
संचिति reserve

संतृप्त saturated
संतृप्तक saturator
संदाम cable
संपुंजन agglomerating
संमुद्रण sealing
संरचना constitution
संस्तर horizon
सांद्रण concentration
संवातन ventilation
सक्रियित कोयला activated coal
सक्रियित कार्बन activated carbon
सपक्ष नह winged nut
समवरण enclosure
सौरभिक हाइड्रोकार्बन aromatic hydro carbon
स्नेहक lubricant
स्थूल कारक solidifier
स्थूलकण काष्ठ जिस काष्ठ के कण बड़े-बड़े होते हैं उसे स्थूलकण काष्ठ कहते है। course-grained wood
स्फान wedge
स्वज clip
हरिता moss
हृत् काष्ठ heart-wood
(वृक्ष के तने के मध्य भाग में काष्ठ का जो कड़ा अंश रहता है उसे 'हृत् काष्ठ' कहते हैं।)